# महाभारत

संस्कृत मूल

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

हिन्दी अनुवाद

वर्ष २

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या १

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

# महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥


वर्ष २ } गोरखपुर, कार्तिक २०१३, नवम्बर १९५६ { संख्या १ पूर्ण संख्या १२


## श्रीकृष्णकी शरण

सर्वारिष्टहरं सुखैकरमणं शान्त्यास्पदं भक्तिदं
स्मृत्या ब्रह्मपदप्रदं स्वरसदं प्रेमास्पदं शाश्वतम् ।
मेघश्यामशरीरमच्युतपदं पीताम्बरं सुन्दरं
श्रीकृष्णं सततं व्रजामि शरणं कायेन वाचा धिया ॥

जो सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंको हर लेनेवाले, एकमात्र सुखस्वरूप अपने आत्मामें रमण करनेवाले, शान्तिके अधिष्ठान, अपनी भक्ति देनेवाले, चिन्तन करनेसे ब्रह्मपद प्रदान करनेमें समर्थ, अपना रस प्रदान करनेवाले, प्रेमके अधिष्ठान, सनातन पुरुष, मेघके समान श्यामसुन्दर विग्रहवाले, अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले, पीताम्बरधारी और सुन्दर हैं, उन श्रीकृष्णकी मैं सदा मन, वाणी और शरीरसे शरण लेता हूँ ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

❀ श्रीहरिः ❀

# विषय-सूची



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

## चित्र-सूची



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

॥ श्रीहरिः ॥

# विषय-सूची

## भीष्मपर्व



## चित्र-सूची

( तिरंगा )



ख—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कौरव-सभामें विराट् रूप

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## भगवान् श्रीकृष्णका विश्वरूप दर्शन कराकर कौरवसभासे प्रस्थान

*वैशम्पायन उवाच*

**विदुरेणैवमुक्तस्तु केशवः शत्रुपूगहा ।**
**दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ १ ॥**
**एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन ।**
**परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि ॥ २ ॥**

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! विदुरजीके ऐसा कहनेपर शत्रुसमूहका संहार करनेवाले शक्तिशाली श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—'दुर्बुद्धि दुर्योधन ! तू मोहवश जो मुझे अकेला मान रहा है और इसलिये मेरा तिरस्कार करके जो मुझे पकड़ना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है ॥ १-२ ॥

**इहैव पाण्डवाः सर्वे तथैवान्धकवृष्णयः ।**
**इहादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः ॥ ३ ॥**

'देख, सब पाण्डव यहीं हैं । अन्धक और वृष्णिवंशके वीर भी यहीं मौजूद हैं । आदित्यगण, रुद्रगण तथा महर्षियोंसहित वसुगण भी यहीं हैं' ॥ ३ ॥

**एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा ।**
**तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः ॥ ४ ॥**
**अङ्गुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः ।**
**तस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाभवत् ॥ ५ ॥**

ऐसा कहकर विपक्षी वीरोंका विनाश करनेवाले भगवान् केशव उच्चस्वरसे अट्टहास करने लगे । हँसते समय उन महात्मा श्रीकृष्णके श्रीअङ्गोंमें स्थित विद्युत्के समान कान्तिवाले तथा अँगूठेके बराबर छोटे शरीरवाले देवता आगकी लपटें छोड़ने लगे । उनके ललाटमें ब्रह्मा और वक्षःस्थलमें रुद्रदेव विद्यमान थे ॥ ४-५ ॥

**लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्यादजायत ।**
**आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाश्विनावपि ॥ ६ ॥**
**मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवास्तथैव च ।**
**बभूवुश्चैव यक्षाश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ ७ ॥**

समस्त लोकपाल उनकी भुजाओंमें स्थित थे । मुखसे अग्निकी लपटें निकलने लगीं । आदित्य, साध्य, वसु, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस भी उनके विभिन्न अङ्गोंमें प्रकट हो गये ॥ ६-७ ॥

**प्रादुरास्तां तथा दोर्भ्यां संकर्षणधनंजयौ ।**
**दक्षिणेऽथार्जुनो धन्वी हली रामश्च सव्यतः ॥ ८ ॥**

उनकी दोनों भुजाओंसे बलराम और अर्जुनका प्रादुर्भाव हुआ । दाहिनी भुजामें धनुर्धर अर्जुन और बायींमें हलधर बलराम विद्यमान थे ॥ ८ ॥

**भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः ।**
**अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमुखास्ततः ॥ ९ ॥**
**अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः ।**

भीमसेन, युधिष्ठिर तथा माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव भगवान्के पृष्ठभागमें स्थित थे । प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी योद्धा हाथोंमें विशाल आयुध धारण किये भगवान्के अग्रभागमें प्रकट हुए ॥ ९½ ॥

**शङ्खचक्रगदाशक्तिशार्ङ्गलाङ्गलनन्दकाः ॥ १० ॥**
**अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च ।**
**नानाबाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः ॥ ११ ॥**

शंख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, हल तथा नन्दक नामक खड्ग—ये ऊपर उठे हुए ही समस्त आयुध श्रीकृष्णकी अनेक भुजाओंमें देदीप्यमान दिखायी देते थे ॥ १०-११ ॥

**नेत्राभ्यां नस्ततश्चैव श्रोत्राभ्यां च समन्ततः ।**
**प्रादुरासन् महारौद्राः सधूमाः पावकार्चिषः ॥ १२ ॥**

उनके नेत्रोंसे, नासिकाके छिद्रोंसे और दोनों कानोंसे सब ओर अत्यन्त भयंकर धूमयुक्त आगकी लपटें प्रकट हो रही थीं ॥ १२ ॥

**रोमकूपेषु च तथा सूर्यस्येव मरीचयः ।**
**तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः ॥ १३ ॥**
**न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः ।**
**ऋते द्रोणं च भीष्मं च विदुरं च महामतिम् ॥ १४ ॥**
**संजयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान् ।**
**प्रादात् तेषां स भगवान् दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः ॥ १५ ॥**

समस्त रोमकूपोंसे सूर्यके समान दिव्य किरणें छिटक रही थीं । महात्मा श्रीकृष्णके उस भयंकर स्वरूपको देखकर समस्त राजाओंके मनमें भय समा गया और उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये । द्रोणाचार्य, भीष्म, परम बुद्धिमान् विदुर, महाभाग संजय तथा तपस्याके धनी महर्षियोंको छोड़कर अन्य सब लोगोंकी आँखें बंद हो गयी थीं । इन द्रोण आदिको भगवान् जनार्दनने स्वयं ही दिव्य दृष्टि प्रदान की थी ( अतः वे आँख खोलकर उन्हें देखनेमें समर्थ हो सके ) ॥ १३–१५ ॥

**तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं माधवस्य सभातले ।**
**देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात च ॥ १६ ॥**

उस सभाभवनमें भगवान् श्रीकृष्णका वह परम आश्चर्यमय रूप देखकर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ १६ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धृतराष्ट्र उवाच

**त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हितः ।**
**तस्मात् त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥**

उस समय धृतराष्ट्रने कहा—कमलनयन ! यदुकुल-तिलक श्रीकृष्ण ! आप ही सम्पूर्ण जगत्के हितैषी हैं, अतः मुझपर भी कृपा कीजिये ॥ १७ ॥

**भगवन् मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः ।**
**भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि नान्यं द्रष्टुमिहोत्सहे ॥ १८ ॥**

भगवन् ! मेरे नेत्रोंका तिरोधान हो चुका है; परंतु आज मैं आपसे पुनः दोनों नेत्र माँगता हूँ । केवल आपका दर्शन करना चाहता हूँ; आपके सिवा और किसीको मैं नहीं देखना चाहता ॥ १८ ॥

**ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।**
**अदृश्यमाने नेत्रे द्वे भवेतां कुरुनन्दन ॥ १९ ॥**

तब महाबाहु जनार्दनने धृतराष्ट्रसे कहा—'कुरुनन्दन ! आपको दो अदृश्य नेत्र प्राप्त हो जायँ' ॥ १९ ॥

**तत्राद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रस्य चक्षुषी ।**
**लब्धवान् वासुदेवाच्च विश्वरूपदिदृक्षया ॥ २० ॥**

महाराज जनमेजय ! वहाँ यह अद्भुत बात हुई कि धृतराष्ट्रने भी भगवान् श्रीकृष्णसे उनके विश्वरूपका दर्शन करनेकी इच्छासे दो नेत्र प्राप्त कर लिये ॥ २० ॥

**लब्धचक्षुषमासीनं धृतराष्ट्रं नराधिपाः ।**
**विस्मिता ऋषिभिः सार्धं तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥**

सिंहासनपर बैठे हुए धृतराष्ट्रको नेत्र प्राप्त हो गये, यह जानकर ऋषियोंसहित सब नरेश आश्चर्यचकित हो मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

**चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे ।**
**विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ २२ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! उस समय सारी पृथ्वी डगमगाने लगी, समुद्रमें खलबली पड़ गयी और समस्त भूपाल अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ २२ ॥

**ततः स पुरुषव्याघ्रः संजहार वपुः स्वकम् ।**
**तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिंदमः ॥ २३ ॥**

तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह श्रीकृष्णने अपने इस स्वरूपको, उस दिव्य, अद्भुत एवं विचित्र ऐश्वर्यको समेट लिया ॥ २३ ॥

**ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।**
**ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ २४ ॥**

तत्पश्चात् वे मधुसूदन ऋषियोंसे आज्ञा ले सात्यकि और कृतवर्माका हाथ पकड़े सभाभवनसे चल दिये ॥ २४ ॥

**ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्ते नारदादयः ।**
**तस्मिन् कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥**

उनके जाते ही नारद आदि महर्षि भी अदृश्य हो गये । वह सारा कोलाहल शान्त हो गया । यह सब एक अद्भुत-सी घटना हुई थी ॥ २५ ॥

**तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः ।**
**अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥ २६ ॥**

पुरुषसिंह श्रीकृष्णको जाते देख राजाओंसहित समस्त कौरव भी उनके पीछे-पीछे गये, मानो देवता देवराज इन्द्रका अनुसरण कर रहे हों ॥ २६ ॥

**अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद् राजमण्डलम् ।**
**निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥ २७ ॥**

परंतु अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण उस समस्त नरेश-मण्डलकी कोई परवा न करके धूमयुक्त अग्निकी भाँति सभाभवनसे बाहर निकल आये ॥ २७ ॥

**ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।**
**हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना ॥ २८ ॥**
**सूपस्करेण शुभ्रेण वैयाघ्रेण वरूथिना ।**
**शैब्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥ २९ ॥**

बाहर आते ही शैब्य और सुग्रीवनामक घोड़ोंसे जुते हुए परम उज्ज्वल एवं विशाल रथके साथ सारथि दारुक दिखायी दिया । उस रथमें बहुत-सी क्षुद्रघंटिकाएँ शोभा पाती थीं । सोनेकी जालियोंसे उसकी विचित्र छटा दिखायी देती थी । वह शीघ्रगामी रथ चलते समय मेघके समान गम्भीर रव प्रकट करता था । उसके भीतर सब आवश्यक सामग्रियाँ सुन्दर ढंगसे सजाकर रक्खी गयी थीं । उसके ऊपर व्याघ्र-चर्मका आवरण लगा हुआ था और रथकी रक्षाके अन्य आवश्यक प्रबन्ध भी किये गये थे ॥ २८-२९ ॥

**तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः ।**
**वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः समदृश्यत ॥ ३० ॥**

इसी प्रकार वृष्णिवंशके सम्मानित वीर हृदिकपुत्र महारथी कृतवर्मा भी एक दूसरे रथपर बैठे दिखायी दिये ॥ ३० ॥

**उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिंदमम् ।**
**धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ३१ ॥**

शत्रुदमन भगवान् श्रीकृष्णका रथ उपस्थित है और अब ये यहाँसे चले जायँगे; ऐसा जानकर महाराज धृतराष्ट्रने पुनः उनसे कहा— ॥ ३१ ॥

**यावद् बलं मे पुत्रेषु पश्यस्येतज्जनार्दन ।**
**प्रत्यक्षं ते न ते किंचित् परोक्षं शत्रुसूदन ॥ ३२ ॥**

'शत्रुसूदन जनार्दन ! पुत्रोंपर मेरा बल कितना काम

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करता है, यह आप देख ही रहे हैं। सब कुछ आपकी आँखोंके सामने है; आपसे कुछ भी छिपा नहीं है ॥ ३२ ॥

**कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव।**
**विदित्वैतामवस्थां मे नाभिशङ्कितुमर्हसि ॥ ३३ ॥**

'केशव! मैं भी चाहता हूँ कि कौरव-पाण्डवोंमें संधि हो जाय और मैं इसके लिये प्रयत्न भी करता रहता हूँ; परंतु मेरी इस अवस्थाको समझकर आपको मेरे ऊपर संदेह नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

**न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान् प्रति केशव।**
**ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः ॥ ३४ ॥**

'केशव! पाण्डवोंके प्रति मेरा भाव पापपूर्ण नहीं है। मैंने दुर्योधनसे जो हितकी बात बतायी है, वह आपको ज्ञात ही है ॥ ३४ ॥

**जानन्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः।**
**शमे प्रयतमानं मां सर्वयत्नेन माधव ॥ ३५ ॥**

'माधव! मैं सब उपायोंसे शान्तिस्थापनके लिये प्रयत्नशील हूँ, इस बातको ये समस्त कौरव तथा बाहरसे आये हुए राजालोग भी जानते हैं' ॥ ३५ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः।**
**द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम् ॥ ३६ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, विदुर, बाह्लीक तथा कृपाचार्यसे कहा—॥ ३६ ॥

**प्रत्यक्षमेतद् भवतां यद् वृत्तं कुरुसंसदि।**
**यथा चाशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः ॥ ३७ ॥**

'कौरव-सभामें जो घटना घटित हुई है, उसे आप लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है। मूर्ख दुर्योधन किस प्रकार अशिष्टकी भाँति आज रोषपूर्वक सभासे उठ गया था ॥ ३७ ॥

**वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः।**
**आपृच्छे भवतः सर्वान् गमिष्यामि युधिष्ठिरम् ॥ ३८ ॥**

'महाराज धृतराष्ट्र भी अपने आपको असमर्थ बता रहे हैं। अतः अब मैं आप सब लोगोंसे आज्ञा चाहता हूँ। मैं युधिष्ठिरके पास जाऊँगा' ॥ ३८ ॥

**आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभ।**
**अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः ॥ ३९ ॥**

नरश्रेष्ठ जनमेजय! तत्पश्चात् रथपर बैठकर प्रस्थानके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीकृष्णसे पूछकर भरतवंशके महाधनुर्धर उत्कृष्ट वीर उनके पीछे कुछ दूरतक गये ॥ ३९ ॥

**भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः।**
**अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः ॥ ४० ॥**

उन वीरोंके नाम इस प्रकार हैं—भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण और महारथी युयुत्सु ॥ ४० ॥

**ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना।**
**कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं स्वसारं स पितुर्ययौ ॥ ४१ ॥**

तदनन्तर किंकिणीविभूषित उस विशाल एवं उज्ज्वल रथके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कौरवोंके देखते-देखते अपनी बुआ कुन्तीसे मिलनेके लिये गये ॥ ४१ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विश्वरूपदर्शने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विश्वरूपदर्शनविषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३१ ॥

# द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## श्रीकृष्णके पूछनेपर कुन्तीका उन्हें पाण्डवोंसे कहनेके लिये संदेश देना

*वैशम्पायन उवाच*

**प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च।**
**आचख्यौ तत् समासेन यद् वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! कुन्तीके घरमें जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णने कौरव-सभामें जो कुछ हुआ था, वह सब समाचार उन्हें संक्षेपसे कह सुनाया ॥ १ ॥

*वासुदेव उवाच*

**उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम्।**
**ऋषिभिश्च मया न चासौ तद् गृहीतवान् ॥ २ ॥**

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले**—बूआजी! मैंने तथा महर्षियोंने भी नाना प्रकारके युक्तियुक्त वचन, जो सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य थे, सभामें कहे, परंतु दुर्योधनने उन्हें नहीं माना ॥ २ ॥

**कालपक्वमिदं सर्वं सुयोधनवशानुगम्।**
**आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान् प्रति ॥ ३ ॥**

जान पड़ता है, दुर्योधनके वशमें होकर उसीके पीछे चलनेवाला यह सारा क्षत्रियसमुदाय कालसे परिपक्व हो गया है। (अतः शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है।) अब मैं तुमसे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धृतराष्ट्र उवाच

**त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हितः।**
**तस्मात् त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥**

उस समय धृतराष्ट्रने कहा—कमलनयन ! यदुकुल-तिलक श्रीकृष्ण ! आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के हितैषी हैं, अतः मुझपर भी कृपा कीजिये ॥ १७ ॥

**भगवन् मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः।**
**भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि नान्यं द्रष्टुमिहोत्सहे ॥ १८ ॥**

भगवन् ! मेरे नेत्रोंका तिरोधान हो चुका है; परंतु आज मैं आपसे पुनः दोनों नेत्र माँगता हूँ । केवल आपका दर्शन करना चाहता हूँ; आपके सिवा और किसीको मैं नहीं देखना चाहता ॥ १८ ॥

**ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः।**
**अदृश्यमाने नेत्रे द्वे भवेतां कुरुनन्दन ॥ १९ ॥**

तब महाबाहु जनार्दनने धृतराष्ट्रसे कहा—'कुरुनन्दन ! आपको दो अदृश्य नेत्र प्राप्त हो जायँ' ॥ १९ ॥

**तत्राद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रश्च चक्षुषी।**
**लब्धवान् वासुदेवाच्च विश्वरूपदिदृक्षया ॥ २० ॥**

महाराज जनमेजय ! वहाँ यह अद्भुत बात हुई कि धृतराष्ट्रने भी भगवान् श्रीकृष्णसे उनके विश्वरूपका दर्शन करनेकी इच्छासे दो नेत्र प्राप्त कर लिये ॥ २० ॥

**लब्धचक्षुषमासीनं धृतराष्ट्रं नराधिपाः।**
**विस्मिता ऋषिभिः सार्धं तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥**

सिंहासनपर बैठे हुए धृतराष्ट्रको नेत्र प्राप्त हो गये, यह जानकर ऋषियोंसहित सब नरेश आश्चर्यचकित हो मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

**चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे।**
**विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ २२ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! उस समय सारी पृथ्वी डगमगाने लगी, समुद्रमें खलबली पड़ गयी और समस्त भूपाल अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ २२ ॥

**ततः स पुरुषव्याघ्रः संजहार वपुः स्वकम्।**
**तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिंदमः ॥ २३ ॥**

तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह श्रीकृष्णने अपने इस स्वरूपको, उस दिव्य, अद्भुत एवं विचित्र ऐश्वर्यको समेट लिया ॥ २३ ॥

**ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च।**
**ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ २४ ॥**

तत्पश्चात् वे मधुसूदन ऋषियोंसे आज्ञा ले सात्यकि और कृतवर्माका हाथ पकड़े सभाभवनसे चल दिये ॥ २४ ॥

**ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्ते नारदादयः।**
**तस्मिन् कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥**

उनके जाते ही नारद आदि महर्षि भी अदृश्य हो गये । वह सारा कोलाहल शान्त हो गया । यह सब एक अद्भुत-सी घटना हुई थी ॥ २५ ॥

**तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः।**
**अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥ २६ ॥**

पुरुषसिंह श्रीकृष्णको जाते देख राजाओंसहित समस्त कौरव भी उनके पीछे-पीछे गये, मानो देवता देवराज इन्द्रका अनुसरण कर रहे हों ॥ २६ ॥

**अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद् राजमण्डलम्।**
**निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥ २७ ॥**

परंतु अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण उस समस्त नरेश-मण्डलकी कोई परवा न करके धूमयुक्त अग्निकी भाँति सभाभवनसे बाहर निकल आये ॥ २७ ॥

**ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना।**
**हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना ॥ २८ ॥**
**सूपस्करेण शुभ्रेण वैयाघ्रेण वरूथिना।**
**शैब्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥ २९ ॥**

बाहर आते ही शैब्य और सुग्रीवनामक घोड़ोंसे जुते हुए परम उज्ज्वल एवं विशाल रथके साथ सारथि दारुक दिखायी दिया । उस रथमें बहुत-सी क्षुद्रघंटिकाएँ शोभा पाती थीं । सोनेकी जालियोंसे उसकी विचित्र छटा दिखायी देती थी । वह शीघ्रगामी रथ चलते समय मेघके समान गम्भीर रव प्रकट करता था । उसके भीतर सब आवश्यक सामग्रियाँ सुन्दर ढंगसे सजाकर रक्खी गयी थीं । उसके ऊपर व्याघ्र-चर्मका आवरण लगा हुआ था और रथकी रक्षाके अन्य आवश्यक प्रबन्ध भी किये गये थे ॥ २८-२९ ॥

**तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः।**
**वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः समदृश्यत ॥ ३० ॥**

इसी प्रकार वृष्णिवंशके सम्मानित वीर हृदिकपुत्र महारथी कृतवर्मा भी एक दूसरे रथपर बैठे दिखायी दिये ॥ ३० ॥

**उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिंदमम्।**
**धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ३१ ॥**

शत्रुदमन भगवान् श्रीकृष्णका रथ उपस्थित है और अब ये यहाँसे चले जायँगे; ऐसा जानकर महाराज धृतराष्ट्रने पुनः उनसे कहा—॥ ३१ ॥

**यावद् बलं मे पुत्रेषु पश्यस्येतज्जनार्दन।**
**प्रत्यक्षं ते न ते किंचित् परोक्षं शत्रुसूदन ॥ ३२ ॥**

'शत्रुसूदन जनार्दन ! पुत्रोंपर मेरा बल कितना काम

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करता है, यह आप देख ही रहे हैं। सब कुछ आपकी आँखोंके सामने है; आपसे कुछ भी छिपा नहीं है ॥ ३२ ॥

**कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव।**
**विदित्वैतामवस्थां मे नाभिशङ्कितुमर्हसि ॥ ३३ ॥**

'केशव ! मैं भी चाहता हूँ कि कौरव-पाण्डवोंमें संधि हो जाय और मैं इसके लिये प्रयत्न भी करता रहता हूँ; परंतु मेरी इस अवस्थाको समझकर आपको मेरे ऊपर संदेह नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

**न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान् प्रति केशव।**
**ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः ॥ ३४ ॥**

'केशव ! पाण्डवोंके प्रति मेरा भाव पापपूर्ण नहीं है। मैंने दुर्योधनसे जो हितकी बात बतायी है, वह आपको ज्ञात ही है ॥ ३४ ॥

**जानन्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः।**
**शमे प्रयतमानं मां सर्वयत्नेन माधव ॥ ३५ ॥**

'माधव ! मैं सब उपायोंसे शान्तिस्थापनके लिये प्रयत्नशील हूँ, इस बातको ये समस्त कौरव तथा बाहरसे आये हुए राजालोग भी जानते हैं' ॥ ३५ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः।**
**द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम् ॥ ३६ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, विदुर, बाह्लीक तथा कृपाचार्यसे कहा—॥ ३६ ॥

**प्रत्यक्षमेतद् भवतां यद् वृत्तं कुरुसंसदि।**
**यथा चाशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः ॥ ३७ ॥**

'कौरव-सभामें जो घटना घटित हुई है, उसे आप लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है। मूर्ख दुर्योधन किस प्रकार अशिष्टकी भाँति आज रोषपूर्वक सभासे उठ गया था ॥ ३७ ॥

**वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः।**
**आपृच्छे भवतः सर्वान् गमिष्यामि युधिष्ठिरम् ॥ ३८ ॥**

'महाराज धृतराष्ट्र भी अपने आपको असमर्थ बता रहे हैं। अतः अब मैं आप सब लोगोंसे आज्ञा चाहता हूँ। मैं युधिष्ठिरके पास जाऊँगा' ॥ ३८ ॥

**आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभ।**
**अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः ॥ ३९ ॥**

नरश्रेष्ठ जनमेजय ! तत्पश्चात् रथपर बैठकर प्रस्थानके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीकृष्णसे पूछकर भरतवंशके महाधनुर्धर उत्कृष्ट वीर उनके पीछे कुछ दूरतक गये ॥ ३९ ॥

**भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः।**
**अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः ॥ ४० ॥**

उन वीरोंके नाम इस प्रकार हैं—भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण और महारथी युयुत्सु ॥ ४० ॥

**ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना।**
**कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं स्वसारं स पितुर्ययौ ॥ ४१ ॥**

तदनन्तर किंकिणीविभूषित उस विशाल एवं उज्ज्वल रथके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कौरवोंके देखते-देखते अपनी बुआ कुन्तीसे मिलनेके लिये गये ॥ ४१ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विश्वरूपदर्शने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विश्वरूपदर्शनविषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३१ ॥

# द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## श्रीकृष्णके पूछनेपर कुन्तीका उन्हें पाण्डवोंसे कहनेके लिये संदेश देना

*वैशम्पायन उवाच*

**प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च।**
**आचख्यौ तत् समासेन यद् वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! कुन्तीके घरमें जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णने कौरव-सभामें जो कुछ हुआ था, वह सब समाचार उन्हें संक्षेपसे कह सुनाया ॥ १ ॥

*वासुदेव उवाच*

**उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम्।**
**ऋषिभिश्चैव च मया न चासौ तद् गृहीतवान् ॥२॥**

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले**—बूआजी ! मैंने तथा महर्षियोंने भी नाना प्रकारके युक्तियुक्त वचन, जो सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य थे, सभामें कहे, परंतु दुर्योधनने उन्हें नहीं माना ॥ २ ॥

**कालपक्वमिदं सर्वं सुयोधनवशानुगम्।**
**आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान् प्रति ॥३॥**

जान पड़ता है, दुर्योधनके वशमें होकर उसीके पीछे चलनेवाला यह सारा क्षत्रियसमुदाय कालसे परिपक्व हो गया है। ( अतः शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है। ) अब मैं तुमसे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आज्ञा चाहता हूँ; यहाँसे शीघ्र ही पाण्डवोंके पास जाऊँगा ॥ ३ ॥

**किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया ।**
**तद् ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव ॥ ४ ॥**

महाप्राज्ञे ! मुझे पाण्डवोंसे तुम्हारा क्या संदेश कहना होगा, उसे बताओ । मैं तुम्हारी बातें सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

कुन्त्युवाच

**ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।**
**भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ ५ ॥**

**कुन्ती बोली**—केशव ! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरके पास जाकर इस प्रकार कहना—बेटा ! तुम्हारे प्रजापालनरूप धर्मकी बड़ी हानि हो रही है । तुम उस धर्मपालनके अवसरको व्यर्थ न खोओ ॥ ५ ॥

**श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः ।**
**अनुवाकहता बुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते ॥ ६ ॥**

राजन् ! जैसे वेदके अर्थको न जाननेवाले अज्ञ वेदपाठीकी बुद्धि केवल वेदके मन्त्रोंकी आवृत्ति करनेमें ही नष्ट हो जाती है और केवल मन्त्रपाठमात्र धर्मपर ही दृष्टि रहती है, उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि भी केवल शान्तिधर्मको ही देखती है ॥ ६ ॥

**अङ्गावेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयम्भुवा ।**
**बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः ॥ ७ ॥**

बेटा ! ब्रह्माजीने तुम्हारे लिये जैसे धर्मकी सृष्टि की है, उसीपर दृष्टिपात करो । उन्होंने अपनी दोनों भुजाओंसे क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है, अतः क्षत्रिय बाहुबलसे ही जीविका चलानेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

**क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने ।**
**शृणु चात्रोपमामेकां या वृद्धेभ्यः श्रुता मया ॥ ८ ॥**

वे युद्धरूपी कठोर कर्मके लिये रचे गये हैं तथा सदा प्रजापालनरूपी धर्ममें प्रवृत्त होते हैं । मैं इस विषयमें एक उदाहरण देती हूँ, जिसे मैंने बड़े-बूढ़ोंके मुँहसे सुन रक्खा है ॥ ८ ॥

**मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददात् पृथिवीमिमाम् ।**
**पुरा वैश्रवणः प्रीतो न चासौ तां गृहीतवान् ॥ ९ ॥**

पूर्वकालकी बात है, धनाध्यक्ष कुबेर राजर्षि मुचुकुन्दपर प्रसन्न होकर उन्हें ये सारी पृथ्वी दे रहे थे; परंतु उन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया ॥ ९ ॥

**बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामिति कामये ।**
**ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत ॥ १० ॥**

वे बोले—'देव ! मेरी इच्छा है कि मैं अपने बाहुबलसे उपार्जित राज्यका उपभोग करूँ ।' इससे कुबेर बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए ॥ १० ॥

**मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद् वसुन्धराम् ।**
**बाहुवीर्यार्जितां सम्यक् क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ११ ॥**

तदनन्तर क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले राजा मुचुकुन्दने अपने बाहुबलसे प्राप्त की हुई इस पृथ्वीका न्यायपूर्वक शासन किया ॥ ११ ॥

**यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।**
**चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा विन्देत भारत ॥ १२ ॥**

भारत ! राजाके द्वारा सुरक्षित हुई प्रजा यहाँ जिस धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका चौथाई भाग उस राजाको मिल जाता है ॥ १२ ॥

**राजा चरति चेद् धर्मं देवत्वायैव कल्पते ।**
**स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥ १३ ॥**

यदि राजा धर्मका पालन करता है तो उसे देवत्वकी प्राप्ति होती है और यदि वह अधर्म करता है तो नरकमें ही पड़ता है ॥ १३ ॥

**दण्डनीतिः स्वधर्मेण चातुर्वर्ण्यं नियच्छति ।**
**प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यश्च यच्छति ॥ १४ ॥**

राजाकी दण्डनीति यदि उसके द्वारा स्वधर्मके अनुसार प्रयुक्त हुई तो वह चारों वर्णोंको नियन्त्रणमें रखती और अधर्मसे निवृत्त करती है ॥ १४ ॥

**दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन वर्तते ।**
**तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते ॥ १५ ॥**

यदि राजा दण्डनीतिके प्रयोगमें पूर्णतः न्यायसे काम लेता है तो जगत्में 'सत्ययुग' नामक उत्तम काल आ जाता है ॥ १५ ॥

**कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।**
**इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम् ॥ १६ ॥**

राजाका कारण काल है या कालका कारण राजा है, ऐसा संदेह तुम्हारे मनमें नहीं उठना चाहिये; क्योंकि राजा ही कालका कारण होता है ॥ १६ ॥

**राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।**
**युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥ १७ ॥**

राजा ही सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका स्रष्टा है । चौथे युग कलिके प्रकट होनेमें भी वही कारण है ॥ १७ ॥

**कृतस्य करणाद् राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते ।**
**त्रेतायाः करणाद् राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते ॥ १८ ॥**

अपने सत्कर्मोंद्वारा सत्ययुग उपस्थित करनेके कारण राजाको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है । त्रेताकी प्रवृत्ति

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करनेसे भी उसे स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है, किंतु वह अक्षय नहीं होता ॥ १८ ॥

**प्रवर्तनाद् द्वापरस्य यथाभागमुपाश्नुते ।**
**कलेः प्रवर्तनाद् राजा पापमत्यन्तमश्नुते ॥ १९ ॥**

द्वापर उपस्थित करनेसे उसे यथाभाग पुण्य और पापका फल प्राप्त होता है; परंतु कलियुगकी प्रवृत्ति करनेसे राजाको अत्यन्त पाप ( कष्ट ) भोगना पड़ता है ॥ १९ ॥

**ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः ।**
**राजदोषेण हि जगत् स्पृश्यते जगतः स च ॥ २० ॥**

ऐसा करनेसे वह दुष्कर्मी राजा अनेक वर्षोंतक नरकमें ही निवास करता है । राजाका दोष जगत्को और जगत्का दोष राजाको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

**राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान् ।**
**नैतद् राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि ॥ २१ ॥**

बेटा ! तुम्हारे पिता-पितामहोंने जिनका पालन किया है, उन राजधर्मोंकी ओर ही देखो । तुम जिसका आश्रय लेना चाहते हो, वह राजर्षियोंका आचार अथवा राज-धर्म नहीं है ॥ २१ ॥

**न हि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्ये व्यवस्थितः ।**
**प्रजापालनसम्भूतं फलं किंचन लब्धवान् ॥ २२ ॥**

जो सदा दयाभावमें ही स्थित हो विह्वल बना रहता है, ऐसे किसी भी पुरुषने प्रजापालनजनित किसी पुण्यफलको कभी नहीं प्राप्त किया है ॥ २२ ॥

**न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न चाहं न पितामहः ।**
**प्रयुक्तवन्तः पूर्वं ते यया चरसि मेधया ॥ २३ ॥**

तुम जिस बुद्धिके सहारे चलते हो, उसके लिये न तो तुम्हारे पिता पाण्डुने, न मैंने और न पितामहने ही पहले कभी आशीर्वाद दिया था (अर्थात् तुममें वैसी बुद्धि होनेकी कामना किसीने नहीं की थी ) ॥ २३ ॥

**यज्ञो दानं तपः शौर्यं प्रज्ञा संतानमेव च ।**
**माहात्म्यं बलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया ॥ २४ ॥**

मैं तो सदा यही मनाती रही हूँ कि तुम्हें यज्ञ, दान, तप, शौर्य, बुद्धि, संतान, महत्त्व, बल और ओजकी प्राप्ति हो ॥ २४ ॥

**नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं दद्युर्मानुषदेवताः ।**
**दीर्घमायुर्धनं पुत्रान् सम्यगाराधिताः शुभाः ॥ २५ ॥**

कल्याणकारी ब्राह्मणोंकी भलीभाँति आराधना करनेपर वे भी सदा देवयज्ञ, पितृयज्ञ, दीर्घायु, धन और पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये ही आशीर्वाद देते थे ॥ २५ ॥

**पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च ।**
**दानमध्ययनं यज्ञं प्रजानां परिपालनम् ॥ २६ ॥**

देवता और पितर अपने उपासकों तथा वंशजोंसे सदा दान, स्वाध्याय, यज्ञ तथा प्रजापालनकी ही आशा रखते हैं ॥ २६ ॥

**एतद् धर्म्यमधर्म्यं वा जन्मनैवाभ्यजायथाः ।**
**ते तु वैद्याः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः ॥ २७ ॥**

श्रीकृष्ण ! मेरा यह कथन धर्मसंगत है या अधर्मयुक्त, यह तुम स्वभावसे ही जानते हो । तात ! वे पाण्डव उत्तम कुलमें उत्पन्न और विद्वान् होकर भी इस समय जीविकाके अभावसे पीड़ित हैं ॥ २७ ॥

**यत्र दानपतिं शूरं क्षुधिताः पृथिवीचराः ।**
**प्राप्य तुष्टाः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः ॥ २८ ॥**

भूतलपर विचरनेवाले भूखे मानव जहाँ दानपति, शूरवीर क्षत्रियके समीप पहुँचकर अन्न-पानसे पूर्णतः संतुष्ट हो अपने घरको जाते हैं, वहाँ उससे बढ़कर दूसरा धर्म क्या हो सकता है ? ॥ २८ ॥

**दानेनान्यं बलेनान्यं तथा सूनृतया परम् ।**
**सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद् राज्यं प्राप्येह धार्मिकः ॥ २९ ॥**

धर्मात्मा पुरुष यहाँ राज्य पाकर किसीको दानसे, किसी-को बलसे और किसीको मधुर वाणीद्वारा संतुष्ट करे । इस प्रकार सब ओरसे आये हुए लोगोंको दान, मान आदिसे संतुष्ट करके अपना ले ॥ २९ ॥

**ब्राह्मणः प्रचरेद् भैक्षं क्षत्रियः परिपालयेत् ।**
**वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छूद्रः परिचरेच्च तान् ॥ ३० ॥**

ब्राह्मण भिक्षावृत्तिसे जीविका चलावे, क्षत्रिय प्रजाका पालन करे, वैश्य धनोपार्जन करे और शूद्र उन तीनों वर्णोंकी सेवा करे ॥ ३० ॥

**भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते ।**
**क्षत्रियोऽसि क्षतात् त्राता बाहुवीर्योपजीविता ॥ ३१ ॥**

युधिष्ठिर ! तुम्हारे लिये भिक्षावृत्तिका तो सर्वथा निषेध है और खेती भी तुम्हारे योग्य नहीं है । तुम तो दूसरोंको क्षतिसे त्राण देनेवाले क्षत्रिय हो । तुम्हें तो बाहुबलसे ही जीविका चलानी चाहिये ॥ ३१ ॥

**पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर ।**
**साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाथ नयेन वा ॥ ३२ ॥**

महाबाहो ! तुम्हारा पैतृक राज्य-भाग शत्रुओंके हाथमें पड़कर लुप्त हो गया है । तुम साम, दान, भेद अथवा दण्ड-नीतिसे पुनः उसका उद्धार करो ॥ ३२ ॥

**इतो दुःखतरं किं नु यदहं हीनबान्धवा ।**
**परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वामित्रनन्दन ॥ ३३ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाले पाण्डव ! इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है कि मैं तुम्हें जन्म देकर भी बन्धु-बान्धवोंसे हीन नारीकी भाँति जीविकाके लिये दूसरोंके दिये हुए अन्न-पिण्डकी आशा लगाये ऊपर देखती रहती हूँ ॥ ३३ ॥

**युद्धयस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान्।**
**मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम् ॥ ३४ ॥**

अतः तुम राजधर्मके अनुसार युद्ध करो। कायर बनकर अपने बाप-दादोंका नाम मत डुबाओ और भाइयोंसहित पुण्यसे वञ्चित होकर पापमयी गतिको न प्राप्त होओ ॥ ३४ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्तीवाक्यविषयक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥

# त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## कुन्तीके द्वारा विदुलोपाख्यानका आरम्भ, विदुलाका रणभूमिसे भागकर आये हुए अपने पुत्रको कड़ी फटकार देकर पुनः युद्धके लिये उत्साहित करना

*कुन्त्युवाच*

**अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।**
**विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परंतप ॥ १ ॥**

**कुन्ती बोली**—शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीकृष्ण ! इस प्रसंगमें विद्वान् पुरुष विदुला और उसके पुत्रके संवादरूप इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ १ ॥

**अत्र श्रेयश्च भूयश्च यथावद् वक्तुमर्हसि।**
**यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥ २ ॥**
**क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी।**
**विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३ ॥**
**विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम्।**
**निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥ ४ ॥**

इस इतिहासमें जो कल्याणकारी उपदेश हो, उसे तुम युधिष्ठिरके सामने यथावत् रूपसे फिर कहना। विदुला नामसे प्रसिद्ध एक क्षत्रिय महिला हो गयी हैं, जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, यशस्विनी, तेजस्विनी, मानिनी, जितेन्द्रिया, क्षत्रिय-धर्मपरायणा और दूरदर्शिनी थीं। राजाओं-की मण्डलीमें उनकी बड़ी ख्याति थी। वे अनेक शास्त्रोंको जाननेवाली और महापुरुषोंके उपदेश सुनकर उससे लाभ उठानेवाली थीं। एक समय उनका पुत्र सिन्धुराजसे पराजित हो अत्यन्त दीनभावसे घर आकर सो रहा था। राजरानी विदुलाने अपने उस औरस पुत्रको इस दशामें देखकर उसकी बड़ी निन्दा की ॥ २—४ ॥

*विदुलोवाच*

**अनन्दन मया जात द्विषतां हर्षवर्धन।**
**न मया त्वं न पित्रा च जातः क्वाभ्यागतो ह्यसि ॥ ५ ॥**

**विदुला बोली**—अरे, तू मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ है तो भी मुझे आनन्दित करनेवाला नहीं है। तू तो शत्रुओंका ही हर्ष बढ़ानेवाला है, इसलिये अब मैं ऐसा समझने लगी हूँ कि तू मेरी कोखसे पैदा ही नहीं हुआ। तेरे पिताने भी तुझे उत्पन्न नहीं किया; फिर तुझ-जैसा कायर कहाँसे आ गया ? ॥ ५ ॥

**निर्मन्युश्चाप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः।**
**यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ॥ ६ ॥**

तू सर्वथा क्रोधशून्य है, क्षत्रियोंमें गणना करनेयोग्य नहीं है। तू नाममात्रका पुरुष है। तेरे मन आदि सभी साधन नपुंसकोंके समान हैं। क्या तू जीवनभरके लिये निराश हो गया ? अरे ! अब भी तो उठ और अपने कल्याणके लिये पुनः युद्धका भार वहन कर ॥ ६ ॥

**माऽऽत्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः।**
**मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७ ॥**

अपनेको दुर्बल मानकर स्वयं ही अपनी अवहेलना न कर, इस आत्माका थोड़े धनसे भरण-पोषण न कर, मनको परम कल्याणमय बनाकर—उसे शुभ संकल्पोंसे सम्पन्न करके निडर हो जा, भयको सर्वथा त्याग दे ॥ ७ ॥

**उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।**
**अमित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धुशोकदः ॥ ८ ॥**

ओ कायर ! उठ, खड़ा हो, इस तरह शत्रुसे पराजित होकर घरमें शयन न कर ( उद्योगशून्य न हो जा )। ऐसा करके तो तू सब शत्रुओंको ही आनन्द दे रहा है और मान-प्रतिष्ठासे वञ्चित होकर बन्धु-बान्धवोंको शोकमें डाल रहा है ॥ ८ ॥

**सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।**
**सुसंतोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥ ९ ॥**

जैसे छोटी नदी थोड़े जलसे अनायास ही भर जाती है और चूहेकी अञ्जलि थोड़े अन्नसे ही भर जाती है, उसी प्रकार कायरको संतोष दिलाना बहुत सुगम है, वह थोड़ेसे ही संतुष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः ॥ १० ॥

तू शत्रुरूपी साँपके दाँत तोड़ता हुआ तत्काल मृत्युको प्राप्त हो जा। प्राण जानेका संदेह हो तो भी शत्रुके साथ युद्धमें पराक्रम ही प्रकट कर ॥ १० ॥

अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन्।
विनदन् वाथवा तूष्णीं व्योम्नि वापरिशङ्कितः ॥ ११ ॥

आकाशमें निःशङ्क होकर उड़नेवाले बाज पक्षीकी भाँति रणभूमिमें निर्भय विचरता हुआ तू गर्जना करके अथवा चुप रहकर शत्रुके छिद्र देखता रह ॥ ११ ॥

त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद् वज्रहतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वाप्सीः शत्रुनिर्जितः ॥ १२ ॥

कायर! तू इस प्रकार बिजलीके मारे हुए मुर्देकी भाँति यहाँ क्यों निश्चेष्ट होकर पड़ा है? बस, तू खड़ा हो जा, शत्रुओंसे पराजित होकर यहाँ पड़ा मत रह ॥ १२ ॥

मास्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माधो भूस्तिष्ठ गर्जितः ॥ १३ ॥

तू दीन होकर अस्त न हो जा। अपने शौर्यपूर्ण कर्मसे प्रसिद्धि प्राप्त कर। तू मध्यम, अधम अथवा निकृष्ट भावका आश्रय न ले, वरं युद्धभूमिमें सिंहनाद करके डट जा ॥ १३ ॥

अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि विज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥ १४ ॥

तू तिन्दुककी जलती हुई लकड़ीके समान दो घड़ीके लिये भी प्रज्वलित हो उठ ( थोड़ी देरके ही लिये सही, शत्रुके सामने महान् पराक्रम प्रकट कर ); परंतु जीनेकी इच्छासे भूसीकी ज्वालारहित आगके समान केवल धूआँ न कर ( मन्द पराक्रमसे काम न ले ) ॥ १४ ॥

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।
मा ह स्म कस्यचिद् गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः ॥ १५ ॥

दो घड़ी भी प्रज्वलित रहना अच्छा; परंतु दीर्घकालतक धूआँ छोड़ते हुए सुलगना अच्छा नहीं। किसी भी राजाके घरमें अत्यन्त कठोर अथवा अत्यन्त कोमल स्वभावके पुरुषका जन्म न हो ॥ १५ ॥

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाजिं यावदुत्तमम्।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते ॥ १६ ॥

वीर पुरुष युद्धमें जाकर यथाशक्ति उत्तम पुरुषार्थ प्रकट करके धर्मके ऋणसे उऋण होता है और अपनी निन्दा नहीं कराता है ॥ १६ ॥

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डितः।
आनन्तर्यं चारभते न प्राणानां धनायते ॥ १७ ॥

विद्वान् पुरुषको अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो या न हो, वह उसके लिये शोक नहीं करता। वह ( अपनी पूरी शक्तिके अनुसार ) प्राणपर्यन्त निरन्तर चेष्टा करता है और अपने लिये धनकी इच्छा नहीं करता ॥ १७ ॥

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १८ ॥

बेटा! धर्मको आगे रखकर या तो पराक्रम प्रकट कर अथवा उस गतिको प्राप्त हो जा, जो समस्त प्राणियोंके लिये निश्चित है, अन्यथा किसलिये जी रहा है? ॥ १८ ॥

इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १९ ॥

कायर! तेरे इष्ट और आपूर्त कर्म नष्ट हो गये, सारी कीर्ति धूलमें मिल गयी और भोगका मूल साधन राज्य भी छिन गया, अब तू किसलिये जी रहा है? ॥ १९ ॥

शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता।
विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत् कथंचन ॥ २० ॥
उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन्।

मनुष्य डूबते समय अथवा ऊँचेसे नीचे गिरते समय भी शत्रुकी टाँग अवश्य पकड़े और ऐसा करते समय यदि अपना मूलोच्छेद हो जाय तो भी किसी प्रकार विषाद न करे। अच्छी जातिके घोड़े न तो थकते हैं और न शिथिल ही होते हैं। उनके इस कार्यको स्मरण करके अपने ऊपर रक्खे हुए युद्ध आदिके भारको उद्योगपूर्वक वहन करे ॥ २०½ ॥

कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः ॥ २१ ॥
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि।

बेटा! तू धैर्य और स्वाभिमानका अवलम्बन कर। अपने पुरुषार्थको जान और तेरे कारण डूबे हुए इस वंशका तू स्वयं ही उद्धार कर ॥ २१½ ॥

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम् ॥ २२ ॥
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान्।

जिसके महान् और अद्भुत पुरुषार्थ एवं चरित्रकी सब लोग चर्चा नहीं करते हैं, वह मनुष्य अपने द्वारा जनसंख्याकी वृद्धिमात्र करनेवाला है। मेरी दृष्टिमें न तो वह स्त्री है और न पुरुष ही है ॥ २२½ ॥

दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः ॥ २३ ॥
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः।

दान, तपस्या, सत्यभाषण, विद्या तथा धनोपार्जनमें जिसके सुयशका सर्वत्र बखान नहीं होता है, वह मनुष्य अपनी माताका पुत्र नहीं, मलमूत्रमात्र ही है ॥ २३½ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा ॥ २४ ॥**
**जनान् योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि स वै पुमान्।**

जो शास्त्रज्ञान, तपस्या, धन-सम्पत्ति अथवा पराक्रमके द्वारा दूसरे लोगोंको पराजित कर देता है, वह उसी श्रेष्ठ कर्मके द्वारा पुरुष कहलाता है ॥ २४½ ॥

**न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ॥ २५ ॥**
**नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम्।**

तुझे हिजड़ों, कापालिकों, क्रूर मनुष्यों तथा कायरोंके लिये उचित भिक्षा आदि निन्दनीय वृत्तिका आश्रय कभी नहीं लेना चाहिये; क्योंकि वह अपयश फैलानेवाली और दुःखदायिनी होती है ॥ २५½ ॥

**यमेनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम् ॥ २६ ॥**
**लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम्।**
**अहोलाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम् ॥ २७ ॥**
**नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते।**

जिस दुर्बल मनुष्यका शत्रुपक्षके लोग अभिनन्दन करते हों, जो सब लोगोंके द्वारा अपमानित होता हो, जिसके आसन और वस्त्र निकृष्ट श्रेणीके हों, जो थोड़े लाभसे ही संतुष्ट होकर विस्मय प्रकट करता हो, जो सब प्रकारसे हीन, क्षुद्र जीवन बितानेवाला और ओछे स्वभावका हो, ऐसे बन्धुको पाकर उसके भाई-बन्धु सुखी नहीं होते ॥ २६-२७½ ॥

**अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात् प्रवासिताः ॥ २८ ॥**
**सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिंचनाः।**

तेरी कायरताके कारण हमलोग इस राज्यसे निर्वासित होनेपर सम्पूर्ण मनोवाञ्छित सुखोंसे हीन, स्थानभ्रष्ट और अकिंचन हो जीविकाके अभावमें ही मर जायँगे ॥ २८½ ॥

**अवल्गुकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम् ॥ २९ ॥**
**कलिं पुत्रप्रवादेन संजय त्वामजीजनम्।**

संजय ! तू सत्पुरुषोंके बीचमें अशोभन कार्य करनेवाला है, कुल और वंशकी प्रतिष्ठाका नाश करनेवाला है। जान पड़ता है, तेरे रूपमें पुत्रके नामपर मैंने कलि-पुरुषको ही जन्म दिया है ॥ २९½ ॥

**निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ॥ ३० ॥**
**मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम्।**

संसारकी कोई भी नारी ऐसे पुत्रको जन्म न दे, जो अमर्षशून्य, उत्साहहीन, बल और पराक्रमसे रहित तथा शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला हो ॥ ३०½ ॥

**मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान् ॥ ३१ ॥**
**ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम्।**

अरे ! धूमकी तरह न उठ। जोर-जोरसे प्रज्वलित हो जा और वेगपूर्वक आक्रमण करके शत्रुसैनिकोंका संहार कर डाल। तू एक मुहूर्त या एक क्षणके लिये भी वैरियोंके मस्तकपर जलती हुई आग बनकर छा जा ॥ ३१½ ॥

**एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ॥ ३२ ॥**
**क्षमावान् निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्।**

जिस क्षत्रियके हृदयमें अमर्ष है और जो शत्रुओंके प्रति क्षमाभाव धारण नहीं करता, इतने ही गुणोंके कारण वह पुरुष कहलाता है। जो क्षमाशील और अमर्षशून्य है, वह क्षत्रिय न तो स्त्री है और न पुरुष ही कहलाने योग्य है ॥ ३२½ ॥

**संतोषो वै श्रियं हन्ति तथानुक्रोश एव च ॥ ३३ ॥**
**अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत्।**

संतोष, दया, उद्योगशून्यता और भय—ये सम्पत्तिका नाश करनेवाले हैं। निश्चेष्ट मनुष्य कभी कोई महत्त्वपूर्ण पद नहीं पा सकता ॥ ३३½ ॥

**एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चात्मानमात्मना ॥ ३४ ॥**
**आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम्।**

पराजयके कारण जो लोकमें तेरी निन्दा और तिरस्कार हो रहे हैं, इन सब दोषोंसे तू स्वयं ही अपने-आपको मुक्त कर और अपने हृदयको लोहेके समान दृढ़ बनाकर पुनः अपने योग्य पद ( राज्यवैभव ) का अनुसंधान कर ॥ ३४½ ॥

**परं विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते ॥ ३५ ॥**
**तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद् य इह जीवति।**

जो पर अर्थात् शत्रुका सामना करके उसके वेगको सह लेता है, वही उस पुरुषार्थके कारण पुरुष कहलाता है। जो इस जगत्‌में स्त्रीकी भाँति भीरुतापूर्ण जीवन बिताता है, उसका 'पुरुष' नाम व्यर्थ कहा गया है ॥ ३५½ ॥

**शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः ॥ ३६ ॥**
**दिष्टभावं गतस्यापि विषये मोदते प्रजा।**

यदि बढ़े हुए तेज और उत्साहवाला, शूरवीर एवं सिंहके समान पराक्रमी राजा युद्धमें दैववश वीरगतिको प्राप्त हो जाय तो भी उसके राज्यमें प्रजा सुखी ही रहती है ॥ ३६½ ॥

**य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ॥ ३७ ॥**
**अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३८ ॥**

जो अपने प्रिय और सुखका परित्याग करके सम्पत्तिका अन्वेषण करता है, वह शीघ्र ही अपने मन्त्रियोंका हर्ष बढ़ाता है ॥ ३७—३८ ॥

पुत्र उवाच

**किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया।**
**किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३९ ॥**

पुत्र बोला—माँ ! यदि तू मुझे न देखे तो यह सारी पृथ्वी मिल जानेपर भी तुझे क्या सुख मिलेगा ? मेरे न

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रहनेपर तुझे आभूषणकी भी क्या आवश्यकता होगी ? भाँति-भाँतिके भोगों और जीवनसे भी तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? ॥ ३९ ॥

*मातोवाच*

**किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः ।**
**ये त्वादृतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान् व्रजन्तु नः ॥ ४० ॥**

**विदुला बोली**—बेटा ! आज क्या भोजन होगा ? इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए दरिद्रोंके जो लोक हैं, वे हमारे शत्रुओंको प्राप्त हों और सर्वत्र सम्मानित होनेवाले पुण्यात्मा पुरुषोंके जो लोक हैं, उनमें हमारे हितैषी सुहृद् पधारें ॥

**भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम् ।**
**कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ॥ ४१ ॥**

संजय ! भृत्यहीन, दूसरोंके अन्नपर जीनेवाले, दीन-दुर्बल मनुष्योंकी वृत्तिका अनुसरण न कर ॥ ४१ ॥

**अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ।**
**पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥ ४२ ॥**

तात ! जैसे सब प्राणियोंकी जीविका मेघके अधीन है तथा जैसे सब देवता इन्द्रके आश्रित होकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण तथा हितैषी सुहृद् तेरे सहारे जीवन-निर्वाह करें ॥ ४२ ॥

**यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि संजय ।**
**पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४३ ॥**

संजय ! पके फलवाले वृक्षके समान जिस पुरुषका आश्रय लेकर सब प्राणी जीविका चलाते हैं, उसीका जीवन सार्थक है ॥ ४३ ॥

**यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम् ।**
**त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥ ४४ ॥**

जैसे इन्द्रके पराक्रमसे सब देवता सुखी रहते हैं, उसी प्रकार जिस शूरवीर पुरुषके बल और पुरुषार्थसे उसके भाई-बन्धु सुखपूर्वक उन्नति करते हैं, इस संसारमें उसीका जीवन श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥

**स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः ।**
**स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ ४५ ॥**

जो मनुष्य अपने बाहुबलका आश्रय लेकर उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करता है, वही इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें शुभ गति पाता है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाका अपने पुत्रको उपदेशविषयक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३३ ॥

# चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## विदुलाका अपने पुत्रको युद्धके लिये उत्साहित करना

*विदुलोवाच*

**अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि ।**
**निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥ १ ॥**

**विदुला बोली**—संजय ! यदि तू इस दशामें पौरुषको छोड़ देनेकी इच्छा करता है तो शीघ्र ही नीच पुरुषोंके मार्ग-पर जा पहुँचेगा ॥ १ ॥

**यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात् ।**
**क्षत्रियो जीविताकाङ्क्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥ २ ॥**

जो क्षत्रिय अपने जीवनके लोभसे यथाशक्ति पराक्रम प्रकट करके अपने तेजका परिचय नहीं देता है, उसे सब लोग चोर मानते हैं ॥ २ ॥

**अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च ।**
**नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम् ॥ ३ ॥**

जैसे मरणासन्न पुरुषको कोई भी दवा लागू नहीं होती, उसी प्रकार ये युक्तियुक्त, गुणकारी और सार्थक वचन भी तेरे हृदयतक पहुँच नहीं पाते हैं ( यह कितने दुःखकी बात है ) ॥

**सन्ति वै सिन्धुराजस्य संतुष्टा न तथा जनाः ।**
**दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥**

देख, सिन्धुराजकी प्रजा उससे संतुष्ट नहीं है, तथापि तेरी दुर्बलताके कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो उदासीन बैठी हुई है और सिन्धुराजपर विपत्तियोंके आनेकी बाट जोह रही है ॥

**सहायोपचितिं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः ।**
**अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५ ॥**

दूसरे राजा भी तेरा पुरुषार्थ देखकर इधर-उधरसे विशेष चेष्टापूर्वक सहायक साधनोंकी वृद्धि करके सिन्धुराजके शत्रु हो सकते हैं ॥ ५ ॥

**तैः कृत्वा सह संघातं गिरिदुर्गालयं चर ।**
**काले व्यसनमाकाङ्क्षन् नैवायमजरामरः ॥ ६ ॥**

तू उन सबके साथ मैत्री करके यथासमय अपने शत्रु सिन्धु-राजपर विपत्ति आनेकी प्रतीक्षा करता हुआ पर्वतोंकी दुर्गम गुफामें विचरता रह; क्योंकि यह सिन्धुराज कोई अजर, अमर तो है नहीं ॥ ६ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

संजयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत् त्वयि ।
अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥ ७ ॥

तेरा नाम तो संजय है, परंतु तुझमें इस नामके अनुसार गुण मैं नहीं देख रही हूँ। बेटा ! युद्धमें विजय प्राप्त करके अपना नाम सार्थक कर, व्यर्थ संजय नाम न धारण कर ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
अयं प्राप्य महत् कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ८ ॥

जब तू बालक था, उस समय एक उत्तम दृष्टिवाले, परम बुद्धिमान् ब्राह्मणने तेरे विषयमें कहा था कि 'यह महान् संकटमें पड़कर भी पुनः वृद्धिको प्राप्त होगा' ॥ ८ ॥

तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव ।
तस्मात् तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः ॥ ९ ॥

उस ब्राह्मणकी बातको याद करके मैं यह आशा करती हूँ कि तेरी विजय होगी । तात ! इसीलिये मैं बार-बार तुझसे कहती हूँ और कहती रहूँगी ॥ ९ ॥

यस्य ह्यर्थाभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे ।
तस्यार्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः ॥ १० ॥

जिसके प्रयोजनकी सिद्धि होनेपर उससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे लोग भी संतुष्ट एवं उन्नतिको प्राप्त होते हैं, नीतिमार्गपर चलकर अर्थसिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले उस पुरुषको निश्चय ही अपने अभीष्टकी सिद्धि होती है ॥ १० ॥

समृद्धिरसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम संजय ।
एवं विद्वान् युद्धमना भव मा प्रत्युपाहर ॥ ११ ॥

संजय ! युद्धसे हमारे पूर्वजोंका अथवा मेरा कोई लाभ हो या हानि, युद्ध करना क्षत्रियोंका धर्म है, ऐसा समझकर उसीमें मन लगा, युद्ध बंद न कर ॥ ११ ॥

नातः पापीयसीं कांचिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२ ॥

जहाँ आजके लिये और कल सबेरेके लिये भी भोजन दिखायी नहीं देता, उससे बढ़कर महान् पापपूर्ण कोई दूसरी अवस्था नहीं है, ऐसा शम्बरासुरका कथन है ॥ १२ ॥

पतिपुत्रवधादेतत् परमं दुःखमब्रवीत् ।
दारिद्र्यमिति यत् प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ १३ ॥

जिसका नाम दरिद्रता है, उसे पति और पुत्रके वधसे भी अधिक दुःखदायक बताया गया है । दरिद्रता मृत्युका समानार्थक शब्द है ॥ १३ ॥

अहं महाकुले जाता ह्रदाद्ध्रदमिवागता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४ ॥

मैं उच्चकुलमें उत्पन्न हो हंसीकी भाँति एक सरोवरसे दूसरे सरोवरमें आयी और इस राज्यकी स्वामिनी, समस्त कल्याणमय साधनोंसे सम्पन्न तथा पतिदेवके परम आदरकी पात्र हुई ॥ १४ ॥

महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम् ।
पुरा दृष्ट्वा सुहृद्वर्गो मामपश्यत् सुदुर्गताम् ॥ १५ ॥

पूर्वकालमें मेरे सुहृदोंने जब मुझे सगे सम्बन्धियोंके बीच बहुमूल्य हार एवं आभूषणोंसे विभूषित तथा परम सुन्दर स्वच्छ वस्त्रोंसे आच्छादित देखा, तब उन्हें बड़ा हर्ष हुआ ॥ १५ ॥

यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टासि भृशदुर्बलाम् ।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव संजय ॥ १६ ॥

संजय ! अब जिस समय तू मुझे और अपनी पत्नीको चिन्ताके कारण अत्यन्त दुर्बल देखेगा, उस समय तुझे जीवित रहनेकी इच्छा नहीं होगी ॥ १६ ॥

दासकर्मकरान् भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् ।
अवृत्त्यास्मान् प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥ १७ ॥

जब सेवाका काम करनेवाले दास, भरण-पोषण पानेवाले कुटुम्बी, आचार्य, ऋत्विक् और पुरोहित जीविकाके अभावमें हमें छोड़कर जाने लगेंगे, उस समय उन्हें देखकर तुझे जीवन-धारणका कोई प्रयोजन नहीं दिखायी देगा ॥ १७ ॥

यदि कृत्यं न पश्यामि तवाद्याहं यथा पुरा ।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १८ ॥

यदि पहलेके समान आज भी मैं तेरे यशकी वृद्धि करनेवाले प्रशंसनीय कर्मोंको नहीं देखूँगी तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ १८ ॥

नेति चेद् ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्येत हृदयं मम ।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥ १९ ॥

यदि किसी ब्राह्मणके माँगनेपर मैं उसकी अभीष्ट वस्तुके लिये 'नाहीं' कह दूँगी तो उसी समय मेरा हृदय विदीर्ण हो जायगा । आजतक मैंने या मेरे पतिदेवने किसी ब्राह्मणसे नाहीं नहीं की है ॥ १९ ॥

वयमाश्रयणीयाः स्म नाश्रितारः परस्य च ।
सान्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २० ॥

हम सदा लोगोंके आश्रयदाता रहे हैं, दूसरोंके आश्रित कभी नहीं रहे; परंतु अब यदि दूसरेका आश्रय लेकर जीवन धारण करना पड़े तो मैं ऐसे जीवनका परित्याग ही कर दूँगी।

अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः ।
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान् संजीवयस्व नः ॥ २१ ॥

बेटा ! अपार समुद्रमें डूबते हुए हमलोगोंको तू पार लगानेवाला हो । नौकाविहीन अगाध जलराशि ( महान् संकट) में तू हमारे लिये नौका हो जा । हमारे लिये कोई स्थान नहीं रह गया है, तू स्थान बन जा और हम मृतप्राय हो रहे हैं, तू हमें जीवन दान कर ॥ २१ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सर्वे ते शत्रवः शक्या न चेज्जीवितुमिच्छसि ।
अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥ २२ ॥
निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम् ।

यदि तुझे जीवनके प्रति अधिक आसक्ति न हो तो तू अपने सभी शत्रुओंको परास्त कर सकता है और यदि इस प्रकार विषादग्रस्त एवं हतोत्साह होकर ऐसी कायरोंकी-सी वृत्ति अपना रहा है तो तुझे इस पापपूर्ण जीविकाको त्याग देना चाहिये ॥ २२½ ॥

एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३ ॥
इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ।
माहेन्द्रं च गृहं लेभे लोकानां चेश्वरोऽभवत् ॥ २४ ॥

एक शत्रुका वध करनेसे ही शूरवीर पुरुष सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात हो जाता है। देवराज इन्द्र केवल वृत्रासुरका वध करके ही 'महेन्द्र' नामसे प्रसिद्ध हो गये। उन्हें रहनेके लिये इन्द्रभवन प्राप्त हुआ और वे तीनों लोकोंके अधीश्वर हो गये॥

नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान् ।
सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥ २५ ॥
यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद् यशः ।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६ ॥

वीर पुरुष युद्धमें अपना नाम सुनाकर, कवचधारी शत्रुओंको ललकारकर, सेनाके अग्रभागको खदेड़कर अथवा शत्रुपक्षके किसी श्रेष्ठ पुरुषका वध करके जभी उत्तम युद्धके द्वारा महान् यश प्राप्त कर लेता है, तभी उसके शत्रु व्यथित होते और उसके सामने मस्तक झुकाते हैं ॥२५-२६॥

त्यक्त्वाऽऽत्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः ।
अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २७ ॥

कायर मनुष्य विवश हो युद्धमें अपने शरीरका त्याग करके युद्धकुशल शूरवीरको सम्पूर्ण मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाली अपनी समृद्धियोंके द्वारा तृप्त करते हैं ॥ २७ ॥

राज्यं चाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा ।
न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २८ ॥

जिसका भयानक रूपसे पतन हुआ है, वह राज्य प्राप्त हो जाय या जीवन ही संकटमें पड़ जाय, किसी भी दशामें अपने हाथमें आये हुए शत्रुको श्रेष्ठ पुरुष शेष नहीं रहने देते हैं ॥

स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाप्यमृतोपमम् ।
युद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवारिषु ॥ २९ ॥

युद्धको स्वर्गद्वारके सदृश उत्तम गति अथवा अमृतके सदृश राज्यकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग मानकर तू जलते हुए काठकी भाँति शत्रुओंपर टूट पड़ ॥ २९ ॥

जहि शत्रून् रणे राजन् स्वधर्ममनुपालय ।
मा त्वा दृशे सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धनम् ॥ ३० ॥

राजन्! तू युद्धमें शत्रुओंको मार और अपने धर्मका पालन कर। शत्रुओंका भय बढ़ानेवाले तुझ वीर पुत्रको मैं अत्यन्त दीन या कायरके रूपमें न देखूँ ॥ ३० ॥

अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम् ।
अपि त्वां नानुपश्येयं दीनाद्दीनमिव स्थितम् ॥ ३१ ॥

मैं तुझे दीनसे भी दीनके समान दयनीय अवस्थामें पड़ा हुआ तथा शोकमग्न हुए अपने पक्षके और गर्जन-तर्जन करते हुए शत्रुपक्षके लोगोंसे घिरा हुआ नहीं देखना चाहती ॥३१॥

हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघस्वार्थैर्यथा पुरा ।
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः ॥ ३२ ॥

तू सौवीर देशकी कन्याओं (अपनी पत्नियों) के साथ हर्षका अनुभव कर। पहलेकी भाँति अपने धनकी अधिकताके लिये गर्व कर। विपत्तिमें पड़कर सिन्धुदेशीय (शत्रुदेशकी) कन्याओंके वशमें न हो जा ॥ ३२ ॥

युवा रूपेण सम्पन्नो विद्ययाभिजनेन च ।
यत् त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ॥ ३३ ॥
अधुर्यवच्च वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत् ।

तू रूप, यौवन, विद्या और कुलीनतासे सम्पन्न है, यशस्वी तथा लोकमें विख्यात है। तुझ-जैसा वीर पुरुष यदि पराक्रमके अवसरपर डर जाय, भार ढोनेके समय बिना नथे हुए बैलके समान बैठ रहे या भाग जाय तो मैं इसे तेरा मरण ही समझती हूँ ॥३३½॥

यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ॥ ३४ ॥
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

यदि मैं यह देखूँ कि तू शत्रुसे मीठी-मीठी बातें करता तथा उसके पीछे-पीछे जाता है तो मेरे हृदयमें क्या शान्ति मिलेगी? ॥ ३४½ ॥

नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेद् योऽन्यस्य पृष्ठतः ॥३५॥
न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमर्हसि ।

इस कुलमें कभी कोई ऐसा पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ, जो दूसरेके पीछे-पीछे चला हो। तात! तू दूसरेका सेवक होकर जीवित रहनेके योग्य नहीं है ॥ ३५½ ॥

अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत् परिशाश्वतम् ॥ ३६ ॥
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि ।
शाश्वतं चाव्ययं चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ ३७ ॥

स्वयं विधाताने जिसकी सृष्टि की है, प्राचीन और अत्यन्त प्राचीन पुरुषोंने जिसका वर्णन किया है, परवर्ती और अतिपूरवर्ती सत्पुरुष जिसका वर्णन करेंगे तथा जो चिरन्तन एवं अविनाशी है, उस सनातन और उत्तम क्षत्रिय-हृदयको मैं जानती हूँ ॥ ३६-३७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

यो वै कश्चिदिहाजातः क्षत्रियः क्षत्रकर्मवित् ।
भयाद् वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित्॥ ३८ ॥

इस जगत्में जो कोई भी क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है और क्षत्रियधर्मको जाननेवाला है, वह भयसे अथवा आजीविकाकी ओर दृष्टि रखकर भी किसीके सामने नतमस्तक नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥ ३९ ॥

सदा उद्यम करे किसीके आगे सिर न झुकावे । उद्यम ही पुरुषार्थ है । असमयमें नष्ट भले ही हो जाय परंतु किसीके आगे नतमस्तक न हो ॥ ३९ ॥

मातङ्गो मत्त इव च परीयात् सुमहामनाः ।
ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च संजय ॥ ४० ॥

संजय ! महामनस्वी क्षत्रिय मदमत्त हाथीके समान सर्वत्र निर्भय विचरण करे और सदा ब्राह्मणोंको तथा धर्मको ही नमस्कार करे ॥ ४० ॥

नियच्छन्नितरान् वर्णान् विनिघ्नन् सर्वदुष्कृतः ।
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥ ४१ ॥

क्षत्रिय ससहाय हो अथवा असहाय, वह अन्य वर्णके लोगोंको काबूमें रखता और समस्त पापियोंको दण्ड देता हुआ जीवनभर वैसा ही उद्यमशील बना रहे ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाका अपने पुत्रको उपदेशविषयक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३४ ॥

# पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## विदुला और उसके पुत्रका संवाद—विदुलाके द्वारा कार्यमें सफलता प्राप्त करने तथा शत्रुवशीकरणके उपायोंका निर्देश

*पुत्र उवाच*

कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम् ।
मम मातस्त्वकरुणे वीरप्रज्ञे ह्यमर्षणे ॥ १ ॥

**पुत्र बोला**—माँ ! तेरा हृदय तो ऐसा जान पड़ता है, मानो काले लोहपिण्डको ठोक-पीटकर बनाया गया हो । तू मेरी माता होकर भी इतनी निर्दय है । तेरी बुद्धि वीरोंके समान है और तू सदा अमर्षमें भरी रहती है ॥ १ ॥

अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा ।
नियोजयसि युद्धाय परमातेव मां तथा ॥ २ ॥

अहो ! क्षत्रियोंका आचार-व्यवहार कैसा आश्चर्यजनक है, जिसमें स्थित होकर तू मुझे इस प्रकार युद्धमें लगा रही है, मानो मैं दूसरेका बेटा होऊँ और तू दूसरेकी माँ हो ॥२॥

ईदृशं वचनं ब्रूयाद् भवती पुत्रमेकजम् ।
किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ॥ ३ ॥

मुझ इकलौते पुत्रसे तू ऐसी निष्ठुर बात कहे, आश्चर्य है ! मुझे न देखनेपर यह सारी पृथ्वी भी तुझे मिल जाय तो इससे तुझे क्या सुख मिलेगा ? ॥ ३ ॥

किमाभरणकृत्येन किं भोगैर्जीवितेन वा ।
मयि वा संगरहते प्रियपुत्रे विशेषतः ॥ ४ ॥

मैं विशेषतः तेरा प्रिय पुत्र यदि युद्धमें मारा जाऊँ तो तुझे आभूषणोंसे, भोग-सामग्रियोंसे तथा अपने जीवनसे भी कौन-सा सुख प्राप्त होगा ? ॥ ४ ॥

*मातोवाच*

सर्वावस्था हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात् ।
तावेवाभिसमीक्ष्याहं संजय त्वामचूचुदम् ॥ ५ ॥

**माता बोली**—तात संजय ! विद्वानोंकी सारी अवस्था भी धर्म और अर्थके निमित्त ही होती है । उन्हीं दोनोंकी ओर दृष्टि रखकर मैंने भी तुझे युद्धके लिये प्रेरित किया है ।५।

स समीक्ष्यक्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः ।
अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे ॥ ६ ॥
असम्भावितरूपस्त्वमानृशंस्यं करिष्यसि ।
तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि संजय ॥ ७ ॥
खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ।
सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम् ॥ ८ ॥

यह तेरे लिये दर्शनीय पराक्रम करके दिखानेका मुख्य समय प्राप्त हुआ है । ऐसे समयमें भी यदि तू अपने कर्तव्यका पालन नहीं करेगा और तुझसे जैसी सम्भावना थी, उसके विपरीत स्वभावका परिचय देकर शत्रुओंके प्रति क्रूरतापूर्ण बर्ताव नहीं करेगा तो उस दशामें सब ओर तेरा अपयश फैल जायगा । संजय ! ऐसे अवसरपर भी यदि मैं तुझे कुछ न कहूँ तो मेरा वह वात्सल्य गदहीके स्नेहके समान शक्तिहीन तथा निरर्थक होगा । अतः वत्स ! साधु पुरुष जिसकी निन्दा करते हैं और मूर्ख मनुष्य ही जिसपर चलते हैं, उस मार्गको त्याग दे ॥ ६–८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः।
तव स्याद् यदि सद्वृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ॥ ९ ॥

प्रजाने जिसका आश्रय ले रक्खा है, वह तो बड़ी भारी अविद्या ही है। तू तो मुझे तभी प्रिय हो सकता है, जब तेरा आचरण सत्पुरुषोंके योग्य हो जाय ॥ ९ ॥

धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथंचन।
दैवमानुषयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥ १० ॥

धर्म, अर्थ और गुणोंसे युक्त, देवलोक तथा मनुष्य-लोकमें भी उपयोगी और सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए सत्कर्मसे ही तू मेरा प्रिय हो सकता है, इसके विपरीत असत्कर्मसे किसी प्रकार भी तू मुझे प्रिय नहीं हो सकता ॥ १० ॥

यो ह्येवमविनीतेन रमते पुत्र नप्तृणा।
अनुत्थानवता चापि दुर्विनीतेन दुर्धिया ॥ ११ ॥
रमते यस्तु पुत्रेण मोघं तस्य प्रजाफलम्।
अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च ॥ १२ ॥
सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः।

बेटा ! जो इस प्रकार विनयशून्य एवं अशिक्षित पौत्रसे हर्षको प्राप्त होता है तथा उद्योगरहित, दुर्विनीत एवं दुर्बुद्धि पुत्रसे सुख मानता है, उसका संतानोत्पादन व्यर्थ है; क्योंकि वे अयोग्य पुत्र-पौत्र पहले तो कर्म ही नहीं करते हैं और यदि करते हैं तो निन्दित कर्म ही करते हैं, इससे वे अधम मनुष्य न तो इस लोकमें सुख पाते हैं और न परलोकमें ही ॥ ११-१२½ ॥

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः संजयेह जयाय च ॥ १३ ॥
जयन् वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम्।
न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद् विद्यते सुखम्।
यदमित्रान् वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमश्नुते ॥ १४ ॥

संजय ! इस लोकमें युद्ध एवं विजयके लिये ही विधाताने क्षत्रियकी सृष्टि की है। वह विजय प्राप्त करे या युद्धमें मारा जाय, सभी दशाओंमें उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। पुण्यमय स्वर्गलोकके इन्द्रभवनमें भी वह सुख नहीं मिलता, जिसे क्षत्रिय वीर शत्रुओंको वशमें करके सानन्द अनुभव करता है ॥ १३-१४ ॥

मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना।
निकृतेनेह बहुशः शत्रून् प्रतिजिगीषया ॥ १५ ॥
आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य च।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत् ॥ १६ ॥

अतएव जो मनस्वी क्षत्रिय अनेक बार पराजित हो क्रोधसे दग्ध हो रहा हो, वह अवश्य ही विजयकी इच्छासे शत्रुओंपर आक्रमण करे। फिर तो वह अपने शरीरका परित्याग करके अथवा शत्रुको मार गिराकर ही शान्ति लाभ करता है। इसके सिवा दूसरे किसी प्रकारसे उसे कैसे शान्ति प्राप्त हो सकती है ? ॥ १५-१६ ॥

इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति।
यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याल्पमप्रियम् ॥ १७ ॥

बुद्धिमान् पुरुष इस जगत्‌में अत्यन्त अल्पमात्रामें अप्रिय की इच्छा करता है। लोकमें जिसका प्रिय अल्प होता है, उसका अप्रिय भी निश्चय ही अल्प होगा ॥ १७ ॥

प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम्।
ध्रुवं चाभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम् ॥ १८ ॥

प्रियके अभावमें मनुष्यकी शोभा नहीं होती है। जैसे गङ्गा समुद्रमें जाकर विलुप्त हो जाती है, उसी प्रकार वह अभावग्रस्त पुरुष भी निश्चय ही लुप्त हो जाता है ॥ १८ ॥

*पुत्र उवाच*

नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः।
कारुण्यमेवात्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥ १९ ॥

**पुत्रने कहा**—माँ ! तुझे अपने मुखसे ऐसा विचार नहीं व्यक्त करना चाहिये, अतः तू जड और मूककी भाँति होकर मुझ अपने पुत्रको विशेषरूपसे करुणापूर्ण दृष्टिसे ही देखो ॥ १९ ॥

*मातोवाच*

अतो मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि।
चोद्यं मां चोदयस्येतद् भृशं वै चोदयामि ते ॥ २० ॥

**माता बोली**—तेरे इस कथनसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। तू इस प्रकार विचार तो करता है। मुझे मेरे कर्तव्य ( पुत्रपर दयादृष्टि करने ) की प्रेरणा दे रहा है, इसीलिये मैं भी तुझे बार-बार तेरा कर्तव्य सुझा रही हूँ ॥ २० ॥

अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवान्।
अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्रभावितमेव ते ॥ २१ ॥

जब तू सिन्धुदेशके समस्त योद्धाओंको मारकर आयेगा, उस समय मैं तेरा स्वागत करूँगी। मुझे विश्वास है कि बड़े कष्टसे प्राप्त होनेवाली तेरी विजय मैं अवश्य देखूँगी ॥ २१ ॥

*पुत्र उवाच*

अकोशस्यासहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम।
इत्यवस्थां विदित्वैतामात्मनाऽऽत्मनि दारुणाम् ॥ २२ ॥
राज्याद् भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिव दुष्कृतेः।
ईदृशं भवती कंचिदुपायमनुपश्यति ॥ २३ ॥

**पुत्र बोला**—माँ ! मेरे पास न तो खजाना है और न

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सहायता करनेवाले सैनिक ही हैं; फिर मुझे विजयरूप अभीष्टकी सिद्धि कैसे प्राप्त होगी ? अपनी इस दारुण अवस्थाके विषयमें स्वयं ही विचार करके मैंने राज्यकी ओरसे अपना अनुराग उसी प्रकार दूर हटा लिया है, जैसे स्वर्गकी ओरसे पापीका भाव हट जाता है। क्या तू ऐसा कोई उपाय देख रही है, जिससे मैं विजय पा सकूँ ? ॥ २२-२३ ॥

**तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक् प्रब्रूहि पृच्छते ।**
**करिष्यामि हि तत् सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ २४ ॥**

परिपक्व बुद्धिवाली माँ ! मेरे इस प्रश्नके अनुसार तू कोई उत्तम उपाय बता दे। मैं तेरे सम्पूर्ण आदेशोंका यथोचित्त रीतिसे पालन करूँगा ॥ २४ ॥

मातोवाच

**पुत्र नात्मावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।**
**अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ।**
**अमर्षेणैव चाप्यर्था नारब्धव्याः सुबालिशैः ॥ २५ ॥**

**माता बोली**—बेटा ! पहलेकी सम्पत्ति नष्ट हो गयी है—यह सोचकर तुझे अपनी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि धन-वैभव तो नष्ट होकर पुनः प्राप्त हो जाते हैं और प्राप्त होकर भी फिर नष्ट हो जाते हैं; अतः बुद्धिहीन पुरुषोंको ईर्ष्यावश ही धनकी प्राप्तिके लिये कर्मोंका आरम्भ नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥

**सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता ।**
**अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च ॥ २६ ॥**

तात ! सभी कर्मोंके फलमें सदा अनित्यता रहती है—कभी उनका फल मिलता है और कभी नहीं भी मिलता है। इस अनित्यताको जानते हुए भी बुद्धिमान् पुरुष कर्म करते हैं और वे कभी असफल होते हैं, तो कभी सफल भी हो जाते हैं ॥ २६ ॥

**अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते ।**
**ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ॥ २७ ॥**
**अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा ।**

परंतु जो कर्मोंका आरम्भ ही नहीं करते, वे तो कभी अपने अभीष्टकी सिद्धिमें सफल नहीं होते, अतः कर्मोंको छोड़कर निश्चेष्ट बैठनेका यह एक ही परिणाम होता है कि मनुष्योंको कभी अभीष्ट मनोरथकी प्राप्ति नहीं हो सकती । परंतु कर्मोंमें उत्साहपूर्वक लगे रहनेपर तो दोनों प्रकारके परिणामोंकी सम्भावना रहती है—कर्मोंका वाञ्छनीय फल प्राप्त भी हो सकता है और नहीं भी ॥ २७½ ॥

**यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता ॥ २८ ॥**
**नुदेद् वृद्धयसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज ।**

राजकुमार ! जिसे पहलेसे ही सभी पदार्थोंकी अनित्यताका ज्ञान होता है, वह ज्ञानी पुरुष अपने प्रतिकूल शत्रुकी उन्नति और अपनी अवनतिसे प्राप्त हुए दुःखका विचार द्वारा निवारण कर सकता है ॥ २८½ ॥

**उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ॥ २९ ॥**
**भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।**

सफलता होगी ही, ऐसा मनमें दृढ़ विश्वास लेकर निरन्तर विषादरहित होकर तुझे उठना, सजग होना और ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंमें लग जाना चाहिये ॥ २९½ ॥

**मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह ॥ ३० ॥**
**प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक ।**
**अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥ ३१ ॥**

वत्स ! देवताओंसहित ब्राह्मणोंका पूजन तथा अन्यान्य माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करके प्रत्येक कार्यका आरम्भ करनेवाले बुद्धिमान् राजाकी शीघ्र उन्नति होती है। जैसे सूर्य अवश्य ही पूर्व दिशाका आश्रय ले उसे प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार राजलक्ष्मी पूर्वोक्त राजाको सब ओरसे प्राप्त होकर उसे यश एवं तेजसे सम्पन्न कर देती है ॥ ३०-३१ ॥

**निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च ।**
**अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥ ३२ ॥**

बेटा ! मैंने तुझे अनेक प्रकारके दृष्टान्त, बहुतसे उपाय और कितने ही उत्साहजनक वचन सुनाये हैं। लोकवृत्तान्तका भी बारंबार दिग्दर्शन कराया है। अब तू पुरुषार्थ कर। मैं तेरा पराक्रम देखूँगी ॥ ३२ ॥

**पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहार्हसि ।**
**क्रुद्धाँल्लुब्धान् परिक्षीणानवलिप्तान् विमानितान् ॥ ३३ ॥**
**स्पर्धिनश्चैव ये केचित् तान् युक्त उपधारय ।**
**एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ॥ ३४ ॥**
**महावेग इवोद्धूतो मातरिश्वा बलाहकान् ।**

तुझे यहाँ अभीष्ट पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिये। जो लोग सिन्धुराजपर कुपित हों, जिनके मनमें धनका लोभ हो, जो सिन्धुनरेशके आक्रमणसे सर्वथा क्षीण हो गये हों, जिन्हें अपने बल और पौरुषपर गर्व हो तथा जो तेरे शत्रुओंद्वारा अपमानित हों उनसे बदला लेनेके लिये होड़ लगाये बैठे हों, उन सबको तू सावधान होकर दान-मानके द्वारा अपने पक्षमें कर ले। इस प्रकार तू बड़े-से-बड़े समुदायको फोड़ लेगा। ठीक उसी तरह, जैसे महान् वेगशाली वायु वेगपूर्वक उठकर बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ३३-३४½ ॥

**तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्योत्थायी प्रियंवदः ॥ ३५ ॥**
**ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम् ।**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तू उन्हें अग्रिम वेतन दे दिया कर। प्रतिदिन प्रातःकाल सोकर उठ जा और सबके साथ प्रिय वचन बोल। ऐसा करनेसे वे अवश्य तेरा प्रिय करेंगे और निश्चय ही तुझे अपना अगुआ बना लेंगे ॥ ३५½ ॥

**यदैव शत्रुर्जानीयात् सपत्नं त्यक्तजीवितम्।**
**तदैवास्मादुद्विजते सर्पाद् वेश्मगतादिव ॥ ३६ ॥**

शत्रुको ज्यों ही यह मालूम हो जाता है कि उसका विपक्षी प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करनेके लिये तैयार है, तभी घरमें रहनेवाले सर्पकी भाँति उसके भयसे वह उद्विग्न हो उठता है ॥ ३६ ॥

**तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि।**
**निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद् भविष्यति ॥ ३७ ॥**

यदि शत्रुको पराक्रमसम्पन्न जानकर अपनी असमर्थताके कारण उसे वशमें न कर सके तो उसे विश्वसनीय दूतोंद्वारा साम एवं दान नीतिका प्रयोग करके अनुकूल बना ले ( जिससे वह आक्रमण न करके शान्त बैठा रहे )। ऐसा करनेसे अन्ततोगत्वा उसका वशीकरण हो जायगा ॥ ३७॥

**निर्वादादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति।**
**धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ॥ ३८ ॥**

इस प्रकार शत्रुको शान्त कर देनेसे निर्भय आश्रय प्राप्त होता है। उसे प्राप्त कर लेनेपर युद्ध आदिमें न फँसनेके कारण अपने धनकी वृद्धि होती है। फिर धनसम्पन्न राजाका बहुतसे मित्र आश्रय लेते और उसकी सेवा करते हैं ॥ ३८ ॥

**स्खलितार्थं पुनस्तात संत्यजन्ति च बान्धवाः।**
**अप्यस्मिन् नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम्॥ ३९ ॥**

इसके विपरीत जिसका धन नष्ट हो गया है, उसके मित्र और भाई-बन्धु भी उसे त्याग देते हैं। उसपर विश्वास नहीं करते हैं तथा उसके-जैसे लोगोंकी निन्दा भी करते रहते हैं ॥

**शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति।**
**स न सम्भाव्यमेवैतद् यद् राज्यं प्राप्नुयादिति ॥ ४० ॥**

जो शत्रुको सहायक बनाकर उसका विश्वास करता है, वह राज्य प्राप्त कर लेगा, इसकी कभी सम्भावना ही नहीं करनी चाहिये ॥ ४० ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाको पुत्रका उपदेशविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३५ ॥

# षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## विदुलाके उपदेशसे उसके पुत्रका युद्धके लिये उद्यत होना

*मातोवाच*

**नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्यांश्चिदापदि।**
**अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥ १ ॥**

**माता बोली**—पुत्र! कैसी भी आपत्ति क्यों न आ जाय, राजाको कभी भयभीत होना या घबराना नहीं चाहिये। यदि वह डरा हुआ हो तो भी डरे हुएके समान कोई बर्ताव न करे ॥ १ ॥

**दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवानुदीर्यते।**
**राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक् कुर्वन्ति ते मतीः ॥ २ ॥**

राजाको भयभीत देखकर उसके पक्षके सभी लोग भयभीत हो जाते हैं। राज्यकी प्रजा, सेना और मन्त्री भी उससे भिन्न विचार रखने लगते हैं ॥ २ ॥

**शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः।**
**अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद् विमानिताः ॥ ३ ॥**

उनमेंसे कुछ लोग तो उस राजाके शत्रुओंकी शरणमें चले जाते हैं, दूसरे लोग उसका त्यागमात्र कर देते हैं और कुछ लोग जो पहले राजाद्वारा अपमानित हुए होते हैं, वे उस अवस्थामें उसके ऊपर प्रहार करनेकी भी इच्छा कर लेते हैं ॥ ३ ॥

**य एवात्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते।**
**अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इडा इव ॥ ४ ॥**

जो लोग अत्यन्त सुहृद् होते हैं, वे ही उस संकटके समय उस राजाके पास रह जाते हैं; परंतु वे भी असमर्थ होनेके कारण बँधे हुए बछड़ेवाली गायोंकी भाँति कुछ कर नहीं पाते, केवल मन-ही-मन उसकी मङ्गलकामना करते रहते हैं ॥ ४ ॥

**शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बान्धवान्।**
**अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ॥ ५ ॥**

जो विपत्तिकी अवस्थामें शोक करते हुए राजाके साथ-साथ स्वयं भी वैसे ही शोकमग्न हो जाते हैं, मानो उनके कोई सगे भाई-बन्धु विपन्न हो गये हों, क्या ऐसे ही लोगोंको तूने सुहृद् माना है? क्या तूने भी पहले ऐसे सुहृदोंका सम्मान किया है? ॥ ५ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः।
मा दीदरस्त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः ॥ ६ ॥

जो संकटमें पड़े हुए राजाके राज्यको अपना ही मानकर उसकी तथा राजाकी रक्षाके लिये कृतसंकल्प होते हैं, ऐसे सुहृदोंको तू कभी अपनेसे विलग न कर और वे भी भयभीत अवस्थामें तेरा परित्याग न करें ॥ ६ ॥

प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव।
विदधत्या समाश्वासमुक्तं तेजोविवृद्धये ॥ ७ ॥

मैं तेरे प्रभाव, पुरुषार्थ और बुद्धि-बलको जानना चाहती थी, अतः तुझे आश्वासन देते हुए तेरे तेज ( उत्साह ) की वृद्धिके लिये मैंने उपर्युक्त बातें कही हैं ॥ ७ ॥

यदेतत् संविजानासि यदि सम्यग् ब्रवीम्यहम्।
कृत्वासौम्यमिवात्मानं जयायोत्तिष्ठ संजय ॥ ८ ॥

संजय ! यदि मैं यह सब ठीक कह रही हूँ और यदि तू भी मेरी इन बातोंको ठीक समझ रहा है तो अपने आपको उग्र-सा बनाकर विजयके लिये उठ खड़ा हो ॥ ८ ॥

अस्ति नः कोशनिचयो महान् ह्यविदितस्तव।
तमहं वेद नान्यस्तमुपसम्पादयामि ते ॥ ९ ॥

अभी हमलोगोंके पास बड़ा भारी खजाना है जिसका तुझे पता नहीं है, उसे मैं ही जानती हूँ, दूसरा नहीं। वह खजाना मैं तुझे सौंपती हूँ ॥ ९ ॥

सन्ति नैकशता भूयः सुहृदस्तव संजय।
सुखदुःखसहा वीर संग्रामादनिवर्तिनः ॥ १० ॥

वीर संजय ! अभी तो तेरे सैकड़ों सुहृद् हैं। वे सभी सुख-दुःखको सहन करनेवाले तथा युद्धसे पीछे न हटनेवाले हैं ॥ १० ॥

तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः।
इष्टं जिहीर्षतः किंचित् सचिवाः शत्रुकर्शन ॥ ११ ॥

शत्रुसूदन ! जो पुरुष अपनी उन्नति चाहता है और शत्रुके हाथसे अपनी अभीष्ट सम्पत्तिको हर लाना चाहता है उसके सहायक और मन्त्री पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त सुहृद् हुआ करते हैं ॥ ११ ॥

यस्यास्त्वीदृशकं वाक्यं श्रुत्वापि स्वल्पचेतसः।
तमस्त्वपागमत् तस्य सुचित्रार्थपदाक्षरम् ॥ १२ ॥

( कुन्ती बोली— ) श्रीकृष्ण ! संजयका हृदय यद्यपि बहुत दुर्बल था तो भी विदुलाका वह विचित्र अर्थ, पद और अक्षरोंसे युक्त वचन सुनकर उसका तमोगुणजनित भय और विषाद भाग गया ॥ १२ ॥

पुत्र उवाच

उदके भूरियं धार्या मर्तव्यं प्रवणे मया।
यस्य मे भवती नेत्री भविष्यद्भूतिदर्शिनी ॥ १३ ॥

**पुत्र बोला**—माँ ! मेरा यह राज्य शत्रुरूपी जलमें डूब गया है अब मुझे इसका उद्धार करना है, नहीं तो युद्धमें शत्रुओंका सामना करते हुए अपने प्राणोंका विसर्जन कर देना है; जब मुझे भावी वैभवका दर्शन करानेवाली तुझ-जैसी संचालिका प्राप्त है, तब मुझमें ऐसा साहस होना ही चाहिये ॥ १३ ॥

अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम्।
किंचित् किंचित् प्रतिवदंस्तूष्णीमासं मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

मैं बराबर तेरी नयी-नयी बातें सुनना चाहता था। इसीलिये बारंबार बीच-बीचमें कुछ-कुछ बोलकर फिर मौन हो जाता था ॥ १४ ॥

अतृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्राल्लब्धस्य बान्धवात्।
उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमाय जयाय च ॥ १५ ॥

तेरे ये अमृतके समान वचन बड़ी कठिनाईसे सुननेको मिले थे। उन्हें सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था। यह देखो, अब मैं शत्रुओंका दमन और विजयकी प्राप्ति करनेके लिये बन्धु-बान्धवोंके साथ उद्योग कर रहा हूँ ॥ १५ ॥

कुन्त्युवाच

सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः।
तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ १६ ॥

**कुन्ती कहती हैं**—श्रीकृष्ण ! माताके वाग्बाणोंसे बिंधकर और तिरस्कृत होकर चाबुककी मार खाये हुए अच्छे घोड़ेके समान संजयने माताके उस समस्त उपदेशका यथावत्‌रूपसे पालन किया ॥ १६ ॥

इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्धनमुत्तमम्।
राजानं श्रावयेन्मन्त्री सीदन्तं शत्रुपीडितम् ॥ १७ ॥

यह उत्तम उपाख्यान वीरोंके लिये अत्यन्त उत्साहवर्धक और कायरोंके लिये भयंकर है। यदि कोई राजा शत्रुसे पीडित होकर दुखी एवं हताश हो रहा हो तो मन्त्रीको चाहिये कि उसे यह प्रसंग सुनाये ॥ १७ ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥ १८ ॥

यह जय नामक इतिहास है। विजयकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको इसका श्रवण करना चाहिये। इसे सुनकर युद्धमें जानेवाला राजा शीघ्र ही पृथ्वीपर विजय पाता और शत्रुओंको रौंद डालता है ॥ १८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च।
अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १९ ॥

यह आख्यान पुत्रकी प्राप्ति करानेवाला है तथा साधारण पुरुषमें वीरभाव उत्पन्न करनेवाला है। यदि गर्भवती स्त्री इसे बारंबार सुने तो वह निश्चय ही वीर पुत्रको जन्म देती है ॥ १९ ॥

विद्याशूरं तपःशूरं दानशूरं तपस्विनम्।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादे च सम्मतम्॥ २० ॥
अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम्।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ २१ ॥
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम्।
ईदृशं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥ २२ ॥

इसे सुनकर प्रत्येक क्षत्राणी विद्याशूर, तपःशूर, दानशूर, तपस्वी, ब्राह्मी शोभासे सम्पन्न, साधुवादके योग्य, तेजस्वी, बलवान्, परम सौभाग्यशाली, महारथी, धैर्यवान्, दुर्धर्ष विजयी, किसीसे भी पराजित न होनेवाले, दुष्टोंका दमन करनेवाले, धर्मात्माओंके रक्षक तथा सत्य-पराक्रमी वीर पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ २०-२२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासनसमाप्तौ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाके द्वारा पुत्रको दिये जानेवाले उपदेशकी समाप्तिविषयक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३६ ॥

# सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## कुन्तीका पाण्डवोंके लिये संदेश देना और श्रीकृष्णका उनसे विदा लेकर उपप्लव्य नगरमें जाना

कुन्त्युवाच

अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके।
उपोपविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता ॥ १ ॥
अथान्तरिक्षे वागासीद् दिव्यरूपा मनोरमा।
सहस्राक्षसमः कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः ॥ २ ॥

कुन्ती बोली—केशव! तुम अर्जुनसे जाकर कहना, तुम्हारे जन्मके समय जब मैं नारियोंसे घिरी हुई आश्रमके सूतिकागारमें बैठी थी, उसी समय आकाशमें यह दिव्यरूपा मनोरम वाणी सुनायी दी—'कुन्ती! तेरा यह पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी होगा ॥ १-२ ॥

एष जेष्यति संग्रामे कुरून् सर्वान् समागतान्।
भीमसेनद्वितीयश्च लोकमुद्वर्तयिष्यति ॥ ३ ॥

'यह भीमसेनके साथ रहकर युद्धमें आये हुए समस्त कौरवोंको जीत लेगा और शत्रु-समुदायको व्याकुल कर देगा ॥ ३ ॥

पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत्।
हत्वा कुरूंश्च संग्रामे वासुदेवसहायवान् ॥ ४ ॥
पित्र्यमंशं प्रणष्टं च पुनरप्युद्धरिष्यति।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमांस्त्रीन् मेधानाहरिष्यति ॥ ५ ॥

'तेरा यह पुत्र भगवान् श्रीकृष्णके साथ रहकर इस भूमण्डलको जीत लेगा, इसका यश स्वर्गलोकतक फैल जायगा और यह संग्राममें विपक्षी कौरवोंको मारकर अपने पैतृक राज्य-भागका पुनरुद्धार करेगा। यह शोभासम्पन्न बालक अपने भाइयोंके साथ तीन अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करेगा' ॥ ४-५ ॥

स सत्यसंधो बीभत्सुः सव्यसाची यथाच्युत।
तथा त्वमेव जानासि बलवन्तं दुरासदम् ॥ ६ ॥

अच्युत! सव्यसाची अर्जुन जैसा सत्यप्रतिज्ञ है तथा उसमें जितना बल एवं दुर्जय शक्ति है, उसे तुम्हीं जानते हो ॥६॥

तथा तदस्तु दाशार्ह यथा वागभ्यभाषत।
धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय तथा सत्यं भविष्यति ॥ ७ ॥

दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण! आकाशवाणीने जैसा कहा है, वैसा ही हो, यही मेरी भी इच्छा है। वृष्णिनन्दन! यदि धर्मकी सत्ता है तो वह सब उसी रूपमें सत्य होगा ॥ ७ ॥

त्वं चापि तत् तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि।
नाहं तदभ्यसूयामि यथा वागभ्यभाषत ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण! तुम स्वयं भी वह सब कुछ उसी रूपमें पूर्ण करोगे। आकाशवाणीने जैसा कहा है, उसमें मैं किसी दोषकी उद्भावना नहीं करती हूँ ॥ ८ ॥

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः।
एतद् धनंजयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥ ९ ॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।
न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः ॥ १० ॥

मैं तो उस महान् धर्मको नमस्कार करती हूँ, क्योंकि धर्म ही समस्त प्रजाको धारण करता है। तुम अर्जुनसे तथा युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले भीमसेनसे भी जाकर कहना—'क्षत्राणी जिसके लिये पुत्रको जन्म देती है, उसका यह उपयुक्त अवसर आ गया है। श्रेष्ठ मनुष्य किसीसे वैर ठन जानेपर उत्साहहीन नहीं होते' ॥ ९-१० ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति ।
यावदन्तं न कुरुते शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ ११ ॥

शत्रुदमन श्रीकृष्ण ! तुम्हें भीमसेनका विचार तो सदासे ज्ञात ही है, वह जबतक शत्रुओंका अन्त नहीं कर लेगा, तबतक शान्त नहीं होगा ॥ ११ ॥

सर्वधर्मविशेषज्ञां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ।
ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम् ॥१२॥
युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि ।
यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत् त्वमवर्तिथाः ॥ १३ ॥

माधव ! श्रीकृष्ण ! तुम सब धर्मोंको विशेषरूपसे जाननेवाली महात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू कल्याणमयी, यशस्विनी द्रौपदीसे कहना–'बेटी ! तू परम सौभाग्यशाली यशस्वी कुलमें उत्पन्न हुई है । तूने मेरे सभी पुत्रोंके साथ जो धर्मानुसार यथोचित बर्ताव किया है, यह तेरे ही योग्य है' ॥ १२-१३ ॥

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ ।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि ॥ १४ ॥
विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥ १५ ॥

पुरुषोत्तम ! तदनन्तर क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले दोनों माद्रीकुमारोंसे भी मेरा यह संदेश कहना—'वीरो ! तुम प्राणोंकी बाजी लगाकर भी अपने पराक्रमसे प्राप्त हुए भोगोंका ही उपभोग करो । क्षत्रियधर्मसे निर्वाह करनेवाले मनुष्यके मनको पराक्रमद्वारा प्राप्त किये हुए पदार्थ ही सदा संतुष्ट रखते हैं ॥ १४-१५ ॥

यच्च वः प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनाम् ।
पाञ्चाली परुषाण्युक्ता को नु तत् क्षन्तुमर्हति ॥ १६ ॥

'पाण्डवो ! सब प्रकारसे धर्मकी वृद्धि करनेवाले तुम सब लोगोंके देखते-देखते पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको जो कटुवचन सुनाये गये हैं, उन्हें कौन वीर क्षमा कर सकता है ?' ॥ १६ ॥

न राज्यहरणं दुःखं द्यूते चापि पराजयः ।
प्रव्राजनं सुतानां वा न मे तद् दुःखकारणम् ॥ १७ ॥
यत्र सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा ।
अश्रौषीत् परुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं महत् ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण ! मुझे राज्यके छिन्न जानेका उतना दुःख नहीं है । जुएमें हारने और पुत्रोंके वनवास होनेका भी मेरे मनमें उतना महान् दुःख नहीं है, परंतु भरी सभामें मेरी सुन्दरी युवती पुत्रवधू द्रौपदीने रोते हुए जो दुर्योधनके कटुवचन सुने थे, वही मेरे लिये महान् दुःखका कारण बन गया है ॥ ॥ १७-१८ ॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।
नाध्यगच्छत् तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥१९॥

क्षत्रियधर्ममें सदा तत्पर रहनेवाली मेरी सर्वाङ्गसुन्दरी सती-साध्वी बहू कृष्णा उन दिनों रजस्वलावस्थामें थी । वह सब प्रकारसे सनाथ थी, तो भी उस दिन कौरवसभामें उसे कोई रक्षक नहीं मिला ( वह अनाथ-सी रोती हुई अपमान सह रही थी ) ॥ १९ ॥

तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीं चर ॥ २० ॥

महाबाहो ! समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह अर्जुनसे कहना कि 'तुम द्रौपदीके इच्छित पथपर चलो' ॥ २० ॥

विदितं हि तवात्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण ! तुम तो अच्छी तरह जानते ही हो कि भीमसेन और अर्जुन कुपित हो जायँ तो वे यमराज तथा अन्तकके समान भयंकर हो जाते हैं और देवताओंको भी यमलोक पहुँचा सकते हैं ॥ २१ ॥

तयोश्चैतदवज्ञानं यत् सा कृष्णा सभागता ।
दुःशासनश्च यद् भीमं कटुकान्यभ्यभाषत ॥ २२ ॥
पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संस्मारयेः पुनः ।

जुएके समय द्रौपदीको जो सभामें जाना पड़ा और कौरव वीरोंके सामने ही दुर्योधन और दुःशासनने जो उसे गालियाँ दीं, वह सब भीमसेन और अर्जुनका ही तिरस्कार है । मैं पुनः उसकी याद दिला देती हूँ ॥ २२½ ॥

पाण्डवान् कुशलं पृच्छेः सपुत्रान् कृष्णया सह ।२३।
मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान् मे प्रतिपालय ॥ २४ ॥

जनार्दन ! तुम मेरी ओरसे द्रौपदी और पुत्रोंसहित पाण्डवोंसे कुशल पूछना और फिर मुझे भी सकुशल बताना । जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो, मेरे पुत्रोंकी रक्षा करना ॥ २३-२४ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

अभिवाद्याथ तां कृष्णः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः ॥ २५ ॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने कुन्तीदेवीको प्रणाम करके उनकी परिक्रमा भी की और फिर सिंहके समान मस्तानी चालसे वहाँसे निकल गये ॥२५॥

ततो विसर्जयामास भीष्मादीन् कुरुपुङ्गवान् ।
आरोप्याथ रथे कर्णं प्रायात् सात्यकिना सह ॥ २६ ॥

फिर भीष्म आदि प्रधान कुरुवंशियोंको उन्होंने विदा कर दिया और कर्णको रथपर बिठाकर सात्यकिके साथ वहाँसे प्रस्थान किया ॥ २६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ततः प्रयाते दाशार्हे कुरवः संगता मिथः।
जजल्पुर्महदाश्चर्यं केशवे परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥

दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्णके चले जानेपर सब कौरव आपसमें मिले और उनके अत्यन्त अद्भुत एवं महान् आश्चर्यजनक बल-वैभवकी चर्चा करने लगे ॥ २७ ॥

प्रमूढा पृथिवी सर्वा मृत्युपाशवशीकृता।
दुर्योधनस्य बालिश्यान्नैतदस्तीति चाब्रुवन् ॥ २८ ॥

वे बोले—'यह सारी पृथ्वी मृत्युपाशमें आबद्ध हो मोहाच्छन्न हो गयी है। जान पड़ता है, दुर्योधनकी मूर्खतासे इसका विनाश हो जायगा' ॥ २८ ॥

ततो निर्याय नगरात् प्रययौ पुरुषोत्तमः।
मन्त्रयामास च तदा कर्णेन सुचिरं सह ॥ २९ ॥

उधर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण जब नगरसे निकलकर उपप्लव्यकी ओर चले, तब उन्होंने दीर्घकालतक कर्णके साथ मन्त्रणा की ॥ २९ ॥

विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः।
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ ३० ॥

फिर राधानन्दन कर्णको विदा करके सम्पूर्ण यदुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीकृष्णने तुरंत ही बड़े वेगसे अपने रथके घोड़े हँकवाये ॥ ३० ॥

ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिताः।
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः ॥ ३१ ॥

दारुकके हाँकनेपर वे महान् वेगशाली अश्व मन और वायुके समान तीव्र गतिसे आकाशको पीते हुए-से चले ॥ ३१ ॥

ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगाः।
उच्चैर्जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन् ॥ ३२ ॥

उन्होंने शीघ्रगामी बाज पक्षीकी भाँति उस विशाल पथको तुरंत ही तै कर लिया और शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको उपप्लव्य नगरमें पहुँचा दिया ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्तीवाक्यविषयक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३७ ॥

## अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### भीष्म और द्रोणका दुर्योधनको समझाना

*वैशम्पायन उवाच*

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुन्तीका कथन सुनकर महारथी भीष्म और द्रोणने अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले दुर्योधनसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुन्त्याः कृष्णस्य संनिधौ।
वाक्यमर्थवदत्युग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम् ॥ २ ॥

'पुरुषसिंह! कुन्तीने श्रीकृष्णके समीप जो अर्थयुक्त, धर्मसंगत, परम उत्तम एवं अत्यन्त भयंकर बात कही है, उसे तुमने भी सुना ही होगा ॥ २ ॥

तत् करिष्यन्ति कौन्तेया वासुदेवस्य सम्मतम्।
न हि ते जातु शाम्येरन्नृते राज्येन कौरव ॥ ३ ॥

'कुरुनन्दन! कुन्तीके पुत्र श्रीकृष्णकी सम्मतिके अनुसार वह सब कार्य करेंगे। अब राज्य लिये बिना वे कदापि शान्त नहीं रह सकते ॥ ३ ॥

क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा।
सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव ॥ ४ ॥

'तुमने द्यूतक्रीडाके समय धर्मके बन्धनमें बँधे हुए पाण्डवोंको तथा कौरवसभामें द्रौपदीको भी भारी क्लेश पहुँचाया था; किंतु उन्होंने तुम्हारा वह सब अपराध चुपचाप सह लिया ॥ ४ ॥

कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्चयम्।
गाण्डीवं चेषुधी चैव रथं च ध्वजमेव च ॥ ५ ॥
नकुलं सहदेवं च बलवीर्यसमन्वितौ।
सहायं वासुदेवं च न क्षंस्यति युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥

'अब अस्त्रविद्यामें पारंगत अर्जुन और युद्धका दृढ़ निश्चय रखनेवाले भीमसेनको पाकर गाण्डीव धनुष, अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस, दिव्य रथ और ध्वजको हस्तगत करके, बल और पराक्रमसे सम्पन्न नकुल और सहदेवको युद्धके लिये उद्यत देखकर तथा भगवान् श्रीकृष्णको भी अपनी सहायताके रूपमें पाकर युधिष्ठिर तुम्हारे पूर्व अपराधोंको क्षमा नहीं करेंगे ॥ ५-६ ॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता।
विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः ॥ ७ ॥

'महाबाहो! थोड़े ही दिनों पहलेकी बात है, परम बुद्धिमान् अर्जुनने विराटनगरके युद्धमें हम सब लोगोंको परास्त कर दिया था और वह सब घटना तुम्हारी आँखोंके सामने घटित हुई थी ॥ ७ ॥

दानवा घोरकर्माणो निवातकवचा युधि।
रौद्रमस्त्रं समादाय दग्धा वानरकेतुना ॥ ८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'कपिध्वज अर्जुनने युद्धमें भयंकर कर्म करनेवाले निवात-कवच नामक दानवोंको रुद्रदेवतासम्बन्धी पाशुपत अस्त्र लेकर दग्ध कर डाला था ॥ ८ ॥

**कर्णप्रभृतयश्चेमे त्वं चापि कवची रथी।**
**मोक्षितो घोषयात्रायां पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ९ ॥**
**प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः सह पाण्डवैः।**

'घोषयात्राके समय ये कर्ण आदि योद्धा तुम्हारे साथ थे। तुम स्वयं भी रथ और कवच आदिसे सम्पन्न थे, तथापि अर्जुनने ही तुम्हें गन्धर्वोंके हाथसे छुड़ाया था। उनकी शक्तिको समझनेके लिये यही उदाहरण पर्याप्त होगा। अतः भरतश्रेष्ठ ! तुम अपने ही भाई पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ ९½ ॥

**रक्षेमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गताम् ॥ १० ॥**
**ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक् कविः।**
**तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम् ॥ ११ ॥**

'यह सारी पृथ्वी मौतकी दाढ़ोंके बीचमें जा पहुँची है। तुम संधिके द्वारा इसकी रक्षा करो। तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर धर्मात्मा, दयालु, मधुरभाषी और विद्वान् हैं। तुम अपने मनका सारा कलुष यहीं धो-बहाकर उन पुरुषसिंह युधिष्ठिरकी शरणमें जाओ ॥ १०-११ ॥

**दृष्टश्च त्वं पाण्डवेन व्यपनीतशरासनः।**
**प्रशान्तभ्रुकुटिः श्रीमान् कृता शान्तिः कुलस्य नः १२**

'जब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर यह देख लेंगे कि तुमने धनुष उतार दिया है और तुम्हारी टेढ़ी भौंहें शान्त एवं सीधी हो गयी हैं तथा तुम क्रोध त्यागकर अपनी सहज शोभासे सम्पन्न हो रहे हो, तब हमें विश्वास हो जायगा कि तुमने हमारे कुलमें शान्ति स्थापित कर दी ॥ १२ ॥

**तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम्।**
**अभिवादय राजानं यथापूर्वमरिंदम ॥ १३ ॥**

'शत्रुदमन ! तुम अपने मन्त्रियोंके साथ पाण्डुकुमार राजा युधिष्ठिरके पास जाओ और पहलेहीकी भाँति उनके हृदयसे लगकर उन्हें प्रणाम करो ॥ १३ ॥

**अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः।**
**प्रतिगृह्णातु सौहार्दात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥**

'भीमके बड़े भाई कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तुम्हें प्रणाम करते देख सौहार्दवश अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लें ॥

**सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः।**
**परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः ॥ १५ ॥**

'जिनके कंधे सिंहके समान और भुजाएँ बड़ी, गोलाकार तथा अधिक मोटी हैं, वे योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेन भी तुम्हें अपनी दोनों भुजाओंमें भरकर छातीसे चिपका लें ॥ १५ ॥

**कम्बुग्रीवो गुडाकेशस्ततस्त्वां पुष्करेक्षणः।**
**अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १६ ॥**

'शङ्खके समान ग्रीवा और कमलसदृश नेत्रोंवाले निद्राविजयी कुन्तीपुत्र धनंजय तुम्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करें ॥

**आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि।**
**तौ च त्वां गुरुवत् प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम् ॥१७॥**

'इस भूतलपर जिनके रूपकी कहीं तुलना नहीं है, वे अश्विनीकुमारोंके पुत्र नरश्रेष्ठ नकुल-सहदेव तुम्हारे प्रति गुरुजनोचित प्रेम और आदरका भाव लेकर तुम्हारी सेवामें उपस्थित हों ॥ १७ ॥

**मुञ्चन्त्वानन्दजाश्रूणि दाशार्हप्रमुखा नृपाः।**
**संगच्छ भ्रातृभिः सार्धं मानं संत्यज्य पार्थिव ॥१८॥**

'भूपाल ! तुम अभिमान छोड़कर अपने उन बिछुड़े हुए भाइयोंसे मिल जाओ और यह अपूर्व मिलन देखकर श्रीकृष्ण आदि सब नरेश अपने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहावें ॥

**प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्त्वं भ्रातृभिः सह।**
**समालिङ्ग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम् ॥ १९ ॥**

'तदनन्तर तुम अपने भाइयोंके साथ इस सारी पृथ्वीका शासन करो और ये राजा लोग एक दूसरेसे मिल-जुलकर हर्षपूर्वक यहाँसे पधारें ॥ १९ ॥

**अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु वारणम्।**
**ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां प्रदृश्यते ॥ २० ॥**

'राजेन्द्र ! इस युद्धसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हारे हितैषी सुहृद् जो तुम्हें युद्धसे रोकते हैं, उनकी वह बात सुनो और मानो; क्योंकि युद्ध छिड़ जानेपर क्षत्रियोंका निश्चय ही विनाश दिखायी दे रहा है ॥ २० ॥

**ज्योतींषि प्रतिकूलानि दारुणा मृगपक्षिणः।**
**उत्पाता विविधा वीर दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥ २१ ॥**

'वीर ! ग्रह और नक्षत्र प्रतिकूल हो रहे हैं। पशु और पक्षी भयंकर शब्द कर रहे हैं तथा नाना प्रकारके ऐसे उत्पात (अपशकुन) दिखायी देते हैं, जो क्षत्रियोंके विनाशकी सूचना देते हैं ॥ २१ ॥

**विशेषत इहास्माकं निमित्तानि निवेशने।**
**उल्काभिर्हि प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव ॥ २२ ॥**

'विशेषतः यहाँ हमारे घरमें बुरे निमित्त दृष्टिगोचर होते हैं। जलती हुई उल्काएँ गिरकर तुम्हारी सेनाको पीड़ित कर रही हैं ॥ २२ ॥

**वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते।**
**गृध्रास्ते पर्युपासन्ते सैन्यानि च समन्ततः ॥ २३ ॥**

'प्रजानाथ ! हमारे सारे वाहन अप्रसन्न एवं रोते-से

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दिखायी देते हैं। गीध तुम्हारी सेनाओंको चारों ओरसे घेरकर बैठते हैं ॥ २३ ॥

**नगरं न यथापूर्वं तथा राजनिवेशनम्।**
**शिवाश्चाशिवनिर्घोषा दीप्तां सेवन्ति वै दिशम् ॥२४॥**

'इस नगर तथा राजभवनकी शोभा अब पहले-जैसी नहीं रही। सारी दिशाएँ जलती-सी प्रतीत होती हैं और उनमें अमङ्गलसूचक शब्द करती हुई गीदड़ियाँ फिर रही हैं ॥२४॥

**कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम्।**
**त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च॥ २५ ॥**

'महाबाहो! तुम पिता, माता तथा हम हितैषियोंका कहना मानो। अब शान्तिस्थापन और युद्ध दोनों तुम्हारे ही अधीन हैं ॥ २५ ॥

**न चेत् करिष्यसि वचः सुहृदामरिकर्शन।**
**तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् ॥ २६॥**

'शत्रुसूदन! यदि तुम सुहृदोंकी बातें नहीं मानोगे तो अपनी सेनाको अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होती देखकर पछताओगे ॥ २६ ॥

**भीमस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे।**
**श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निःस्वनम्**
**यद्येतदपसव्यं ते वचो मम भविष्यति ॥ २७ ॥**

'यदि हमारी ये बातें तुम्हें विपरीत जान पड़ती हैं तो जिस समय युद्धमें गर्जना करनेवाले महाबली भीमसेनका विकट सिंहनाद और अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनोगे, उस समय तुम्हें ये बातें याद आयेंगी' ॥ २७ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भीष्म-द्रोण-वाक्यविषयक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३८ ॥

# एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## भीष्मसे वार्तालाप आरम्भ करके द्रोणाचार्यका दुर्योधनको पुनः संधिके लिये समझाना

*वैशम्पायन उवाच*

**एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः।**
**संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किंचिद् व्याजहार ह॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! भीष्म और द्रोणाचार्यके इस प्रकार कहनेपर दुर्योधनका मन उदास हो गया। उसने टेढ़ी आँखोंसे देखकर और भौंहोंको बीचसे सिकोड़कर मुँह नीचा कर लिया। वह उन दोनोंसे कुछ बोला नहीं ॥ १ ॥

**तं वै विमनसं दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्यान्योन्यमन्तिकात्।**
**पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ ॥ २ ॥**

उसे उदास देख नरश्रेष्ठ भीष्म और द्रोण एक दूसरेकी ओर देखते हुए उसके निकट ही पुनः इस प्रकार बात करने लगे ॥ २ ॥

*भीष्म उवाच*

**शुश्रूषुमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम्।**
**प्रतियोत्स्यामहे पार्थं यतो दुःखतरं नु किम् ॥ ३ ॥**

**भीष्म बोले**—अहो! जो गुरुजनोंकी सेवाके लिये उत्सुक, किसीके भी दोष न देखनेवाले, ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी हैं, उन्हीं युधिष्ठिरसे हमें युद्ध करना पड़ेगा; इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात और क्या होगी? ॥ ३ ॥

*द्रोण उवाच*

**अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनंजये।**
**बहुमानः परो राजन् संनतिश्च कपिध्वजे ॥ ४ ॥**

**द्रोणाचार्यने कहा**—राजन्! मेरा अपने पुत्र अश्वत्थामाके प्रति जैसा आदर है, उससे भी अधिक अर्जुनके प्रति है। कपिध्वज अर्जुनमें मेरे प्रति बहुत विनयभाव है॥४॥

**तं च पुत्रात् प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनंजयम्।**
**क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५ ॥**

मेरे पुत्रसे भी बढ़कर प्रियतम उन्हीं अर्जुनसे मुझे क्षत्रियधर्मका आश्रय लेकर युद्ध करना पड़ेगा। क्षात्रवृत्तिको धिक्कार है! ॥ ५ ॥

**यस्य लोके समो नास्ति कश्चिदन्यो धनुर्धरः।**
**मत्प्रसादात् स बीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः ॥ ६ ॥**

मेरी ही कृपासे अर्जुन अन्य धनुर्धरोंसे श्रेष्ठ हो गये हैं। इस समय जगत्में उनके समान दूसरा कोई धनुर्धर नहीं है ॥

**मित्रध्रुग् दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः।**
**न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः ॥ ७ ॥**

जैसे यज्ञमें आया हुआ मूर्ख ब्राह्मण प्रतिष्ठा नहीं पाता, उसी प्रकार जो मित्रद्रोही, दुर्भावनायुक्त, नास्तिक, कुटिल और शठ है, वह सत्पुरुषोंमें कभी सम्मान नहीं पाता है ॥७॥

**वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति।**
**चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥ ८ ॥**

पापात्मा मनुष्यको पापोंसे रोका जाय तो भी वह पाप ही करना चाहता है और जिसका हृदय शुभ संकल्पसे युक्त है, वह पुण्यात्मा पुरुष किसी पापीके द्वारा पापके लिये प्रेरित होनेपर भी शुभ कर्म करनेकी ही इच्छा रखता है ॥८॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मिथ्योपचरिता ह्येते वर्तमाना ह्यनु प्रिये ।
अहितत्वाय कल्पन्ते दोषा भरतसत्तम ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुमने पाण्डवोंके साथ सदा मिथ्या बर्ताव—छल- कपट ही किया है तो भी ये सदा तुम्हारा प्रिय करनेमें ही लगे रहे हैं । अतः तुम्हारे ये ईर्ष्या-द्वेष आदि दोष तुम्हारा ही अहित करनेवाले होंगे ॥ ९ ॥

त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च ।
वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाभिमन्यसे ॥ १० ॥

कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भीष्मजीने, मैंने, विदुरजीने तथा भगवान् श्रीकृष्णने भी तुमसे तुम्हारे कल्याणकी ही बात बतायी है; तथापि तुम उसे मान नहीं रहे हो ॥ १० ॥

अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि ।
सग्राहनक्रमकरं गङ्गावेगमिवोष्णगे ॥ ११ ॥

जैसे कोई अविवेकी मनुष्य वर्षाकालमें बढ़े हुए ग्राह और मकर आदि जलजन्तुओंसे युक्त गङ्गाजीके वेगको दोनों बाहुओंसे तैरना चाहता हो, उसी प्रकार तुम मेरे पास बल है, ऐसा समझकर पाण्डव-सेनाको सहसा लाँघ जानेकी इच्छा रखते हो ॥ ११ ॥

वास एव यथा त्यक्तं प्रावृण्वानोऽभिमन्यसे ।
स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद् यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ १२ ॥

जैसे कोई दूसरेका छोड़ा हुआ वस्त्र पहन ले और उसे अपना मानने लगे, उसी प्रकार तुम त्यागी हुई मालाकी भाँति युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीको पाकर अब उसे लोभवश अपनी समझते हो ॥ १२ ॥

द्रौपदीसहितं पार्थं सायुधैर्भ्रातृभिर्वृतम् ।
वनस्थमपि राज्यस्थः पाण्डवं को विजेष्यति ॥ १३ ॥

अपने अस्त्र-शस्त्रधारी भाइयोंसे घिरे हुए द्रौपदीसहित पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर वनमें रहें तो भी उन्हें राज्यसिंहासनपर बैठा हुआ कौन नरेश युद्धमें जीत सकेगा ? ॥ १३ ॥

निदेशे यस्य राजानः सर्वे तिष्ठन्ति किङ्कराः ।
तमैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत ॥ १४ ॥

समस्त राजा जिनकी आज्ञामें किंकरकी भाँति खड़े रहते हैं, उन्हीं राजराज कुबेरसे मिलकर धर्मराज युधिष्ठिर उनके साथ विराजमान हुए थे ॥ १४ ॥

कुबेरसदनं प्राप्य ततो रत्नान्यवाप्य च ।
स्फीतमाक्रम्य ते राष्ट्रं राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ १५ ॥

कुबेरके भवनमें जाकर उनसे भाँति-भाँतिके रत्न लेकर अब पाण्डव तुम्हारे समृद्धिशाली राष्ट्रपर आक्रमण करके अपना राज्य वापस लेना चाहते हैं ॥ १५ ॥

दत्तं हुतमधीतं च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः ।
आवयोर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ ॥ १६ ॥

हम दोनोंने तो दान, यज्ञ और स्वाध्याय कर लिये । धनसे ब्राह्मणोंको तृप्त कर लिया । अब हमारी आयु समाप्त हो चुकी है, अतः हमें तो तुम कृतकृत्य ही समझो ॥ १६ ॥

त्वं तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च ।
विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद् व्यसनमाप्स्यसि ॥ १७ ॥

परंतु तुम पाण्डवोंसे युद्ध ठानकर सुख, राज्य, मित्र और धन सब कुछ खोकर बड़े भारी संकटमें पड़ जाओगे ॥ १७ ॥

द्रौपदी यस्य चाशास्ते विजयं सत्यवादिनी ।
तपोघोरव्रता देवी कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १८ ॥

तपस्या एवं घोर व्रतका पालन करनेवाली सत्यवादिनी देवी द्रौपदी जिनकी विजयकी कामना करती है, उन पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको तुम कैसे जीत सकोगे ? ॥ १८ ॥

मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनंजयः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिनके मन्त्री और समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन जिनके भाई हैं, उन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको तुम कैसे जीतोगे ? ॥ १९ ॥

सहाया ब्राह्मणा यस्य धृतिमन्तो जितेन्द्रियाः ।
तमुग्रतपसं वीरं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ २० ॥

धैर्यवान् और जितेन्द्रिय ब्राह्मण जिनके सहायक हैं, उन उग्र तपस्वी वीर पाण्डवको तुम कैसे जीत सकोगे ? ॥ २० ॥

पुनरुक्तं च वक्ष्यामि यत् कार्यं भूतिमिच्छता ।
सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे ॥ २१ ॥

जिस समय अपने बहुत-से सुहृद् संकटके समुद्रमें डूब रहे हों, उस समय कल्याणकी इच्छा रखनेवाले एक सुहृद्का जो कर्तव्य है—उस अवसरपर उसे जैसी बात कहनी चाहिये, वह यद्यपि पहले कही जा चुकी है, तथापि उसे दुबारा कहूँगा ॥ २१ ॥

अलं युद्धेन तैर्वीरैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये ।
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम् ॥ २२ ॥

राजन् ! युद्धसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा । तुम कुरुकुलकी वृद्धिके लिये उन वीर पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । पुत्रों, मन्त्रियों तथा सेनाओंसहित यमलोकमें जानेकी तैयारी न करो ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भीष्म-द्रोणवाक्यविषयक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३९ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भगवान् श्रीकृष्ण कर्णको समझा रहे हैं

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi
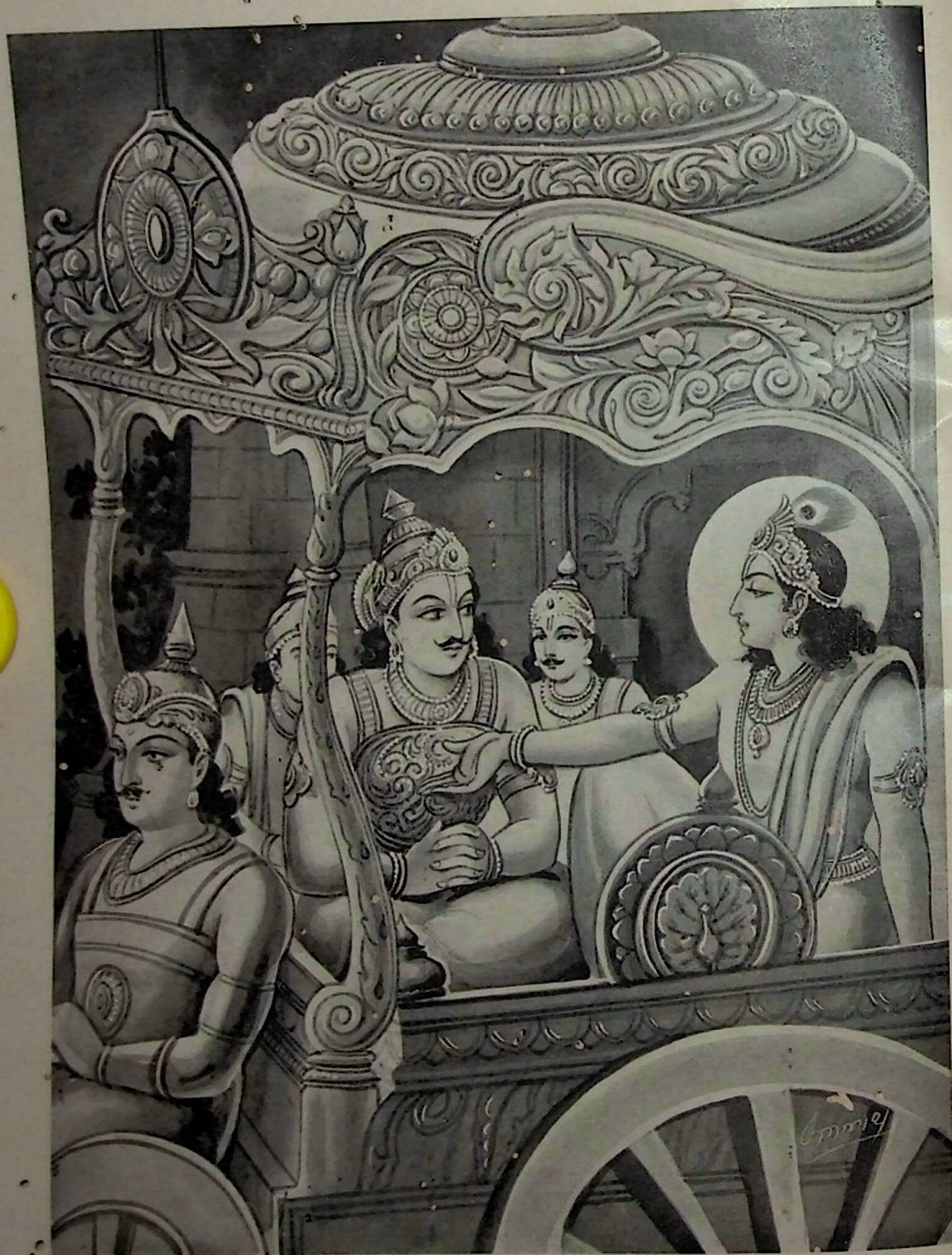
# चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको पाण्डवपक्षमें आ जानेके लिये समझाना

*धृतराष्ट्र उवाच*

**राजपुत्रैः परिवृतस्तथा भृत्यैश्च संजय ।**
**उपारोप्य रथे कर्णं निर्यातो मधुसूदनः ॥ १ ॥**
**किमब्रवीदमेयात्मा राधेयं परवीरहा ।**
**कानि सान्त्वानि गोविन्दः सूतपुत्रे प्रयुक्तवान् ॥ २ ॥**

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! राजपुत्रों तथा सेवकोंसे घिरे हुए, शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले, अप्रमेयस्वरूप, भगवान् श्रीकृष्ण जब राधानन्दन कर्णको रथपर बिठाकर हस्तिनापुरसे बाहर निकल गये, तब उन्होंने उससे क्या कहा ? गोविन्दने सूतपुत्र कर्णको क्या सान्त्वनाएँ दीं ? ॥ १-२ ॥

**उद्यन्मेघस्वनः काले कृष्णः कर्णमथाब्रवीत् ।**
**मृदु वा यदि वा तीक्ष्णं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥**

संजय ! मेघके समान गम्भीर स्वरसे बोलनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उस समय कर्णसे जो मधुर अथवा कठोर वचन कहा हो—वह सब मुझे बताओ ॥ ३ ॥

*संजय उवाच*

**आनुपूर्व्येण वाक्यानि तीक्ष्णानि च मृदूनि च ।**
**प्रियाणि धर्मयुक्तानि सत्यानि च हितानि च ॥ ४ ॥**
**हृदयग्रहणीयानि राधेयं मधुसूदनः ।**
**यान्यब्रवीदमेयात्मा तानि मे शृणु भारत ॥ ५ ॥**

संजय बोले—भारत ! अप्रमेयस्वरूप मधुसूदन श्रीकृष्णने राधानन्दन कर्णसे जो तीक्ष्ण, मधुर, प्रिय, धर्मसम्मत, सत्य, हितकर एवं हृदयग्राह्य बातें क्रमशः कही थीं, उन सबको आप मुझसे सुनिये ॥ ४-५ ॥

*वासुदेव उवाच*

**उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः ।**
**तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया ॥ ६ ॥**

श्रीकृष्णने कहा—राधानन्दन ! तुमने वेदोंके पारंगत ब्राह्मणोंकी उपासना की है । तत्त्वज्ञानके लिये संयम-नियमसे रहकर दोष-दृष्टिका परित्याग करके उन ब्राह्मणोंसे अपनी शङ्काएँ पूछी हैं ॥ ६ ॥

**त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान् ।**
**त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ॥ ७ ॥**

कर्ण ! सनातन वैदिक सिद्धान्त क्या है ? इसे तुम अच्छी तरह जानते हो । धर्मशास्त्रोंके सूक्ष्म विषयोंके भी तुम परिनिष्ठित विद्वान् हो ॥ ७ ॥

**कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते ।**
**वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः ॥ ८ ॥**

कर्ण ! कन्याके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसके दो भेद बताये जाते हैं—कानीन और सहोढ़ । (जो विवाहसे पहले उत्पन्न होता है, वह कानीन है और जो विवाहके पहले गर्भमें आकर विवाहके बाद उत्पन्न होता है, वह सहोढ कहलाता है ।) वैसे पुत्रकी माताका जिसके साथ विवाह होता है, शास्त्रज्ञोंने उसीको उसका पिता बताया है ॥ ८ ॥

**सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः ।**
**निग्रहाद् धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥ ९ ॥**

कर्ण ! तुम्हारा जन्म भी इसी प्रकार हुआ है; (तुम कुन्तीके ही कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए पुत्र हो;) अतः तुम भी धर्मानुसार पाण्डुके ही पुत्र हो । इसलिये आओ, धर्मशास्त्रोंके निश्चयके अनुसार तुम्हीं राजा होओगे ॥ ९ ॥

**पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः ।**
**द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥ १० ॥**

पिताके पक्षमें कुन्तीके सभी पुत्र तुम्हारे सहायक हैं और मातृपक्षमें समस्त वृष्णिवंशी तुम्हारे साथ हैं । पुरुषश्रेष्ठ ! तुम अपने इन दोनों पक्षोंको जान लो ॥ १० ॥

**मया सार्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः ।**
**अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात् ॥ ११ ॥**

तात ! मेरे साथ यहाँसे चलनेपर आज पाण्डवोंको तुम्हारे विषयमें यह पता चल जाय कि तुम कुन्तीके ही पुत्र हो और युधिष्ठिरसे भी पहले तुम्हारा जन्म हुआ है ॥ ११ ॥

**पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।**
**द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चापराजितः ॥ १२ ॥**

पाँचों भाई पाण्डव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा किसीसे परास्त न होनेवाला सुभद्राकुमार वीर अभिमन्यु—ये सभी तुम्हारे चरणोंका स्पर्श करेंगे ॥ १२ ॥

**राजानो राजपुत्राश्च पाण्डवार्थे समागताः ।**
**पादौ तव ग्रहीष्यन्ति सर्वे चान्धकवृष्णयः ॥ १३ ॥**

इसके सिवा, पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हुए समस्त राजा, राजकुमार तथा अन्धक और वृष्णिवंशके योद्धा भी तुम्हारे चरणोंमें नतमस्तक होंगे ॥ १३ ॥

**हिरण्मयांश्च ते कुम्भान् राजतान् पार्थिवांस्तथा ।**
**ओषध्यः सर्वबीजानि सर्वरत्नानि वीरुधः ॥ १४ ॥**
**राजन्या राजकन्याश्चाप्यानयन्त्वभिषेचनम् ॥ १५ ॥**

बहुत-से राजपुत्र और राजकन्याएँ तुम्हारे लिये सोने, चाँदी तथा मिट्टीके बने हुए कलश, औषधसमूह, सब प्रकारके बीज, सम्पूर्ण रत्न और लता आदि अभिषेक-सामग्री लेकर आयेंगी ॥ १४-१५ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अग्निं जुहोतु वै धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः ।
अद्य त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ॥ १६ ॥
पुरोहितः पाण्डवानां ब्रह्मकर्मण्यवस्थितः ।

विशुद्ध हृदयवाले द्विजश्रेष्ठ धौम्य आज तुम्हारे लिये होम करें और चारों वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण तथा सदा ब्राह्मणोचित धर्मके पालनमें स्थित रहनेवाले पाण्डवोंके पुरोहित धौम्यजी भी तुम्हारा राज्याभिषेक करें ॥ १६½ ॥

तथैव भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ १७ ॥
द्रौपदेयास्तथा पञ्च पञ्चालाश्चेदयस्तथा ।
अहं च त्वाभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ॥ १८ ॥
युवराजोऽस्तु ते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
गृहीत्वा व्यजनं श्वेतं धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ १९ ॥
उपान्वारोहतु रथं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
छत्रं च ते महाश्वेतं भीमसेनो महाबलः ॥ २० ॥
अभिषिक्तस्य कौन्तेयो धारयिष्यति मूर्धनि ।

इसी प्रकार पाँचों भाई पुरुषसिंह पाण्डव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, पाञ्चाल और चेदिदेशके नरेश तथा मैं—ये सब लोग तुम्हें पृथ्वीपालक सम्राट्के पदपर अभिषिक्त करेंगे । कठोर व्रतका पालन करनेवाले धर्मपुत्र धर्मात्मा कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज होंगे, जो हाथमें श्वेत चँवर लेकर तुम्हारे पीछे रथपर बैठेंगे और महाबली कुन्तीकुमार भीमसेन राज्याभिषेक होनेके पश्चात् तुम्हारे मस्तकपर महान् श्वेत छत्र धारण करेंगे ॥ १७—२०½ ॥

किङ्किणीशतनिर्घोषं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ २१ ॥
रथं श्वेतहयैर्युक्तमर्जुनो वाहयिष्यति ।
अभिमन्युश्च ते नित्यं प्रत्यासन्नो भविष्यति ॥ २२ ॥

सैकड़ों क्षुद्र घण्टिकाओंकी सुमधुर ध्वनिसे युक्त, व्याघ्र-चर्मसे आच्छादित तथा श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए तुम्हारे रथको अर्जुन सारथि बनकर हाँकेंगे और अभिमन्यु सदा तुम्हारी सेवाके लिये निकट खड़ा रहेगा ॥ २१-२२ ॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च पञ्च ये ।
पञ्चालाश्चानुयास्यन्ति शिखण्डी च महारथः ॥ २३ ॥

नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँच पुत्र, पञ्चालदेशीय क्षत्रिय तथा महारथी शिखण्डी—ये सब तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे ॥

अहं च त्वानुयास्यामि सर्वे चान्धकवृष्णयः ।
दाशार्हाः परिवारास्ते दाशार्णाश्च विशाम्पते ॥ २४ ॥

मैं तथा समस्त अन्धक और वृष्णिवंशके लोग भी तुम्हारा अनुसरण करेंगे । प्रजानाथ ! दशार्ह तथा दशार्ण कुलके समस्त क्षत्रिय तुम्हारे परिवार हो जायँगे ॥ २४ ॥

भुङ्क्ष्व राज्यं महाबाहो भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो मङ्गलैश्च पृथग्विधैः ॥ २५ ॥

महाबाहो ! तुम अपने भाई पाण्डवोंके साथ राज्य भोगो । जप, होम तथा नाना प्रकारके माङ्गलिक कर्मोंमें संलग्न रहो ॥ २५ ॥

पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सह कुन्तलैः ।
आन्ध्रास्तालचराश्चैव चूचुपा वेणुपास्तथा ॥ २६ ॥

द्रविड़, कुन्तल, आन्ध्र, तालचर, चूचुप तथा वेणुप देशके लोग तुम्हारे अग्रगामी सेवक हों ॥ २६ ॥

स्तुवन्तु त्वां च बहुभिः स्तुतिभिः सूतमागधाः ।
विजयं वसुषेणस्य घोषयन्तु च पाण्डवाः ॥ २७ ॥

सूत, मागध और वन्दीजन नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा तुम्हारा यशोगान करें और पाण्डवलोग महाराज वसुषेण कर्णकी विजय घोषित कर दें ॥ २७ ॥

स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीं च प्रतिनन्दय ॥ २८ ॥

कुन्तीकुमार ! नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति तुम अपने अन्य भाइयोंसे घिरे रहकर राज्यका पालन और कुन्तीको आनन्दित करो ॥ २८ ॥

मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा ।
सौभ्रात्रं चैव तेऽद्यास्तु भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ २९ ॥

तुम्हारे मित्र प्रसन्न हों और शत्रुओंके मनमें व्यथा हो । कर्ण ! आजसे अपने भाई पाण्डवोंके साथ तुम्हारा एक अच्छे बन्धुकी भाँति स्नेहपूर्ण बर्ताव हो ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४० ॥

## एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### कर्णका दुर्योधनके पक्षमें रहनेके निश्चित विचारका प्रतिपादन करते हुए समरयज्ञके रूपकका वर्णन करना

कर्ण उवाच

असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चात्थ केशव ।
सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामतयैव च ॥ १ ॥

कर्णने कहा—केशव ! आपने सौहार्द, प्रेम, मैत्री और मेरे हितकी इच्छासे जो कुछ कहा है, वह निःसंदेह ठीक है ॥ १ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः ।
निग्रहाद् धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण ! जैसा कि आप मानते हैं, धर्मशास्त्रोंके निर्णयके अनुसार मैं धर्मतः पाण्डुका ही पुत्र हूँ । इन सब बातोंको मैं अच्छी तरह जानता और समझता हूँ ॥ २ ॥

कन्या गर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन ।
आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥ ३ ॥

जनार्दन ! कुन्तीने कन्यावस्थामें भगवान् सूर्यके संयोगसे मुझे गर्भमें धारण किया था और मेरा जन्म हो जानेपर उन सूर्यदेवकी आज्ञासे ही मुझे जलमें विसर्जित कर दिया था ॥ ३ ॥

सोऽस्मि कृष्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः ।
कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण ! इस प्रकार मेरा जन्म हुआ है । अतः मैं धर्मतः पाण्डुका ही पुत्र हूँ; परंतु कुन्तीदेवीने मुझे इस तरह त्याग दिया, जिससे मैं सकुशल नहीं रह सकता था ॥

सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यानयद् गृहान् ।
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ॥ ५ ॥

मधुसूदन ! उसके बाद अधिरथ नामक सूत मुझे जलमें देखते ही निकालकर अपने घर ले आये और बड़े स्नेहसे मुझे अपनी पत्नी राधाकी गोदमें दे दिया ॥ ५ ॥

मत्स्नेहाच्चैव राधायां सद्यः क्षीरमवातरत् ।
सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ॥ ६ ॥

उस समय मेरे प्रति अधिक स्नेहके कारण राधाके स्तनोंमें तत्काल दूध उतर आया । माधव ! उस अवस्थामें उसीने मेरा मल-मूत्र उठाना स्वीकार किया ॥ ६ ॥

तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम् ।
धर्मविद् धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः ॥ ७ ॥

अतः सदा धर्मशास्त्रोंके श्रवणमें तत्पर रहनेवाला मुझ जैसा धर्मज्ञ पुरुष राधाके मुखका ग्रास कैसे छीन सकता है ? ( उसका पालन-पोषण न करके उसे त्याग देनेकी क्रूरता कैसे कर सकता है ? ) ॥ ७ ॥

तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम् ।
पितरं चाभिजानामि तमहं सौहृदात् सदा ॥ ८ ॥

अधिरथ सूत भी मुझे अपना पुत्र ही समझते हैं और मैं भी सौहार्दवश उन्हें सदासे अपना पिता ही मानता आया हूँ ॥ ८ ॥

स हि मे जातकर्मादि कारयामास माधव ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना पुत्रप्रीत्या जनार्दन ॥ ९ ॥
नाम वै वसुषेणेति कारयामास वै द्विजैः ।

माधव ! उन्होंने मेरे जातकर्म आदि संस्कार करवाये तथा जनार्दन ! उन्होंने ही पुत्रप्रेमवश शास्त्रीय विधिसे ब्राह्मणोंद्वारा मेरा 'वसुषेण' नाम रखवाया ॥ ९½ ॥

भार्याश्चोढा मम प्राप्ते यौवने तत्परिग्रहात् ॥ १० ॥
तासु पुत्राश्च पौत्राश्च मम जाता जनार्दन ।
तासु मे हृदयं कृष्ण संजातं कामबन्धनम् ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! मेरी युवावस्था होनेपर अधिरथने सूतजातिकी कई कन्याओंके साथ मेरा विवाह करवाया । अब उनसे मेरे पुत्र और पौत्र भी पैदा हो चुके हैं । जनार्दन ! उन स्त्रियोंमें मेरा हृदय कामभावसे आसक्त रहा है ॥ १०-११ ॥

न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः ।
हर्षाद् भयाद् वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥ १२ ॥

गोविन्द ! अब मैं सम्पूर्ण पृथिवीका राज्य पाकर, सुवर्णकी राशियाँ लेकर अथवा हर्ष या भयके कारण भी वह सब सम्बन्ध मिथ्या नहीं करना चाहता ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात् ।
मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण ! मैंने दुर्योधनका सहारा पाकर धृतराष्ट्रके कुलमें रहते हुए तेरह वर्षोंतक अकण्टक राज्यका उपभोग किया है ॥ १३ ॥

इष्टं च बहुभिर्यज्ञैः सह सूतैर्मयासकृत् ।
आवाहाश्च विवाहाश्च सह सूतैर्मया कृताः ॥ १४ ॥

वहाँ मैंने सूतोंके साथ मिलकर बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा उन्हींके साथ रहकर अनेकानेक कुलधर्म एवं वैवाहिक कार्य सम्पन्न किये हैं ॥ १४ ॥

मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।
दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चापि पाण्डवैः ॥ १५ ॥

वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! दुर्योधनने मेरे ही भरोसे हथियार उठाने तथा पाण्डवोंके साथ विग्रह करनेका साहस किया है ॥ १५ ॥

तस्माद् रणे द्वैरथे मां प्रत्युद्यातारमच्युत ।
वृतवान् परमं कृष्ण प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥ १६ ॥

अतः अच्युत ! मुझे द्वैरथ युद्धमें सव्यसाची अर्जुनके विरुद्ध लोहा लेने तथा उनका सामना करनेके लिये उसने चुन लिया है ॥ १६ ॥

वधाद् बन्धाद् भयाद् वापि लोभाद् वापि जनार्दन ।
अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १७ ॥

जनार्दन ! इस समय मैं वध, बन्धन, भय अथवा लोभसे भी बुद्धिमान् धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके साथ मिथ्या व्यवहार नहीं करना चाहता ॥ १७ ॥

यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथं सव्यसाचिना ।
अकीर्तिः स्याद्धृषीकेश मम पार्थस्य चोभयोः ॥ १८ ॥

हृषीकेश ! अब यदि मैं अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्ध न



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करूँ तो यह मेरे और अर्जुन दोनोंके लिये अपयशकी बात होगी ॥ १८ ॥

**असंशयं हितार्थाय ब्रूयास्त्वं मधुसूदन ।**
**सर्वे च पाण्डवाः कुर्युस्त्वद्वशित्वान्न संशयः ॥१९॥**

मधुसूदन ! इसमें संदेह नहीं कि आप मेरे हितके लिये ही ये सब बातें कहते हैं । पाण्डव आपके अधीन हैं; इसलिये आप उनसे जो कुछ भी कहेंगे, वह सब वे अवश्य ही कर सकते हैं ॥ १९ ॥

**मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र मधुसूदन ।**
**एतदत्र हितं मन्ये सर्वं यादवनन्दन ॥ २० ॥**

परंतु मधुसूदन ! मेरे और आपके बीचमें जो यह गुप्त परामर्श हुआ है, उसे आप यहीं तक सीमित रक्खें । यादवनन्दन ! ऐसा करनेमें ही मैं यहाँ सब प्रकारसे हित समझता हूँ ॥ २० ॥

**यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः ।**
**कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥ २१ ॥**

अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर यदि यह जान लेंगे कि मैं ( कर्ण ) कुन्तीका प्रथम पुत्र हूँ, तब वे राज्य ग्रहण नहीं करेंगे ॥ २१ ॥

**प्राप्य चापि महद् राज्यं तदहं मधुसूदन ।**
**स्फीतं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिंदम ॥ २२ ॥**

शत्रुदमन मधुसूदन ! उस दशामें मैं उस समृद्धिशाली विशाल राज्यको पाकर भी दुर्योधनको ही सौंप दूँगा ॥२२॥

**स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः ।**
**नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनंजयः ॥ २३ ॥**

मैं भी यही चाहता हूँ कि जिनके नेता हृषीकेश और योद्धा अर्जुन हैं, वे धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सर्वदा राजा बने रहें ।२३।

**पृथिवी तस्य राष्ट्रं च यस्य भीमो महारथः ।**
**नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च माधव ॥ २४ ॥**
**धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।**
**उत्तमौजा युधामन्युः सत्यधर्मा च सौमकिः ॥ २५ ॥**
**चैद्यश्च चेकितानश्च शिखण्डी चापराजितः ।**
**इन्द्रगोपकवर्णाश्च केकया भ्रातरस्तथा ।**
**इन्द्रायुधसवर्णश्च कुन्तिभोजो महामनाः ॥ २६ ॥**
**मातुलो भीमसेनस्य श्येनजिच्च महारथः ।**
**शङ्खः पुत्रो विराटस्य निधिस्त्वं च जनार्दन ॥ २७ ॥**

माधव ! जनार्दन ! जिनके सहायक महारथी भीम, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न, महारथी सात्यकि, उत्तमौजा, युधामन्यु, सोमकवंशी सत्यधर्मा, चेदिराज धृष्टकेतु, चेकितान, अपराजित वीर शिखण्डी, इन्द्रगोपके समान वर्णवाले पाँचों भाई केकय-राजकुमार, इन्द्रधनुषके समान रंगवाले महामना कुन्तिभोज, भीमसेनके मामा महारथी श्येनजित्, विराटपुत्र शंख तथा अक्षयनिधिके समान आप हैं, उन्हीं युधिष्ठिरके अधिकारमें यह सारा भूमण्डल तथा कौरव-राज्य रहेगा ॥ २४—२७ ॥

**महानयं कृष्ण कृतः क्षत्रस्य समुदानयः ।**
**राज्यं प्राप्तमिदं दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ २८ ॥**

श्रीकृष्ण ! दुर्योधनने यह क्षत्रियोंका बहुत बड़ा समुदाय एकत्र कर लिया है तथा समस्त राजाओंमें विख्यात एवं उज्ज्वल यह कुरुदेशका राज्य भी उसे प्राप्त हो गया है ।२८।

**धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति ।**
**अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन ॥ २९ ॥**

जनार्दन ! वृष्णिनन्दन ! अब दुर्योधनके यहाँ एक शस्त्र-यज्ञ होगा, जिसके साक्षी आप होंगे ॥ २९ ॥

**आध्वर्यवं च ते कृष्ण क्रतावस्मिन् भविष्यति ।**
**होता चैवात्र बीभत्सुः संनद्धः स कपिध्वजः ॥ ३० ॥**

श्रीकृष्ण ! इस यज्ञमें अध्वर्युका काम भी आपको ही करना होगा । कवच आदिसे सुसज्जित कपिध्वज अर्जुन इसमें होता बनेंगे ॥ ३० ॥

**गाण्डीवं स्रुक् तथा चाज्यं वीर्यं पुंसां भविष्यति ।**
**ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं च माधव ।**
**मन्त्रास्तत्र भविष्यन्ति प्रयुक्ताः सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥**

गाण्डीव धनुष स्रुवाका काम करेगा और विपक्षी वीरोंका पराक्रम ही हवनीय घृत होगा । माधव ! सव्यसाची अर्जुन द्वारा प्रयुक्त होनेवाले ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म और स्थूणाकर्ण आदि अस्त्र ही वेद-मन्त्र होंगे ॥ ३१ ॥

**अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमे ।**
**गीतं स्तोत्रं स सौभद्रः सम्यक् तत्र भविष्यति ॥ ३२ ॥**

सुभद्राकुमार अभिमन्यु भी अस्त्रविद्यामें अपने पिताका ही अनुसरण करनेवाला अथवा पराक्रममें उनसे भी बढ़कर है । वह इस शस्त्रयज्ञमें उत्तम स्तोत्रगान ( उद्गातृकर्म ) की पूर्ति करेगा ॥ ३२ ॥

**उद्गातात्र पुनर्भीमः प्रस्तोता सुमहाबलः ।**
**विनदन् स नरव्याघ्रो नागानीकान्तकृद् रणे ॥ ३३ ॥**

अभिमन्यु ही उद्गाता और महाबली नरश्रेष्ठ भीमसेन ही प्रस्तोता होंगे, जो रणभूमिमें गर्जना करते हुए शत्रुपक्षके हाथियोंकी सेनाका विनाश कर डालेंगे ॥ ३३ ॥

**स चैव तत्र धर्मात्मा शश्वद् राजा युधिष्ठिरः ।**
**जपैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वं कारयिष्यति ॥ ३४ ॥**

वे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ही सदा जप और होममें संलग्न रहकर उस यज्ञमें ब्रह्माका कार्य सम्पन्न करेंगे ॥ ३४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

शङ्खशब्दाः समुरजा भेर्यश्च मधुसूदन ।
उत्कृष्टसिंहनादश्च सुब्रह्मण्यो भविष्यति ॥ ३५ ॥

मधुसूदन ! शङ्ख, मुरज तथा भेरियोंके शब्द और उच्च स्वरसे किये हुए सिंहनाद ही सुब्रह्मण्यनाद होंगे ॥ ३५ ॥

नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ यशस्विनौ ।
शामित्रं तौ महावीर्यौ सम्यक् तत्र भविष्यतः ॥ ३६ ॥

माद्रीके यशस्वी पुत्र महापराक्रमी नकुल-सहदेव उसमें भलीभाँति शामित्रकर्मका सम्पादन करेंगे ॥ ३६ ॥

कल्मापदण्डा गोविन्द विमला रथपङ्क्तयः ।
यूपाः समुपकल्पन्तामस्मिन् यज्ञे जनार्दन ॥ ३७ ॥

गोविन्द ! जनार्दन ! विचित्र ध्वजदण्डोंसे सुशोभित निर्मल रथ-पंक्तियाँ ही इस रणयज्ञमें यूपोंका काम करेंगी । ३७ ।

कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहणाः ।
तोमराः सोमकलशाः पवित्राणि धनूंषि च ॥ ३८ ॥

कर्णि, नालीक, नाराच और वत्सदन्त आदि बाण उपबृंहण ( सोमाहुतिके साधनभूत चमस आदि पात्र ) होंगे । तोमर सोमकलशका और धनुष पवित्रीका काम करेंगे । ३८ ।

असयोऽत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ।
हविस्तु रुधिरं कृष्ण तस्मिन् यज्ञे भविष्यति ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण ! उस यज्ञमें खड्ग ही कपाल, शत्रुओंके मस्तक ही पुरोडाश तथा रुधिर ही हविष्य होंगे ॥ ३९ ॥

इध्माः परिधयश्चैव शक्तयो विमला गदाः ।
सदस्या द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ ४० ॥

निर्मल शक्तियाँ और गदाएँ सब ओर बिखरी हुई समिधाएँ होंगी । द्रोण और कृपाचार्यके शिष्य ही सदस्यका कार्य करेंगे ॥ ४० ॥

इषवोऽत्र परिस्तोमा मुक्ता गाण्डीवधन्वना ।
महारथप्रयुक्ताश्च द्रोणद्रौणिप्रचोदिताः ॥ ४१ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके छोड़े हुए तथा द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा एवं अन्य महारथियोंके चलाये हुए बाण यज्ञ-कुण्डके सब ओर बिछाये जानेवाले कुशोंका काम देंगे ॥ ४१ ॥

प्रतिप्रास्थानिकं कर्म सात्यकिस्तु करिष्यति ।
दीक्षितो धार्तराष्ट्रोऽत्र पत्नी चास्य महाचमूः ॥ ४२ ॥

सात्यकि प्रतिस्थाता ( अध्वर्युके दूसरे सहयोगी ) का कार्य करेंगे । धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन इस रणयज्ञकी दीक्षा लेगा और उसकी विशाल सेना ही यजमानपत्नीका काम करेगी ॥

घटोत्कचोऽत्र शामित्रं करिष्यति महाबलः ।
अतिरात्रे महाबाहो वितते यज्ञकर्मणि ॥ ४३ ॥

महाबाहो ! इस महायज्ञका अनुष्ठान आरम्भ हो जानेपर उसके अतिरात्रयागमें ( अथवा आधी रातके समय ) महाबली घटोत्कच शामित्रकर्म करेगा ॥ ४३ ॥

दक्षिणा त्वस्य यज्ञस्य धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
वैतानिके कर्ममुखे जातो यः कृष्ण पावकात् ॥ ४४ ॥

श्रीकृष्ण ! जो श्रौत यज्ञके आरम्भमें ही साक्षात् अग्नि-कुण्डसे प्रकट हुआ था, वह प्रतापी वीर धृष्टद्युम्न इस यज्ञकी दक्षिणाका कार्य सम्पादन करेगा ॥ ४४ ॥

यदब्रुवमहं कृष्ण कटुकानि स्म पाण्डवान् ।
प्रियार्थं धार्तराष्ट्रस्य तेन तप्ये ह्यकर्मणा ॥ ४५ ॥

श्रीकृष्ण ! मैंने जो धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनका प्रिय करनेके लिये पाण्डवोंको बहुतसे कटुवचन सुनाये हैं, उस अयोग्य कर्मके कारण आज मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है ॥ ४५ ॥

यदा द्रक्ष्यसि मां कृष्ण निहतं सव्यसाचिना ।
पुनश्चितिस्तदा चास्य यज्ञस्याथ भविष्यति ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण ! जब आप सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मुझे मारा गया देखेंगे, उस समय इस यज्ञका पुनश्चिति-कर्म ( यज्ञके अनन्तर किया जानेवाला चयनारम्भ ) सम्पन्न होगा ४६

दुःशासनस्य रुधिरं यदा पास्यति पाण्डवः ।
आनर्द नर्दतः सम्यक् तदा सुत्यं भविष्यति ॥ ४७ ॥

जब पाण्डुनन्दन भीमसेन सिंहनाद करते हुए दुःशासनका रक्त पान करेंगे, उस समय इस यज्ञका सुत्य ( सोमाभिषव ) कर्म पूरा होगा ॥ ४७ ॥

यदा द्रोणं च भीष्मं च पाञ्चाल्यौ पातयिष्यतः ।
तदा यज्ञावसानं तद् भविष्यति जनार्दन ॥ ४८ ॥

जनार्दन ! जब दोनों पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और भीष्मको मार गिरायेंगे, उस समय इस रणयज्ञका अवसान ( बीच-बीचमें होनेवाला विराम ) कार्य सम्पन्न होगा ॥ ४८ ॥

दुर्योधनं यदा हन्ता भीमसेनो महाबलः ।
तदा समाप्स्यते यज्ञो धार्तराष्ट्रस्य माधव ॥ ४९ ॥

माधव ! जब महाबली भीमसेन दुर्योधनका वध करेंगे उस समय धृतराष्ट्रपुत्रका प्रारम्भ किया हुआ यह यज्ञ समाप्त हो जायगा ॥ ४९ ॥

स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य सङ्गताः ।
हतेश्वरा नष्टपुत्रा हतनाथाश्च केशव ॥ ५० ॥
रुदत्यः सह गान्धार्या श्वगृध्रकुररकुले ।
स यज्ञेऽस्मिन्नवभृथो भविष्यति जनार्दन ॥ ५१ ॥

केशव ! जिनके पति, पुत्र और संरक्षक मार दिये गये होंगे, वे धृतराष्ट्रके पुत्रों और पौत्रोंकी बहुएँ जब गान्धारीके साथ एकत्र होकर कुत्तों, गीधों और कुरर पक्षियोंसे भरे हुए समराङ्गणमें रोती हुई विचरेंगी, जनार्दन ! वही उस यज्ञका अवभृथस्नान होगा ॥ ५०-५१ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विद्यावृद्धा वयोवृद्धाः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ।
वृथा मृत्युं न कुर्वीरंस्त्वत्कृते मधुसूदन ॥ ५२ ॥

क्षत्रियशिरोमणि मधुसूदन ! तुम्हारे इस शान्तिस्थापनके प्रयत्नसे कहीं ऐसा न हो कि विद्यावृद्ध और वयोवृद्ध क्षत्रियगण व्यर्थ मृत्युको प्राप्त हों ( युद्धमें शस्त्रोंसे होनेवाली मृत्युसे वञ्चित रह जायँ ) ॥ ५२ ॥

शस्त्रेण निधनं गच्छेत् समृद्धं क्षत्रमण्डलम् ।
कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे त्रैलोक्यस्यापि केशव ॥ ५३ ॥

केशव ! कुरुक्षेत्र तीनों लोकोंके लिये परम पुण्यतम तीर्थ है । यह समृद्धिशाली क्षत्रियसमुदाय वहीं जाकर शस्त्रोंके आघातसे मृत्युको प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

तदत्र पुण्डरीकाक्ष विधत्स्व यदभीप्सितम् ।
यथा कार्त्स्न्येन वार्ष्णेय क्षत्रं स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

कमलनयन वृष्णिनन्दन ! आप भी इसकी सिद्धिके लिये ही ऐसा मनोवाञ्छित प्रयत्न करें, जिससे यह सारा-का-सारा क्षत्रियसमूह स्वर्गलोकमें पहुँच जाय ॥ ५४ ॥

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन ।
तावत् कीर्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं भविष्यति ॥ ५५ ॥

जनार्दन ! जबतक ये पर्वत और सरिताएँ रहेंगी, तबतक इस युद्धकी कीर्ति-कथा अक्षय बनी रहेगी ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम् ।
समागमेषु वार्ष्णेय क्षत्रियाणां यशोधनम् ॥ ५६ ॥

वार्ष्णेय ! ब्राह्मणलोग क्षत्रियोंके समाजमें इस महाभारतयुद्धका, जिसमें राजाओंके सुयशरूपी धनका संग्रह होनेवाला है, वर्णन करेंगे ॥ ५६ ॥

समुपानय कौन्तेयं युद्धाय मम केशव ।
मन्त्रसंवरणं कुर्वन् नित्यमेव परंतप ॥ ५७ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले केशव ! आप इस मन्त्रणाको सदा गुप्त रखते हुए ही कुन्तीकुमार अर्जुनको मेरे साथ युद्ध करनेके लिये ले आवें ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कर्णके द्वारा अपने निश्चित विचारका प्रतिपादनविषयक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४१ ॥

# द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## भगवान् श्रीकृष्णका कर्णसे पाण्डवपक्षकी निश्चित विजयका प्रतिपादन

*संजय उवाच*

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
उवाच प्रहसन् वाक्यं स्मितपूर्वमिदं यथा ॥ १ ॥

**संजय कहते हैं**—राजन् ! विपक्षी वीरोंका वध करनेवाले भगवान् केशव कर्णकी उपर्युक्त बात सुनकर ठठाकर हँस पड़े और मुसकराते हुए इस प्रकार बोले ॥ १ ॥

*श्रीभगवानुवाच*

अपि त्वां न लभेत् कर्ण राज्यलम्भोपपादनम् ।
मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशासितुमिच्छसि ॥ २ ॥

**श्रीभगवान् बोले**—कर्ण ! मैं जो राज्यकी प्राप्तिका उपाय बता रहा हूँ, जान पड़ता है वह तुम्हें ग्राह्य नहीं प्रतीत होता है। तुम मेरी दी हुई पृथ्वीका शासन नहीं करना चाहते हो ॥ २ ॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामितीदं
न संशयः कश्चन विद्यतेऽत्र ।
जयध्वजो दृश्यते पाण्डवस्य
समुच्छ्रितो वानरराज उग्रः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंकी विजय अवश्यम्भावी है । इस विषयमें कोई भी संशय नहीं है । पाण्डुनन्दन अर्जुनका वानरराज हनुमान्से उपलक्षित वह भयंकर विजयध्वज बहुत ऊँचा दिखायी देता है ॥

दिव्या माया विहिता भौमनेन
समुच्छ्रिता इन्द्रकेतुप्रकाशा ।
दिव्यानि भूतानि जयावहानि
दृश्यन्ति चैवात्र भयानकानि ॥ ४ ॥

विश्वकर्माने उस ध्वजमें दिव्य मायाकी रचना की है। वह ऊँची ध्वजा इन्द्रध्वजके समान प्रकाशित होती है । उसके ऊपर विजयकी प्राप्ति करानेवाले दिव्य एवं भयंकर प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं ॥ ४ ॥

न सज्जते शैलवनस्पतिभ्य
ऊर्ध्वं तिर्यग्योजनमात्ररूपः ।
श्रीमान् ध्वजः कर्ण धनंजयस्य
समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः ॥ ५ ॥

कर्ण ! धनंजयका वह अग्निके समान तेजस्वी तथा कान्तिमान् ऊँचा ध्वज एक योजन लम्बा है । वह ऊपर अथवा अगल-बगलमें पर्वतों तथा वृक्षोंसे कहीं अटकता नहीं है ५

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चाप्यग्निमारुते ॥ ६ ॥
गाण्डीवस्य च निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ७ ॥

कर्ण ! जब युद्धमें मुझ श्रीकृष्णको सारथि बनाकर आये हुए श्वेतवाहन अर्जुनको तुम ऐन्द्र, आग्नेय तथा वायव्य अस्त्र प्रकट करते देखोगे और जब गाण्डीवकी वज्र-गर्जनाके समान भयंकर टंकार तुम्हारे कानोंमें पड़ेगी, उस समय

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरकी प्रतीति नहीं होगी (केवल कलहस्वरूप भयंकर कलि ही दृष्टिगोचर होगा) ॥६-७॥

**यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।**
**जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम् ॥ ८ ॥**
**आदित्यमिव दुर्धर्षं तपन्तं शत्रुवाहिनीम्।**
**न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ९ ॥**

जब जप और होममें लगे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको संग्राममें अपनी विशाल सेनाकी रक्षा करते तथा सूर्यके समान दुर्धर्ष होकर शत्रुसेनाको संतप्त करते देखोगे, उस समय तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरकी प्रतीति नहीं होगी ८-९

**यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे भीमसेनं महाबलम्।**
**दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे ॥ १० ॥**
**प्रभिन्नमिव मातङ्गं प्रतिद्विरदघातिनम्।**
**न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ११ ॥**

जब तुम युद्धमें महाबली भीमसेनको दुःशासनका रक्त पीकर नाचते तथा मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान उन्हें शत्रुपक्षकी गजसेनाका संहार करते देखोगे, उस समय तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरकी प्रतीति नहीं होगी।१०-११।

**यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे द्रोणं शान्तनवं कृपम्।**
**सुयोधनं च राजानं सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ १२ ॥**
**युद्धायापततस्तूर्णं वारितान् सव्यसाचिना।**
**न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १३ ॥**

जब तुम देखोगे कि युद्धमें आचार्य द्रोण, शान्तनुनन्दन भीष्म, कृपाचार्य, राजा दुर्योधन और सिन्धुराज जयद्रथ ज्यों ही युद्धके लिये आगे बढ़े हैं त्यों ही सव्यसाची अर्जुनने तुरंत उन सबकी गति रोक दी है, तब तुम हक्के-बक्के-से रह जाओगे और उस समय तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापर कुछ भी सूझ नहीं पड़ेगा ॥ १२-१३ ॥

**यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ।**
**वाहिनीं धार्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव ॥ १४ ॥**
**विगाढे शस्त्रसम्पाते परवीररथारुजौ।**
**न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १५ ॥**

जब युद्धस्थलमें अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार प्रगाढ़ अवस्थाको पहुँच जायगा (ज़ोर-जोरसे होने लगेगा) और शत्रुवीरोंके रथको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले महाबली माद्रीकुमार नकुल-सहदेव दो गजराजोंकी भाँति धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाको क्षुब्ध करने लगेंगे तथा जब तुम अपनी आँखोंसे यह अवस्था देखोगे, उस समय तुम्हारे सामने न सत्ययुग होगा, न त्रेता और न द्वापर ही रह जायगा ॥ १४-१५ ॥

**ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम्।**
**सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥ १६ ॥**

कर्ण! तुम यहाँसे जाकर आचार्य द्रोण, शान्तनुनन्दन भीष्म और कृपाचार्यसे कहना कि 'यह सौम्य (सुखद) मास चल रहा है। इसमें पशुओंके लिये घास और जलानेके लिये लकड़ी आदि वस्तुएँ सुगमतासे मिल सकती हैं ॥ १६ ॥

**पक्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः।**
**निष्पङ्को रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः ॥ १७ ॥**

सब प्रकारकी ओषधियों तथा फल-फूलोंसे वनकी समृद्धि बढ़ी हुई है, धानके खेतोंमें खूब फल लगे हुए हैं, मक्खियाँ बहुत कम हो गयी हैं, धरतीपर कीचड़का नाम नहीं है। जल स्वच्छ एवं सुस्वादु प्रतीत होता है, इस सुखद समयमें न तो अधिक गर्मी है और न अधिक सर्दी ही (यह मार्गशीर्ष मास चल रहा है)

**सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।**
**संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥ १८ ॥**

'आजसे सातवें दिनके बाद अमावास्या होगी। उसके देवता इन्द्र कहे गये हैं। उसीमें युद्ध आरम्भ किया जाय' ॥

**तथा राज्ञो वदेः सर्वान् ये युद्धायाभ्युपागताः।**
**यद् वो मनीषितं तद् वै सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥ १९ ॥**

इसी प्रकार जो युद्धके लिये यहाँ पधारे हैं, उन समस्त राजाओंसे भी कह देना 'आपलोगोंके मनमें जो अभिलाषा है, वह सब मैं अवश्य पूर्ण करूँगा' ॥ १९ ॥

**राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः।**
**प्राप्य शस्त्रेण निधनं प्राप्स्यन्ति गतिमुत्तमाम् ॥ २० ॥**

दुर्योधनके वशमें रहनेवाले जितने राजा और राजकुमार हैं, वे शस्त्रोंद्वारा मृत्युको प्राप्त होकर उत्तम गति लाभ करेंगे।२०।

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे भगवद्वाक्ये द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४२॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कर्णके द्वारा अपने अभिप्रायनिवेदनके प्रसङ्गमें भगवद्वाक्यविषयक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४२ ॥

# त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## कर्णके द्वारा पाण्डवोंकी विजय और कौरवोंकी पराजय सूचित करनेवाले लक्षणों एवं अपने स्वप्नका वर्णन

*संजय उवाच*

**केशवस्य तु तद् वाक्यं कर्णः श्रुत्वा हितं शुभम्।**
**अब्रवीदभिसम्पूज्य कृष्णं तं मधुसूदनम् ॥ १ ॥**

संजय कहते हैं—राजन्! भगवान् केशवका वह

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हितकर एवं कल्याणकारी वचन सुनकर कर्ण मधुसूदन श्रीकृष्णके प्रति सम्मानका भाव प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार बोला—॥ १ ॥

**जानन् मां किं महाबाहो सम्मोहयितुमिच्छसि ।**
**योऽयं पृथिव्याः कार्त्स्न्येन विनाशः समुपस्थितः ॥ २ ॥**
**निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा ।**
**दुर्योधनश्च नृपतिर्धार्तराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥ ३ ॥**

'महाबाहो ! आप सब कुछ जानते हुए भी मुझे मोहमें क्यों डालना चाहते हैं ? यह जो इस भूतलका पूर्णरूपसे विनाश उपस्थित हुआ है, उसमें मैं, शकुनि, दुःशासन तथा धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन निमित्तमात्र हुए हैं ॥ २-३ ॥

**असंशयमिदं कृष्ण महद् युद्धमुपस्थितम् ।**
**पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥ ४ ॥**

'श्रीकृष्ण ! इसमें संदेह नहीं कि कौरवों और पाण्डवोंका यह बड़ा भयंकर युद्ध उपस्थित हुआ है, जो रक्तकी कीच मचा देनेवाला है ॥ ४ ॥

**राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।**
**रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥ ५ ॥**

'दुर्योधनके वशमें रहनेवाले जो राजा और राजकुमार हैं, वे रणभूमिमें अस्त्र-शस्त्रोंकी आगसे जलकर निश्चय ही यमलोकमें जा पहुँचेंगे ॥ ५ ॥

**स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन ।**
**निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः ॥ ६ ॥**

'मधुसूदन ! मुझे बहुतसे भयंकर स्वप्न दिखायी देते हैं । घोर अपशकुन तथा अत्यन्त दारुण उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं ॥

**पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे ।**
**शंसन्त इव वार्ष्णेय विविधा रोमहर्षणाः ॥ ७ ॥**

'वृष्णिनन्दन ! वे रोंगटे खड़े कर देनेवाले विविध उत्पात मानो दुर्योधनकी पराजय और युधिष्ठिरकी विजय घोषित करते हैं ॥ ७ ॥

**प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः ।**
**शनैश्चरः पीडयति पीडयन् प्राणिनोऽधिकम् ॥ ८ ॥**

'महातेजस्वी एवं तीक्ष्ण ग्रह शनैश्चर प्रजापतिसम्बन्धी रोहिणीनक्षत्रको पीड़ित करते हुए जगत्के प्राणियोंको अधिक-से-अधिक पीड़ा दे रहे हैं ॥ ८ ॥

**कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन ।**
**अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संगमयन्निव ॥ ९ ॥**

'मधुसूदन ! मंगल ग्रह ज्येष्ठाके निकटसे वक्रगतिका आश्रय ले अनुराधा नक्षत्रपर आना चाहते हैं । जो राज्यस्थ राजाके मित्रमण्डलका विनाश-सा सूचित कर रहे हैं ॥ ९ ॥

**नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम् ।**
**विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥ १० ॥**

'वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! निश्चय ही कौरवोंपर महान् भय उपस्थित हुआ है । विशेषतः 'महापात' नामक ग्रह चित्राको पीड़ा दे रहा है ( जो राजाओंके विनाशका सूचक है ) ॥ १० ॥

**सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च ।**
**दिवश्चोल्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः ॥ ११ ॥**

'चन्द्रमाका कलंक ( काला चिह्न ) मिट-सा गया है, राहु सूर्यके समीप जा रहा है । आकाशसे ये उल्काएँ गिर रही हैं, वज्रपातके-से शब्द हो रहे हैं और धरती डोलती-सी जान पड़ती है ॥ ११ ॥

**निष्टनन्ति च मातङ्गा मुञ्चन्त्यश्रूणि वाजिनः ।**
**पानीयं यवसं चापि नाभिनन्दन्ति माधव ॥ १२ ॥**

'माधव ! गजराज परस्पर टकराते और विकृत शब्द करते हैं । घोड़े नेत्रोंसे आँसू बहा रहे हैं । वे घास और पानी भी प्रसन्नतापूर्वक नहीं ग्रहण करते हैं ॥ १२ ॥

**प्रादुर्भूतेषु चैतेषु भयमाहुरुपस्थितम् ।**
**निमित्तेषु महाबाहो दारुणं प्राणिनाशनम् ॥ १३ ॥**

'महाबाहो ! कहते हैं, इन निमित्तों ( उत्पातसूचक लक्षणों ) के प्रकट होनेपर प्राणियोंके विनाश करनेवाले दारुण भयकी उपस्थिति होती है ॥ १३ ॥

**अल्पे भुक्ते पुरीषं च प्रभूतमिह दृश्यते ।**
**वाजिनां वारणानां च मनुष्याणां च केशव ॥ १४ ॥**

'केशव ! हाथी, घोड़े तथा मनुष्य भोजन तो थोड़ा ही करते है; परंतु उनके पेटसे मल अधिक निकलता देखा जाता है ॥ १४ ॥

**धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु सर्वेषु मधुसूदन ।**
**पराभवस्य तल्लिङ्गमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥**

'मधुसूदन ! दुर्योधनकी समस्त सेनाओंमें ये बातें पायी जाती हैं । मनीषी पुरुष इन्हें पराजयका लक्षण कहते हैं ॥

**प्रहृष्टं वाहनं कृष्ण पाण्डवानां प्रचक्षते ।**
**प्रदक्षिणा मृगाश्चैव तत् तेषां जयलक्षणम् ॥ १६ ॥**

'श्रीकृष्ण ! पाण्डवोंके वाहन प्रसन्न बताये जाते हैं और मृग उनके दाहिनेसे जाते देखे जाते हैं; यह लक्षण उनकी विजयका सूचक है ॥ १६ ॥

**अपसव्या मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव ।**
**वाचश्चाप्यशरीरिण्यस्तत् पराभवलक्षणम् ॥ १७ ॥**

'केशव ! सभी मृग दुर्योधनके बाँयेंसे निकलते हैं और उसे प्रायः ऐसी वाणी सुनायी देती है, जिसके बोलनेवालेका शरीर नहीं दिखायी देता ; यह उसकी पराजयका चिह्न है १७

**मयूराः पुण्यशकुना हंससारसचातकाः ।**
**जीवंजीवकसङ्घाश्चाप्यनुगच्छन्ति पाण्डवान् ॥ १८ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'मोर, शुभ शकुन सूचित करनेवाले मुर्गे, हंस, सारस, चातक तथा चकोरोंके समुदाय पाण्डवोंका अनुसरण करते हैं ॥

गृध्राः कङ्का बकाः श्येना यातुधानास्तथा वृकाः।
मक्षिकाणां च सङ्घाता अनुधावन्ति कौरवान्॥ १९ ॥

'इसी प्रकार गीध, कङ्क, बक, श्येन ( बाज ), राक्षस, भेड़िये तथा मक्खियोंके समूह कौरवोंके पीछे दौड़ते हैं ॥१९॥

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु भेरीणां नास्ति निःस्वनः।
अनाहताः पाण्डवानां नदन्ति पटहाः किल ॥ २० ॥

'दुर्योधनकी सेनाओंमें बजानेपर भी भेरियोंके शब्द प्रकट नहीं होते हैं और पाण्डवोंके डंके बिना बजाये ही बज उठते हैं ॥ २० ॥

उदपानाश्च नर्दन्ति यथा गोवृषभास्तथा।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु तत् पराभवलक्षणम् ॥ २१ ॥

'दुर्योधनकी सेनाओंमें कुएँ आदि जलाशय गाय-बैलोंके समान शब्द करते हैं। यह उसकी पराजयका लक्षण है॥२१॥

मांसशोणितवर्षं च वृष्टं देवेन माधव।
तथा गन्धर्वनगरं भानुमत् समुपस्थितम् ॥ २२ ॥
सप्राकारं सपरिखं सवप्रं चारुतोरणम्।
कृष्णश्च परिघस्तत्र भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ २३ ॥

'माधव! बादल आकाशसे मांस और रक्तकी वर्षा करते हैं। अन्तरिक्षमें चहारदिवारी, खाई, वप्र और सुन्दर फाटकोंसहित सूर्ययुक्त गन्धर्वनगर प्रकट दिखायी देता है। वहाँ सूर्यको चारों ओरसे घेरकर एक काला परिघ प्रकट होता है ॥ २२-२३ ॥

उदयास्तमने संध्ये वेदयन्ती महद्भयम्।
शिवा च वाशते घोरं तत् पराभवलक्षणम् ॥ २४ ॥

'सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों संध्याओंके समय एक गीदड़ी महान् भयकी सूचना देती हुई भयंकर आवाजमें रोती है। यह भी कौरवोंकी पराजयका लक्षण है ॥ २४ ॥

एकपक्षाक्षिचरणाः पक्षिणो मधुसूदन।
उत्सृजन्ति महद् घोरं तत् पराभवलक्षणम् ॥ २५ ॥

'मधुसूदन! एक पाँख, एक आँख और एक पैरवाले पक्षी अत्यन्त भयंकर शब्द करते हैं। यह भी कौरवपक्षकी पराजयका ही लक्षण है ॥ २५ ॥

कृष्णग्रीवाश्च शकुना रक्तपादा भयानकाः।
संध्यामभिमुखा यान्ति तत् पराभवलक्षणम् ॥ २६ ॥

'संध्याकालमें काली ग्रीवा और लाल पैरवाले भयानक पक्षी सामने आ जाते हैं, वह भी पराजयका ही चिह्न है ॥२६॥

ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि गुरूंश्च मधुसूदन।
भृत्यान् भक्तिमतश्चापि तत् पराभवलक्षणम् ॥ २७ ॥

'मधुसूदन! दुर्योधन पहले ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है; फिर गुरुजनोंसे तथा अपने प्रति भक्ति रखनेवाले भृत्योंसे भी द्रोह करने लगता है, यह उसकी पराजयका ही लक्षण है २७

पूर्वा दिग् लोहिताकारा शस्त्रवर्णा च दक्षिणा।
आमपात्रप्रतीकाशा पश्चिमा मधुसूदन।
उत्तरा शङ्खवर्णाभा दिशां वर्णा उदाहृताः ॥ २८ ॥

'श्रीकृष्ण! पूर्व दिशा लाल, दक्षिण दिशा शस्त्रोंके समान रंगवाली ( काली ), पश्चिम दिशा मिट्टीके कच्चे बर्तनोंकी भाँति मटमैली तथा उत्तर दिशा शङ्खके समान श्वेत दिखायी देती है। इस प्रकार ये दिशाओंके पृथक्-पृथक् वर्ण बताये गये हैं ॥ २८ ॥

प्रदीप्ताश्च दिशः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य माधव।
महद् भयं वेदयन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥ २९ ॥

'माधव! दुर्योधनको इन उत्पातोंका दर्शन तो होता ही है। उसके लिये सारी दिशाएँ भी प्रज्वलित-सी होकर महान् भयकी सूचना दे रही हैं ॥ २९ ॥

सहस्रपादं प्रासादं स्वप्नान्ते स्म युधिष्ठिरः।
अधिरोहन् मया दृष्टः सह भ्रातृभिरच्युत ॥ ३० ॥

'अच्युत! मैंने स्वप्नके अन्तिम भागमें युधिष्ठिरको एक हजार खंभोंवाले महलपर भाइयोंसहित चढ़ते देखा है॥३०॥

श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे वै शुक्लवाससः।
आसनानि च शुभ्राणि सर्वेषामुपलक्षये ॥ ३१ ॥

'उन सबके सिरपर सफेद पगड़ी और अङ्गोंमें श्वेत वस्त्र शोभित दिखायी दिये हैं। मैंने उन सबके आसनोंको भी श्वेत वर्णका ही देखा है ॥ ३१ ॥

तव चापि मया कृष्ण स्वप्नान्ते रुधिराविला।
अन्त्रेण पृथिवी दृष्टा परिक्षिप्ता जनार्दन ॥ ३२ ॥

'जनार्दन! श्रीकृष्ण! मैंने स्वप्नके अन्तमें आपकी इस पृथ्वीको भी रक्तसे मलिन और आँतसे लिपटी हुई देखा है ३२

अस्थिसंचयमारूढश्चामितौजा युधिष्ठिरः।
सुवर्णपात्र्यां संहृष्टो भुक्तवान् घृतपायसम् ॥ ३३ ॥

'मैंने स्वप्नमें देखा, अमिततेजस्वी युधिष्ठिर सफेद हड्डियोंके ढेरपर बैठे हुए हैं और सोनेके पात्रमें रक्खी हुई घृतमिश्रित खीरको बड़ी प्रसन्नताके साथ खा रहे हैं ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिरो मया दृष्टो ग्रसमानो वसुन्धराम्।
त्वया दत्तामिमां व्यक्तं भोक्ष्यते स वसुन्धराम् ॥३४॥

'मैंने यह भी देखा कि युधिष्ठिर इस पृथ्वीको अपना ग्रास बनाये जा रहे हैं; अतः यह निश्चित है कि आपकी दी हुई वसुन्धराका वे ही उपभोग करेंगे ॥ ३४ ॥

उच्चं पर्वतमारूढो भीमकर्मा वृकोदरः।
गदापाणिर्नरव्याघ्रो ग्रसन्निव महीमिमाम् ॥ ३५ ॥

'भयंकर कर्म करनेवाले नरश्रेष्ठ भीमसेन भी हाथमें गदा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लिये ऊँचे पर्वतपर आरूढ़ हो इस पृथ्वीको ग्रसते हुए-से स्वप्नमें दिखायी दिये हैं ॥ ३५ ॥

**क्षपयिष्यति नः सर्वान् स सुव्यक्तं महारणे ।**
**विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३६ ॥**

अतः यह स्पष्टरूपसे जान पड़ता है कि वे इस महायुद्धमें हम सब लोगोंका संहार कर डालेंगे । हृषीकेश ! मुझे यह भी विदित है कि जहाँ धर्म है उसी पक्षकी विजय होती है ॥

**पाण्डुरं गजमारूढो गाण्डीवी स धनंजयः ।**
**त्वया सार्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३७ ॥**

'श्रीकृष्ण ! इसी प्रकार गाण्डीवधारी धनंजय भी आपके साथ श्वेत गजराजपर आरूढ़ हो अपनी परम कान्तिसे प्रकाशित होते हुए मुझे स्वप्नमें दृष्टिगोचर हुए हैं ॥ ३७ ॥

**यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नास्ति संशयः ।**
**पार्थिवान् समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥ ३८ ॥**

'अतः श्रीकृष्ण ! आप सब लोग इस युद्धमें दुर्योधन आदि समस्त राजाओंका वध कर डालेंगे, इसमें मुझे संशय नहीं है ॥

**नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।**
**शुक्लकेयूरकण्ठत्राः शुक्लमाल्याम्बरावृताः ॥ ३९ ॥**
**अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम् ।**
**त्रय एते मया दृष्टाः पाण्डुरच्छत्रवाससः ॥ ४० ॥**

'नकुल, सहदेव तथा महारथी सात्यकि—ये तीन नरश्रेष्ठ मुझे स्वप्नमें श्वेत भुजबन्द, श्वेत कण्ठहार, श्वेत वस्त्र और श्वेत मालाओंसे विभूषित हो उत्तम नरयान ( पालकी ) पर चढ़े दिखायी दिये हैं । ये तीनों ही श्वेत छत्र और श्वेत वस्त्रोंसे सुशोभित थे ॥ ३९-४० ॥

**श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एते जनार्दन ।**
**धार्तराष्ट्रेषु सैन्येषु तान् विजानीहि केशव ॥ ४१ ॥**
**अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।**
**रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः ॥ ४२ ॥**

'जनार्दन ! दुर्योधनकी सेनाओंमेंसे मुझे तीन ही व्यक्ति स्वप्नमें श्वेत पगड़ीसे सुशोभित दिखायी दिये हैं । केशव ! आप उनके नाम मुझसे जान लें । वे हैं—अश्वत्थामा, कृपाचार्य और यादव कृतवर्मा । माधव ! अन्य सब नरेश मुझे लाल पगड़ी धारण किये दिखायी दिये हैं ॥ ४१-४२ ॥

**उष्ट्रप्रयुक्तमारूढौ भीष्मद्रोणौ महारथौ ।**
**मया सार्धं महाबाहो धार्तराष्ट्रेण वा विभो ॥ ४३ ॥**
**अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन ।**
**अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम् ॥ ४४ ॥**

'महाबाहु जनार्दन ! मैंने स्वप्नमें देखा, भीष्म और द्रोणाचार्य दोनों महारथी मेरे तथा दुर्योधनके साथ ऊँट जुते हुए रथपर आरूढ़ हो दक्षिण दिशाकी ओर जा रहे थे । विभो ! इसका फल यह होगा कि हमलोग थोड़े ही दिनोंमें यमलोक पहुँच जायँगे ॥ ४३-४४ ॥

**अहं चान्ये च राजानो यच्च तत् क्षत्रमण्डलम् ।**
**गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नास्ति संशयः ॥ ४५ ॥**

'मैं' अन्यान्य नरेश तथा वह सारा क्षत्रियसमाज सब-के-सब गाण्डीवकी अग्निमें प्रवेश कर जायँगे, इसमें संशय नहीं है' ॥

*श्रीकृष्ण उवाच*

**उपस्थितविनाशेयं नूनमद्य वसुन्धरा ।**
**यथा हि मे वचः कर्ण नोपैति हृदयं तव ॥ ४६ ॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—कर्ण ! निश्चय ही अब इस पृथ्वीका विनाशकाल उपस्थित हो गया है ; इसीलिये मेरी बात तुम्हारे हृदयतक नहीं पहुँचती है ॥ ४६ ॥

**सर्वेषां तात भूतानां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।**
**अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ४७ ॥**

तात ! जब समस्त प्राणियोंका विनाश निकट आ जाता है, तब अन्याय भी न्यायके समान प्रतीत होकर हृदयसे निकल नहीं पाता है ॥ ४७ ॥

*कर्ण उवाच*

**अपि त्वां कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान्महारणात् ।**
**समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षत्रविनाशनात् ॥ ४८ ॥**

**कर्ण बोला**—महाबाहु श्रीकृष्ण ! वीर क्षत्रियोंका विनाश करनेवाले इस महायुद्धसे पार होकर यदि हम जीवित बच गये तो पुनः आपका दर्शन करेंगे ॥ ४८ ॥

**अथवा सङ्गमः कृष्ण स्वर्गे नो भविता ध्रुवम् ।**
**तत्रेदानीं समेष्यामः पुनः सार्धं त्वयानघ ॥ ४९ ॥**

अथवा श्रीकृष्ण ! अब हमलोग स्वर्गमें ही मिलेंगे, यह निश्चित है । अनघ ! वहाँ आजकी ही भाँति पुनः आपसे हमारी भेंट होगी ॥ ४९ ॥

*संजय उवाच*

**इत्युक्त्वा माधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम् ।**
**विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥ ५० ॥**

**संजय कहते हैं**—ऐसा कहकर कर्ण भगवान् श्रीकृष्णका प्रगाढ़ आलिङ्गन करके उनसे विदा ले रथके पिछले भागसे उतर गया ॥ ५० ॥

**ततः स्वरथमास्थाय जाम्बूनदविभूषितम् ।**
**सहास्माभिर्निववृते राधेयो दीनमानसः ॥ ५१ ॥**

तदनन्तर अपने सुवर्णभूषित रथपर आरूढ़ हो राधानन्दन कर्ण दीनचित्त होकर हमलोगोंके साथ लौट आया ॥

**ततः शीघ्रतरं प्रायात् केशवः सहसात्यकिः ।**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पुनरुच्चारयन् वाणीं याहि याहीति सारथिम् ॥ ५२॥

तदनन्तर सात्यकिसहित श्रीकृष्ण सारथिसे बार-बार 'चलो-चलो' ऐसा कहते हुए अत्यन्त तीव्र गतिसे उपप्लव्य नगरकी ओर चल दिये ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे कृष्णकर्णसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कर्णके द्वारा अपने अभिप्राय निवेदनके प्रसङ्गमें भगवद्वाक्यविषयक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥

## चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### विदुरकी बात सुनकर युद्धके भावी दुष्परिणामसे व्यथित हुई कुन्तीका बहुत सोच-विचारके बाद कर्णके पास जाना

*वैशम्पायन उवाच*

**असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवान् गते ।**
**अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाब्रवीत्॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! जब श्रीकृष्णका अनुनय असफल हो गया और वे कौरवोंके यहाँसे पाण्डवोंके पास चले गये, तब विदुरजी कुन्तीके पास जाकर शोकमग्न-से हो धीरे-धीरे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

**जानासि मे जीवपुत्रि भावं नित्यमविग्रहे ।**
**क्रोशतो न च गृह्णीते वचनं मे सुयोधनः ॥ २ ॥**

'चिरंजीवी पुत्रोंको जन्म देनेवाली देवि ! तुम तो जानती ही हो कि मेरी इच्छा सदासे यही रही है कि कौरवों और पाण्डवोंमें युद्ध न हो । इसके लिये मैं पुकार-पुकारकर कहता रह गया; परंतु दुर्योधन मेरी बात मानता ही नहीं है॥

**उपपन्नो ह्यसौ राजा चेदिपाञ्चालकेकयैः ।**
**भीमार्जुनाभ्यां कृष्णेन युयुधानयमैरपि ॥ ३ ॥**

'राजा युधिष्ठिर चेदि, पाञ्चाल तथा केकयदेशके वीर सैनिकगण, भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा नकुल-सहदेव आदि श्रेष्ठ सहायकोंसे सम्पन्न हैं ॥ ३ ॥

**उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्ममेव युधिष्ठिरः ।**
**काङ्क्षते ज्ञातिसौहार्दाद् बलवान् दुर्बलो यथा ॥ ४ ॥**

'वे युद्धके लिये उद्यत हो उपप्लव्य नगरमें छावनी डालकर बैठे हुए हैं, तथापि भाई-बन्धुओंके सौहार्दवश धर्मकी ही आकाङ्क्षा रखते हैं । बलवान् होकर भी दुर्बलकी भाँति संधि करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

**राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति ।**
**मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते ॥ ५ ॥**

'यह राजा धृतराष्ट्र बूढ़े हो जानेपर भी शान्त नहीं हो रहे हैं । पुत्रोंके मदसे उन्मत्त हो अधर्मके मार्गपर ही चलते हैं ॥

**जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च ।**
**सौबलस्य च दुर्बुद्ध्या मिथो भेदः प्रपत्स्यते॥ ६ ॥**

'जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन तथा शकुनिकी खोटी बुद्धिसे कौरव-पाण्डवोंमें परस्पर फूट होकर ही रहेगी ॥ ६ ॥

**अधर्मेण हि धर्मिष्ठं कृतं वै कार्यमीदृशम् ।**
**येषां तेषामयं धर्मः सानुबन्धो भविष्यति ॥ ७ ॥**

'(कौरवोंने चौदहवें वर्षमें पाण्डवोंको राज्य लौटा देनेकी प्रतिज्ञा करके भी उसका पालन नहीं किया ।) जिन्हें ऐसा अधर्मजनित कार्य भी, जो परस्पर बिगाड़ करनेवाला है, धर्मसंगत प्रतीत होता है; उनका यह विकृत धर्म सफल होकर ही रहेगा ( अधर्मका फल है दुःख और विनाश । वह उन्हें प्राप्त होगा ही ) ॥ ७ ॥

**क्रियमाणे बलाद् धर्मे कुरुभिः को न संज्वरेत् ।**
**असाम्ना केशवे याते समुद्योक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ८ ॥**

'कौरवोंके द्वारा धर्म मानकर किये जानेवाले इस बलात्कारसे किसको चिन्ता नहीं होगी । भगवान् श्रीकृष्ण संधिके प्रयत्नमें असफल होकर गये हैं; अतः पाण्डव भी अब युद्धके लिये महान् उद्योग करेंगे ॥ ८ ॥

**ततः कुरूणामनयो भविता वीरनाशनः ।**
**चिन्तयन् न लभे निद्रामहःसु च निशासु च॥ ९ ॥**

'इस प्रकार यह कौरवोंका अन्याय समस्त वीरोंका विनाश करनेवाला होगा । इन सब बातोंको सोचते हुए मुझे न तो दिनमें नींद आती है और न रातमें ही' ॥ ९ ॥

**श्रुत्वा तु कुन्ती तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम् ।**
**सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता मनसा विममर्श ह ॥ १० ॥**

विदुरजीने उभय पक्षके हितकी इच्छासे ही यह बात कही थी । इसे सुनकर कुन्ती दुःखसे आतुर हो उठी और लम्बी साँस खींचती हुई मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगी—॥ १० ॥

**धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महान् ज्ञातिवधः कृतः ।**
**वर्त्स्यते सुहृदां चैव युद्धेऽस्मिन् वै पराभवः ॥११॥**

'अहो ! इस धनको धिक्कार है, जिसके लिये परस्पर बन्धु-बान्धवोंका यह महान् संहार किया जानेवाला है । इस युद्धमें अपने सगे-सम्बन्धियोंका भी पराभव होगा ही ॥ ११ ॥

**पाण्डवाश्चेदिपञ्चाला यादवाश्च समागताः ।**
**भारतैः सह योत्स्यन्ति किं नु दुःखमतः परम्॥ १२॥**



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'पाण्डव, चेदि, पाञ्चाल और यादव एकत्र होकर भरतवंशियोंके साथ युद्ध करेंगे, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ? ॥ १२ ॥

**पश्ये दोषं ध्रुवं युद्धे तथायुद्धे पराभवम् ।**
**अधनस्य मृतं श्रेयो न हि ज्ञातिक्षयो जयः ॥ १३ ॥**

'युद्धमें निश्चय ही मुझे बड़ा भारी दोष दिखायी देता है; परंतु युद्ध न होनेपर भी पाण्डवोंका पराभव स्पष्ट है। निर्धन होकर मृत्युको वरण कर लेना अच्छा है; परंतु बन्धु-बान्धवोंका विनाश करके विजय पाना कदापि अच्छा नहीं है ॥ १३ ॥

**इति मे चिन्तयन्त्या वै हृदि दुःखं प्रवर्तते ।**
**पितामहः शान्तनव आचार्यश्च युधां पतिः ॥ १४ ॥**
**कर्णश्च धार्तराष्ट्रार्थे वर्धयन्ति भयं मम ।**

'यह सब सोचकर मेरे हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा है। शान्तनुनन्दन पितामह भीष्म, योद्धाओंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण तथा कर्ण भी दुर्योधनके लिये ही युद्ध-भूमिमें उतरेंगे; अतः ये मेरे भयकी ही वृद्धि कर रहे हैं ॥ १४½ ॥

**नाचार्यः कामवान् शिष्यैर्द्रोणो युद्ध्येत जातुचित् ॥ १५ ॥**
**पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः ।**

'आचार्य द्रोण तो सदा हमारे हितकी इच्छा रखनेवाले हैं। वे अपने शिष्योंके साथ कभी युद्ध नहीं कर सकते। इसी प्रकार पितामह भीष्म भी पाण्डवोंके प्रति हार्दिक स्नेह कैसे नहीं रक्खेंगे ? ॥ १५½ ॥

**अयं त्वेको वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ १६ ॥**
**मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान् ।**

'परंतु यह एक मात्र मिथ्यादर्शी कर्ण मोहवश सदा दुर्बुद्धि दुर्योधनका ही अनुसरण करनेवाला है। इसीलिये यह पापात्मा सर्वदा पाण्डवोंसे द्वेष ही रखता है ॥ १६½ ॥

**महत्यनर्थे निर्बन्धी बलवांश्च विशेषतः ॥ १७ ॥**
**कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति सम्प्रति ।**
**आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान् प्रति ॥ १८ ॥**
**प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम् ।**

'इसने सदा पाण्डवोंका बड़ा भारी अनर्थ करनेके लिये हठ ठान लिया है। साथ ही कर्ण अत्यन्त बलवान् भी है। यह बात इस समय मेरे हृदयको दग्ध किये देती है। अच्छा, आज मैं कर्णके मनको पाण्डवोंके प्रति प्रसन्न करनेके लिये उसके पास जाऊँगी और यथार्थ सम्बन्धका परिचय देती हुई उससे बातचीत करूँगी ॥ १७-१८½ ॥

**तोषितो भगवान् यत्र दुर्वासा मे वरं ददौ ॥ १९ ॥**
**आह्वानं मन्त्रसंयुक्तं वसन्त्याः पितृवेश्मनि ।**
**साहमन्तःपुरे राज्ञः कुन्तिभोजपुरस्कृता ॥ २० ॥**
**चिन्तयन्ती बहुविधं हृदयेन विदूयता ।**
**बलाबलं च मन्त्राणां ब्राह्मणस्य च वाग्बलम् ॥ २१ ॥**

'जब मैं पिताके घर रहती थी, उन्हीं दिनों अपनी सेवाओंद्वारा मैंने भगवान् दुर्वासाको संतुष्ट किया और उन्होंने मुझे यह वर दिया कि मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहन करनेपर मैं किसी भी देवताको अपने पास बुला सकती हूँ। मेरे पिता कुन्तिभोज मेरा बड़ा आदर करते थे। मैं राजाके अन्तःपुरमें रहकर व्यथित हृदयसे मन्त्रोंके बलाबल और ब्राह्मणकी वाक्शक्तिके विषयमें अनेक प्रकारका विचार करने लगी ॥ १९-२१ ॥

**स्त्रीभावाद् बालभावाच्च चिन्तयन्ती पुनः पुनः ।**
**धात्र्या विस्रब्धया गुप्ता सखीजनवृता तदा ॥ २२ ॥**

'स्त्री-स्वभाव और बाल्यावस्थाके कारण मैं बार-बार इस प्रश्नको लेकर चिन्तामग्न रहने लगी। उन दिनों एक विश्वस्त धाय मेरी रक्षा करती थी और सखियाँ मुझे सदा घेरे रहती थीं ॥ २२ ॥

**दोषं परिहरन्ती च पितुश्चारित्र्यरक्षिणी ।**
**कथं नु सुकृतं मे स्यान्नापराधवती कथम् ॥ २३ ॥**
**भवेयमिति संचिन्त्य ब्राह्मणं तं नमस्य च ।**
**कौतूहलात् तु तं लब्ध्वा बालिश्यादाचरं तदा ।**
**कन्या सती देवमर्कमासादयमहं ततः ॥ २४ ॥**

'मैं अपने ऊपर आनेवाले सब प्रकारके दोषोंका निवारण करती हुई पिताकी दृष्टिमें अपने सदाचारकी रक्षा करती रहती थी। मैंने सोचा, क्या करूँ, जिससे मुझे पुण्य हो और मैं अपराधिनी न होऊँ। यह सोचकर मैंने मन-ही-मन उन ब्राह्मण देवताको नमस्कार किया और उस मन्त्रको पाकर कौतूहल तथा अविवेकके कारण मैंने उसका प्रयोग आरम्भ कर दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि कन्यावस्थामें ही मुझे भगवान् सूर्यदेवका संयोग प्राप्त हुआ ॥ २३-२४ ॥

**योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत् परिरक्षितः ।**
**कस्मान्न कुर्याद् वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा ॥ २५ ॥**

'जो मेरा कानीन गर्भ है, इसे मैंने पुत्रकी भाँति अपने उदरमें पाला है। वह कर्ण अपने भाइयोंके हितके लिये कही हुई मेरी लाभदायक बात क्यों नहीं मानेगा ?' ॥ २५ ॥

**इति कुन्ती विनिश्चित्य कार्यनिश्चयमुत्तमम् ।**
**कार्यार्थमभिनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति ॥ २६ ॥**

इस प्रकार उत्तम कर्तव्यका निश्चय करके अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धिके लिये एक निर्णयपर पहुँचकर कुन्ती भागीरथी गङ्गाके तटपर गयी ॥ २६ ॥

**आत्मजस्य ततस्तस्य घृणिनः सत्यसङ्गिनः ।**
**गङ्गातीरे पृथाश्रौषीद् वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥ २७ ॥**

वहाँ गङ्गाके किनारे पहुँचकर कुन्तीने अपने दयालु और सत्यपरायण पुत्र कर्णके मुखसे वेदपाठकी गम्भीर ध्वनि सुनी।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**प्राङ्मुखस्योर्ध्वबाहोः सा पर्यतिष्ठत पृष्ठतः ।**
**जप्यावसानं कार्यार्थं प्रतीक्षन्ती तपस्विनी ॥ २८ ॥**

वह अपनी दोनों बाँहें ऊपर उठाकर पूर्वाभिमुख हो जप कर रहा था और तपस्विनी कुन्ती उसके जपकी समाप्तिकी प्रतीक्षा करती हुई कार्यवश उसके पीछेकी ओर खड़ी रही ॥ २८ ॥

**अतिष्ठत् सूर्यतापार्ता कर्णस्योत्तरवाससि ।**
**कौरव्यपत्नी वार्ष्णेयी पद्ममालेव शुष्यती ॥ २९ ॥**

वृष्णिकुलनन्दिनी पाण्डुपत्नी कुन्ती वहाँ सूर्यदेवके तापसे पीड़ित हो कुम्हलाती हुई कमलमालाके समान कर्णके उत्तरीय वस्त्रकी छायामें खड़ी हो गयी ॥ २९ ॥

**आपृष्ठतापाज्जप्त्वा स परिवृत्य यतव्रतः ।**
**दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ३० ॥**

जबतक सूर्यदेव पीठकी ओर ताप न देने लगे (जबतक वे पूर्वसे पश्चिमकी ओर चले नहीं गये); तबतक जप करके नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाला कर्ण जब पीछेकी ओर घूमा, तब कुन्तीको सामने पाकर उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनके पास खड़ा हो गया ॥ ३० ॥

**यथान्यायं महातेजा मानी धर्मभृतां वरः ।**
**उत्स्मयन् प्रणतः प्राह कुन्तीं वैकर्तनो वृषः ॥ ३१ ॥**

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, अभिमानी और महातेजस्वी सूर्यपुत्र कर्ण जिसका दूसरा नाम वृष भी था, कुन्तीको यथोचित रीतिसे प्रणाम करके मुसकराता हुआ बोला ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्ती और कर्णकी भेंटविषयक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१४४॥

# पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## कुन्तीका कर्णको अपना प्रथम पुत्र बताकर उससे पाण्डवपक्षमें मिल जानेका अनुरोध

*कर्ण उवाच*

**राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये ।**
**प्राप्ता किमर्थं भवती ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥**

**कर्ण बोला**—देवि ! मैं राधा तथा अधिरथका पुत्र कर्ण हूँ और आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ । आपने किस लिये यहाँतक आनेका कष्ट किया है ? बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ १ ॥

*कुन्त्युवाच*

**कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता ।**
**नासि सूतकुले जातः कर्ण तद् विद्धि मे वचः ॥ २ ॥**

**कुन्तीने कहा**—कर्ण ! तुम राधाके नहीं, कुन्तीके पुत्र हो । तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं हैं और तुम सूतकुलमें नहीं उत्पन्न हुए हो । मेरी इस बातको ठीक मानो ॥ २ ॥

**कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः ।**
**कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥ ३ ॥**

तुम कन्यावस्थामें मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए प्रथम पुत्र हो । महाराज कुन्तिभोजके घरमें रहते समय मैंने तुम्हें गर्भमें धारण किया था; अतः बेटा ! तुम पार्थ हो ॥ ३ ॥

**प्रकाशकर्मा तपनो योऽयं देवो विरोचनः ।**
**अजीजनत् त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४ ॥**

कर्ण ! ये जो जगत्‌में प्रकाश और उष्णता प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्यदेव हैं, इन्होंने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तुम-जैसे वीर पुत्रको मेरे गर्भसे उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥

**कुण्डली बद्धकवचो देवगर्भः श्रिया वृतः ।**
**जातस्त्वमसि दुर्धर्ष मया पुत्र पितुर्गृहे ॥ ५ ॥**

दुर्धर्ष पुत्र ! मैंने पिताके घरमें तुम्हें जन्म दिया था । तुम जन्मकालसे ही कुण्डल और कवच धारण किये देव-बालकके समान शोभासम्पन्न रहे हो ॥ ५ ॥

**स त्वं भ्रातॄनसम्बुद्ध्य मोहाद् यदुपसेवसे ।**
**धार्तराष्ट्रान् न तद् युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥ ६ ॥**

बेटा ! तुम जो अपने भाइयोंसे अपरिचित रहकर मोहवश धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेवा कर रहे हो, वह तुम्हारे लिये कदापि योग्य नहीं है ॥ ६ ॥

**एतद् धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये ।**
**यत् तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाप्येकदर्शिनी ॥ ७ ॥**

बेटा ! धर्मशास्त्रमें मनुष्योंके लिये यही धर्मका उत्तम फल बताया गया है कि उनके पिता आदि गुरुजन तथा एकमात्र पुत्रपर ही दृष्टि रखनेवाली माता उनसे संतुष्ट रहें ॥७॥

**अर्जुनेनार्जितां पूर्वं हृतां लोभादसाधुभिः ।**
**आच्छिद्य धार्तराष्ट्रेभ्यो भुङ्क्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥८॥**

अर्जुनने पूर्वकालमें जिसका उपार्जन किया था और दुष्टोंने लोभवश जिसे हर लिया है, युधिष्ठिरकी उस राज्य-लक्ष्मीको तुम धृतराष्ट्रपुत्रोंसे छीनकर भाइयोंसहित उसका उपभोग करो ॥ ८ ॥

**अद्य पश्यन्तु कुरवः कर्णार्जुनसमागमम् ।**
**सौभ्रात्रेण समालक्ष्य संनमन्तामसाधवः ॥ ९ ॥**

आज उत्तम बन्धुजनोचित स्नेहके साथ कर्ण और अर्जुनका मिलन कौरवलोग देखें और इसे देखकर दुष्टलोग नतमस्तक हों ॥ ९ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कर्णार्जुनौ वै भवेतां यथा रामजनार्दनौ ।
असाध्यं किं नु लोके स्याद् युवयोः संहितात्मनोः ॥ १० ॥

कर्ण और अर्जुन दोनों मिलकर वैसे ही बलशाली हैं जैसे बलराम और श्रीकृष्ण । बेटा ! तुम दोनों हृदयसे संगठित हो जाओ तो इस जगत्में तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य असाध्य होगा ? ॥ १० ॥

कर्ण शोभिष्यसे नूनं पञ्चभिर्भ्रातृभिर्वृतः ।
देवैः परिवृतो ब्रह्मा वेद्यामिव महाध्वरे ॥ ११ ॥

कर्ण ! जिस प्रकार महान् यज्ञकी वेदीपर देवगणोंसे घिरे हुए ब्रह्माजी सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार अपने पाँचों भाइयोंसे घिरे हुए तुम भी शोभा पाओगे ॥ ११ ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैर्ज्येष्ठः श्रेष्ठेषु बन्धुषु ।
सूतपुत्रेति मा शब्दः पार्थस्त्वमसि वीर्यवान् ॥ १२ ॥

अपने श्रेष्ठ स्वभाववाले बन्धुओंके बीचमें तुम सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठ भ्राता परम पराक्रमी कुन्तीपुत्र कर्ण हो। तुम्हारे लिये सूतपुत्र शब्दका प्रयोग नहीं होना चाहिये॥१२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्ती और कर्णकी भेंटके प्रसङ्गमें एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१४५॥

# षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## कर्णका कुन्तीको उत्तर तथा अर्जुनको छोड़कर शेष चारों पाण्डवोंको न मारनेकी प्रतिज्ञा

*वैशम्पायन उवाच*

ततः सूर्यान्निश्चरितां कर्णः शुश्राव भारतीम् ।
दुरत्ययां प्रणयिनीं पितृवद् भास्करेरिताम् ॥ १ ॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर सूर्यमण्डलसे एक वाणी प्रकट हुई, जो सूर्यदेवकी ही कही हुई थी । उसमें पिताके समान स्नेह भरा हुआ था और वह दुर्लङ्घ्य प्रतीत होती थी । कर्णने उसे सुना ॥ १ ॥

सत्यमाह पृथा वाक्यं कर्ण मातृवचः कुरु ।
श्रेयस्ते स्यान्नरव्याघ्र सर्वमाचरतस्तथा ॥ २ ॥

( वह वाणी इस प्रकार थी– ) 'नरश्रेष्ठ कर्ण ! कुन्ती सत्य कहती है । तुम माताकी आज्ञाका पालन करो । उसका पूर्णरूपसे पालन करनेपर तुम्हारा कल्याण होगा' ॥ २ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

एवमुक्तस्य मात्रा च स्वयं पित्रा च भानुना ।
चचाल नैव कर्णस्य मतिः सत्यधृतेस्तदा ॥ ३ ॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! माता कुन्ती और पिता साक्षात् सूर्यदेवके ऐसा कहनेपर भी उस समय सच्चे धैर्यवाले कर्णकी बुद्धि विचलित नहीं हुई ॥ ३ ॥

*कर्ण उवाच*

न चैतच्छ्रद्दधे वाक्यं क्षत्रिये भाषितं त्वया ।
धर्मद्वारं ममैतत् स्यान्नियोगकरणं तव ॥ ४ ॥

**कर्ण बोला**—राजपुत्रि ! तुमने जो कुछ कहा है, उसपर मेरी श्रद्धा नहीं होती । तुम्हारी इस आज्ञाका पालन करना मेरे लिये धर्मका द्वार है, इसपर भी मैं विश्वास नहीं करता ॥ ४ ॥

अकरोन्मयि यत् पापं भवती सुमहात्ययम् ।
अपाकीर्णोऽस्मि यन्मातस्तद् यशःकीर्तिनाशनम् ॥५॥

तुमने मेरे प्रति जो अत्याचार किया है, वह महान् कष्टदायक है । माता ! तुमने जो मुझे पानीमें फेंक दिया, वह मेरे लिये यश और कीर्तिका नाशक बन गया ॥ ५ ॥

अहं चेत् क्षत्रियो जातो न प्राप्तः क्षत्रसत्क्रियाम् ।
त्वत्कृते किं नु पापीयः शत्रुः कुर्यान्ममाहितम् ॥ ६ ॥

यद्यपि मैं क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ था तो भी तुम्हारे कारण क्षत्रियोचित संस्कारसे वञ्चित रह गया । कोई शत्रु भी मेरा इससे बढ़कर कष्टदायक एवं अहितकारक कार्य और क्या कर सकता है ? ॥ ६ ॥

क्रियाकाले त्वनुक्रोशमकृत्वा त्वमिमं मम ।
हीनसंस्कारसमयमद्य मां समचूचुदः ॥ ७ ॥

जब मेरे लिये कुछ करनेका अवसर था, उस समय तो तुमने यह दया नहीं दिखायी और आज जब मेरे संस्कारका समय बीत गया है, ऐसे समयमें तुम मुझे क्षात्रधर्मकी ओर प्रेरित करने चली हो ॥ ७ ॥

न वै मम हितं पूर्वं मातृवच्चेष्टितं त्वया ।
सा मां सम्बोधयस्यद्य केवलात्महितैषिणी ॥ ८ ॥

पूर्वकालमें तुमने माताके समान मेरे हितकी चेष्टा कभी नहीं की और आज केवल अपने हितकी कामना रखकर मुझे मेरे कर्तव्यका उपदेश दे रही हो ॥ ८ ॥

कृष्णेन सहितात् को वै न व्यथेत धनंजयात् ।
कोऽद्य भीतं न मां विद्यात् पार्थानां समितिं गतम् ॥

श्रीकृष्णके साथ मिले हुए अर्जुनसे आज कौन वीर भय मानकर पीड़ित नहीं होता ? यदि इस समय मैं पाण्डवोंकी सभामें सम्मिलित हो जाऊँ तो मुझे कौन भयभीत नहीं समझेगा ? ॥ ९ ॥

अभ्राता विदितः पूर्वं युद्धकाले प्रकाशितः ।
पाण्डवान् यदि गच्छामि किं मां क्षत्रं वदिष्यति ॥

आजसे पहले मुझे कोई नहीं जानता था कि मैं पाण्डवों

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

का भाई हूँ । युद्धके समय मेरा यह सम्बन्ध प्रकाशमें आया है । इस समय यदि पाण्डवोंसे मिल जाऊँ तो क्षत्रियसमाज मुझे क्या कहेगा ? ॥ १० ॥

**सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च यथासुखम् ।**
**अहं वै धार्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ॥ ११ ॥**

धृतराष्ट्रके पुत्रोंने मुझे सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ दी हैं और मुझे सुखपूर्वक रखते हुए सदा मेरा सम्मान किया है । उनके उस उपकारको मैं निष्फल कैसे कर सकता हूँ ? ॥ ११ ॥

**उपनह्य परैर्वैरं ये मां नित्यमुपासते ।**
**नमस्कुर्वन्ति च सदा वसवो वासवं यथा ॥ १२ ॥**
**मम प्राणेन ये शत्रूञ्शक्ताः प्रतिसमासितुम् ।**
**मन्यन्ते ते कथं तेषामहं छिन्द्यां मनोरथम् ॥ १३ ॥**

शत्रुओंसे वैर बाँधकर जो नित्य मेरी उपासना करते हैं तथा जैसे वसुगण इन्द्रको प्रणाम करते हैं, उसी प्रकार जो सदा मुझे मस्तक झुकाते हैं, मेरी ही प्राणशक्तिके भरोसे जो शत्रुओंके सामने डटकर खड़े होनेका साहस करते हैं और इसी आशासे जो मेरा आदर करते हैं, उनके मनोरथको मैं छिन्न-भिन्न कैसे करूँ ? ॥ १२-१३ ॥

**मया प्लवेन संग्रामं तितीर्षन्ति दुरत्ययम् ।**
**अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ॥ १४ ॥**

जो मुझको ही नौका बनाकर उसके सहारे दुर्लङ्घ्य समरसागरको पार करना चाहते हैं और मेरे ही भरोसे अपार संकटसे पार होनेकी इच्छा रखते हैं, उन्हें इस संकट-के समयमें कैसे त्याग दूँ ? ॥ १४ ॥

**अयं हि कालः सम्प्राप्तो धार्तराष्ट्रोपजीविनाम् ।**
**निर्वेष्टव्यं मया तत्र प्राणानपरिरक्षता ॥ १५ ॥**

दुर्योधनके आश्रित रहकर जीवन-निर्वाह करनेवालोंके लिये यही उपकारका बदला चुकानेके योग्य अवसर आया है । इस समय मुझे अपने प्राणोंकी रक्षा न करते हुए उनके ऋणसे उऋण होना है ॥ १५ ॥

**कृतार्थाः सुभृता ये हि कृत्यकाले ह्युपस्थिते ।**
**अनवेक्ष्य कृतं पापा विकुर्वन्त्यनवस्थिताः ॥ १६ ॥**
**राजकिल्बिषिणां तेषां भर्तृपिण्डापहारिणाम् ।**
**नैवायं न परो लोको विद्यते पापकर्मणाम् ॥ १७ ॥**

जो किसीके द्वारा अच्छी तरह पालित-पोषित होकर कृतार्थ होते हैं; परंतु उस उपकारका बदला चुकाने योग्य समय आनेपर जो अस्थिरचित्त पापात्मा पुरुष पूर्वकृत उपकारोंको न देखकर बदल जाते हैं, वे स्वामीके अन्नका अपहरण करनेवाले तथा उपकारी राजाके प्रति अपराधी हैं । उन पापाचारी कृतघ्नोंके लिये न तो यह लोक सुखद होता है न परलोक ही ॥ १६-१७ ॥

**धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामर्थे योत्स्यामि ते सुतैः ।**
**बलं च शक्तिं चास्थाय न वै त्वय्यनृतं वदे ॥ १८ ॥**

मैं तुमसे झूठ नहीं बोलता । धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये मैं अपनी शक्ति और बलके अनुसार तुम्हारे पुत्रोंके साथ युद्ध अवश्य करूँगा ॥ १८ ॥

**आनृशंस्यमथो वृत्तं रक्षन् सत्पुरुषोचितम् ।**
**अतोऽर्थकरमप्येतन्न करोम्यद्य ते वचः ॥ १९ ॥**

परंतु उस दशामें भी दयालुता तथा सज्जनोचित सदाचार-की रक्षा करता रहूँगा । इसीलिये लाभदायक होते हुए भी तुम्हारे इस आदेशको आज मैं नहीं मानूँगा ॥ १९ ॥

**न च तेऽयं समारम्भो मयि मोघो भविष्यति ।**
**वध्यान् विषह्यान् संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान् ॥**
**युधिष्ठिरं च भीमं च यमौ चैवार्जुनादृते ।**
**अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले ॥ २१ ॥**

परंतु मेरे पास आनेका जो कष्ट तुमने उठाया है, वह भी व्यर्थ नहीं होगा । संग्राममें तुम्हारे चार पुत्रोंको काबूके अंदर तथा वधके योग्य अवस्थामें पाकर भी मैं नहीं मारूँगा । वे चार हैं, अर्जुनको छोड़कर युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव । युधिष्ठिरकी सेनामें अर्जुनके साथ ही मेरा युद्ध होगा ॥ २०-२१ ॥

**अर्जुनं हि निहत्याजौ सम्प्राप्तं स्यात् फलं मया ।**
**यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना ॥ २२ ॥**

अर्जुनको युद्धमें मार देनेपर मुझे संग्रामका फल प्राप्त हो जायगा अथवा स्वयं ही सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारा जाकर मैं यशका भागी बनूँगा ॥ २२ ॥

**न ते जातु न शिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनि ।**
**निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ॥ २३ ॥**

यशस्विनि ! किसी भी दशामें तुम्हारे पाँच पुत्र अवश्य शेष रहेंगे । यदि अर्जुन मारे गये तो कर्णसहित और यदि मैं मारा गया तो अर्जुनसहित तुम्हारे पाँच पुत्र रहेंगे ॥२३॥

**इति कर्णवचः श्रुत्वा कुन्ती दुःखात् प्रवेपती ।**
**उवाच पुत्रमाश्लिष्य कर्णं धैर्यादकम्पनम् ॥ २४ ॥**

कर्णकी यह बात सुनकर कुन्ती धैर्यसे विचलित न होने-वाले अपने पुत्र कर्णको हृदयसे लगाकर दुःखसे काँपती हुई बोली—॥ २४ ॥

**एवं वै भाव्यमेतेन क्षयं यास्यन्ति कौरवाः ।**
**यथा त्वं भाषसे कर्ण दैवं तु बलवत्तरम् ॥ २५ ॥**

'कर्ण ! दैव बड़ा बलवान् है । तुम जैसा कहते हो वैसा ही हो । इस युद्धके द्वारा कौरवोंका संहार होगा ॥ २५ ॥

**त्वया चतुर्णां भ्रातृणामभयं शत्रुकर्शन ।**
**दत्तं तत् प्रतिजानीहि संगरप्रतिमोचनम् ॥ २६ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'शत्रुसूदन ! तुमने अपने चार भाइयोंको अभयदान दिया है । युद्धमें उन्हें छोड़ देनेकी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहना ॥

**अनामयं स्वस्ति चेति पृथाथो कर्णमब्रवीत् ।**
**तां कर्णोऽथ तथेत्युक्त्वा ततस्तौ जग्मतुः पृथक् ॥**

'तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट न हो।' इस प्रकार जब कुन्तीने कर्णसे कहा, तब कर्णने भी 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली । फिर वे दोनों पृथक्-पृथक् अपने स्थानको चले गये ॥ २७ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्ती और कर्णकी भेंटविषयक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४६ ॥

# सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## युधिष्ठिरके पूछनेपर श्रीकृष्णका कौरवसभामें व्यक्त किये हुए भीष्मजीके वचन सुनाना

वैशम्पायन उवाच

**आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिंदमः ।**
**पाण्डवानां यथावृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान् ॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने हस्तिनापुरसे उपप्लव्यमें आकर पाण्डवोंसे वहाँका सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया ॥

**सम्भाष्य सुचिरं कालं मन्त्रयित्वा पुनः पुनः ।**
**स्वमेव भवनं शौरिर्विश्रामार्थं जगाम ह ॥ २ ॥**

दीर्घकालतक बातचीत करके बारंबार गुप्त मन्त्रणा करनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण विश्रामके लिये अपने वासस्थानको गये ॥ २ ॥

**विसृज्य सर्वान् नृपतीन् विराटप्रमुखांस्तदा ।**
**पाण्डवा भ्रातरः पञ्च भानावस्तं गते सति ॥ ३ ॥**
**संध्यामुपास्य ध्यायन्तस्तमेव गतमानसाः ।**
**आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मन्त्रममन्त्रयन् ॥ ४ ॥**

तदनन्तर सूर्यास्त होनेपर पाँचों भाई पाण्डव विराट आदि सब राजाओंको विदा करके संध्योपासना करनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णमें ही मन लगाकर कुछ कालतक उन्हींका ध्यान करते रहे । फिर दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्णको बुलाकर वे उनके साथ गुप्त मन्त्रणा करने लगे ॥ ३-४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

**त्वया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।**
**किमुक्तः पुण्डरीकाक्ष तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ५ ॥**

**युधिष्ठिर बोले**—कमलनयन ! आपने हस्तिनापुर जाकर कौरवसभामें धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे क्या कहा, यह हमें बतानेकी कृपा करें ॥ ५ ॥

वासुदेव उवाच

**मया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।**
**तथ्यं पथ्यं हितं चोक्तो न च गृह्णाति दुर्मतिः ॥ ६ ॥**

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा**—राजन् ! मैंने हस्तिनापुर जाकर कौरवसभामें धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे यथार्थ लाभदायक और हितकर बात कही थी; परंतु वह दुर्बुद्धि उसे स्वीकार ही नहीं करता था ॥ ६ ॥
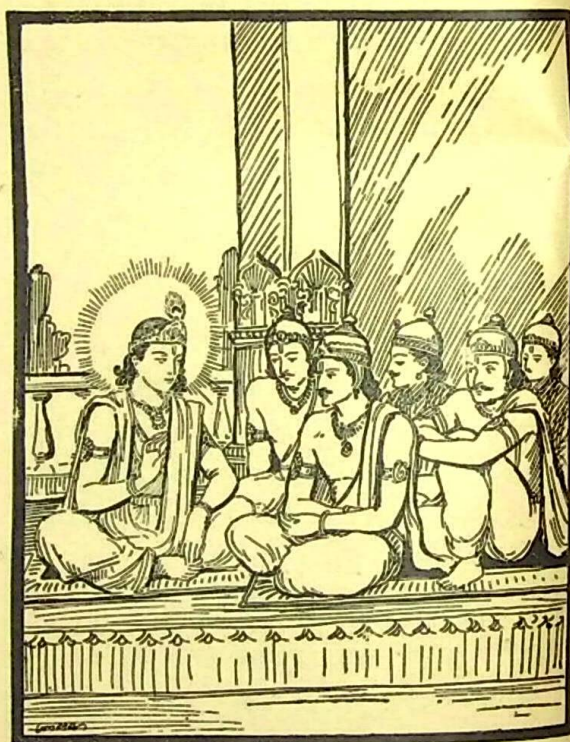
युधिष्ठिर उवाच

**तस्मिन्नुत्पथमापन्ने कुरुवृद्धः पितामहः ।**
**किमुक्तवान् हृषीकेश दुर्योधनममर्षणम् ॥ ७ ॥**

**युधिष्ठिरने पूछा**—हृषीकेश ! दुर्योधनके कुमार्गका आश्रय लेनेपर कुरुकुलके वृद्ध पुरुष पितामह भीष्मने ईर्ष्या और अमर्षमें भरे हुए दुर्योधनसे क्या कहा ? ॥ ७ ॥

**आचार्यो वा महाभाग भारद्वाजः किमब्रवीत् ।**
**पिता वा धृतराष्ट्रस्तं गान्धारी वा किमब्रवीत् ॥ ८ ॥**

महाभाग ! भरद्वाजनन्दन आचार्य द्रोणने उस समय

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

क्या कहा ? पिता धृतराष्ट्र और माता गान्धारीने भी दुर्योधन-से उस समय क्या बात कही ? ॥ ८ ॥

**पिता यवीयानस्माकं क्षत्ता धर्मविदां वरः।**
**पुत्रशोकाभिसंतप्तः किमाह धृतराष्ट्रजम् ॥ ९ ॥**

हमारे छोटे चाचा धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ विदुरने भी, जो हम पुत्रोंके शोकसे सदा संतप्त रहते हैं, दुर्योधनसे क्या कहा ? ९

**किं च सर्वे नृपतयः सभायां ये समासते।**
**उक्तवन्तो यथातत्त्वं तद् ब्रूहि त्वं जनार्दन ॥ १० ॥**

जनार्दन ! इसके सिवा जो समस्त राजालोग सभामें बैठे थे, उन्होंने अपना विचार किस रूपमें प्रकट किया ? आप इन सब बातोंको ठीक-ठीक बताइये ॥ १०॥

**उक्तवान् हि भवान् सर्वं वचनं कुरुमुख्ययोः।**
**धार्तराष्ट्रस्य तेषां हि वचनं कुरुसंसदि ॥ ११ ॥**
**कामलोभाभिभूतस्य मन्दस्य प्राज्ञमानिनः।**
**अप्रियं हृदये मह्यं तन्न तिष्ठति केशव ॥ १२ ॥**

कृष्ण ! आपने कौरवसभामें निश्चय ही कुरुश्रेष्ठ भीष्म और धृतराष्ट्रके समीप सब बातें कह दी थीं। परंतु आप-की और उनकी उन सब बातोंको मेरे लिये हितकर होनेके कारण अपने लिये अप्रिय मानकर सम्भवतः काम और लोभसे अभिभूत मूर्ख एवं पण्डितमानी दुर्योधन अपने हृदयमें स्थान नहीं देता ॥ ११-१२ ॥

**तेषां वाक्यानि गोविन्द श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो।**
**यथा च नाभिपद्येत कालस्तात तथा कुरु।**
**भवान् हि नो गतिः कृष्ण भवान् नाथो भवान् गुरुः ॥**

गोविन्द ! मैं उन सबकी कही हुई बातोंको सुनना चाहता हूँ। तात ! ऐसा कीजिये, जिससे हमलोगोंका समय व्यर्थ न बीते। श्रीकृष्ण ! आप ही हमलोगोंके आश्रय, आप ही रक्षक तथा आप ही गुरु हैं ॥ १३ ॥

वासुदेव उवाच

**शृणु राजन् यथा वाक्यमुक्तो राजा सुयोधनः।**
**मध्ये कुरूणां राजेन्द्र सभायां तन्निबोध मे ॥ १४ ॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—राजेन्द्र ! मैंने कौरवसभामें राजा दुर्योधनसे जिस प्रकार बातें की हैं, वह बताता हूँ; सुनिये १४

**मया विश्राविते वाक्ये जहास धृतराष्ट्रजः।**
**अथ भीष्मः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥**

मैंने जब अपनी बात दुर्योधनसे सुनायी, तब वह हँसने लगा। यह देख भीष्मजी अत्यन्त कुपित हो उससे इस प्रकार बोले—॥ १५ ॥

**दुर्योधन निबोधेदं कुलार्थे यद् ब्रवीमि ते।**
**तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल स्वकुलस्य हितं कुरु ॥ १६ ॥**

'दुर्योधन ! मैं अपने कुलके हितके लिये तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। नृपश्रेष्ठ ! उसे सुनकर अपने कुलका हितसाधन करो ॥ १६ ॥

**मम तात पिता राजन् शान्तनुर्लोकविश्रुतः।**
**तस्याहमेक एवासं पुत्रः पुत्रवतां वरः ॥ १७ ॥**

'तात ! मेरे पिता शान्तनु विश्वविख्यात नरेश थे, जो पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ समझे जाते थे। राजन् ! मैं उनका इक-लौता पुत्र था ॥ १७ ॥

**तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना द्वितीयः स्यात् कथं सुतः।**
**एकपुत्रमपुत्रं वै प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १८ ॥**

'अतः उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'मेरे दूसरा पुत्र कैसे हो ? क्योंकि मनीषी पुरुष एक पुत्रवाले-को पुत्रहीन ही बताते हैं ॥ १८ ॥

**न चोच्छेदं कुलं यायाद् विस्तीर्येच्च कथं यशः।**
**तस्याहमीप्सितं बुद्ध्वा कालीं मातरमावहम् ॥ १९ ॥**
**प्रतिज्ञां दुष्करां कृत्वा पितुरर्थे कुलस्य च।**
**अराजा चोर्ध्वरेताश्च यथा सुविदितं तव।**
**प्रतीतो निवसाम्येष प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ २० ॥**

'किस प्रकार इस कुलका उच्छेद न हो और इसके यशका सदा विस्तार होता रहे'—उनकी आन्तरिक इच्छा जानकर मैं कुलकी भलाई और पिताकी प्रसन्नताके लिये राजा न होने और जीवनभर ऊर्ध्वरेता ( नैष्ठिक ब्रह्मचारी ) रहनेकी दुष्कर प्रतिज्ञा करके माता काली ( सत्यवती ) को ले आया। ये सारी बातें तुमको अच्छी तरह ज्ञात हैं। मैं उसी प्रतिज्ञाका पालन करता हुआ सदा प्रसन्नतापूर्वक यहाँ निवास करता हूँ ॥ १९-२० ॥

**तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रीमान् कुरुकुलोद्वहः।**
**विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कनीयान् मम पार्थिव ॥ २१ ॥**

'राजन् ! सत्यवतीके गर्भसे कुरुकुलका भार वहन करने-वाले धर्मात्मा महाबाहु श्रीमान् विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए, जो मेरे छोटे भाई थे ॥ २१ ॥

**स्वर्याते ऽहं पितरि तं स्वराज्ये संन्यवेशयम्।**
**विचित्रवीर्यं राजानं भृत्यो भूत्वा ह्यधश्चरः ॥ २२ ॥**

'पिताके स्वर्गवासी हो जानेपर मैंने अपने राज्यपर राजा विचित्रवीर्यको ही बिठाया और स्वयं उनका सेवक होकर राज्यसिंहासनसे नीचे खड़ा रहा ॥ २२ ॥

**तस्याहं सदृशान् दारान् राजेन्द्र समुपाहरम्।**
**जित्वा पार्थिवसङ्घातमपि ते बहुशः श्रुतम् ॥ २३ ॥**

'राजेन्द्र ! उनके लिये राजाओंके समूहको जीतकर मैंने योग्य पत्नियाँ ला दीं। यह वृत्तान्त भी तुमने बहुत बार सुना होगा ॥ २३ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ततो रामेण समरे द्वन्द्वयुद्धमुपागमम्।
स हि रामभयादेभिर्नागरैर्विप्रवासितः ॥ २४ ॥

'तदनन्तर एक समय मैं परशुरामजीके साथ द्वन्द्वयुद्धके लिये समरभूमिमें उतरा । उन दिनों परशुरामजीके भयसे यहाँके नागरिकोंने राजा विचित्रवीर्यको इस नगरसे दूर हटा दिया था ॥ २४ ॥

दारेष्वप्यतिसक्तश्च यक्ष्माणं समपद्यत ।
यदा त्वराजके राष्ट्रे न ववर्ष सुरेश्वरः ।
तदाभ्यधावन् मामेव प्रजाः क्षुद्भयपीडिताः ॥ २५ ॥

'वे अपनी पत्नियोंमें अधिक आसक्त होनेके कारण राजयक्ष्माके रोगसे पीड़ित हो मृत्युको प्राप्त हो गये । तब बिना राजाके राज्यमें देवराज इन्द्रने वर्षा बंद कर दी, उस दशामें सारी प्रजा क्षुधाके भयसे पीड़ित हो मेरे ही पास दौड़ी आयी ॥'

*प्रजा ऊचुः*

उपक्षीणाः प्रजाः सर्वा राजा भव भवाय नः ।
ईतीः प्रणुद भद्रं ते शान्तनोः कुलवर्धन ॥ २६ ॥

प्रजा बोली--शान्तनुके कुलकी वृद्धि करनेवाले महाराज ! आपका कल्याण हो । राज्यकी सारी प्रजा क्षीण होती चली जा रही है । आप हमारे अभ्युदयके लिये राजा होना स्वीकार करें और अनावृष्टि आदि ईतियोंका भय दूर कर दें ॥ २६ ॥

पीड्यन्ते ते प्रजाः सर्वा व्याधिभिर्भृशदारुणैः ।
अल्पावशिष्टा गाङ्गेय ताः परित्रातुमर्हसि ॥ २७ ॥

गङ्गानन्दन ! आपकी सारी प्रजा अत्यन्त भयंकर रोगोंसे पीडित है। प्रजाओंमेंसे बहुत थोड़े लोग जीवित बचे हैं । अतः आप उन सबकी रक्षा करें ॥ २७ ॥

व्याधीन् प्रणुद वीर त्वं प्रजा धर्मेण पालय ।
त्वयि जीवति मा राष्ट्रं विनाशमुपगच्छतु ॥ २८ ॥

वीर ! आप रोगोंको हटावें और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करें । आपके जीते-जी इस राज्यका विनाश न हो जाय ॥ २८ ॥

*भीष्म उवाच*

प्रजानां क्रोशतीनां वै नैवाक्षुभ्यत मे मनः ।
प्रतिज्ञां रक्षमाणस्य सद् वृत्तं स्मरतस्तथा ॥ २९ ॥

भीष्म कहते हैं—प्रजाओंकी यह करुण पुकार सुनकर भी प्रतिज्ञाकी रक्षा और सदाचारका स्मरण करके मेरा मन क्षुब्ध नहीं हुआ ॥ २९ ॥

ततः पौरा महाराज माता काली च मे शुभा ।
भृत्याः पुरोहिताचार्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।
मामूचुर्भृशसंतप्ता भव राजेति संततम् ॥ ३० ॥
प्रतीपरक्षितं राष्ट्रं त्वां प्राप्य विनशिष्यति ।
स त्वमस्मद्धितार्थं वै राजा भव महामते ॥ ३१ ॥

महाराज ! तदनन्तर मेरी कल्याणमयी माता सत्यवती, पुरवासी, सेवक, पुरोहित, आचार्य और बहुश्रुत ब्राह्मण अत्यन्त संतप्त हो मुझसे बार-बार कहने लगे—'तुम्हीं राजा होओ, नहीं तो महाराज प्रतीपके द्वारा सुरक्षित राष्ट्र तुम्हारे निकट पहुँचकर नष्ट हो जायगा । अतः महामते ! तुम हमारे हितके लिये राजा हो जाओ' ॥ ३०-३१ ॥

इत्युक्तः प्राञ्जलिर्भूत्वा दुःखितो भृशमातुरः ।
तेभ्यो न्यवेदयं तत्र प्रतिज्ञां पितृगौरवात् ॥ ३२ ॥

उनके ऐसा कहनेपर मैं अत्यन्त आतुर और दुखी हो गया और मैंने हाथ जोड़कर उन सबसे पिताके महत्त्वकी ओर दृष्टि रखकर की हुई प्रतिज्ञाके विषयमें निवेदन किया ॥

ऊर्ध्वरेता ह्यराजा च कुलस्यार्थे पुनः पुनः ।
विशेषतस्त्वदर्थं च धुरि मा मां नियोजय ॥ ३३ ॥

फिर माता सत्यवतीसे कहा—'माँ ! मैंने इस कुलकी वृद्धिके लिये और विशेषतः तुम्हें ही यहाँ ले आनेके लिये राजा न होने और नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहनेकी बारंबार प्रतिज्ञा की है । अतः तुम इस राज्यका बोझ सँभालनेके लिये मुझे नियुक्त न करो' ॥ ३३ ॥

ततोऽहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मातरं सम्प्रसादयम् ।
नाम्ब शान्तनुना जातः कौरवं वंशमुद्वहन् ॥ ३४ ॥
प्रतिज्ञां वितथां कुर्यामिति राजन् पुनः पुनः ।
विशेषतस्त्वदर्थं च प्रतिज्ञां कृतवानहम् ॥ ३५ ॥
अहं प्रेष्यश्च दासश्च तवाद्य सुतवत्सले ।

राजन् ! तत्पश्चात् पुनः हाथ जोड़कर माताको प्रसन्न करनेके लिये मैंने विनयपूर्वक कहा—'अम्ब ! मैं राजा शान्तनुसे उत्पन्न होकर कौरववंशकी मर्यादाका वहन करता हूँ । अतः अपनी की हुई प्रतिज्ञाको झूठी नहीं कर सकता ।' यह बात मैंने बार-बार दुहरायी । इसके बाद फिर कहा—'पुत्रवत्सले ! विशेषतः तुम्हारे ही लिये मैंने यह प्रतिज्ञा की थी । मैं तुम्हारा सेवक और दास हूँ ( मुझसे वह प्रतिज्ञा तोड़नेके लिये न कहो )' ॥ ३४-३५½ ॥

एवं तामनुनीयाहं मातरं जनमेव च ॥ ३६ ॥
अयाचं भ्रातृदारेषु तदा व्यासं महामुनिम् ।
सह मात्रा महाराज प्रसाद्य तमृषिं तदा ॥ ३७ ॥
अपत्यार्थं महाराज प्रसादं कृतवांश्च सः ।
त्रीन् स पुत्रानजनयत् तदा भरतसत्तम ॥ ३८ ॥

महाराज ! इस प्रकार माता तथा अन्य लोगोंको अनुनय विनयके द्वारा अनुकूल करके माताके सहित मैंने महामुनि व्यासको प्रसन्न करके भाईकी स्त्रियोंसे पुत्र उत्पन्न करनेके लिये उनसे प्रार्थना की । भरतकुलभूषण ! महर्षिने कृपा की और उन स्त्रियोंसे तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३६-३८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**अन्धः करणहीनत्वान्न वै राजा पिता तव।**
**राजा तु पाण्डुरभवन्महात्मा लोकविश्रुतः ॥ ३९ ॥**

तुम्हारे पिता अंधे थे, अतः नेत्रेन्द्रियसे हीन होनेके कारण राजा न हो सके, तब लोकविख्यात महामना पाण्डु इस देशके राजा हुए ॥ ३९ ॥

**स राजा तस्य ते पुत्राः पितुर्दायाद्यहारिणः।**
**मा तात कलहं कार्षी राज्यस्यार्धं प्रदीयताम् ॥ ४० ॥**

पाण्डु राजा थे और उनके पुत्र पाण्डव पिताकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हैं। अतः वत्स दुर्योधन! तुम कलह न करो। आधा राज्य पाण्डवोंको दे दो ॥ ४० ॥

**मयि जीवति राज्यं कः सम्प्रशासेत् पुमानिह।**
**मावमंस्था वचो मह्यं शममिच्छामि वः सदा ॥ ४१ ॥**

मेरे जीते-जी मेरी इच्छाके विरुद्ध दूसरा कौन पुरुष यहाँ राज्य-शासन कर सकता है? ऐसा समझकर मेरे कथनकी अवहेलना न करो। मैं सदा तुमलोगोंमें शान्ति बनी रहनेकी शुभ कामना करता हूँ ॥ ४१ ॥

**न विशेषोऽस्ति मे पुत्र त्वयि तेषु च पार्थिव।**
**मतमेतत् पितुस्तुभ्यं गान्धार्या विदुरस्य च ॥ ४२ ॥**

राजन्! मेरे लिये तुममें और पाण्डवोंमें कोई अन्तर नहीं है। तुम्हारे पिताका, गान्धारीका और विदुरका भी यही मत है ॥ ४२ ॥

**श्रोतव्यं खलु वृद्धानां नाभिशङ्कीर्वचो मम।**
**नाशयिष्यसि मा सर्वमात्मानं पृथिवीं तथा ॥ ४३ ॥**

तुम्हें बड़े-बूढ़ोंकी बातें सुननी चाहिये। मेरी बातपर शङ्का न करो, नहीं तो तुम सबको, अपनेको और इस भूतलको भी नष्ट कर दोगे ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भगवद्वाक्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भगवद्वाक्यसम्बन्धी एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४७ ॥

# अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## द्रोणाचार्य, विदुर तथा गान्धारीके युक्तियुक्त एवं महत्त्वपूर्ण वचनोंका भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कथन

*वासुदेव उवाच*

**भीष्मेणोक्ते ततो द्रोणो दुर्योधनमभाषत।**
**मध्ये नृपाणां भद्रं ते वचनं वचनक्षमः ॥ १ ॥**

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। भीष्मजीकी बात समाप्त होनेपर प्रवचन करनेमें समर्थ द्रोणाचार्यने राजाओंके बीचमें दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥

**प्रातीपः शान्तनुस्तात कुलस्यार्थे यथा स्थितः।**
**यथा देवव्रतो भीष्मः कुलस्यार्थे स्थितोऽभवत् ॥ २ ॥**
**तथा पाण्डुर्नरपतिः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।**
**राजा कुरूणां धर्मात्मा सुव्रतः सुसमाहितः ॥ ३ ॥**

'तात! जैसे प्रतीपपुत्र शान्तनु इस कुलकी भलाईमें ही लगे रहे, जैसे देवव्रत भीष्म इस कुलकी वृद्धिके लिये ही यहाँ स्थित हैं, उसी प्रकार सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय राजा पाण्डु भी रहे हैं। वे कुरुकुलके राजा होते हुए भी सदा धर्ममें ही मन लगाये रहते थे। वे उत्तम व्रतके पालक तथा चित्तको एकाग्र रखनेवाले थे ॥ २-३ ॥

**ज्येष्ठाय राज्यमददाद् धृतराष्ट्राय धीमते।**
**यवीयसे तथा क्षत्त्रे कुरूणां वंशवर्धनः ॥ ४ ॥**

'कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले पाण्डुने अपने बड़े भाई बुद्धिमान् धृतराष्ट्रको तथा छोटे भाई विदुरको अपना राज्य धरोहररूपसे दिया ॥ ४ ॥

**ततः सिंहासने राजन् स्थापयित्वैनमच्युतम्।**
**वनं जगाम कौरव्यो भार्याभ्यां सहितो नृपः ॥ ५ ॥**

'राजन्! कुरुकुलरत्न पाण्डुने अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले धृतराष्ट्रको सिंहासनपर बिठाकर स्वयं अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ वनको प्रस्थान किया था ॥ ५ ॥

**नीचैः स्थित्वा तु विदुर उपास्ते स्म विनीतवत्।**
**प्रेष्यवत् पुरुषव्याघ्रो वालव्यजनमुत्क्षिपन् ॥ ६ ॥**

'तदनन्तर पुरुषसिंह विदुर सेवककी भाँति नीचे खड़े होकर चँवर डुलाते हुए विनीतभावसे धृतराष्ट्रकी सेवामें रहने लगे ॥ ६ ॥

**ततः सर्वाः प्रजास्तात धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।**
**अन्वपद्यन्त विधिवद् यथा पाण्डुं जनाधिपम् ॥ ७ ॥**

'तात! तदनन्तर सारी प्रजा जैसे राजा पाण्डुके अनुगत रहती थी, उसी प्रकार विधिपूर्वक राजा धृतराष्ट्रके अधीन रहने लगी ॥ ७ ॥

**विसृज्य धृतराष्ट्राय राज्यं सविदुराय च।**
**चचार पृथिवीं पाण्डुः सर्वां परपुरञ्जयः ॥ ८ ॥**

'इस प्रकार शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले पाण्डु विदुरसहित धृतराष्ट्रको अपना राज्य सौंपकर सारी पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ ८ ॥

**कोशसंवनने दाने भृत्यानां चान्ववेक्षणे।**
**भरणे चैव सर्वस्य विदुरः सत्यसङ्गरः ॥ ९ ॥**

'सत्यप्रतिज्ञ विदुर कोषको सँभालने, दान देने, भृत्यवर्गकी देख-भाल करने तथा सबके भरण-पोषणके कार्यमें संलग्न रहते थे ॥ ९ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

संधिविग्रहसंयुक्तो राज्ञां संवाहनक्रियाः ।
अवैक्षत महातेजा भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १० ॥

'शत्रु-नगरीको जीतनेवाले महातेजस्वी भीष्म संधि-विग्रहके कार्यमें संयुक्त हो राजाओंसे सेवा और कर आदि लेनेका काम सँभालते थे ॥ १० ॥

सिंहासनस्थो नृपतिर्धृतराष्ट्रो महाबलः ।
अन्वास्यमानः सततं विदुरेण महात्मना ॥ ११ ॥

'महाबली राजा धृतराष्ट्र केवल सिंहासनपर बैठे रहते और महात्मा विदुर सदा उनकी सेवामें उपस्थित रहते थे ॥११॥

कथं तस्य कुले जातः कुलभेदं व्यवस्यसि ।
सम्भूय भ्रातृभिः सार्धं भुङ्क्ष्व भोगान् जनाधिप॥१२॥

'उन्हींके वंशमें उत्पन्न होकर तुम इस कुलमें फूट क्यों डालते हो ? राजन् ! भाइयोंके साथ मिलकर मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करो ॥ १२ ॥

ब्रवीम्यहं न कार्पण्यान्नार्थहेतोः कथंचन ।
भीष्मेण दत्तमिच्छामि न त्वया राजसत्तम ॥ १३ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! मैं दीनतासे या धन पानेके लिये किसी प्रकार कोई बात नहीं कहता हूँ । मैं भीष्मका दिया हुआ पाना चाहता हूँ, तुम्हारा दिया नहीं ॥ १३ ॥

नाहं त्वत्तोऽभिकाङ्क्षिष्ये वृत्त्युपायं जनाधिप ।
यतो भीष्मस्ततो द्रोणो यद् भीष्मस्त्वाह तत् कुरु॥१४॥

'जनेश्वर ! मैं तुमसे कोई जीविकाका साधन प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करूँगा । जहाँ भीष्म हैं, वहीं द्रोण हैं । जो भीष्म कहते हैं, उसका पालन करो ॥ १४ ॥

दीयतां पाण्डुपुत्रेभ्यो राज्यार्धमरिकर्शन ।
सममाचार्यकं तात तव तेषां च मे सदा ॥ १५ ॥

'शत्रुसूदन ! तुम पाण्डवोंका आधा राज्य दे दो । तात ! मेरा यह आचार्यत्व तुम्हारे और पाण्डवोंके लिये सदा समान है ॥

अश्वत्थामा यथा मह्यं तथा श्वेतहयो मम ।
बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १६ ॥

'मेरे लिये जैसा अश्वत्थामा है वैसा ही श्वेत घोड़ोंवाला अर्जुन भी है । अधिक बकवाद करनेसे क्या लाभ ? जहाँ धर्म है, उसी पक्षकी विजय निश्चित है' ॥ १६ ॥

*वासुदेव उवाच*

एवमुक्ते महाराज द्रोणेनामिततेजसा ।
व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसङ्गरः ।
पितुर्वदनमन्वीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित् ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अमित-तेजस्वी द्रोणाचार्यके इस प्रकार कहनेपर सत्यप्रतिज्ञ धर्मज्ञ विदुरने ज्येष्ठ पिता भीष्मकी ओर घूमकर उनके मुँहकी ओर देखते हुए इस प्रकार कहा ॥ १७ ॥

*विदुर उवाच*

देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषतः ।
प्रणष्टः कौरवो वंशस्त्वयायं पुनरुद्धृतः ॥ १८॥

विदुर बोले—देवव्रतजी ! मेरी यह बात सुनिये । यह कौरववंश नष्ट हो चला था, जिसका आपने पुनः उद्धार किया था ॥ १८ ॥

तन्मे विलपमानस्य वचनं समुपेक्षसे ।
कोऽयं दुर्योधनो नाम कुलेऽस्मिन् कुलपांसनः ॥ १९॥
यस्य लोभाभिभूतस्य मतिं समनुवर्तसे ।
अनार्यस्याकृतज्ञस्य लोभेन हतचेतसः ॥ २०॥

मैं भी उसी वंशकी रक्षाके लिये विलाप कर रहा हूँ परंतु न जाने क्यों आप मेरे कथनकी उपेक्षा कर रहे हैं । मैं पूछता हूँ, यह कुलाङ्गार दुर्योधन इस कुलका कौन है ! जिसके लोभके वशीभूत होनेपर भी आप उसकी बुद्धिका अनुसरण कर रहे हैं । लोभने इसकी विवेकशक्ति हर ली है इसकी बुद्धि दूषित हो गयी है तथा यह पूरा अनार्य हो गया है ॥ १९-२० ॥

अतिक्रामति यः शास्त्रं पितुर्धर्मार्थदर्शिनः ।
एते नश्यन्ति कुरवो दुर्योधनकृतेन वै ॥ २१॥

यह शास्त्रकी आज्ञाका तो उल्लङ्घन करता ही है । धर्म और अर्थपर दृष्टि रखनेवाले अपने पिताकी भी बात नहीं मानता है । निश्चय ही एकमात्र दुर्योधनके कारण ये समस्त कौरव नष्ट हो रहे हैं ॥ २१ ॥

यथा ते न प्रणश्येयुर्महाराज तथा कुरु ।
मां चैव धृतराष्ट्रं च पूर्वमेव महामते ॥ २२॥
चित्रकार इवालेख्यं कृत्वा स्थापितवानसि ।

महाराज ! ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे इनका नाश न हो । महामते ! जैसे चित्रकार किसी चित्रको बनाकर एक जगह रख देता है, उसी प्रकार आपने मुझको और धृतराष्ट्रको पहलेसे ही निकम्मा बनाकर रख दिया है।

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा यथा संहरते तथा ॥ २३॥
नोपेक्षस्व महाबाहो पश्यमानः कुलक्षयम् ।

महाबाहो ! जैसे प्रजापति प्रजाकी सृष्टि करके पुनः उसका संहार करते हैं, उसी प्रकार आप भी अपने कुलका विनाश देखकर उसकी उपेक्षा न कीजिये ॥ २३½ ॥

अथ तेऽद्य मतिर्नष्टा विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ २४॥
वनं गच्छ मया सार्धं धृतराष्ट्रेण चैव ह ।

यदि इन दिनों विनाशकाल उपस्थित होनेके कारण आपकी बुद्धि नष्ट हो गयी हो तो मेरे और धृतराष्ट्रके साथ वनमें पधारिये ॥ २४½ ॥

बद्ध्वा वा निकृतिप्रज्ञं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ २५॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

शाधीदं राज्यमद्याशु पाण्डवैरभिरक्षितम् ।

अथवा जिसकी बुद्धि सदा छल-कपटमें ही लगी रहती है उस परम दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको शीघ्र ही बाँधकर पाण्डवोंद्वारा सुरक्षित इस राज्यका शासन कीजिये ॥२५½॥

प्रसीद राजशार्दूल विनाशो दृश्यते महान् ॥ २६ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च राज्ञाममिततेजसाम् ।
विररामैवमुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः ।
प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! प्रसन्न होइये । पाण्डवों, कौरवों तथा अमित-तेजस्वी राजाओंका महान् विनाश दृष्टिगोचर हो रहा है। ऐसा कहकर दीनचित्त विदुरजी चुप हो गये और विशेष चिन्तामें मग्न होकर उस समय बार-बार लंबी साँसें खींचने लगे ॥ २६-२७ ॥

ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री
धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता ।
दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं
राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात् ॥ २८ ॥

तदनन्तर राजा सुबलकी पुत्री गान्धारी अपने कुलके विनाशसे भयभीत हो क्रूर स्वभाववाले पापबुद्धि पुत्र दुर्योधन-से समस्त राजाओंके समक्ष क्रोधपूर्वक यह धर्म और अर्थसे युक्त वचन बोली—॥ २८ ॥

ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा
ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये ।
शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवापराधं
पापस्य सामात्यपरिच्छदस्य ॥ २९ ॥

'जो-जो राजा, ब्रह्मर्षि तथा अन्य सभासद् इस राजसभाके भीतर आये हैं, वे सब लोग मन्त्री और सेवकोंसहित तुझ पापी दुर्योधनके अपराधोंको सुनें । मैं वर्णन करती हूँ ॥

राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोज्यं
क्रमागतो नः कुलधर्म एषः ।
त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मन्
राज्यं कुरूणामनयाद् विहंसि ॥ ३० ॥

'हमारे यहाँ परम्परासे चला आनेवाला कुलधर्म यही है कि यह कुरुराज्य पूर्व-पूर्व अधिकारीके क्रमसे उपभोगमें आवे ( अर्थात् पहले पिताके अधिकारमें रहे, फिर पुत्रके, पिताके जीते-जी पुत्र राज्यका अधिकारी नहीं हो सकता ); परंतु अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले पापबुद्धि दुर्योधन ! तू अपने अन्यायसे इस कौरवराज्यका विनाश कर रहा है ॥ ३० ॥

राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषी
तस्यानुजो विदुरो दीर्घदर्शी ।
एतावतिक्रम्य कथं नृपत्वं
दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात् ॥ ३१ ॥

'इस राज्यपर अधिकारीके रूपमें परम बुद्धिमान् धृतराष्ट्र और उनके छोटे भाई दूरदर्शी विदुर स्थापित किये गये थे । दुर्योधन ! इन दोनोंका उल्लङ्घन करके तू आज मोहवश अपना प्रभुत्व कैसे जमाना चाहता है ॥ ३१ ॥

राजा च क्षत्ता च महानुभावौ
भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम् ।
अयं तु धर्मज्ञतया महात्मा
न कामयेद् यो नृवरो नदीजः ॥ ३२ ॥

'राजा धृतराष्ट्र और विदुर—ये दोनों महानुभाव भी भीष्म-के जीते-जी पराधीन ही रहेंगे ( भीष्मके रहते इन्हें राज्य लेनेका कोई अधिकार नहीं है ); परंतु धर्मज्ञ होनेके कारण ये नरश्रेष्ठ महात्मा गङ्गानन्दन राज्य लेनेकी इच्छा ही नहीं रखते हैं ॥ ३२ ॥

राज्यं तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यं
तस्याद्य पुत्राः प्रभवन्ति नान्ये ।
राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां
पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि ॥ ३३ ॥

'वास्तवमें यह दुर्धर्ष राज्य महाराज पाण्डुका है । उन्हींके पुत्र इसके अधिकारी हो सकते हैं, दूसरे नहीं । अतः यह सारा राज्य पाण्डवोंका है; क्योंकि बाप-दादोंका राज्य पुत्र-पौत्रोंके पास ही जाता है ॥ ३३ ॥

यद् वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा
देवव्रतः सत्यसंधो मनीषी ।
सर्वं तदस्माभिरहत्य कार्यं
राज्यं स्वधर्मान् परिपालयद्भिः ॥ ३४ ॥

'कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष सत्यप्रतिज्ञ एवं बुद्धिमान् महात्मा देवव्रत जो कुछ कहते हैं, उसे राज्य और स्वधर्मका पालन करनेवाले हम सब लोगोंको बिना काट-छाँट किये पूर्णरूपसे मान लेना चाहिये ॥ ३४ ॥

अनुज्ञया चाथ महाव्रतस्य
ब्रूयान्नृपोऽयं विदुरस्तथैव ।
कार्यं भवेत् तत् सुहृद्भिर्नियोज्यं
धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम् ॥ ३५ ॥

'अथवा इन महान् व्रतधारी भीष्मजीकी आज्ञासे यह राजा धृतराष्ट्र तथा विदुर भी इस विषयमें कुछ कह सकते हैं और अन्य सुहृदोंको भी धर्मको सामने रखते हुए उसीका सुदीर्घ कालतक पालन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां
युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः ।
प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा
पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव ॥ ३६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'कौरवोंके इस न्यायतः प्राप्त राज्यका धर्मपुत्र युधिष्ठिर ही शासन करें और वे राजा धृतराष्ट्र तथा शान्तनुनन्दन भीष्मसे कर्तव्यकी शिक्षा लेते रहें' ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारतेउद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४८ ॥

# एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## दुर्योधनके प्रति धृतराष्ट्रके युक्तिसंगत वचन—पाण्डवोंको आधा राज्य देनेके लिये आदेश

वासुदेव उवाच

**एवमुक्ते तु गान्धार्यां धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।**
**दुर्योधनमुवाचेदं राजमध्ये जनाधिप ॥ १ ॥**

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! गान्धारीके ऐसा कहनेपर राजा धृतराष्ट्रने समस्त राजाओंके बीच दुर्योधनसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

**दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।**
**तथा तत् कुरु भद्रं ते यद्यस्ति पितृगौरवम् ॥ २ ॥**

'बेटा दुर्योधन ! मेरी यह बात सुन । तेरा कल्याण हो । यदि तेरे मनमें पिताके लिये कुछ भी गौरव है तो तुझसे जो कुछ कहूँ, उसका पालन कर ॥ २ ॥

**सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः ।**
**सोमाद् बभूव षष्ठोऽयं ययातिर्नहुषात्मजः ॥ ३ ॥**

'सबसे पहले प्रजापति सोम हुए, जो कौरववंशकी वृद्धिके आदि कारण हैं । सोमसे छठी पीढ़ीमें नहुषपुत्र ययातिका जन्म हुआ ॥ ३ ॥

**तस्य पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।**
**तेषां यदुर्महातेजा ज्येष्ठः समभवत् प्रभुः ॥ ४ ॥**
**पूरुर्यवीयांश्च ततो योऽस्माकं वंशवर्धनः ।**
**शर्मिष्ठया सम्प्रसूतो दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ ५ ॥**

'ययातिके पाँच पुत्र हुए, जो सब-के-सब श्रेष्ठ राजर्षि थे । उनमें महातेजस्वी एवं शक्तिशाली ज्येष्ठ पुत्र यदु थे और सबसे छोटे पुत्रका नाम पूरु हुआ, जिन्होंने हमारे इस वंशकी वृद्धि की है । वे वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४-५ ॥

**यदुश्च भरतश्रेष्ठ देवयान्याः सुतोऽभवत् ।**
**दौहित्रस्तात शुक्रस्य काव्यस्यामिततेजसः ॥ ६ ॥**

'भरतश्रेष्ठ ! यदु देवयानीके पुत्र थे । तात ! वे अमित तेजस्वी शुक्राचार्यके दौहित्र लगते थे ॥ ६ ॥

**यादवानां कुलकरो बलवान् वीर्यसम्मतः ।**
**अवमेने स तु क्षत्रं दर्पपूर्णः सुमन्दधीः ॥ ७ ॥**

'वे बलवान्, उत्तम पराक्रमसे सम्पन्न एवं यादवोंके वंश-प्रवर्तक हुए थे । उनकी बुद्धि बड़ी मन्द थी और उन्होंने घमंडमें आकर समस्त क्षत्रियोंका अपमान किया था ॥ ७ ॥

**न चातिष्ठत् पितुः शास्त्रे बलदर्पविमोहितः ।**
**अवमेने च पितरं भ्रातॄंश्चाप्यपराजितः ॥ ८ ॥**

'बलके घमंडसे वे इतने मोहित हो रहे थे कि पिताके आदेशपर चलते ही नहीं थे । किसीसे पराजित न होनेवाले यदु अपने भाइयों और पिताका भी अपमान करते थे ॥ ८ ॥

**पृथिव्यां चतुरन्तायां यदुरेवाभवद् बली ।**
**वशे कृत्वा स नृपतीन् न्यवसन्नागसाह्वये ॥ ९ ॥**

'चारों समुद्र जिसके अन्तमें हैं, उस भूमण्डलमें यदु ही सबसे अधिक बलवान् थे । वे समस्त राजाओंको वशमें करके हस्तिनापुरमें निवास करते थे ॥ ९ ॥

**तं पिता परमक्रुद्धो ययातिर्नहुषात्मजः ।**
**शशाप पुत्रं गान्धारे राज्याच्चापि व्यरोपयत् ॥ १० ॥**

'गान्धारीपुत्र ! यदुके पिता नहुषनन्दन ययातिने अत्यन्त कुपित होकर यदुको शाप दे दिया और उन्हें राज्यसे भी उतार दिया ॥ १० ॥

**ये चैनमन्ववर्तन्त भ्रातरो बलदर्पिताः ।**
**शशाप तानभिक्रुद्धो ययातिस्तनयानथ ॥ ११ ॥**

'अपने बलका घमंड रखनेवाले जिन-जिन भाइयोंने यदुका अनुसरण किया, ययातिने कुपित होकर अपने उन पुत्रोंको भी शाप दे दिया ॥ ११ ॥

**यवीयांसं ततः पूरुं पुत्रं स्ववशवर्तिनम् ।**
**राज्ये निवेशयामास विधेयं नृपसत्तमः ॥ १२ ॥**

'तदनन्तर अपने अधीन रहनेवाले आज्ञापालक छोटे पुत्र पूरुको नृपश्रेष्ठ ययातिने राज्यपर बिठाया ॥ १२ ॥

**एवं ज्येष्ठोऽप्यथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते ।**
**यवीयांसोऽपि जायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥ १३ ॥**

'इस प्रकार यह सिद्ध है कि ज्येष्ठ पुत्र भी यदि अहंकारी हो तो उसे राज्यकी प्राप्ति नहीं होती और छोटे पुत्र भी वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करनेसे राज्य पानेके अधिकारी हो जाते हैं ॥

**तथैव सर्वधर्मज्ञः पितुर्मम पितामहः ।**
**प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १४ ॥**

'इसी प्रकार मेरे पिताके पितामह राजा प्रतीप सब धर्मोंके ज्ञाता एवं तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥ १४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः ।**
**त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्रा देवकल्पा यशस्विनः ॥ १५ ॥**

'धर्मपूर्वक राज्यका शासन करते हुए नृपप्रवर प्रतीपके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो देवताओंके समान तेजस्वी और यशस्वी थे' ॥ १५ ॥

**देवापिरभवच्छ्रेष्ठो बाह्लीकस्तदनन्तरम् ।**
**तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान् मे पितामहः ॥ १६ ॥**

'तात ! उन तीनोंमें सबसे श्रेष्ठ थे देवापि ! उनके बादवाले राजकुमारका नाम बाह्लीक था तथा प्रतीपके तीसरे पुत्र मेरे धैर्यवान् पितामह शान्तनु थे ॥ १६ ॥

**देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः ।**
**धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः ॥ १७ ॥**
**पौरजानपदानां च सम्मतः साधुसत्कृतः ।**
**सर्वेषां बालवृद्धानां देवापिर्हृदयंगमः ॥ १८ ॥**

'नृपश्रेष्ठ देवापि महान् तेजस्वी होते हुए भी चर्मरोगसे पीड़ित थे । वे धार्मिक, सत्यवादी, पिताकी सेवामें तत्पर, साधु पुरुषोंद्वारा सम्मानित तथा नगर एवं जनपद-निवासियोंके लिये आदरणीय थे । देवापिने बालकोंसे लेकर वृद्धोंतक सभीके हृदयमें अपना स्थान बना लिया था ॥ १७-१८ ॥

**वदान्यः सत्यसंधश्च सर्वभूतहिते रतः ।**
**वर्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानां तथैव च ॥ १९ ॥**

'वे उदार, सत्यप्रतिज्ञ और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले थे । पिता तथा ब्राह्मणोंके आदेशके अनुसार चलते थे ॥ १९ ॥

**बाह्लीकस्य प्रियो भ्राता शान्तनोश्च महात्मनः ।**
**सौभ्रात्रं च परं तेषां सहितानां महात्मनाम् ॥ २० ॥**

'वे बाह्लीक तथा महात्मा शान्तनुके प्रिय बन्धु थे । परस्पर संगठित रहनेवाले उन तीनों महामना बन्धुओंका परस्पर अच्छे भाईका-सा स्नेहपूर्ण बर्ताव था ॥ २० ॥

**अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः ।**
**सम्भारानभिषेकार्थं कारयामास शास्त्रतः ॥ २१ ॥**

'तदनन्तर कुछ काल बीतनेपर बूढ़े नृपश्रेष्ठ प्रतीपने शास्त्रीय विधिके अनुसार राज्याभिषेकके लिये सामग्रियोंका संग्रह कराया ॥

**कारयामास सर्वाणि मङ्गलार्थानि वै विभुः ।**
**तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह ॥ २२ ॥**
**सर्वे निवारयामासुर्देवापेरभिषेचनम् ।**

'उन्होंने देवापिके मङ्गलके लिये सभी आवश्यक कृत्य सम्पन्न कराये; परंतु उस समय सब ब्राह्मणों तथा वृद्ध पुरुषोंने नगर और जनपदके लोगोंके साथ आकर देवापिका राज्याभिषेक रोक दिया ॥ २२½ ॥

**स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम् ।**
**अश्रुकण्ठोऽभवद् राजा पर्यशोचत चात्मजम् ॥ २३ ॥**

'किंतु राज्याभिषेक रोकनेकी बात सुनकर राजा प्रतीपका गला भर आया और वे अपने पुत्रके लिये शोक करने लगे ॥

**एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसंधश्च सोऽभवत् ।**
**प्रियः प्रजानामपि संस्त्वग्दोषेण प्रदूषितः ॥ २४ ॥**

'इसी प्रकार यद्यपि देवापि उदार, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजाओंके प्रिय थे, तथापि पूर्वोक्त चर्मरोगके कारण दूषित मान लिये गये ॥ २४ ॥

**हीनाङ्गं पृथिवीपालं नाभिनन्दन्ति देवताः ।**
**इति कृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्यषेधन् द्विजर्षभाः ॥ २५ ॥**

'जो किसी अङ्गसे हीन हो उस राजाका देवतालोग अभिनन्दन नहीं करते हैं; इसीलिये उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने नृपप्रवर प्रतीपको देवापिका अभिषेक करनेसे मना कर दिया था ॥

**ततः प्रव्यथिताङ्गोऽसौ पुत्रशोकसमन्वितः ।**
**निवारितं नृपं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ॥ २६ ॥**

'इससे राजाको बड़ा कष्ट हुआ । वे पुत्रके लिये शोकमग्न हो गये । राजाको रोका गया देखकर देवापि वनमें चले गये ॥ २६ ॥

**बाह्लीको मातुलकुलं त्यक्त्वा राज्यं समाश्रितः ।**
**पितृभ्रातॄन् परित्यज्य प्राप्तवान् परमर्द्धिमत् ॥ २७ ॥**

'बाह्लीक परम समृद्धिशाली राज्य तथा पिता और भाइयोंको छोड़कर मामाके घर चले गये ॥ २७ ॥

**बाह्लीकेन त्वनुज्ञातः शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।**
**पितर्युपरते राजन् राजा राज्यमकारयत् ॥ २८ ॥**

'राजन् ! तदनन्तर पिताकी मृत्यु होनेके पश्चात् बाह्लीककी आज्ञा लेकर लोकविख्यात राजा शान्तनुने राज्यका शासन किया ॥ २८ ॥

**तथैवाहं मतिमता परिचिन्त्येह पाण्डुना ।**
**ज्येष्ठः प्रभ्रंशितो राज्याद्धीनाङ्ग इति भारत ॥ २९ ॥**

'भारत ! इसी प्रकार मैं भी अङ्गहीन था; इसलिये ज्येष्ठ होनेपर भी बुद्धिमान् पाण्डु एवं प्रजाजनोंके द्वारा खूब सोच-विचारकर राज्यसे वञ्चित कर दिया गया ॥ २९ ॥

**पाण्डुस्तु राज्यं सम्प्राप्तः कनीयानपि सन् नृपः ।**
**विनाशे तस्य पुत्राणामिदं राज्यमरिंदम ॥ ३० ॥**

'पाण्डुने अवस्थामें छोटे होनेपर भी राज्य प्राप्त किया और वे एक अच्छे राजा बनकर रहे हैं । शत्रुदमन दुर्योधन! पाण्डुकी मृत्युके पश्चात् उनके पुत्रोंका ही यह राज्य है ॥

**मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि ।**
**अराजपुत्रो ह्यस्वामी परस्वं हर्तुमिच्छसि ॥ ३१ ॥**

'मैं तो राज्यका अधिकारी था ही नहीं, फिर तू कैसे राज्य लेना चाहता है ? जो राजाका पुत्र नहीं है, वह उसके राज्यका स्वामी नहीं हो सकता । तू पराये धनका अपहरण करना चाहता है ॥ ३१ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा
न्यायागतं राज्यमिदं च तस्य।
स कौरवस्यास्य कुलस्य भर्ता
प्रशासिता चैव महानुभावः ॥ ३२ ॥

'महात्मा युधिष्ठिर राजाके पुत्र हैं, अतः न्यायतः प्राप्त हुए इस राज्यपर उन्हींका अधिकार है। वे ही इस कौरव-कुलका भरण-पोषण करनेवाले, स्वामी तथा इस राज्यके शासक हैं। उनका प्रभाव महान् है ॥ ३२ ॥

स सत्यसंधः स तथाप्रमत्तः
शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः।
प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी
जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता ॥ ३३ ॥

'वे सत्यप्रतिज्ञ और प्रमादरहित हैं। शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चलते और भाई-बन्धुओंपर सद्भाव रखते हैं। युधिष्ठिरपर प्रजावर्गका विशेष प्रेम है। वे अपने सुहृदोंपर कृपा करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा सज्जनोंका पालन-पोषण करनेवाले हैं॥

क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च
सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः।
भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च
युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः ॥ ३४ ॥

'क्षमा, सहनशीलता, इन्द्रियसंयम, सरलता, सत्य-परायणता, शास्त्रज्ञान, प्रमादशून्यता, समस्त प्राणियोंपर दयाभाव तथा गुरुजनोंके अनुशासनमें रहना आदि समस्त राजोचित गुण युधिष्ठिरमें विद्यमान हैं ॥ ३४ ॥

अराजपुत्रस्त्वमनार्यवृत्तो
लुब्धः सदा बन्धुषु पापबुद्धिः।
क्रमागतं राज्यमिदं परेषां
हर्तुं कथं शक्ष्यसि दुर्विनीत ॥ ३५ ॥

'तू राजाका पुत्र नहीं है। तेरा बर्ताव भी दुष्टोंके समान है। तू लोभी तो है ही, बन्धु-बान्धवोंके प्रति सदा पापपूर्ण विचार रखता है। दुर्विनीत ! यह परम्परागत राज्य दूसरोंका है। तू कैसे इसका अपहरण कर सकेगा ? ॥ ३५ ॥

प्रयच्छ राज्यार्धमपेतमोहः
सवाहनं त्वं सपरिच्छदं च।
ततोऽवशेषं तव जीवितस्य
सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र ॥ ३६ ॥

नरेन्द्र ! तू मोह छोड़कर वाहनों और अन्यान्य सामग्रियोंसहित ( कम-से-कम ) आधा राज्य पाण्डवोंको दे दे। तब अपने छोटे भाइयोंके साथ तेरा जीवन बचा रह सकता है॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्यकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यकथनविषयक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४९ ॥

# पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## श्रीकृष्णका कौरवोंके प्रति साम, दान और भेदनीतिके प्रयोगकी असफलता बताकर दण्डके प्रयोगपर जोर देना

*वासुदेव उवाच*

एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न वै मन्दोऽन्वबुद्ध्यत ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी तथा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर भी मन्दबुद्धि दुर्योधनको तनिक भी चेत नहीं हुआ ॥ १ ॥

अवधूयोत्थितो मन्दः क्रोधसंरक्तलोचनः।
अन्वद्रवन्त तं पश्चाद् राजानस्त्यक्तजीविताः ॥ २ ॥

वह मूर्ख क्रोधसे लाल आँखें किये उन सबकी अवहेलना करके सभासे उठकर चला गया। उसीके पीछे अन्य राजा भी अपने जीवनका मोह छोड़कर सभासे उठकर चल दिये ॥

आज्ञापयच्च राज्ञस्तान् पार्थिवान् नष्टचेतसः।
प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥ ३ ॥

ज्ञात हुआ है, दुर्योधनने उन विवेकशून्य राजाओंको यह बार-बार आज्ञा दे दी कि तुम सब लोग कुरुक्षेत्रको चलो। आज पुष्य नक्षत्र है ॥ ३ ॥

ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः।
भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टाः कालचोदिताः ॥ ४ ॥

तदनन्तर वे सभी भूपाल कालसे प्रेरित हो भीष्मको सेनापति बनाकर बड़े हर्षके साथ सैनिकोंसहित वहाँ चल दिये हैं ॥ ४ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणां समागताः।
तासां प्रमुखतो भीष्मस्तालकेतुर्व्यरोचत ॥ ५ ॥

कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ आ गयी हैं। उन सबमें प्रधान हैं भीष्मजी, जो अपने तालध्वजके द्वारा सुशोभित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

यदत्र युक्तं प्राप्तं च तद् विधत्स्व विशाम्पते।
उक्तं भीष्मेण यद् वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च ॥ ६

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गान्धार्यां धृतराष्ट्रेण समक्षं मम भारत ।
एतत् ते कथितं राजन् यद् वृत्तं कुरुसंसदि ॥ ७ ॥

प्रजानाथ ! अब तुम्हें भी जो उचित जान पड़े, वह करो । भारत ! कौरवसभामें भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी तथा धृतराष्ट्रने मेरे सामने जो बातें कही थीं, वे सब आपको सुना दीं । राजन् ! यही वहाँका वृत्तान्त है ॥ ६-७ ॥

साम्यमादौ प्रयुक्तं मे राजन् सौभ्रात्रमिच्छता ।
अभेदायास्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥ ८ ॥

राजन् ! मैंने सब भाइयोंमें उत्तम बन्धुजनोचित प्रेम बने रहनेकी इच्छासे पहले सामनीतिका प्रयोग किया था, जिससे इस वंशमें फूट न हो और प्रजाजनोंकी निरन्तर उन्नति होती रहे ॥ ८ ॥

पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते ।
कर्मानुकीर्तनं चैव देवमानुषसंहितम् ॥ ९ ॥

जब वे सामनीति न ग्रहण कर सके, तब मैंने भेदनीतिका प्रयोग किया ( उनमें फूट डालनेकी चेष्टा की ) । पाण्डवोंके देव-मनुष्योचित कर्मोंका बारंबार वर्णन किया ॥ ९ ॥

यदा नाद्रियते वाक्यं सामपूर्वं सुयोधनः ।
तदा मया समानीय भेदिताः सर्वपार्थिवाः ॥ १० ॥

जब मैंने देखा दुर्योधन मेरे सान्त्वनापूर्ण वचनोंका पालन नहीं कर रहा है, तब मैंने सब राजाओंको बुलाकर उनमें फूट डालनेका प्रयत्न किया ॥ १० ॥

अद्भुतानि च घोराणि दारुणानि च भारत ।
अमानुषाणि कर्माणि दर्शितानि मया विभो ॥ ११ ॥

भारत ! वहाँ मैंने बहुत-से अद्भुत, भयंकर, निष्ठुर एवं अमानुषिक कर्मोंका प्रदर्शन किया ॥ ११ ॥

निर्भर्त्सयित्वा राज्ञस्तांस्तृणीकृत्य सुयोधनम् ।
राधेयं भीषयित्वा च सौबलं च पुनः पुनः ॥ १२ ॥
न्यूनतो धार्तराष्ट्राणां निन्दां कृत्वा तथा पुनः ।
भेदयित्वा नृपान् सर्वान् वाग्भिर्मन्त्रेण चासकृत् ॥ १३ ॥
पुनः सामाभिसंयुक्तं सम्प्रदानमथाब्रुवम् ।
अभेदात् कुरुवंशस्य कार्ययोगात् तथैव च ॥ १४ ॥

समस्त राजाओंको डाँट बताकर दुर्योधनको तिनकेके समान समझकर तथा राधानन्दन कर्ण और सुबलपुत्र शकुनिको बार-बार डराकर, जूएसे धृतराष्ट्रपुत्रोंकी निन्दा करके वाणी तथा गुप्त मन्त्रणाद्वारा सब राजाओंके मनमें अनेक बार भेद उत्पन्न करनेके पश्चात् फिर सामसहित दानकी बात उठायी, जिससे कुरुवंशकी एकता बनी रहे और अभीष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाय ॥ १२-१४ ॥

ते शूरा धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य विदुरस्य च ।
तिष्ठेयुः पाण्डवाः सर्वे हित्वा मानमधश्चराः ॥ १५ ॥
प्रयच्छन्तु च ते राज्यमनीशास्ते भवन्तु च ।
यथाऽऽह राजा गाङ्गेयो विदुरश्च हितं तव ॥ १६ ॥
सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्च ग्रामान् विसर्जय ।
अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ॥ १७ ॥

मैंने कहा—'नृपश्रेष्ठ ! यद्यपि पाण्डव शौर्यसे सम्पन्न हैं, तथापि वे सब-के-सब अभिमान छोड़कर भीष्म, धृतराष्ट्र और विदुरके नीचे रह सकते हैं । वे अपना राज्य भी तुम्हींको दे दें और सदा तुम्हारे अधीन होकर रहें । राजा धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुरजीने तुम्हारे हितके लिये जैसी बात कही है, वैसा ही करो । सारा राज्य तुम्हारे ही पास रहे । तुम पाण्डवोंको पाँच ही गाँव दे दो; क्योंकि तुम्हारे पिताके लिये पाण्डवोंका भरण-पोषण करना भी परम आवश्यक है ॥ १५-१७ ॥

एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत ।
दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा ॥ १८ ॥

मेरे इस प्रकार कहनेपर भी उस दुष्टात्माने राज्यका कोई भाग तुम्हारे लिये नहीं छोड़ा अर्थात् देना नहीं स्वीकार किया । अब तो मैं उन पापियोंपर चौथे उपाय दण्डके प्रयोगकी ही आवश्यकता देखता हूँ, अन्यथा उन्हें मार्गपर लाना असम्भव है ॥ १८ ॥

निर्याताश्च विनाशाय कुरुक्षेत्रं नराधिपाः ।
एतत् ते कथितं राजन् यद् वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १९ ॥

सब राजा अपने विनाशके लिये कुरुक्षेत्रको प्रस्थान कर चुके हैं । राजन् ! कौरव-सभामें जो कुछ हुआ था, वह सारा वृत्तान्त मैंने तुमसे कह सुनाया ॥ १९ ॥

न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव ।
विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः ॥ २० ॥

पाण्डुनन्दन ! वे कौरव बिना युद्ध किये तुम्हें राज्य नहीं देंगे । उन सबके विनाशका कारण जुट गया है और उनका मृत्युकाल भी आ पहुँचा है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

## ( सैन्यनिर्याणपर्व )

# एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

### पाण्डवपक्षके सेनापतिका चुनाव तथा पाण्डव-सेनाका कुरुक्षेत्रमें प्रवेश

*वैशम्पायन उवाच*

जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान्

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर धर्ममें ही मन लगाये रखनेवाले धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान्‌के सामने ही अपने भाइयोंसे कहा—॥ १ ॥

**श्रुतं भवद्भिर्यद् वृत्तं सभायां कुरुसंसदि ।**
**केशवस्यापि यद् वाक्यं तत् सर्वमवधारितम् ॥ २ ॥**

'कौरवसभामें जो कुछ हुआ है वह सब वृत्तान्त तुमलोगोंने सुन लिया। फिर भगवान् श्रीकृष्णने भी जो बात कही है, उसे भी अच्छी तरह समझ लिया होगा ॥ २ ॥

**तस्मात् सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः ।**
**अक्षौहिण्यश्च सप्तैताः समेता विजयाय वै ॥ ३ ॥**

'अतः नरश्रेष्ठ वीरो ! अब तुमलोग भी अपनी सेनाका विभाग करो। ये सात अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हो गयी हैं, जो अवश्य ही हमारी विजय करानेवाली होंगी ॥ ३ ॥

**तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान् निबोधत ।**
**द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ४ ॥**
**सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान् ।**
**एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ॥ ५ ॥**

'इन सातों अक्षौहिणियोंके जो सात विख्यात सेनापति हैं, उनके नाम बताता हूँ, सुनो। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और पराक्रमी भीमसेन। ये सभी वीर हमारे लिये अपने शरीरका भी त्याग कर देनेको उद्यत हैं; अतः ये ही पाण्डवसेनाके संचालक होने योग्य हैं ॥

**सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।**
**ह्रीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ६ ॥**

'ये सब-के-सब वेदवेत्ता, शूरवीर, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, लज्जाशील, नीतिज्ञ और युद्धकुशल हैं ॥ ६ ॥

**इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे तथा सर्वास्त्रयोधिनः ।**
**सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ॥ ७ ॥**
**यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिः पावकोपमम् ।**
**तं तावत् सहदेवात्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन ।**
**स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ॥ ८ ॥**

'इन सबने धनुर्वेदमें निपुणता प्राप्त की है तथा ये सब प्रकारके अस्त्रोंद्वारा युद्ध करनेमें समर्थ हैं। अब यह विचार करना चाहिये कि इन सातोंका भी नेता कौन हो ? जो सभी सेना-विभागोंको अच्छी तरह जानता हो तथा युद्धमें बाणरूपी ज्वालाओंसे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी भीष्मका आक्रमण सह सकता हो। पुरुषसिंह कुरुनन्दन सहदेव ! पहले तुम अपना विचार प्रकट करो। हमारा प्रधान सेनापति होने योग्य कौन है ?' ॥ ७-८ ॥

*सहदेव उवाच*

**संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः ।**
**यं समाश्रित्य धर्मज्ञं स्वमंशमनुयुञ्ज्महे ॥ ९ ॥**
**मत्स्यो विराटो बलवान् कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।**
**प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान् ॥ १० ॥**

सहदेव बोले—जो हमारे सम्बन्धी हैं, दुःखमें हमारे साथ एक होकर रहनेवाले और पराक्रमी भूपाल हैं, जिन धर्मज्ञ वीरका आश्रय लेकर हम अपना राज्यभाग प्राप्त कर सकते हैं तथा जो बलवान्, अस्त्रविद्यामें निपुण और युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले हैं, वे मत्स्यनरेश विराट संग्रामभूमिमें भीष्म तथा अन्य महारथियोंका सामना अच्छी तरह सहन कर सकेंगे ॥ ९-१० ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**तथोक्ते सहदेवेन वाक्ये वाक्यविशारदः ।**
**नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे ॥ ११ ॥**

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! सहदेवके इस प्रकार कहनेपर प्रवचनकुशल नकुलने उनके बाद यह बात कही—॥

**वयसा शास्त्रतो धैर्यात् कुलेनाभिजनेन च ।**
**ह्रीमान् बलान्वितः श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥**
**वेद चास्त्रं भरद्वाजाद् दुर्धर्षः सत्यसङ्गरः ।**
**यो नित्यं स्पर्धते द्रोणं भीष्मं चैव महाबलम् ॥ १३ ॥**
**श्लाघ्यः पार्थिववंशस्य प्रमुखे वाहिनीपतिः ।**
**पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव द्रुमः ॥ १४ ॥**
**यस्तताप तपो घोरं सदारः पृथिवीपतिः ।**
**रोषाद् द्रोणविनाशाय वीरः समितिशोभनः ॥ १५ ॥**
**पितेवास्मान् समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः ।**
**श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षतु ॥ १६ ॥**
**स द्रोणभीष्मावायातौ सहेदिति मतिर्मम ।**
**स हि दिव्यास्त्रविद् राजा सखा चाङ्गिरसो नृपः ॥ १७ ॥**

'जो अवस्था, शास्त्रज्ञान, धैर्य, कुल और स्वजनसमूह सभी दृष्टियोंसे बड़े हैं, जिनमें लज्जा, बल और श्री तीनों विद्यमान हैं, जो समस्त शास्त्रोंके ज्ञानमें प्रवीण हैं, जिन्होंने महर्षि भरद्वाजसे अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त हुई है, जो सत्यप्रतिज्ञ एवं दुर्धर्ष योद्धा हैं, महाबली भीष्म और द्रोणाचार्यसे सदा स्पर्धा रखते हैं, जो समस्त राजाओंके समूहकी प्रशंसाके पात्र हैं और युद्धके मुहानेपर खड़े हो समस्त सेनाओंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, बहुत-से पुत्र-पौत्रोंद्वारा घिरे रहनेके कारण जिनकी सैकड़ों शाखाओंसे सम्पन्न वृक्षकी भाँति शोभा होती है, जिन महाराजने रोषपूर्वक द्रोणाचार्यके विनाशके लिये पत्नीसहित घोर तपस्या की है, जो संग्राममूमिमें सुशोभित होनेवाले शूरवीर हैं और हमलोगोंपर सदा ही पिताके समान स्नेह रखते हैं, वे हमारे श्वशुर भूपालशिरोमणि द्रुपद हमारी सेनाके प्रमुख भागका संचालन करें। मेरे विचारसे राजा द्रुपद ही युद्धके लिये सम्मुख आये हुए द्रोणाचार्य और भीष्म पितामहका सामना कर सकते हैं; क्योंकि वे दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और द्रोणाचार्यके सखा हैं' ॥ १२-१७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

माद्रीसुताभ्यामुक्ते तु क्षमते कुरुनन्दनः ।
वासविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद् वचः ॥ १८ ॥

माद्रीकुमारोंके इस प्रकार अपना विचार प्रकट करनेपर कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले इन्द्रके समान पराक्रमी, इन्द्रपुत्र सव्यसाची अर्जुनने इस प्रकार कहा— ॥ १८ ॥

योऽयं तपःप्रभावेण ऋषिसंतोषणेन च ।
दिव्यः पुरुष उत्पन्नो ज्वालावर्णो महाभुजः ॥ १९ ॥
धनुष्मान् कवची खड्गी रथमारुह्य दंशितः ।
दिव्यैर्हयवरैर्युक्तमग्निकुण्डात् समुत्थितः ॥ २० ॥
गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान् ।
सिंहसंहननो वीरः सिंहतुल्यपराक्रमः ॥ २१ ॥
सिंहोरस्कः सिंहभुजः सिंहवक्षा महाबलः ।
सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ॥ २२ ॥
सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृशः ।
सुजत्रुः सुविशालाक्षः सुपादः सुप्रतिष्ठितः ॥ २३ ॥
अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारणः ।
जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ २४ ॥
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सहेद् भीष्मस्य सायकान् ।
वज्राशनिसमस्पर्शान् दीप्तास्यानुरगानिव ॥ २५ ॥

'जो अग्निकी ज्वालाके समान कान्तिमान् महाबाहु वीर अपने पिताकी तपस्याके प्रभावसे तथा महर्षियोंके कृपा-प्रसादसे उत्पन्न हुआ दिव्य पुरुष है, जो अग्निकुण्डसे कवच, धनुष और खड्ग धारण किये प्रकट हुआ और तत्काल ही दिव्य एवं उत्तम अश्वोंसे जुते हुए रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये सुसज्जित देखा गया था, जो पराक्रमी वीर अपने रथकी घरघराहटसे गर्जते हुए महामेघके समान जान पड़ता है, जिसके शरीरकी गठन, पराक्रम, हृदय, वक्षःस्थल, बाहु, कंधे और गर्जना-ये सभी सिंहके समान हैं, जो महाबली, महातेजस्वी और महान् वीर है, जिसकी भौंहें, दन्तपंक्ति, ठोड़ी, भुजाएँ और मुख बहुत सुन्दर हैं, जो सर्वथा हृष्ट-पुष्ट है, जिसके गलेकी हँसुली सुन्दर दिखायी देती है, जिसके बड़े-बड़े नेत्र और चरण परम सुन्दर हैं, जिसका किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे भेद नहीं हो सकता, जो मदकी धारा बहानेवाले गजराजके सदृश पराक्रमी वीर द्रोणाचार्यका विनाश करनेके लिये उत्पन्न हुआ है तथा जो सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय है, उस धृष्टद्युम्नको ही मैं प्रधान सेनापति बनानेके योग्य मानता हूँ। पितामह भीष्मके बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान भयंकर हैं, उनका स्पर्श वज्र और अशनिके समान दुःसह है, वीर धृष्टद्युम्न ही उन बाणोंका आघात सह सकता है ॥ १९—२५ ॥

यमदूतसमान् वेगे निपाते पावकोपमान् ।
रामेणाजौ विषहितान् वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥ २६ ॥
पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।
धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥ २७ ॥

'पितामह भीष्मके बाण आघात करनेमें अग्निके समान तेजस्वी एवं यमदूतोंके समान प्राणोंका हरण करनेवाले हैं। वज्रकी गड़गड़ाहटके समान गम्भीर शब्द करनेवाले उन बाणोंको पहले युद्धमें परशुरामजीने ही सहा था । राजन् ! मैं धृष्टद्युम्नके सिवा ऐसे किसी पुरुषको नहीं देखता, जो महान् व्रतधारी भीष्मका वेग सह सके । मेरा तो यही निश्चय है ॥ २६-२७ ॥

क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम ।
अभेद्यकवचः श्रीमान् मातङ्ग इव यूथपः ॥ २८ ॥

'जो शीघ्रतापूर्वक हस्तसंचालन करनेवाला, विचित्र पद्धतिसे युद्ध करनेमें कुशल, अभेद्य कवचसे सम्पन्न एवं यूथपति गजराजकी भाँति सुशोभित होनेवाला है, मेरी सम्मतिमें वह श्रीमान् धृष्टद्युम्न ही सेनापति होनेके योग्य है ॥'

( *वैशम्पायन उवाच*

अर्जुनेनैवमुक्ते तु भीमो वाक्यं समाददे ॥ )

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर भीमसेनने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया ॥

*भीमसेन उवाच*

वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥ २९ ॥
यस्य संग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वतः ।
रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥ ३० ॥
न तं युद्धे प्रपश्यामि यो भिन्द्यात् तु शिखण्डिनम् ।
शस्त्रेण समरे राजन् संनद्धं स्यन्दने स्थितम् ॥ ३१ ॥
द्वैरथे समरे नान्यो भीष्मं हन्यान्महाव्रतम् ।
शिखण्डिनमृते वीरं स मे सेनापतिर्मतः ॥ ३२ ॥

**भीमसेनने कहा**—राजेन्द्र ! द्रुपदकुमार शिखण्डी पितामह भीष्मका वध करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है । यह बात यहाँ पधारे हुए सिद्धों एवं महर्षियोंने बतायी है ! संग्रामभूमिमें जब वह अपना दिव्यास्त्र प्रकट करता है, उस समय लोगोंको उसका स्वरूप महात्मा परशुरामके समान दिखायी देता है । मैं ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें शिखण्डीको मार सके । राजन् ! जब महाव्रती भीष्म रथपर बैठकर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो सामने आयेंगे, उस समय द्वैरथ युद्धमें शूरवीर शिखण्डीके सिवा दूसरा कोई योद्धा उन्हें नहीं मार सकता । अतः मेरे मतमें वही प्रधान सेनापति होनेके योग्य है ॥ २९—३२ ॥

*युधिष्ठिर उवाच*

सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम् ।
सर्वं जानाति धर्मात्मा मतमेषां च केशवः ॥ ३३ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**युधिष्ठिर बोले**—तात ! धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के समस्त सारासार और बलाबलको जानते हैं तथा इस विषयमें इन सब राजाओंका क्या मत है—इससे भी ये पूर्ण परिचित हैं ॥ ३३ ॥

**यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु सेनापतिर्मम।**
**कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा ॥ ३४ ॥**

अतः दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण जिसका नाम बतावें, वही हमारी सेनाका प्रधान सेनापति हो। फिर वह अस्त्र-विद्यामें निपुण हो या न हो, वृद्ध हो या युवा हो (इसकी चिन्ता अपने लोगोंको नहीं करनी चाहिये ) ॥ ३४ ॥

**एष नो विजये मूलमेष तात विपर्यये।**
**अत्र प्राणाश्च राज्यं च भावाभावौ सुखासुखे॥ ३५ ॥**

तात ! ये भगवान् ही हमारी विजय अथवा पराजयके मूल कारण हैं। हमारे प्राण, राज्य, भाव, अभाव तथा सुख और दुःख इन्हींपर अवलम्बित हैं ॥ ३५ ॥

**एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता।**
**यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो वाहिनीपतिः ॥ ३६ ॥**

यही सबके कर्ता-धर्ता हैं। हमारे समस्त कार्योंकी सिद्धि इन्हींपर निर्भर करती है। अतः भगवान् श्रीकृष्ण जिसके लिये प्रस्ताव करें, वही हमारी विशाल वाहिनीका प्रधान अधिनायक हो ॥ ३६ ॥

**ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते।**
**ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनः ॥ ३७ ॥**
**रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम्।**
**अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ ३८ ॥**

अतः वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण अपना विचार प्रकट करें। इस समय रात्रि है। हम अभी सेनापतिका निर्वाचन करके रात बीतनेपर अस्त्र-शस्त्रोंका अधिवासन ( गन्ध आदि उपचारोंद्वारा पूजन ), कौतुक ( रक्षाबन्धन आदि ) तथा मङ्गलकृत्य ( स्वस्तिवाचन आदि ) करनेके अनन्तर श्रीकृष्ण-के अधीन हो समराङ्गणकी यात्रा करेंगे ॥ ३७-३८ ॥

वैशम्पायन उवाच

**तस्य तद् वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः।**
**अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनंजयमवेक्ष्य ह ॥ ३९ ॥**
**ममाप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः।**
**नेतारस्तव सेनाया मता विक्रान्तयोधिनः ॥ ४० ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—राजन् ! बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी ओर देखते हुए कहा—'महाराज ! आपलोगोंने जिन-जिन वीरोंके नाम लिये हैं, ये सभी मेरी रायमें भी सेनापति होनेके योग्य हैं; क्योंकि ये सभी बड़े पराक्रमी योद्धा हैं ॥ ३९-४० ॥

**सर्व एव समर्था हि तव शत्रुं प्रबाधितुम्।**
**इन्द्रस्यापि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे ॥ ४१ ॥**
**किं पुनर्धार्तराष्ट्राणां लुब्धानां पापचेतसाम्।**

'आपके शत्रुओंको परास्त करनेकी शक्ति इन सबमें विद्यमान है। ये महान् संग्राममें इन्द्रके मनमें भी भय उत्पन्न कर सकते हैं; फिर पापात्मा और लोभी धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ४१½ ॥

**मयापि हि महाबाहो त्वत्प्रियार्थं महाहवे ॥ ४२ ॥**
**कृतो यत्नो महांस्तत्र शमः स्यादिति भारत।**
**धर्मस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ॥ ४३ ॥**

'महाबाहु भरतनन्दन ! मैंने भी महान् युद्धकी सम्भावना देखकर तुम्हारा प्रिय करनेके लिये शान्ति-स्थापनके निमित्त महान् प्रयत्न किया था। इससे हमलोग धर्मके ऋणसे मुक्त उऋण हो गये हैं। दूसरोंके दोष बतानेवाले लोग भी अब हमारे ऊपर दोषारोपण नहीं कर सकते ॥ ४२-४३ ॥

**कृतास्त्रं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः।**
**धार्तराष्ट्रो बलस्थं च पश्यत्यात्मानमातुरः ॥ ४४ ॥**

'धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्धके लिये आतुर हो रहा है वह मूर्ख और अयोग्य होकर भी अपनेको अस्त्रविद्या पारङ्गत मानता है और दुर्बल होकर भी अपनेको बलवान् समझता है ॥ ४४ ॥

**युज्यतां वाहिनी साधु वधसाध्या हि मे मताः।**
**न धार्तराष्ट्राः शक्ष्यन्ति स्थातुं दृष्ट्वा धनंजयम् ॥ ४५ ॥**
**भीमसेनं च संक्रुद्धं यमौ चापि यमोपमौ।**
**युयुधानद्वितीयं च धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ४६ ॥**
**अभिमन्युं द्रौपदेयान् विराटद्रुपदावपि।**
**अक्षौहिणीपतींश्चान्यान् नरेन्द्रान् भीमविक्रमान् ॥ ४७ ॥**

'अतः आप अपनी सेनाको युद्धके लिये अच्छी तरह सुसज्जित कीजिये; क्योंकि मेरे मतमें वे शत्रुवधसे ही वशीभूत हो सकते हैं। वीर अर्जुन, क्रोधमें भरे हुए भीमसेन, यमराजके समान नकुल-सहदेव, सात्यकिसहित अमर्षशील धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, विराट, द्रुपद तथा अक्षौहिणी सेनाओंके अधिपति अन्यान्य भयंकर पराक्रमी नरेशोंको युद्धके लिये उद्यत देखकर धृतराष्ट्रके पुत्र रणभूमिमें टिक नहीं सकेंगे ॥ ४५-४७ ॥

**सारवद् बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम्।**
**धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः ॥ ४८ ॥**
**धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिंदम।**

'हमारी सेना अत्यन्त शक्तिशाली, दुर्धर्ष और दुर्गम है वह युद्धमें धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाका संहार कर डालेगी, इसमें संशय नहीं है। शत्रुदमन ! मैं धृष्टद्युम्नको ही प्रधान सेनापति होने योग्य मानता हूँ' ॥ ४८½ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्राहृष्यन्नरोत्तमाः ॥ ४९ ॥**
**तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान् ।**
**योग इत्यथ सैन्यानां त्वरतां सम्प्रधावताम् ॥ ५० ॥**

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वे नरश्रेष्ठ पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। फिर तो युद्धके लिये 'सुसज्जित हो जाओ, सुसज्जित हो जाओ' ऐसा कहते हुए समस्त सैनिक बड़ी उतावलीके साथ दौड़-धूप करने लगे। उस समय प्रसन्न चित्तवाले उन वीरोंका महान् हर्षनाद सब ओर गूँज उठा ॥ ४९-५० ॥

**हयवारणशब्दाश्च नेमिघोषाश्च सर्वतः ।**
**शङ्खदुन्दुभिघोषाश्च तुमुलाः सर्वतोऽभवन् ॥ ५१ ॥**

सब ओर घोड़े, हाथी और रथोंका घोष होने लगा। सभी ओर शंख और दुन्दुभियोंकी भयानक ध्वनि गूँजने लगी॥

**तदुग्रं सागरनिभं क्षुब्धं बलसमागमम् ।**
**रथपत्तिगजोदग्रं महोर्मिभिरिवाकुलम् ॥ ५२ ॥**

रथ, पैदल और हाथियोंसे भरी हुई वह भयंकर सेना उत्ताल तरङ्गोंसे व्याप्त महासागरके समान क्षुब्ध हो उठी॥

**धावतामाह्वयानानां तनुत्राणि च बध्नताम् ।**
**प्रयास्यतां पाण्डवानां ससैन्यानां समन्ततः ॥ ५३ ॥**
**गङ्गेव पूर्णा दुर्धर्षा समदृश्यत वाहिनी ।**

रणयात्राके लिये उद्यत हुए पाण्डव और उनके सैनिक सब ओर दौड़ते, पुकारते और कवच बाँधते दिखायी दिये। उनकी वह विशाल वाहिनी जलसे परिपूर्ण गङ्गाके समान दुर्गम दिखायी देती थी ॥ ५३½ ॥

**अग्रानीके भीमसेनो माद्रीपुत्रौ च दंशितौ ॥ ५४ ॥**
**सौभद्रो द्रौपदेयाश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।**
**प्रभद्रकाश्च पञ्चाला भीमसेनमुखा ययुः ॥ ५५ ॥**

सेनाके आगे-आगे भीमसेन, कवचधारी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव, सुभद्राकुमार अभिमन्यु, द्रौपदीके सभी पुत्र, द्रुपद-कुमार धृष्टद्युम्न, प्रभद्रकगण और पाञ्चालदेशीय क्षत्रिय वीर चले। इन सबने भीमसेनको अपने आगे कर लिया था॥

**ततः शब्दः समभवत् समुद्रस्येव पर्वणि ।**
**हृष्टानां सम्प्रयातानां घोषो दिवमिवास्पृशत् ॥ ५६ ॥**

तदनन्तर जैसे पूर्णिमाके दिन बढ़ते हुए समुद्रका कोलाहल सुनायी देता है, उसी प्रकार हर्ष और उत्साहमें भरकर युद्धके लिये यात्रा करनेवाले उन सैनिकोंका महान् घोष सब ओर फैलकर मानो स्वर्गलोकतक जा पहुँचा ॥ ५६ ॥

**प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः ।**
**तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५७ ॥**

हर्षमें भरे हुए और कवच आदिसे सुसज्जित वे समस्त सैनिक शत्रु-सेनाको विदीर्ण करनेका उत्साह रखते थे। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर समस्त सैनिकोंके बीचमें होकर चले॥

**शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः ।**
**कोशं यन्त्रायुधं चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः ॥ ५८ ॥**

सामान ढोनेवाली गाड़ी, बाजार, डेरे-तम्बू, रथ आदि सवारी, खजाना, यन्त्रचालित अस्त्र और चिकित्साकुशल वैद्य भी उनके साथ-साथ चले ॥ ५८ ॥

**फल्गु यच्च बलं किंचिद् यच्चापि कृशदुर्बलम् ।**
**तत् संगृह्य ययौ राजा ये चापि परिचारकाः ॥ ५९ ॥**

राजा युधिष्ठिरने जो कोई भी सेना सारहीन, कृशकाय अथवा दुर्बल थी, सेवको एवं अन्य परिचारकोंको उपप्लव्यमें एकत्र करके वहाँसे प्रस्थान कर दिया ॥ ५९ ॥

**उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी सत्यवादिनी ।**
**सह स्त्रीभिर्निववृते दासीदाससमावृता ॥ ६० ॥**

पाञ्चालराजकुमारी सत्यवादिनी द्रौपदी दास-दासियोंसे घिरी हुई कुछ दूरतक महाराजके साथ गयी। फिर सभी स्त्रियोंके साथ उपप्लव्य नगरमें लौट आयी ॥ ६० ॥

**कृत्वा मूलप्रतीकारं गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।**
**स्कन्धावारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ६१ ॥**

पाण्डवलोग दुर्गकी रक्षाके लिये आवश्यक स्थावर (पर-कोटे और खाई आदि) तथा जङ्गम (पहरेदार सैनिकोंकी नियुक्ति आदि) उपायोंद्वारा स्त्रियों और धन आदिकी सुरक्षाकी समुचित व्यवस्था करके बहुत-से खेमे और तम्बू आदि साथ लेकर प्रस्थित हुए ॥ ६१ ॥

**ददतो गां हिरण्यं च ब्राह्मणैरभिसंवृताः ।**
**स्तूयमाना ययू राजन् रथैर्मणिविभूषितैः ॥ ६२ ॥**

राजन्! ब्राह्मणलोग चारों ओरसे घेरकर पाण्डवोंके गुण गाते और पाण्डवलोग उन्हें गौओं तथा सुवर्ण आदिका दान देते थे। इस प्रकार वे मणिभूषित रथोंपर बैठकर यात्रा कर रहे थे ॥ ६२ ॥

**केकया धृष्टकेतुश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ।**
**श्रेणिमान् वसुदानश्च शिखण्डी चापराजितः ॥ ६३ ॥**
**हृष्टास्तुष्टाः कवचिनः सशस्त्राः समलंकृताः ।**
**राजानमन्वयुः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ६४ ॥**

(पाँचों भाई) केकयराजकुमार, धृष्टकेतु, काशिराजके पुत्र अभिभू, श्रेणिमान्, वसुदान और अपराजित वीर शिखण्डी—ये सब लोग आभूषण और कवच धारण करके हाथोंमें शस्त्र लिये हर्ष और उल्लासमें भरकर राजा युधिष्ठिरको सब ओरसे घेरकर उनके साथ-साथ जा रहे थे ॥ ६३-६४ ॥

**जघनार्धे विराटश्च याज्ञसेनिश्च सौमकिः ।**
**सुधर्मा कुन्तिभोजश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ॥ ६५ ॥**
**रथायुतानि चत्वारि हयाः पञ्चगुणास्तथा ।**
**पत्तिसैन्यं दशगुणं गजानामयुतानि षट् ॥ ६६ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सेनाके पिछले आधे भागमें राजा विराट, सोमकवंशी द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, सुधर्मा, कुन्तिभोज और धृष्टद्युम्नके पुत्र जा रहे थे। इनके साथ चालीस हजार रथ, दो लाख घोड़े, चार लाख पैदल और साठ हजार हाथी थे ।६५-६६।

**अनाधृष्टिश्चेकितानो धृष्टकेतुश्च सात्यकिः।**
**परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनंजयौ ॥ ६७ ॥**

अनाधृष्टि, चेकितान, धृष्टकेतु तथा सात्यकि—ये सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको घेरकर चल रहे थे ॥ ६७॥

**आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः।**
**पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥ ६८ ॥**

इस प्रकार सेनाकी व्यूहरचना करके प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए पाण्डवसैनिक कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर साँड़ोंके समान गर्जन करते हुए दिखायी देने लगे ॥ ६८ ॥

**तेऽवगाह्य कुरुक्षेत्रं शङ्खान् दध्मुररिंदमाः।**
**तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ६९ ॥**

उन शत्रुदमन वीरोंने कुरुक्षेत्रकी सीमामें पहुँचकर अपने-अपने शङ्ख बजाये। इसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी शङ्खध्वनि की ॥ ६९ ॥

**पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः।**
**निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः ॥ ७० ॥**

बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान पाञ्चजन्यका गम्भीर घोष सुनकर सब ओर फैले हुए समस्त पाण्डव-सैनिक हर्षसे उल्लसित एवं रोमाञ्चित हो उठे ॥ ७० ॥

**शङ्खदुन्दुभिसंसृष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम्।**
**पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरांश्चान्वनादयत् ॥ ७१ ॥**

शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिला हुआ वेगवान् वीरोंका सिंहनाद पृथ्वी, आकाश तथा समुद्रोंतक फैलकर उन सबको प्रतिध्वनित करने लगा ॥७१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि कुरुक्षेत्रप्रवेशे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें पाण्डवसेनाका कुरुक्षेत्रमें प्रवेशविषयक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५१ ॥

( दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७१½ श्लोक हैं )

# द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## कुरुक्षेत्रमें पाण्डवसेनाका पड़ाव तथा शिविर-निर्माण

*वैशम्पायन उवाच*

**ततो देशे समे स्निग्धे प्रभूतयवसेन्धने।**
**निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः ॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने एक चिकने और समतल प्रदेशमें जहाँ घास और ईंधनकी अधिकता थी, अपनी सेनाका पड़ाव डाला ॥ १ ॥

**परिहृत्य श्मशानानि देवतायतनानि च।**
**आश्रमांश्च महर्षीणां तीर्थान्यायतनानि च ॥ २ ॥**
**मधुरानूषरे देशे शुचौ पुण्ये महामतिः।**
**निवेशं कारयामास कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥**

श्मशान, देवमन्दिर, महर्षियोंके आश्रम, तीर्थ और सिद्धक्षेत्र—इन सबका परित्याग करके उन स्थानोंसे बहुत दूर ऊसररहित मनोहर शुद्ध एवं पवित्र स्थानमें जाकर कुन्तीपुत्र महामति युधिष्ठिरने अपनी सेनाको ठहराया ॥ २-३ ॥

**ततश्च पुनरुत्थाय सुखी विश्रान्तवाहनः।**
**प्रययौ पृथिवीपालैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ ४ ॥**
**विद्राव्य शतशो गुल्मान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्।**
**पर्यक्रामत् समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः ॥ ५ ॥**

तत्पश्चात् समस्त वाहनोंके विश्राम कर लेनेपर स्वयं भी विश्राम-सुखका अनुभव करके भगवान् श्रीकृष्ण उठे और सैकड़ों-हजारों भूमिपालोंसे घिरकर कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ आगे बढ़े। उन्होंने दुर्योधनके सैकड़ों सैनिक दलोंको दूर भगाकर वहाँ सब ओर विचरण करना प्रारम्भ किया। ४-५।

**शिबिरं मापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।**
**सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानः प्रतापवान् ॥ ६ ॥**

द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न तथा प्रतापशाली एवं उदाररथी सत्यकपुत्र युयुधानने शिविर बनाने योग्य भूमि नापी ॥

**आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम्।**
**सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम् ॥ ७ ॥**
**खानयामास परिखां केशवस्तत्र भारत।**
**गुप्त्यर्थमपि चादिश्य बलं तत्र न्यवेशयत् ॥ ८ ॥**
**विधिर्यः शिबिरस्यासीत् पाण्डवानां महात्मनाम्।**
**तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः ॥ ९ ॥**

भरतनन्दन जनमेजय! कुरुक्षेत्रमें हिरण्वती नामक एक पवित्र नदी है, जो स्वच्छ एवं विशुद्ध जलसे भरी है। उसके तटपर अनेक सुन्दर घाट हैं। उस नदीमें कंकड़-पत्थर और कीचड़का नाम नहीं है। उसके समीप पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने खाई खुदवायी और उसकी रक्षाके लिये पहरेदारोंको नियुक्त करके वहीं सेनाको ठहराया। महात्मा पाण्डवोंके लिये शिविरका निर्माण जिस विधिसे किया गया था, उसी प्रकारके भगवान् केशवने अन्य राजाओंके लिये शिविर बनवाये ॥ ७-९ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

प्रभूततरकाष्ठानि दुराधर्षतराणि च ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥
शिबिराणि महार्हाणि राज्ञां तत्र पृथक् पृथक् ।
विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि महीतले ॥ ११ ॥

राजेन्द्र ! उस समय राजाओंके लिये सैकड़ों और हजारों-की संख्यामें दुर्धर्ष एवं बहुमूल्य शिविर पृथक्-पृथक् बनवाये गये थे। उनके भीतर बहुत-से काष्ठ तथा प्रचुर मात्रामें भक्ष्य-भोज्य अन्न एवं पान-सामग्रीका संग्रह किया गया था। वे समस्त शिविर भूतलपर रहते हुए विमानोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १०-११ ॥

तत्रासञ्शिल्पिनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः ।
सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः ॥ १२ ॥

वहाँ सैकड़ों विद्वान् शिल्पी और शास्त्रविशारद वैद्य वेतन देकर रक्खे गये थे, जो समस्त आवश्यक उपकरणोंके साथ वहाँ रहते थे ॥ १२ ॥

ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषोः ।
ससर्जरसपांसूनां राशयः पर्वतोपमाः ॥ १३ ॥

प्रत्येक शिविरमें प्रत्यञ्चा, धनुष, कवच, अस्त्र-शस्त्र, मधु, घी तथा रालका चूरा—इन सबके पहाड़ों-जैसे ढेर लगे हुए थे ॥

बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम् ।
शिबिरे शिबिरे राजा संचकार युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥

राजा युधिष्ठिरने प्रत्येक शिविरमें प्रचुर जल, सुन्दर घास, भूसी और अग्निका संग्रह करा रक्खा था ॥ १४ ॥

महायन्त्राणि नाराचास्तोमराणि परश्वधाः ।
धनूंषि कवचादीनि ऋष्टयस्तूणसंयुताः ॥ १५ ॥

बड़े-बड़े यन्त्र, नाराच, तोमर, फरसे, धनुष, कवच, ऋष्टि और तरकस—ये सब वस्तुएँ भी उन सभी शिविरोंमें संगृहीत थीं ॥ १५ ॥

गजाः कण्टकसंनाहा लोहवर्मोत्तरच्छदाः ।
दृश्यन्ते तत्र गिर्याभाः सहस्रशतयोधिनः ॥ १६ ॥

वहाँ लाखों योद्धाओंके साथ युद्ध करनेमें समर्थ पर्वतोंके समान विशालकाय बहुत-से हाथी दिखायी देते थे, जो काँटेदार साज-सामान, लोहेके कवच तथा लोहेकी ही झूल धारण किये हुए थे ॥ १६ ॥

निविष्टान् पाण्डवांस्तत्र ज्ञात्वा मित्राणि भारत ।
अभिसस्रुर्यथादेशं सबलाः सहवाहनाः ॥ १७ ॥

भारत ! पाण्डवोंने कुरुक्षेत्रमें जाकर अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया है, यह जानकर उनसे मित्रता रखनेवाले बहुत-से राजा अपनी सेना और सवारियोंके साथ उनके पास, जहाँ वे ठहरे थे, आये ॥ १७ ॥

चरितब्रह्मचर्यास्ते सोमपा भूरिदक्षिणाः ।
जयाय पाण्डुपुत्राणां समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १८ ॥

जिन्होंने यथासमय ब्रह्मचर्यव्रतका पालन, यज्ञोंमें सोमरस-का पान तथा प्रचुर दक्षिणाओंका दान किया था, ऐसे भूपालगण पाण्डवोंकी विजयके लिये कुरुक्षेत्रमें पधारे ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि शिबिरादिनिर्माणे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें शिविर आदिका निर्माणविषयक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५२ ॥

# त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## दुर्योधनका सेनाको सुसज्जित होने और शिविर निर्माण करनेके लिये आज्ञा देना तथा सैनिकोंकी रणयात्राके लिये तैयारी

*जनमेजय उवाच*

युधिष्ठिरं सहानीकमुपायान्तं युयुत्सया ।
संनिविष्टं कुरुक्षेत्रे वासुदेवेन पालितम् ॥ १ ॥
विराटद्रुपदाभ्यां च सपुत्राभ्यां समन्वितम् ।
केकयैर्वृष्णिभिश्चैव पार्थिवैः शतशो वृतम् ॥ २ ॥
महेन्द्रमिव चादित्यैरभिगुप्तं महारथैः ।
श्रुत्वा दुर्योधनो राजा किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥

**जनमेजयने पूछा**—मुने ! दुर्योधनने जब यह सुना कि राजा युधिष्ठिर युद्धकी इच्छासे सेनाओंके साथ यात्रा करके भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित हो कुरुक्षेत्रमें पहुँच गये और वहाँ सेनाका पड़ाव डाले बैठे हैं, पुत्रोंसहित राजा विराट और द्रुपद भी उनके साथ हैं, केकयराजकुमार, वृष्णिवंशी योद्धा तथा सैकड़ों भूपाल उन्हें घेरे रहते हैं तथा वे आदित्योंसहित घिरे हुए देवराज इन्द्रकी भाँति अनेक महारथी योद्धाओंद्वारा सुरक्षित हैं, तब उसने क्या किया ? १—३

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामते ।
सम्भ्रमे तुमुले तस्मिन् यदासीत् कुरुजाङ्गले ॥ ४ ॥

महामते ! कुरुक्षेत्रके उस भयंकर समारोहमें जो कुछ हुआ हो वह सब मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥४॥

व्यथयेयुरिमे देवान् सेन्द्रानपि समागमे ।
पाण्डवा वासुदेवश्च विराटद्रुपदौ तथा ॥ ५ ॥
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

युधामन्युश्च विक्रान्तो देवैरपि दुरासदः ॥ ६॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन।
कुरूणां पाण्डवानां च यद् यदासीद् विचेष्टितम् ॥७॥

तपोधन! पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण, विराट, द्रुपद, पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी तथा देवताओंके लिये भी दुर्जय महापराक्रमी युधामन्यु—ये सब लो संग्राममें एकत्र होनेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी पीड़ित कर सकते हैं; अतः वहाँ कौरवों तथा पाण्डवोंने जो-जो कर्म किया था वह सब विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ ५-७ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रतियाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चाब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर उस समय राजा दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन और शकुनिसे इस प्रकार कहा—॥ ८ ॥

अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थानधोक्षजः।
स एनान्मन्युनाऽऽविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम् ॥ ९ ॥

'श्रीकृष्ण यहाँसे कृतकार्य होकर नहीं गये हैं। इसके लिये वे क्रोधमें भरकर पाण्डवोंको निश्चय ही युद्धके लिये उत्तेजित करेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ९ ॥

इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः।
भीमसेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ ॥ १० ॥

'वास्तवमें श्रीकृष्ण यही चाहते हैं कि पाण्डवोंके साथ मेरा युद्ध हो। भीमसेन और अर्जुन—ये दोनों भाई तो श्रीकृष्णके ही मतमें रहनेवाले हैं ॥ १० ॥

अजातशत्रुरत्यर्थं भीमसेनवशानुगः।
निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः सहोदरैः ॥ ११ ॥

'अजातशत्रु युधिष्ठिर भी अधिकतर भीमसेनके वशमें रहा करते हैं। इसके सिवा मैंने पहले सब भाइयोंसहित उनका तिरस्कार भी किया है ॥ ११ ॥

विराटद्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह।
तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ ॥ १२ ॥

'विराट और द्रुपद तो मेरे साथ पहलेसे ही वैर रखते हैं। वे दोनों पाण्डव-सेनाके संचालक तथा श्रीकृष्णकी आज्ञाके अधीन रहनेवाले हैं ॥ १२ ॥

भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः।
तस्मात् सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः ॥ १३ ॥

'अतः अब हमलोगोंका पाण्डवोंके साथ होनेवाला यह युद्ध बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी होगा। इसलिये राजाओ! आप सब लोग आलस्य छोड़कर युद्धकी सारी तैयारी करें ॥

शिविराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः।
सुपर्याप्तावकाशानि दुरादेयानि शत्रुभिः ॥ १४॥
आसन्नजलकाष्ठानि शतशोऽथ सहस्रशः।
अच्छेद्याहारमार्गाणि बन्धोच्छ्रयचितानि च ॥ १५॥

'भूमिपालो! आप कुरुक्षेत्रमें सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें ऐसे शिविर तैयार करावें, जिनमें अपनी आवश्यकताके अनुसार पर्याप्त अवकाश हों तथा शत्रुलोग जिनपर अधिकार न कर सकें। उनमें पास ही जल और काष्ठ आदि मिलनेकी सुविधाएँ हों। उनमें ऐसे मार्ग होने चाहिये जिनके द्वारा खाद्यसामग्री सुविधासे लायी जा सके और शत्रुलोग उसे नष्ट न कर सकें तथा उनके चारों तरफ किलेबंदी कर देनी चाहिये ॥ १४-१५ ॥

विविधायुधपूर्णानि पताकाध्वजवन्ति च।
समाश्च तेषां पन्थानः क्रियन्तां नगराद् बहिः ॥ १६॥

'उन शिविरोंको नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे भरकर तथा ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित रखना चाहिये। शिविरोंमें जो नगर बसाया जाय, उससे बाहर अनेक सीधे तथा समतल मार्ग उन शिविरोंमें जानेके लिये बनाये जायँ ॥१६॥

प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम्।
ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा ॥ १७॥
हृष्टरूपा महात्मानो निवासाय महीक्षिताम्।

'आज ही यह घोषणा करा दी जाय कि कल सवेरे ही युद्धके लिये प्रस्थान करना है। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये। 'दुर्योधनका यह आदेश सुनकर 'बहुत अच्छा—ऐसा ही होगा' यह प्रतिज्ञा करके महामना कर्ण आदिने अत्यन्त प्रसन्न होकर सवेरा होते ही राजाओंके निवासके लिये शिविर बनवाने आरम्भ कर दिये ॥ १७½ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम् ॥ १८॥
आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः।
बाहून् परिघसंकाशान् संस्पृशन्तः शनैः शनैः ॥ १९॥
काञ्चनाङ्गददीप्तांश्च चन्दनागुरुभूषितान्।

तदनन्तर वहाँ आये हुए सब नरेश राजा दुर्योधनकी यह आज्ञा सुनकर रोषावेशसे परिपूर्ण हो चन्दन और अगुरुसे चर्चित तथा सोनेके भुजबंदोंसे प्रकाशित अपनी परिघके समान मोटी भुजाओंका धीरे-धीरे स्पर्श करते हुए बहुमूल्य आसनोंसे उठकर खड़े हो गये ॥ १८-१९½ ॥

उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः।
अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणानि च सर्वशः ॥ २०॥

उन्होंने अपने कमलसदृश करोंसे मस्तकपर पगड़ी बाँध ली; फिर धोती, चादर और सब प्रकारके आभूषण धारण कर लिये ॥ २० ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ते रथान् रथिनः श्रेष्ठा हयांश्च हयकोविदाः ।
सज्जयन्ति स्म नागांश्च नागशिक्षास्वनुष्ठिताः ॥ २१ ॥

श्रेष्ठ रथी अपने रथोंको, अश्वसंचालनकी कलामें कुशल योद्धा घोड़ोंको और हस्तिशिक्षामें निपुण सैनिक हाथियोंको सुसज्जित करने लगे ॥ २१ ॥

अथ वर्माणि चित्राणि काञ्चनानि बहूनि च ।
विविधानि च शस्त्राणि चक्रुः सर्वाणि सर्वशः ॥ २२ ॥

उन्होंने सोनेके बने हुए बहुत-से विचित्र कवच तथा सब प्रकारके विभिन्न अनेक अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिये ।२२।

पदातयश्च पुरुषाः शस्त्राणि विविधानि च ।
उपाजह्रुः शरीरेषु हेमचित्राण्यनेकशः ॥ २३ ॥

पैदल योद्धाओंने भी अपने अङ्गोंमें सुवर्णजटित कवच तथा भाँति-भाँतिके अनेक अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिये ॥२३॥

तदुत्सव इवोदग्रं सम्प्रहृष्टनरावृतम् ।
नगरं धार्तराष्ट्रस्य भारतासीत् समाकुलम् ॥ २४ ॥

जनमेजय ! दुर्योधनका वह हस्तिनापुर नगर मानो वहाँ कोई उत्सव हो रहा हो, इस प्रकार समृद्ध और हर्षोत्फुल्ल मनुष्योंसे भर गया था, इससे वहाँ बड़ी हलचल मच गयी थी ॥ २४ ॥

जनौघसलिलावर्तो रथनागाश्वमीनवान् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः कोशसंचयरत्नवान् ॥ २५ ॥

चित्राभरणवर्मोर्मिः शस्त्रनिर्मलफेनवान् ।
प्रासादमालाद्रिवृतो रथ्यापणमहाह्रदः ॥ २६ ॥

योधचन्द्रोदयोद्भूतः कुरुराजमहार्णवः ।
व्यदृश्यत तदा राजंश्चन्द्रोदय इवोदधिः ॥ २७ ॥

राजन् ! जैसे चन्द्रोदयकालमें समुद्र उत्ताल तरङ्गोंसे व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार कुरुराज दुर्योधनरूपी महासागर सैनिक-समुदायरूपी चन्द्रमाके उदयसे अत्यन्त उल्लसित दिखायी देने लगा । सब ओर घूमता हुआ जनसमुदाय ही वहाँ जलमें उठनेवाली भँवरोंके समान जान पड़ता था । रथ, हाथी और घोड़े उसमें मछलीके समान प्रतीत होते थे । शंख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि ही उस कुरुराजरूपी समुद्रकी गर्जना थी । खजानोंका संग्रह ही रत्नराशिका प्रतिनिधित्व कर रहा था । योद्धाओंके विचित्र आभूषण और कवच ही उस समुद्रकी उठती हुई तरङ्गोंके समान जान पड़ते थे । चमकीले शस्त्र ही निर्मल फेन-से प्रतीत होते थे । महलोंकी पंक्तियाँ ही तटवर्ती पर्वत-सी जान पड़ती थीं । सड़कोंपर स्थित दूकानें ही मानो गुफाएँ थीं ॥ २५-२७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यसज्जकरणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें 'दुर्योधनका अपनी सेनाको सुसज्जित करना' इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाला एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१५३॥

## चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

### युधिष्ठिरका भगवान् श्रीकृष्णसे अपने समयोचित कर्तव्यके विषयमें पूछना, भगवान्‌का युद्धको ही कर्तव्य बताना तथा इस विषयमें युधिष्ठिरका संताप और अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णके वचनोंका समर्थन

*वैशम्पायन उवाच*

वासुदेवस्य तद् वाक्यमनुस्मृत्य युधिष्ठिरः ।
पुनः पप्रच्छ वार्ष्णेयं कथं मन्दोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णके पूर्वोक्त कथनका स्मरण करके युधिष्ठिरने पुनः उनसे पूछा—'भगवन् ! मन्दबुद्धि दुर्योधनने क्यों ऐसी बात कही ? ॥ १ ॥

अस्मिन्नभ्यागते काले किं च नः क्षममच्युत ।
कथं च वर्तमाना वै स्वधर्मान्न च्यवेमहि ॥ २ ॥

'अच्युत ! इस वर्तमान समयमें हमारे लिये क्या करना उचित है ? हम कैसा बर्ताव करें ? जिससे अपने धर्मसे नीचे न गिरें ॥ २ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
वासुदेव मतज्ञोऽसि मम सभ्रातृकस्य च ॥ ३ ॥

'वासुदेव ! दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके तथा भाइयों-सहित मेरे विचारोंको भी आप जानते हैं ॥ ३ ॥

विदुरस्यापि तद् वाक्यं श्रुतं भीष्मस्य चोभयोः ।
कुन्त्याश्च विपुलप्रज्ञ प्रज्ञा कार्त्स्न्येन ते श्रुता ॥ ४ ॥

'विदुरने और भीष्मजीने भी जो बातें कही हैं, उन्हें भी आपने सुना है । विशालबुद्धे ! माता कुन्तीका विचार भी आपने पूर्णरूपसे सुन लिया है ॥ ४ ॥

सर्वमेतदतिक्रम्य विचार्य च पुनः पुनः ।
क्षमं यन्नो महाबाहो तद् ब्रवीह्यविचारयन् ॥ ५ ॥

'महाबाहो ! इन सब विचारोंको लाँघकर स्वयं ही इस विषयपर बारंबार विचार करके हमारे लिये जो उचित हो, उसे निःसंकोच कहिये' ॥ ५ ॥

श्रुत्वैतद् धर्मराजस्य धर्मार्थसहितं वचः ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषः कृष्णो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धर्मराजका यह धर्म और अर्थसे युक्त वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने मेघ और दुन्दुभिके समान गम्भीर स्वरमें यह बात कही ॥ ६ ॥

कृष्ण उवाच

**उक्तवानस्मि यद् वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।**
**न तु तन्निकृतिप्रज्ञे कौरव्ये प्रतितिष्ठति ॥ ७ ॥**

**श्रीकृष्ण बोले**—मैंने जो धर्म और अर्थसे युक्त हितकर बात कही है, वह छल-कपट करनेमें ही कुशल कुरुवंशी दुर्योधनके मनमें नहीं बैठती है ॥ ७ ॥

**न च भीष्मस्य दुर्मेधाः शृणोति विदुरस्य वा ।**
**मम वा भाषितं किंचित् सर्वमेवातिवर्तते ॥ ८ ॥**

खोटी बुद्धिवाला वह दुष्ट न भीष्मकी, न विदुरकी और न मेरी ही कोई बात सुनता है । वह सबकी सभी बातोंको लाँघ जाता है ॥ ८ ॥

**नैष कामयते धर्मं नैष कामयते यशः ।**
**जितं स मन्यते सर्वं दुरात्मा कर्णमाश्रितः ॥ ९ ॥**

दुरात्मा दुर्योधन कर्णका आश्रय लेकर सभी वस्तुओंको जीती हुई ही समझता है । इसीलिये न यह धर्मकी इच्छा रखता है और न यशकी ही कामना करता है ॥ ९ ॥

**बन्धमाज्ञापयामास मम चापि सुयोधनः ।**
**न च तं लब्धवान् कामं दुरात्मा पापनिश्चयः ॥ १० ॥**

पापपूर्ण निश्चयवाले उस दुरात्मा दुर्योधनने तो मुझे भी कैद कर लेनेकी आज्ञा दे दी थी; परंतु वह उस मनोरथको पूर्ण न कर सका ॥ १० ॥

**न च भीष्मो न च द्रोणो युक्तं तत्राहतुर्वचः ।**
**सर्वे तमनुवर्तन्ते ऋते विदुरमच्युत ॥ ११ ॥**

अच्युत ! वहाँ भीष्म तथा द्रोणाचार्य भी सदा उचित बात नहीं कहते हैं । विदुरको छोड़कर अन्य सब लोग दुर्योधनका ही अनुसरण कर लेते हैं ॥ ११ ॥

**शकुनिः सौबलश्चैव कर्णदुःशासनावपि ।**
**त्वय्ययुक्तान्यभाषन्त मूढा मूढममर्षणम् ॥ १२ ॥**

सुबलपुत्र शकुनि, कर्ण और दुःशासन—इन तीनों मूर्खोंने मूढ़ और असहिष्णु दुर्योधनके समीप आपके विषयमें अनेक अनुचित बातें कही थीं ॥ १२ ॥

**किं च तेन मयोक्तेन यान्यभाषत कौरवः ।**
**संक्षेपेण दुरात्मासौ न युक्तं त्वयि वर्तते ॥ १३ ॥**

उन लोगोंने जो-जो बातें कहीं, उन्हें यदि मैं पुनः यहाँ दोहराऊँ तो इससे क्या लाभ है ? थोड़ेमें इतना ही समझ लीजिये कि वह दुरात्मा कौरव आपके प्रति न्याययुक्त बर्ताव नहीं कर रहा है ॥ १३ ॥

**पार्थिवेषु न सर्वेषु य इमे तव सैनिकाः ।**
**यत् पापं यन्नकल्याणं सर्वं तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥**

इन सब राजाओंमें, जो आपकी सेनामें स्थित हैं, वैसा पाप और अमङ्गलकारक भाव नहीं है, वह सब अकेले दुर्योधनमें विद्यमान है ॥ १४ ॥

**न चापि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्हिचित् ।**
**कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ॥ १५ ॥**

हमलोग भी बहुत अधिक त्याग करके ( सर्वस्व खोकर ) कभी किसी भी दशामें कौरवोंके साथ संधिकी इच्छा नहीं रखते हैं । अतः इसके बाद हमारे लिये युद्ध ही करना उचित है ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

**तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे वासुदेवस्य भाषितम् ।**
**अब्रुवन्तो मुखं राज्ञः समुदैक्षन्त भारत ॥ १६ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भरतनन्दन ! भगवान् श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर सब राजा कुछ न बोलते हुए केवल महाराज युधिष्ठिरके मुँहकी ओर देखने लगे ॥ १६ ॥

**युधिष्ठिरस्त्वभिप्रायमभिलक्ष्य महीक्षिताम् ।**
**योगमाज्ञापयामास भीमार्जुनयमैः सह ॥ १७ ॥**

युधिष्ठिरने राजाओंका अभिप्राय समझकर भीम, अर्जुन तथा नकुल-सहदेवके साथ उन्हें युद्धके लिये तैयार हो जानेकी आज्ञा दे दी ॥ १७ ॥

**ततः किलकिलाभूतमनीकं पाण्डवस्य ह ।**
**आज्ञापिते तदा योगे समहृष्यन्त सैनिकाः ॥ १८ ॥**

उस समय युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा मिलते ही समस्त योद्धा हर्षसे खिल उठे, फिर तो पाण्डवोंके सैनिक किलकारियाँ करने लगे ॥ १८ ॥

**अवध्यानां वधं पश्यन् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।**
**निःश्वसन् भीमसेनं च विजयं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥**

धर्मराज युधिष्ठिर यह देखकर कि युद्ध छिड़नेपर अवध्य पुरुषोंका भी वध करना पड़ेगा, खेदसे लम्बी साँस खींचते हुए भीमसेन और अर्जुनसे इस प्रकार बोले— ॥ १९ ॥

**यदर्थं वनवासश्च प्राप्तं दुःखं च यन्मया ।**
**सोऽयमस्मानुपैत्येव परोऽनर्थः प्रयत्नतः ॥ २० ॥**

'जिससे बचनेके लिये मैंने वनवासका कष्ट स्वीकार किया और नाना प्रकारके दुःख सहन किये, वही महान् अनर्थ मेरे प्रयत्नसे भी टल न सका । वह हमलोगोंपर आना ही चाहता है ॥ २० ॥

**तस्मिन् यत्नः कृतोऽस्माभिः स नो हीनः प्रयत्नतः ।**
**अकृते तु प्रयत्नेऽस्मानुपावृत्तः कलिर्महान् ॥ २१ ॥**

'यद्यपि उसे टालनेके लिये हमारी ओरसे पूरा प्रयत्न किया गया, किंतु हमारे प्रयाससे उसका निवारण नहीं हो सका और जिसके लिये कोई प्रयत्न नहीं किया गया था, वही महान् कलह स्वतः हमारे ऊपर आ गया ॥ २१ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**कथं ह्यवध्यैः संग्रामः कार्यः सह भविष्यति ।**
**कथं हत्वा गुरून् वृद्धान् विजयो नो भविष्यति ॥ २२ ॥**

'जो लोग मारने योग्य नहीं हैं, उनके साथ युद्ध करना कैसे उचित होगा ? वृद्ध गुरुजनोंका वध करके हमें विजय किस प्रकार प्राप्त होगी ?' ॥ २२ ॥

**तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्य सव्यसाची परंतपः ।**
**यदुक्तं वासुदेवेन श्रावयामास तद् वचः ॥ २३ ॥**

धर्मराजकी यह बात सुनकर शत्रुओंको संताप देनेवाले सव्यसाची अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी कही हुई बातोंको उनसे कह सुनाया ॥ २३ ॥

**उक्तवान् देवकीपुत्रः कुन्त्याश्च विदुरस्य च ।**
**वचनं तत् त्वया राजन् निखिलेनावधारितम् ॥ २४ ॥**

वे कहने लगे—'राजन् ! देवकीनन्दन श्रीकृष्णने माता कुन्ती तथा विदुरजीके कहे हुए जो वचन आपको सुनाये थे, उनपर आपने पूर्णरूपसे विचार किया होगा ॥ २४ ॥

**न च तौ वक्ष्यतोऽधर्ममिति मे नैष्ठिकी मतिः ।**
**नापि युक्तं च कौन्तेय निवर्तितुमयुध्यतः ॥ २५ ॥**

'मेरा तो यह निश्चित मत है कि वे दोनों अधर्मकी बात नहीं कहेंगे । कुन्तीनन्दन ! अब हमारे लिये युद्धसे निवृत्त हो जाना भी उचित नहीं है' ॥ २५ ॥

**तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽपि सव्यसाचिवचस्तदा ।**
**स्मयमानोऽब्रवीद् वाक्यं पार्थमेवमिति ब्रुवन् ॥ २६ ॥**

अर्जुनका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण भी युधिष्ठिरसे मुसकराते हुए बोले—'हाँ, अर्जुन ठीक कहते हैं' ॥

**ततस्ते धृतसंकल्पा युद्धाय सहसैनिकाः ।**
**पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुखमावसन् ॥ २७ ॥**

महाराज जनमेजय ! तदनन्तर योद्धाओंसहित पाण्डव युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके उस रातमें वहाँ सुखपूर्वक रहे ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें युधिष्ठिर-अर्जुन-संवादविषयक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५४ ॥

# पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## दुर्योधनके द्वारा सेनाओंका विभाजन और पृथक्-पृथक् अक्षौहिणियोंके सेनापतियोंका अभिषेक

*वैशम्पायन उवाच*

**व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः ।**
**व्यभजत् तान्यनीकानि दश चैकं च भारत ॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब राजा दुर्योधनने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका विभाग किया ॥ १ ॥

**नरहस्तिरथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च ।**
**सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु संदिदेश नराधिपः ॥ २ ॥**

राजा दुर्योधनने पैदल, हाथी, रथ और घुड़सवार—इन सभी सेनाओंमेंसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणियोंको पृथक्-पृथक् करके उन्हें यथास्थान नियुक्त कर दिया ॥ २ ॥

**सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः ।**
**सोपासङ्गाः सशक्तीकाः सनिषङ्गाः सहर्ष्टयः ॥ ३ ॥**
**सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोमराः ।**
**रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिच्छदाः ॥ ४ ॥**
**सकचग्रहविक्षेपाः सतैलगुडवालुकाः ।**
**साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसवः ॥ ५ ॥**
**सघण्टफलकाः सर्वे सायोगुडजलोपलाः ।**
**सशालभिन्दिपालाश्च समधूच्छिष्टमुद्गराः ॥ ६ ॥**
**सकाण्डदण्डकाः सर्वे ससीरविषतोमराः ।**
**सशूर्पपिटकाः सर्वे सदात्राङ्कुशतोमराः ॥ ७ ॥**
**सकीलकवचाः सर्वे वासीवृक्षादनान्विताः ।**
**व्याघ्रचर्मपरीवारा द्वीपिचर्मावृताश्च ते ॥ ८ ॥**
**सहर्ष्टयः सशृङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः ।**
**सकुठाराः सकुद्दालाः सतैलक्षौमसर्पिषः ॥ ९ ॥**

वे सब वीर अनुकर्ष ( रथकी मरम्मतके लिये उसके नीचे बँधा हुआ काष्ठ ), तरकस, वरूथ ( रथको ढकनेका बाघ आदिका चमड़ा ), उपासङ्ग ( जिन्हें हाथी या घोड़े उठा सकें, ऐसे तरकस ), तोमर, शक्ति, निषङ्ग ( पैदलोंद्वारा ले जाये जानेवाले तरकस ), ऋष्टि ( एक प्रकारकी लोहेकी लाठी ), ध्वजा, पताका, धनुष-बाण, तरह-तरहकी रस्सियाँ, पाश, विस्तर, कचग्रह-विक्षेप ( बाल पकड़कर गिरानेका यन्त्र ); तेल, गुड़, बालू, विषधर सर्पोंके घड़े, रालका चूरा, घण्टफलक ( घुँघुरुओंवाली ढाल ), खड्गादि लोहेके शस्त्र, औंटा हुआ गुड़का पानी, ढेले, साल, भिन्दिपाल ( गोफियाँ ), मोम चुपड़े हुए मुद्गर, काँटीदार लाठियाँ, हल, विष लगे हुए बाण, सूप तथा टोकरियाँ, दरात, अङ्कुश, तोमर, काँटेदार कवच, बसूले, आरे आदि, बाघ और गैंड़ेके चमड़ेसे मढ़े हुए रथ, ऋष्टि, सींग, प्रास, भाँति-भाँतिके आयुध, कुठार, कुदाल, तेलमें भीगे हुए रेशमी वस्त्र तथा घी लिये हुए थे ॥ ३–९ ॥

**रुक्मजालप्रतिच्छन्ना नानामणिविभूषिताः ।**
**चित्रानीकाः सुवपुषो ज्वलिता इव पावकाः ॥ १० ॥**



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वे सभी सैनिक सोनेके जालीदार कवच धारण किये नाना प्रकारके मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हो समस्त सेनाको ही विचित्र शोभासे सम्पन्न करते हुए अपने सुन्दर शरीरसे प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १० ॥

**तथा कवचिनः शूराः शस्त्रेषु कृतनिश्चयाः ।**
**कुलीना हययोनिज्ञाः सारथ्ये विनिवेशिताः ॥ ११ ॥**

इसी प्रकार जो शस्त्र-विद्याका निश्चित ज्ञान रखनेवाले, कुलीन तथा घोड़ोंकी नस्लको पहचाननेवाले थे, वे कवचधारी शूरवीर ही सारथिके कामपर नियुक्त किये गये थे ॥ ११ ॥

**बद्धारिष्टा बद्धकक्षा बद्धध्वजपताकिनः ।**
**बद्धाभरणनिर्यूहा बद्धचर्मासिपट्टिशाः ॥ १२ ॥**

उस सेनाके रथोंमें अमङ्गल-निवारणके लिये यन्त्र और ओषधियाँ बाँधी गयी थीं । वे रस्सियोंसे खूब कसे गये थे। उन रथोंपर बँधी हुई ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं । उनके ऊपर छोटी-छोटी घंटियाँ बँधी थीं और कँगूरे जोड़े गये थे । उन सबमें ढाल-तलवार और पट्टिश आबद्ध थे ॥ १२ ॥

**चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे चोत्तमवाजिनः ।**
**सप्रासऋष्टिकाः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥ १३ ॥**

उन सभी रथोंमें चार-चार घोड़े जुते हुए थे, वे सभी घोड़े अच्छी जातिके थे और सम्पूर्ण रथोंमें प्रास, ऋष्टि एवं सौ-सौ धनुष रक्खे गये थे ॥ १३ ॥

**धुर्ययोर्हययोरेकस्तथान्यौ पार्ष्णिसारथी ।**
**तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित् तथा ॥ १४ ॥**
**नगराणीव गुप्तानि दुराधर्षाणि शत्रुभिः ।**
**आसन् रथसहस्राणि हेममालीनि सर्वशः ॥ १५ ॥**

प्रत्येक रथके दो-दो घोड़ोंपर एक-एक रक्षक नियुक्त था, एक-एक रथके लिये दो चक्ररक्षक नियत किये गये थे। वे दोनों ही रथियोंमें श्रेष्ठ थे तथा रथी भी अश्वसंचालनकी कलामें निपुण थे । सब ओर सुवर्णमालाओंसे अलंकृत हजारों रथ शोभा पाते थे । शत्रुओंके लिये उनका भेदन करना अत्यन्त कठिन था । वे सब-के-सब नगरोंकी भाँति सुरक्षित थे ॥ १४-१५ ॥

**यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्षाः स्वलंकृताः ।**
**बभूवुः सप्तपुरुषा रत्नवन्त इवाद्रयः ॥ १६ ॥**

जिस प्रकार रथ सजाये गये थे, उसी प्रकार हाथियोंको भी स्वर्णमालाओंसे सुसज्जित किया गया था । उन सबको रस्सोंसे कसा गया था । उनपर सात-सात पुरुष बैठे हुए थे, जिससे वे हाथी रत्नयुक्त पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ॥ १६ ॥

**द्वावङ्कुशधरौ तत्र द्वावुत्तमधनुर्धरौ ।**
**द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्तिपिनाकधृक् ॥ १७ ॥**

राजन् ! उनमेंसे दो पुरुष अङ्कुश लेकर महावतका काम करते थे, दो उत्तम धनुर्धर योद्धा थे, दो पुरुष अच्छी तलवारें लिये रहते थे और एक पुरुष शक्ति तथा त्रिशूल धारण करता था ॥

**गजैर्मत्तैः समाकीर्णं सर्वमायुधकोशकैः ।**
**तद् बभूव बलं राजन् कौरव्यस्य महात्मनः ॥ १८ ॥**

राजन् ! महामना दुर्योधनकी वह सारी सेना ही अस्त्र-शस्त्रोंके भण्डारसे युक्त मदमत्त गजराजोंसे व्याप्त हो रही थी ॥

**आमुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः स्वलङ्कृतैः ।**
**सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चायुतशो हयाः ॥ १९ ॥**

इसी प्रकार कवचधारी, युद्धके लिये उद्यत, आभूषणोंसे विभूषित तथा पताकाधारी सवारोंसे युक्त हजारों-लाखों घोड़े उस सेनामें मौजूद थे ॥ १९ ॥

**असंग्राहाः सुसम्पन्ना हेमभाण्डपरिच्छदाः ।**
**अनेकशतसाहस्राः सर्वे सादिवशे स्थिताः ॥ २० ॥**

वे घोड़े उछल-कूद मचाने आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण सदा अपने सवारोंके वशमें रहते थे । उन्हें अच्छी शिक्षा मिली थी । वे सुनहरे साजोंसे सुसज्जित थे । उनकी संख्या कई लाख थी ॥ २० ॥

**नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः ।**
**पदातिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ॥ २१ ॥**

उस सेनामें जो पैदल मनुष्य थे, वे भी सोनेके हारोंसे अलंकृत थे । उनके रूप-रंग, कवच और अस्त्र-शस्त्र नाना प्रकारके दिखायी देते थे ॥ २१ ॥

**रथस्यासन् दश गजा गजस्य दश वाजिनः ।**
**नरा दश हयस्यासन् पादरक्षाः समन्ततः ॥ २२ ॥**

एक-एक रथके पीछे दस-दस हाथी, एक-एक हाथीके पीछे दस-दस घोड़े और एक-एक घोड़ेके पीछे दस-दस पैदल सैनिक सब ओर पादरक्षक नियुक्त किये गये थे ॥

**रथस्य नागाः पञ्चाशन्नागस्यासन् शतं हयाः ।**
**हयस्य पुरुषाः सप्त भिन्नसंधानकारिणः ॥ २३ ॥**

एक-एक रथके पीछे पचास-पचास हाथी, एक-एक हाथीके पीछे सौ-सौ घोड़े और एक एक घोड़ेके साथ सात-सात पैदल सैनिक इस उद्देश्यसे संगठित किये गये थे कि वे समूहसे बिछुड़ी हुई दो सैनिक टुकड़ियोंको परस्पर मिला दें ॥

**सेना पञ्चशतं नागा रथास्तावन्त एव च ।**
**दश सेना च पृतना पृतना दशवाहिनी ॥ २४ ॥**

पाँच सौ हाथियों और पाँच सौ रथोंकी एक सेना होती है । दस सेनाओंकी एक पृतना और दस पृतनाओंकी एक वाहिनी होती है ॥ २४ ॥

**सेना च वाहिनी चैव पृतना ध्वजिनी चमूः ।**
**अक्षौहिणीति पर्यायैर्निरुक्ता च वरूथिनी ॥ २५ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इसके सिवा सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू, वरूथिनी और अक्षौहिणी—इन पर्यायवाची ( समानार्थक ) नामोंद्वारा भी सेनाका वर्णन किया गया है ॥ २५ ॥

**एवं व्यूढान्यनीकानि कौरवेयेण धीमता ।**
**अक्षौहिण्यो दशैका च संख्याताः सप्त चैव ह ॥२६॥**

इस प्रकार बुद्धिमान् दुर्योधनने अपनी सेनाओंको व्यूहरचनापूर्वक संगठित किया था । कुरुक्षेत्रमें ग्यारह और सात मिलकर अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं ॥

**अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पाण्डवानामभूद् बलम् ।**
**अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद् बलम् ॥ २७॥**

पाण्डवोंकी सेना केवल सात अक्षौहिणी थी और कौरवोंके पक्षमें ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हो गयी थीं ॥

**नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते ।**
**सेनामुखं च तिस्रस्ता गुल्म इत्यभिशब्दितम् ॥ २८ ॥**

पचपन पैदलोंकी एक टुकड़ीको पत्ति कहते हैं । तीन पत्तियाँ मिलकर एक सेनामुख कहलाती हैं । सेनामुखका ही दूसरा नाम गुल्म है ॥ २८ ॥

**त्रयो गुल्मा गणस्त्वासीद् गणास्त्वयुतशोऽभवन् ।**
**दुर्योधनस्य सेनासु योत्स्यमानाः प्रहारिणः ॥ २९ ॥**

तीन गुल्मोंका एक गण होता है । दुर्योधनकी सेनाओंमें युद्ध करनेवाले पैदल योद्धाओंके ऐसे-ऐसे गण दस हजारसे भी अधिक थे ॥ २९ ॥

**तत्र दुर्योधनो राजा शूरान् बुद्धिमतो नरान् ।**
**प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥ ३० ॥**

उस समय वहाँ महाबाहु राजा दुर्योधनने अच्छी तरह सोच-विचारकर बुद्धिमान् एवं शूरवीर पुरुषोंको सेनापति बनाया ॥

**पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन् नरसत्तमान् ।**
**विधिवत् पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यषेचयत् ॥ ३१ ॥**
**कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम् ।**
**सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥ ३२ ॥**
**द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च ।**
**शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम् ॥ ३३ ॥**

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा—इन श्रेष्ठ पुरुषोंको एवं मद्रराज शल्य, सिंधुराज जयद्रथ, कम्बोजराज सुदक्षिण, कृतवर्मा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलपुत्र शकुनि तथा महाबली बाह्लीक—इन राजाओंको पहले अपने सामने बुलाकर उन सबको पृथक्-पृथक् एक-एक अक्षौहिणी सेनाका नायक निश्चित करके विधिपूर्वक उनका अभिषेक किया ॥३१–३३॥

**दिवसे दिवसे तेषां प्रतिवेलं च भारत ।**
**चक्रे स विविधाः पूजाः प्रत्यक्षं च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥**

भारत ! दुर्योधन प्रतिदिन और प्रत्येक वेलामें उन सेनापतियोंका बारंबार विविध प्रकारसे प्रत्यक्ष पूजन करता था ॥

**तथा विनियताः सर्वे ये च तेषां पदानुगाः ।**
**बभूवुः सैनिका राज्ञां प्रियं राज्ञश्चिकीर्षवः ॥ ३५ ॥**

उनके जो अनुयायी थे, उनको भी उसी प्रकार यथायोग्य स्थानोंपर नियुक्त कर दिया गया । वे राजाओंके सैनिक राजा दुर्योधनका प्रिय करनेकी इच्छा रखकर अपने-अपने कार्यमें तत्पर हो गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यविभागे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें दुर्योधनकी सेनाका विभागविषयक एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१५५

# षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## दुर्योधनके द्वारा भीष्मजीका प्रधान सेनापतिके पदपर अभिषेक और कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर शिविर-निर्माण

*वैशम्पायन उवाच*

**ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः ।**
**सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन समस्त राजाओंके साथ शान्तनुनन्दन भीष्मके पास जा हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—॥ १ ॥

**ऋते सेनाप्रणेतारं पृतना सुमहत्यपि ।**
**दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा ॥ २ ॥**

'पितामह ! कितनी ही बड़ी सेना क्यों न हो ? किसी योग्य सेनापतिके बिना युद्धमें जाकर चींटियोंकी पंक्तिके समान छिन्न-भिन्न हो जाती है ॥ २ ॥

**न हि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित् ।**
**शौर्यं च बलनेतॄणां स्पर्धते च परस्परम् ॥ ३ ॥**

'दो पुरुषोंकी बुद्धि कभी समान नहीं होती । यदि दोनों ओर योग्य सेनापति हों तो उनका शौर्य एक-दूसरेकी होड़में बढ़ता है ॥ ३ ॥

**श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः ।**
**अभ्ययुर्ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छ्रितकुशध्वजाः ॥ ४ ॥**

'महामते ! सुना जाता है कि समस्त ब्राह्मणोंने अपनी कुशमयी ध्वजा फहराते हुए पहले कभी अमिततेजस्वी हैहयवंशके क्षत्रियोंपर आक्रमण किया था ॥ ४ ॥

**तानभ्ययुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह ।**
**एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'पितामह ! उस समय ब्राह्मणोंके साथ वैश्यों और शूद्रोंने भी उनपर धावा किया था। एक ओर तीनों वर्णके लोग थे और दूसरी ओर चुने हुए श्रेष्ठ क्षत्रिय ॥ ५ ॥

**ततो युद्धेष्वभज्यन्त त्रयो वर्णाः पुनः पुनः ।**
**क्षत्रियाश्च जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम् ॥ ६ ॥**

'तदनन्तर जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब तीनों वर्णोंके लोग बारंबार पीठ दिखाकर भागने लगे। यद्यपि इनकी सेना अधिक थी तो भी क्षत्रियोंने एकमत होकर उनपर विजय पायी ॥ ६ ॥

**ततस्ते क्षत्रियानेव पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।**
**तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह ॥ ७ ॥**

'पितामह ! तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे ही पूछा—हमारी पराजयका क्या कारण है ? उस समय धर्मज्ञ क्षत्रियोंने उनसे यथार्थ कारण बता दिया ॥ ७ ॥

**वयमेकस्य शृण्वाना महाबुद्धिमतो रणे ।**
**भवन्तस्तु पृथक् सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः ॥ ८ ॥**

'वे बोले—हमलोग एक परम बुद्धिमान् पुरुषको सेनापति बनाकर युद्धमें उसीका आदेश सुनते और मानते हैं। परंतु आप सब लोग पृथक्-पृथक् अपनी ही बुद्धिके अधीन हो मनमाना बर्ताव करते हैं ॥ ८ ॥

**ततस्ते ब्राह्मणाश्चक्रुरेकं सेनापतिं द्विजम् ।**
**नये सुकुशलं शूरमजयन् क्षत्रियांस्ततः ॥ ९ ॥**

'यह सुनकर उन ब्राह्मणोंने एक शूरवीर एवं नीति-निपुण ब्राह्मणको सेनापति बनाया और क्षत्रियोंपर विजय प्राप्त की॥

**एवं ये कुशलं शूरं हितेप्सितमकल्मषम् ।**
**सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून् ॥ १० ॥**

'इस प्रकार जो लोग किसी हितैषी, पापरहित तथा युद्ध-कुशल शूरवीरको सेनापति बना लेते हैं, वे संग्राममें शत्रुओं-पर अवश्य विजय पाते हैं ॥ १० ॥

**भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम ।**
**असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव ॥ ११ ॥**

'आप सदा मेरा हित चाहनेवाले तथा नीतिमें शुक्राचार्य-के समान हैं। आपको आपकी इच्छाके विना कोई मार नहीं सकता। आप सदा धर्ममें ही स्थित रहते हैं, अतः हमारे प्रधान सेनापति हो जाइये ॥ ११ ॥

**रश्मिवतामिवादित्यो वीरुधामिव चन्द्रमाः ।**
**कुबेर इव यक्षाणां देवानामिव वासवः ॥ १२ ॥**
**पर्वतानां यथा मेरुः सुपर्णः पक्षिणां यथा ।**
**कुमार इव देवानां वसूनामिव हव्यवाट् ॥ १३ ॥**

'जैसे किरणोंवाले तेजस्वी पदार्थोंके सूर्य, वृक्ष और ओषधियोंके चन्द्रमा, यक्षोंके कुबेर, देवताओंके इन्द्र, पर्वतोंके मेरु, पक्षियोंके गरुड, समस्त देवयोनियोंके कार्तिकेय और वसुओंके अग्निदेव अधिपति एवं संरक्षक हैं (उसी प्रकार आप हमारी समस्त सेनाओंके अधिनायक और संरक्षक हों) ॥ १२-१३ ॥

**भवता हि वयं गुप्ताः शक्रेणेव दिवौकसः ।**
**अनाधृष्या भविष्यामस्त्रिदशानामपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥**

'इन्द्रके द्वारा सुरक्षित देवताओंकी भाँति आपके संरक्षणमें रहकर हमलोग निश्चय ही देवगणोंके लिये भी अजेय हो जायँगे॥

**प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।**
**वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥ १५ ॥**

'जैसे कार्तिकेय देवताओंके आगे-आगे चलते हैं, वैसे ही आप हमारे अगुआ हों। जैसे बछड़े साँड़के पीछे चलते हैं, उसी प्रकार हम आपका अनुसरण करेंगे' ॥ १५ ॥

*भीष्म उवाच*

**एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।**
**यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥ १६ ॥**

भीष्मने कहा—भारत ! तुम जैसा कहते हो वह ठीक है, पर मेरे लिये जैसे तुम हो, वैसे ही पाण्डव हैं ॥ १६ ॥

**अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप ।**
**संयोद्धव्यं तवार्थाय यथा मे समयः कृतः ॥ १७ ॥**

नरेश्वर ! मैं पाण्डवोंको उनके पूछनेपर अवश्य ही हितकी बात बताऊँगा और तुम्हारे लिये युद्ध करूँगा। ऐसी ही मैंने प्रतिज्ञा की है ॥ १७ ॥

**न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि ।**
**ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात् कुन्तीपुत्राद् धनंजयात् ॥ १८ ॥**

मैं इस भूतलपर नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र अर्जुनके सिवा दूसरे किसी योद्धाको अपने समान नहीं देखता हूँ ॥ १८ ॥

**स हि वेद महाबुद्धिर्दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।**
**न तु मां विवृतो युद्धे जातु युध्येत पाण्डवः ॥ १९ ॥**

महाबुद्धिमान् पाण्डुकुमार अर्जुन अनेक दिव्यास्त्रोंका ज्ञान रखते हैं; परंतु वे मेरे सामने आकर प्रकट रूपसे कभी युद्ध नहीं कर सकते ॥ १९ ॥

**अहं चैव क्षणेनैव निर्मनुष्यमिदं जगत् ।**
**कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम् ॥ २० ॥**

अर्जुनकी ही भाँति मैं भी यदि चाहूँ तो अपने शस्त्रोंके बलसे देवता, मनुष्य, असुर तथा राक्षसोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्को क्षणभरमें निर्जीव बना दूँ ॥ २० ॥

**न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप ।**
**तस्माद् योधान् हनिष्यामि प्रयोगेणायुतं सदा ॥ २१ ॥**
**एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन ।**
**न चेत् ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे ॥ २२ ॥**

परंतु जनेश्वर ! मैं पाण्डुके पुत्रोंकी किसी तरह हत्या

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नहीं करूँगा । कुरुनन्दन ! यदि पाण्डव इस युद्धमें मुझे पहले ही नहीं मार डालेंगे तो मैं अपने अस्त्रोंके प्रयोगद्वारा प्रतिदिन उनके पक्षके दस हजार योद्धाओंका वध करता रहूँगा, मैं इस प्रकार इनकी सेनाका संहार करूँगा॥२१-२२॥

**सेनापतिस्त्वहं राजन् समये नापरेण ते ।**
**भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहार्हसि ॥ २३ ॥**

राजन् ! मैं अपनी इच्छाके अनुसार एक शर्तपर तुम्हारा सेनापति होऊँगा । उसके बदले दूसरी शर्त नहीं मानूँगा । उस शर्तको तुम मुझसे यहाँ सुन लो ॥ २३ ॥

**कर्णो वा युध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते ।**
**स्पर्धते हि सदात्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे ॥ २४ ॥**

पृथ्वीपते ! या तो पहले कर्ण ही युद्ध कर ले या मैं ही युद्ध करूँ; क्योंकि यह सूतपुत्र सदा युद्धमें मुझसे अत्यन्त स्पर्धा रखता है ॥ २४ ॥

*कर्ण उवाच*

**नाहं जीवति गाङ्गेये राजन् योत्स्ये कथंचन ।**
**हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना ॥ २५ ॥**

**कर्ण बोला**—राजन् ! मैं गङ्गानन्दन भीष्मके जीते-जी किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा । इनके मारे जानेपर ही गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ लड़ूँगा ॥ २५ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद् भूरिदक्षिणम् ।**
**धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत ॥ २६ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भीष्मजीका प्रधान सेनापतिके पदपर विधिपूर्वक अभिषेक किया । अभिषेक हो जानेपर उनकी बड़ी शोभा हुई ॥ २६ ॥

**ततो भेरीश्च शङ्खांश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।**
**वादयामासुरव्यग्रा वादका राजशासनात् ॥ २७ ॥**

तदनन्तर बाजा बजानेवालोंने राजाकी आज्ञासे निर्भय होकर सैकड़ों और हजारों भेरियों तथा शंखोंको बजाया ॥

**सिंहनादाश्च विविधा वाहनानां च निःस्वनाः ।**
**प्रादुरासन्ननभ्रे च वर्षं रुधिरकर्दमम् ॥ २८ ॥**

उस समय वीरोंके सिंहनाद तथा वाहनोंके नाना प्रकारके शब्द सब ओर गूँज उठे । बिना बादलके ही आकाशसे रक्तकी वर्षा होने लगी, जिसकी कीच जम गयी ॥ २८ ॥

**निर्घाताः पृथिवीकम्पा गजबृंहितनिःस्वनाः ।**
**आसंश्च सर्वयोधानां पातयन्तो मनांस्युत ॥ २९ ॥**

हाथियोंके चिग्घाड़नेके साथ ही बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान भयंकर शब्द होने लगे । धरती डोलने लगी । इन सब उत्पातोंने प्रकट होकर समस्त योद्धाओंके मानसिक उत्साहको दबा दिया ॥ २९ ॥

**वाचश्चाप्यशरीरिण्यो दिवश्चोल्काः प्रपेदिरे ।**
**शिवाश्च भयवेदिन्यो नेदुर्दीप्ततरा भृशम् ॥ ३० ॥**

अशुभ आकाशवाणी सुनायी देने लगी, आकाशसे उल्काएँ गिरने लगीं, भयकी सूचना देनेवाली सियारिनियाँ जोर-जोरसे अमङ्गलजनक शब्द करने लगीं ॥ ३० ॥

**सैनापत्ये यदा राजा गाङ्गेयमभिषिक्तवान् ।**
**तदैतान्युग्ररूपाणि बभूवुः शतशो नृप ॥ ३१ ॥**

नरेश्वर ! राजा दुर्योधनने जब गङ्गानन्दन भीष्मको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया, उसी समय ये सैकड़ों भयानक उत्पात प्रकट हुए ॥ ३१ ॥

**ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम् ।**
**वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान् गोभिर्निष्कैश्च भूरिशः॥ ३२ ॥**
**वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः ।**
**आपगेयं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ ३३ ॥**
**स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह ॥ ३४ ॥**

इस प्रकार शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले भीष्मको सेनापति बनाकर दुर्योधनने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उन्हें गौओं तथा सुवर्णमुद्राओंकी भूरि-भूरि दक्षिणाएँ दीं । उस समय ब्राह्मणोंने विजयसूचक आशीर्वादोंद्वारा राजाका अभ्युदय मनाया और वह सैनिकोंसे घिरकर भीष्मजीको आगे करके भाइयोंके साथ हस्तिनापुरसे बाहर निकला तथा विशाल तम्बू-शामियानोंके साथ कुरुक्षेत्रको गया ३२—३४

**परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः ।**
**शिबिरं मापयामास समे देशे जनाधिप ॥ ३५ ॥**

जनमेजय ! कर्णके साथ कुरुक्षेत्रमें जाकर दुर्योधनने

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एक समतल प्रदेशमें शिविरके लिये भूमिको नपवाया ॥ ३५ ॥

**मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने ।**
**यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमावभौ ॥ ३६ ॥**

ऊसररहित मनोहर प्रदेशमें जहाँ घास और ईंधनकी बहुतायत थी, दुर्योधनकी सेनाका शिविर हस्तिनापुरकी भाँति सुशोभित होने लगा ॥ ३६ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि भीष्मसैनापत्ये षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें भीष्मका सेनापतित्वविषयक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५६ ॥

# सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## युधिष्ठिरके द्वारा अपने सेनापतियोंका अभिषेक, यदुवंशियोंसहित बलरामजीका आगमन तथा पाण्डवोंसे विदा लेकर उनका तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान

जनमेजय उवाच

**आपगेयं महात्मानं भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।**
**पितामहं भारतानां ध्वजं सर्वमहीक्षिताम् ॥ १ ॥**
**बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिवीसमम् ।**
**समुद्रमिव गाम्भीर्ये हिमवन्तमिव स्थिरम् ॥ २ ॥**
**प्रजापतिमिवौदार्ये तेजसा भास्करोपमम् ।**
**महेन्द्रमिव शत्रूणां ध्वंसनं शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥**
**रणयज्ञे प्रवितते सुभीमे लोमहर्षणे ।**
**दीक्षितं चिररात्राय श्रुत्वा तत्र युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥**
**किमब्रवीन्महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।**
**भीमसेनार्जुनौ वापि कृष्णो वा प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥**

**जनमेजयने पूछा**—भगवन् ! भरतवंशियोंके पितामह गङ्गानन्दन महात्मा भीष्म सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ थे । समस्त राजाओंमें ध्वजके समान उनका बहुत ऊँचा स्थान था । वे बुद्धिमें बृहस्पति, क्षमामें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र, स्थिरतामें हिमवान्, उदारतामें प्रजापति और तेजमें भगवान् सूर्यके समान थे । वे अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा देवराज इन्द्रके समान शत्रुओंका विध्वंस करनेवाले थे । उस समय जो अत्यन्त भयंकर तथा रोमाञ्चकारी रणयज्ञ आरम्भ हुआ था, उसमें उन्होंने जब दीर्घकालके लिये दीक्षा ले ली, तब इस समाचारको सुननेके पश्चात् सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु युधिष्ठिरने क्या कहा ? भीमसेन तथा अर्जुनने भी उसके बारेमें क्या कहा ? अथवा भगवान् श्रीकृष्णने अपना मत किस प्रकार व्यक्त किया ? ॥ १–५ ॥

वैशम्पायन उवाच

**आपद्धर्मार्थकुशलो महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ।**
**सर्वान् भ्रातॄन् समानीय वासुदेवं च शाश्वतम् ॥ ६ ॥**
**उवाच वदतां श्रेष्ठः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।**

**वैशम्पायनजीने कहा**—राजन् ! आपद्धर्मके विषयमें कुशल, वक्ताओंमें श्रेष्ठ, परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरने उस समय सम्पूर्ण भाइयों तथा सनातन भगवान् वासुदेवको बुलाकर सान्त्वनापूर्वक इस प्रकार कहा—॥ ६½ ॥

**पर्याक्रामत सैन्यानि यत्तास्तिष्ठत दंशिताः ॥ ७ ॥**
**पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति ।**
**तस्मात् सप्तसु सेनासु प्रणेतॄन् मम पश्यत ॥ ८ ॥**

'तुम सब लोग सब ओर घूम-फिरकर अपनी सेनाओंका निरीक्षण करो और कवच आदिसे सुसज्जित होकर खड़े हो जाओ । सबसे पहले पितामह भीष्मसे तुम्हारा युद्ध होगा, इसलिये अपनी सात अक्षौहिणी सेनाओंके सेनापतियोंको देखभाल कर लो' ॥ ७-८ ॥

कृष्ण उवाच

**यथार्हति भवान् वक्तुमस्मिन् काले ह्युपस्थिते ।**
**तथेदमर्थवद् वाक्यमुक्तं ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥**

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले**—भरतकुलभूषण ! ऐसे अवसर उपस्थित होनेपर आपको जैसी बात कहनी चाहिये, वैसी ही यह अर्थयुक्त बात आपने कही है ॥ ९ ॥

**रोचते मे महाबाहो क्रियतां यदनन्तरम् ।**
**नायकास्तव सेनायां क्रियन्तामिह सप्त वै ॥ १० ॥**

महाबाहो ! मुझे आपकी बात ठीक लगती है; अब इस समय जो आवश्यक कर्तव्य है, उसका पालन कीजिये । अपनी सेनाके सात सेनापतियोंको यहाँ निश्चित कर लीजिये ॥

वैशम्पायन उवाच

**ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम् ।**
**धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं धृष्टकेतुं च पार्थिवम् ॥ ११ ॥**
**शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं सहदेवं च मागधम् ।**
**एतान् सप्त महाभागान् वीरान् युद्धाभिकाङ्क्षिणः ॥ १२ ॥**
**सेनाप्रणेतॄन् विधिवदभ्यषिञ्चद् युधिष्ठिरः ।**
**सर्वसेनापतिं चात्र धृष्टद्युम्नं चकार ह ॥ १३ ॥**
**द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्धाज्जातवेदसः ।**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पाण्डवोंके डेरेमें बलरामजी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

राजा द्रुपद, विराट, सात्यकि, पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, पाञ्चालवीर शिखण्डी और मगधराज सहदेव—इन सात युद्धाभिलाषी महाभाग वीरोंको युधिष्ठिरने विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया और धृष्टद्युम्नको सम्पूर्ण सेनाओंका प्रधान सेनापति बना दिया, जो द्रोणाचार्यका अन्त करनेके लिये प्रज्वलित अग्निसे उत्पन्न हुए थे ॥ ११—१३½॥

**सर्वेषामेव तेषां तु समस्तानां महात्मनाम् ॥ १४ ॥**
**सेनापतिपतिं चक्रे गुडाकेशं धनंजयम् ।**

तदनन्तर उन्होंने निद्राविजयी वीर धनंजयको उन समस्त महामना वीर सेनापतियोंका भी अधिपति बना दिया ॥ १४½ ॥

**अर्जुनस्यापि नेता च संयन्ता चैव वाजिनाम् ॥ १५ ॥**
**संकर्षणानुजः श्रीमान् महाबुद्धिर्जनार्दनः ।**

अर्जुनके भी नेता और उनके घोड़ोंके भी नियन्ता हुए बलरामजीके छोटे भाई परम बुद्धिमान् श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण ॥ १५½ ॥

**तद् दृष्ट्वोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥ १६ ॥**
**प्राविशद् भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः ।**
**सहाक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोद्धवादिभिः ॥ १७ ॥**
**रौक्मिणेयाहुकसुतैश्चारुदेष्णपुरोगमैः ।**
**वृष्णिमुख्यैरधिगतैर्व्याघ्रैरिव बलोत्कटैः ॥ १८ ॥**
**अभिगुप्तो महाबाहुर्मरुद्भिरिव वासवः ।**
**नीलकौशेयवसनः कैलासशिखरोपमः ॥ १९ ॥**
**सिंहखेलगतिः श्रीमान् मदरक्तान्तलोचनः ।**

राजन् ! तदनन्तर उस महान् संहारकारी युद्धको अत्यन्त संनिकट और प्रायः उपस्थित हुआ देख नीले रंगका रेशमी वस्त्र पहने कैलासशिखरके समान गौरवर्णवाले हलधारी महाबाहु श्रीमान् बलरामजीने पाण्डवोंके शिविरमें सिंहके समान लीलापूर्वक गतिसे प्रवेश किया । उनके नेत्रोंके कोने मदसे अरुण हो रहे थे। उनके साथ अक्रूर आदि यदुवंशी तथा गद, साम्ब, उद्धव, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण तथा आहुकपुत्र आदि प्रमुख वृष्णिवंशी भी जो सिंह और व्याघ्रोंके समान अत्यन्त उत्कट बलशाली थे, उन सबसे सुरक्षित बलरामजी वैसे ही सुशोभित हुए, मानो मरुद्गणोंके साथ महेन्द्र शोभा पा रहे हों। १६—१९½।

**तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः ॥ २० ॥**
**उदतिष्ठत् ततः पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः ।**
**गाण्डीवधन्वा ये चान्ये राजानस्तत्र केचन ॥ २१ ॥**

उन्हें देखते ही धर्मराज युधिष्ठिर, महातेजस्वी श्रीकृष्ण, भयंकर कर्म करनेवाले कुन्तीपुत्र भीमसेन तथा अन्य जो कोई भी राजा वहाँ विद्यमान थे, वे सब-के-सब उठकर खड़े हो गये ॥ २०-२१ ॥

**पूजयांचक्रिरे ते वै समायान्तं हलायुधम् ।**
**ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ॥ २२ ॥**

हलायुध बलरामजीको आता देख सबने उनका समादर किया । तदनन्तर पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने अपने हाथसे उनके हाथका स्पर्श किया ॥ २२ ॥

**वासुदेवपुरोगास्तं सर्व एवाभ्यवादयन् ।**
**विराटद्रुपदौ वृद्धावभिवाद्य हलायुधः ॥ २३ ॥**
**युधिष्ठिरेण सहित उपाविशदरिंदमः ।**

श्रीकृष्ण आदि सब लोगोंने उन्हें प्रणाम किया । तत्पश्चात् बूढ़े राजा विराट और द्रुपदको प्रणाम करके शत्रुदमन बलराम युधिष्ठिरके साथ बैठे ॥ २३½ ॥

**ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः ।**
**वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥ २४ ॥**

फिर उन सब राजाओंके चारों ओर बैठ जानेपर रोहिणीनन्दन बलरामने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए कहा—॥

**भवितायं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः ।**
**दिष्टमेतद् ध्रुवं मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २५ ॥**

'जान पड़ता है यह महाभयंकर और दारुण नरसंहार

होगा ही । प्रारब्धके इस विधानको मैं अटल मानता हूँ । अब इसे हटाया नहीं जा सकता ॥ २५ ॥

**तस्माद् युद्धात् समुत्तीर्णानपि वः ससुहृज्जनान् ।**
**अरोगानक्षतैर्देहैर्द्रष्टास्मीति मतिर्मम ॥ २६ ॥**

'इस युद्धसे पार हुए आप सब सुहृदोंको मैं अक्षत शरीरसे युक्त और नीरोग देखूँगा । ऐसा मेरा विश्वास है ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

समेतं पार्थिवं क्षत्रं कालपक्कमसंशयम् ।
विमर्दश्च महान् भावी मांसशोणितकर्दमः ॥ २७ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि यहाँ जो-जो क्षत्रिय नरेश एकत्र हुए हैं, उन सबको कालने अपना ग्रास बनानेके लिये पका दिया है। महान् जनसंहार होनेवाला है। इसमें रक्त और मांसकी कीच जम जायगी ॥ २७ ॥

उक्तो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपह्वरे ।
सम्बन्धिषु समां वृत्तिं वर्तस्व मधुसूदन ॥ २८ ॥
पाण्डवा हि यथास्माकं तथा दुर्योधनो नृपः ।
तस्यापि क्रियतां साह्यं स पर्येति पुनः पुनः ॥ २९ ॥

'मैंने एकान्तमें श्रीकृष्णसे बार-बार कहा था कि मधुसूदन ! अपने सभी सम्बन्धियोंके प्रति एक-सा बर्ताव करो; क्योंकि हमारे लिये जैसे पाण्डव हैं, वैसा ही राजा दुर्योधन है। उसकी भी सहायता करो। वह बार-बार अपने यहाँ चक्कर लगाता है ॥ २८-२९ ॥

तच्च मे नाकरोद् वाक्यं त्वदर्थे मधुसूदनः ।
निर्विष्टः सर्वभावेन धनंजयमवेक्ष्य ह ॥ ३० ॥

'परंतु युधिष्ठिर ! तुम्हारे लिये ही मधुसूदन श्रीकृष्णने मेरी उस बातको नहीं माना है। ये अर्जुनको देखकर सब प्रकारसे उसीपर निछावर हो रहे हैं ॥ ३० ॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः ।
तथा ह्यभिनिवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥ ३१ ॥

'मेरा निश्चित विश्वास है कि इस युद्धमें पाण्डवोंकी अवश्य विजय होगी। भारत ! श्रीकृष्णका भी ऐसा ही संकल्प है ॥ ३१ ॥

न चाहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुम् ।
ततोऽहमनुवर्तामि केशवस्य चिकीर्षितम् ॥ ३२ ॥

'मैं तो श्रीकृष्णके बिना इस सम्पूर्ण जगत्की ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता; अतः ये केशव जो कुछ करना चाहते हैं, मैं उसीका अनुसरण करता हूँ ॥ ३२ ॥

उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ ।
तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे ॥ ३३ ॥

'भीमसेन और दुर्योधन ये दोनों ही वीर मेरे शिष्य एवं गदायुद्धमें कुशल हैं; अतः मैं इन दोनोंपर एक-सा स्नेह रखता हूँ ॥ ३३ ॥

तस्माद् यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम् ।
न हि शक्ष्यामि कौरव्यान् नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥ ३४ ॥

'इसलिये मैं सरस्वती नदीके तटवर्ती तीर्थोंका सेवन करनेके लिये जाऊँगा; क्योंकि मैं नष्ट होते हुए कुरुवंशियोंको उस अवस्थामें देखकर उनकी उपेक्षा नहीं कर सकूँगा' ॥ ३४ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः ।
तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ॥ ३५ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु बलरामजी पाण्डवोंसे विदा ले मधुसूदन श्रीकृष्णको संतुष्ट करके तीर्थयात्राके लिये चले गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि बलरामतीर्थयात्रागमने सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें बलरामजीके तीर्थयात्राके लिये जानेसे सम्बन्ध रखनेवाला एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५७ ॥

# अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## रुक्मीका सहायता देनेके लिये आना; परंतु पाण्डव और कौरव दोनों पक्षोंके द्वारा कोरा उत्तर पाकर लौट जाना

*वैशम्पायन उवाच*

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः ।
हिरण्यरोम्णो नृपतेः साक्षादिन्द्रसखस्य वै ॥ १ ॥
आकृतीनामधिपतेर्भोजस्यातियशस्विनः ।
दाक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी समय अति यशस्वी दाक्षिणात्य देशके अधिपति भोजवंशी तथा इन्द्रके सखा हिरण्यरोमा नामवाले संकल्पोंके स्वामी महामना भीष्मकका सगा पुत्र, सम्पूर्ण दिशाओंमें विख्यात रुक्मी, पाण्डवोंके पास आया ॥ १-२ ॥

यः किंपुरुषसिंहस्य गन्धमादनवासिनः ।
कृत्स्नं शिष्यो धनुर्वेदं चतुष्पादमवाप्तवान् ॥ ३ ॥

जिसने गन्धमादननिवासी किंपुरुषप्रवर द्रुमका शिष्य होकर चारों पादोंसे युक्त सम्पूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी ॥ ३ ॥

यो माहेन्द्रं धनुर्लेभे तुल्यं गाण्डीवतेजसा ।
शार्ङ्गेण च महाबाहुः सम्मितं दिव्यलक्षणम् ॥ ४ ॥

जिस महाबाहुने गाण्डीवधनुषके तेजके समान तेजस्वी विजय नामक धनुष इन्द्रदेवतासे प्राप्त किया था, वह दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न धनुष शार्ङ्गधनुषकी समानता करता था ॥ ४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

त्रीण्येवैतानि दिव्यानि धनूंषि दिवि चारिणाम्।
वारुणं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः।
शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः॥ ५॥

द्युलोकमें विचरनेवाले देवताओंके ये तीन ही धनुष दिव्य माने गये हैं। उनमेंसे गाण्डीव धनुष वरुणका, विजय देवराज इन्द्रका तथा शार्ङ्ग नामक दिव्य तेजस्वी धनुष भगवान् विष्णुका बताया गया है॥ ५॥

धारयामास तत् कृष्णः परसेनाभयावहम्।
गाण्डीवं पावकाल्लेभे खाण्डवे पाकशासनिः॥ ६॥

शत्रुसेनाको भयभीत करनेवाले उस शार्ङ्ग धनुषको भगवान् श्रीकृष्णने धारण किया और खाण्डवदाहके समय इन्द्रकुमार अर्जुनने साक्षात् अग्निदेवसे गाण्डीवधनुष प्राप्त किया था॥ ६॥

द्रुमाद् रुक्मी महातेजा विजयं प्रत्यपद्यत।
संछिद्य मौरवान् पाशान् निहत्य मुरमोजसा॥ ७॥
निर्जित्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले।
षोडश स्त्रीसहस्राणि रत्नानि विविधानि च॥ ८॥
प्रतिपेदे हृषीकेशः शार्ङ्गं च धनुरुत्तमम्।

महातेजस्वी रुक्मीने द्रुमसे विजय नामक धनुष पाया था। भगवान् श्रीकृष्णने अपने तेज और बलसे मुर दैत्यके पाशोंका उच्छेद करके भूमिपुत्र नरकासुरको जीतकर जब उसके यहाँसे अदितिके मणिमय कुण्डल वापस ले लिये और सोलह हजार स्त्रियों तथा नाना प्रकारके रत्नोंको अपने अधिकारमें कर लिया, उसी समय उन्हें शार्ङ्ग नामक उत्तम धनुष भी प्राप्त हुआ था॥ ७-८½॥

रुक्मी तु विजयं लब्ध्वा धनुर्मेघनिभस्वनम्॥ ९॥
विभीषयन्निव जगत् पाण्डवानभ्यवर्तत।

रुक्मी मेघकी गर्जनाके समान भयानक टंकार करनेवाले विजय नामक धनुषको पाकर सम्पूर्ण जगत्‌को भयभीत-सा करता हुआ पाण्डवोंके यहाँ आया॥ ९½॥

नामृष्यत पुरा योऽसौ स्वबाहुबलगर्वितः॥ १०॥
रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता।

यह वही वीर रुक्मी था, जो अपने बाहुबलके घमंडमें आकर पहले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा किये गये रुक्मिणीके अपहरणको नहीं सह सका था॥ १०½॥

कृत्वा प्रतिज्ञां नाहत्वा निवर्तिष्ये जनार्दनम्॥ ११॥
ततोऽन्वधावद् वार्ष्णेयं सर्वशस्त्रभृतां वरः।

वह सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ था। उसने यह प्रतिज्ञा करके कि मैं वृष्णिवंशी श्रीकृष्णको मारे बिना अपने नगरको नहीं लौटूँगा, उनका पीछा किया था॥ ११½॥

सेनया चतुरङ्गिण्या महत्या दूरपातया॥ १२॥
विचित्रायुधवर्मिण्या गङ्गयेव प्रवृद्धया।

उस समय उसके साथ विचित्र आयुधों और कवचोंसे सुशोभित, दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेमें समर्थ तथा बढ़ी हुई गङ्गाके समान विशाल चतुरंगिणी सेना थी॥ १२½॥

स समासाद्य वार्ष्णेयं योगानामीश्वरं प्रभुम्॥ १३॥
व्यंसितो व्रीडितो राजन् नाजगाम स कुण्डिनम्।

राजन्! योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचकर उनसे पराजित होनेके कारण लज्जित हो वह पुनः कुण्डिनपुरको नहीं लौटा॥ १३½॥

यत्रैव कृष्णेन रणे निर्जितः परवीरहा॥ १४॥
तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम्।

भगवान् श्रीकृष्णने जहाँ युद्धमें शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले रुक्मीको हराया था, वहीं रुक्मीने भोजकट नामक उत्तम नगर बसाया॥ १४½॥

सैन्येन महता तेन प्रभूतगजवाजिना॥ १५॥
पुरं तद् भुवि विख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप।

राजन्! प्रचुर हाथी-घोड़ोंवाली विशाल सेनासे सम्पन्न वह भोजकट नामक नगर सम्पूर्ण भूमण्डलमें विख्यात है॥ १५½॥

स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः॥ १६॥
अक्षौहिण्या महावीर्यः पाण्डवान् क्षिप्रमागमत्।

महापराक्रमी भोजराज रुक्मी एक अक्षौहिणी विशाल सेनासे घिरा हुआ शीघ्रतापूर्वक पाण्डवोंके पास आया॥ १६½॥

ततः स कवची धन्वी तली खड्गी शरासनी॥ १७॥
ध्वजेनादित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम्।

उसने कवच, धनुष, दस्ताने, खड्ग और तरकस धारण किये सूर्यके समान तेजस्वी ध्वजके साथ पाण्डवोंकी विशाल सेनामें प्रवेश किया॥ १७½॥

विदितः पाण्डवेयानां वासुदेवप्रियेप्सया॥ १८॥
युधिष्ठिरस्तु तं राजा प्रत्युद्गम्याभ्यपूजयत्।

वह वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेकी इच्छासे आया था। पाण्डवोंको उसके आगमनकी सूचना दी गयी, तब राजा युधिष्ठिरने आगे बढ़कर उसकी अगवानी की और उसका यथायोग्य आदर-सत्कार किया॥ १८½॥

स पूजितः पाण्डुपुत्रैर्यथान्यायं सुसंस्तुतः॥ १९॥
प्रतिगृह्य तु तान् सर्वान् विश्रान्तः सहसैनिकः।

पाण्डवोंने रुक्मीका विधिपूर्वक आदर-सत्कार करके उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। रुक्मीने भी उन सबको प्रेमपूर्वक अपनाकर सैनिकोंसहित विश्राम किया॥ १९½॥

उवाच मध्ये वीराणां कुन्तीपुत्रं धनंजयम्॥ २०॥
सहायोऽस्मि स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पाण्डव।
करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः॥ २१॥

तदनन्तर वीरोंके बीचमें बैठकर उसने कुन्तीकुमार अर्जुनसे कहा—'पाण्डुनन्दन! यदि तुम डरे हुए हो तो मैं


CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

युद्धमें तुम्हारी सहायताके लिये आ पहुँचा हूँ'। मैं इस महायुद्धमें तुम्हारी वह सहायता करूँगा, जो तुम्हारे शत्रुओंके लिये असह्य हो उठेगी ॥ २०-२१ ॥

**न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन।**
**हनिष्यामि रणे भागं यन्मे दास्यसि पाण्डव ॥ २२ ॥**

'इस जगत्में मेरे समान पराक्रमी दूसरा कोई पुरुष नहीं है। पाण्डुकुमार! तुम शत्रुओंका जो भाग मुझे सौंप दोगे, मैं समरभूमिमें उसका संहार कर डालूँगा ॥ २२ ॥

**अपि द्रोणकृपौ वीरौ भीष्मकर्णावथो पुनः।**
**अथवा सर्व एवैते तिष्ठन्तु वसुधाधिपाः ॥ २३ ॥**
**निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि मेदिनीम्।**

'मेरे हिस्सेमें द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा वीरवर भीष्म एवं कर्ण ही क्यों न हों, किसीको जीवित नहीं छोडूँगा। अथवा यहाँ पधारे हुए ये सब राजा चुपचाप खड़े रहें। मैं अकेला ही समरभूमिमें तुम्हारे सारे शत्रुओंका वध करके तुम्हें पृथ्वीका राज्य अर्पित कर दूँगा' ॥ २३½ ॥

**इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च संनिधौ ॥ २४ ॥**
**शृण्वतां पार्थिवेन्द्राणामन्येषां चैव सर्वशः।**
**वासुदेवमभिप्रेक्ष्य धर्मराजं च पाण्डवम् ॥ २५ ॥**
**उवाच धीमान् कौन्तेयः प्रहस्य सखिपूर्वकम्।**

धर्मराज युधिष्ठिर तथा भगवान् श्रीकृष्णके समीप अन्य सब राजाओंके सुनते हुए रुक्मीके ऐसा कहनेपर परमबुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुनने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिरकी ओर देखते हुए मित्रभावसे हँसकर कहा—॥ २४-२५½ ॥

**कौरवाणां कुले जातः पाण्डोः पुत्रो विशेषतः ॥ २६ ॥**
**द्रोणं व्यपदिशञ्शिष्यो वासुदेवसहायवान्।**
**भीतोऽस्मीति कथं ब्रूयां दधानो गाण्डिवं धनुः ॥ २७ ॥**

'वीर! मैं कौरवोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। विशेषतः महाराज पाण्डुका पुत्र हूँ। आचार्य द्रोणको अपना गुरु कहता हूँ और स्वयं उनका शिष्य कहलाता हूँ। इसके सिवा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हमारे सहायक हैं और मैं अपने हाथमें गाण्डीव धनुष धारण करता हूँ। ऐसी स्थितिमें मैं अपने-आपको डरा हुआ कैसे कह सकता हूँ? ॥ २६-२७ ॥

**युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः।**
**सहायो घोषयात्रायां कस्तदाऽऽसीत् सखा मम ॥ २८ ॥**

'वीरवर! कौरवोंकी घोषयात्राके समय जब मैंने महाबली गन्धर्वोंके साथ युद्ध किया था, उस समय कौन-सा मित्र मेरी सहायताके लिये आया था? ॥ २८ ॥

**तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले।**
**खाण्डवे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥ २९ ॥**

'खाण्डववनमें देवताओं और दानवोंसे परिपूर्ण भयंकर युद्धमें जब मैं अपने प्रतिपक्षियोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय मेरा कौन सहायक था? ॥ २९ ॥

**निवातकवचैर्युद्धे कालकेयैश्च दानवैः।**
**तत्र मे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥ ३० ॥**

'जब निवातकवच तथा कालकेय नामक दानवोंके साथ छिड़े हुए युद्धमें मैं अकेला ही लड़ रहा था, उस समय मेरी सहायताके लिये कौन आया था? ॥ ३० ॥

**तथा विराटनगरे कुरुभिः सह संगरे।**
**युध्यतो बहुभिस्तत्र कः सहायोऽभवन्मम ॥ ३१ ॥**

'इसी प्रकार विराटनगरमें जब कौरवोंके साथ होनेवाले संग्राममें मैं अकेला ही बहुत-से वीरोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय मेरा सहायक कौन था? ॥ ३१ ॥

**उपजीव्य रणे रुद्रं शक्रं वैश्रवणं यमम्।**
**वरुणं पावकं चैव कृपं द्रोणं च माधवम् ॥ ३२ ॥**
**धारयन् गाण्डिवं दिव्यं धनुस्तेजोमयं दृढम्।**
**अक्षय्यशरसंयुक्तो दिव्यास्त्रपरिबृंहितः ॥ ३३ ॥**
**कथमस्मद्विधो ब्रूयाद् भीतोऽस्मीति यशोहरम्।**
**वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥ ३४ ॥**

'मैंने युद्धमें सफलताके लिये रुद्र, इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य तथा भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना की है। मैं तेजस्वी, दृढ़ एवं दिव्य गाण्डीव धनुष धारण करता हूँ। मेरे पास अक्षय बाणोंसे भरे हुए तरकस मौजूद हैं और दिव्यास्त्रोंके ज्ञानसे मेरी शक्ति बढ़ी हुई है। नरश्रेष्ठ! फिर मेरे-जैसा पुरुष साक्षात् वज्रधारी इन्द्रके सामने भी 'मैं डरा हुआ हूँ' यह सुयशका नाश करनेवाला वचन कैसे कह सकता है? ॥ ३२-३४ ॥

**नास्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नास्ति मे।**
**यथाकामं यथायोगं गच्छ वान्यत्र तिष्ठ वा ॥ ३५ ॥**

'महाबाहो! मैं डरा हुआ नहीं हूँ तथा मुझे सहायककी भी आवश्यकता नहीं है। आप अपनी इच्छाके अनुसार जैसा उचित समझें अन्यत्र चले जाइये या यहीं रहिये' ॥ ३५ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**( तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विजयस्य हि धीमतः।)**
**विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसंनिभाम्।**
**दुर्योधनमुपागच्छत् तथैव भरतर्षभ ॥ ३६ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भरतश्रेष्ठ! उन परम बुद्धिमान् अर्जुनका यह वचन सुनकर रुक्मी अपनी समुद्र-सदृश विशाल सेनाको लौटाकर उसी प्रकार दुर्योधनके पास गया ॥ ३६ ॥

**तथैव चाभिगम्यैनमुवाच वसुधाधिपः।**
**प्रत्याख्यातश्च तेनापि स तदा शूरमानिना ॥ ३७ ॥**

दुर्योधनसे मिलकर राजा रुक्मीने उससे भी वैसी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बातें कहीं। तब अपनेको शूरवीर माननेवाले दुर्योधनने भी उसकी सहायता लेनेसे इन्कार कर दिया ॥ ३७ ॥

**द्वावेव तु महाराज तस्माद् युद्धादपेयतुः।**
**रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिपः ॥ ३८ ॥**

महाराज ! उस युद्धसे दो ही वीर अलग हो गये थे—एक तो वृष्णिवंशी रोहिणीनन्दन बलराम और दूसरा राजा रुक्मी ॥ ३८ ॥

**गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा।**
**उपाविशन् पाण्डवेया मन्त्राय पुनरेव च ॥ ३९ ॥**

बलरामजीके तीर्थयात्रामें और भीष्मकपुत्र रुक्मीके अपने नगरको चले जानेपर पाण्डवोंने पुनः गुप्त मन्त्रणाके लिये बैठक की ॥ ३९ ॥

**समितिर्धर्मराजस्य सा पार्थिवसमाकुला।**
**शुशुभे तारकैश्चित्रा द्यौश्चन्द्रेणेव भारत ॥ ४० ॥**

भारत ! राजाओंसे भरी हुई धर्मराजकी वह सभा तारों और चन्द्रमासे विचित्र शोभा धारण करनेवाले आकाशकी भाँति सुशोभित हुई ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि रुक्मिप्रत्याख्याने अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें रुक्मीप्रत्याख्यानविषयक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५८ ॥

( दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं )

# एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

## धृतराष्ट्र और संजयका संवाद

*जनमेजय उवाच*

**तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ।**
**किमकुर्वंश्च कुरवः कालेनाभिप्रचोदिताः ॥ १ ॥**

**जनमेजयने पूछा**—द्विजश्रेष्ठ ! जब इस प्रकार कुरुक्षेत्रमें सेनाएँ मोर्चा बाँधकर खड़ी हो गयीं, तब कालप्रेरित कौरवोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ।**
**धृतराष्ट्रो महाराज संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥**

**वैशम्पायनजीने कहा**—भरतकुलभूषण महाराज ! जब वे सभी सेनाएँ कुरुक्षेत्रमें व्यूहरचनापूर्वक डट गयीं, तब धृतराष्ट्रने संजयसे कहा—॥ २ ॥

**एहि संजय सर्वं मे आचक्ष्वानवशेषतः।**
**सेनानिवेशे यद् वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ३ ॥**

'संजय ! यहाँ आओ और कौरवों तथा पाण्डवोंकी सेनाके पड़ाव पड़ जानेपर वहाँ जो कुछ हुआ हो, वह सब मुझे पूर्णरूपसे बताओ ॥ ३ ॥

**दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम्।**
**यदहं बुद्ध्यमानोऽपि युद्धदोषान् क्षयोदयान् ॥ ४ ॥**
**तथापि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम्।**
**न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्तुं वा हितमात्मनः ॥ ५ ॥**

'मैं तो समझता हूँ, दैव ही प्रबल है। उसके सामने पुरुषार्थ व्यर्थ है; क्योंकि मैं युद्धके दोषोंको अच्छी तरह जानता हूँ। वे दोष भयंकर संहार उपस्थित करनेवाले हैं, इस बातको भी समझता हूँ, तथापि ठगविद्याके पण्डित तथा कपट-द्यूत करनेवाले अपने पुत्रको न तो रोक सकता हूँ और न अपना हित-साधन ही कर सकता हूँ ॥ ४-५ ॥

**भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी।**
**दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते ॥ ६ ॥**

'सूत ! मेरी बुद्धि उपर्युक्त दोषोंको बारंबार देखती और समझती है तो भी दुर्योधनसे मिलनेपर पुनः बदल जाती है ॥ ६ ॥

**एवं गते वै यद् भावि तद् भविष्यति संजय।**
**क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागो हि पूजितः ॥ ७ ॥**

'संजय ! ऐसी दशामें अब जो कुछ होनेवाला है, वह होकर ही रहेगा। कहते हैं, युद्धमें शरीरका त्याग करना निश्चय ही सबके द्वारा सम्मानित क्षत्रियधर्म है' ॥ ७ ॥

*संजय उवाच*

**त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथेच्छसि।**
**न तु दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ ८ ॥**

**संजयने कहा**—महाराज ! आपने जो कुछ पूछा है और आप जैसा चाहते हैं, वह सब आपके योग्य है; परंतु आपको युद्धका दोष दुर्योधनके माथेपर नहीं मढ़ना चाहिये ॥

**शृणुष्वानवशेषेण वदतो मम पार्थिव।**
**य आत्मनो दुश्चरिताद‌शुभं प्राप्नुयान्नरः।**
**न स कालं न वा देवानेनसा गन्तुमर्हति ॥ ९ ॥**

भूपाल ! मैं सारी बातें बता रहा हूँ, आप सुनिये। जो मनुष्य अपने बुरे आचरणसे अशुभ फल पाता है, वह काल अथवा देवताओंपर दोषारोपण करनेका अधिकारी नहीं है ॥

**महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत्।**
**स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ १० ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

महाराज ! जो पुरुष दूसरे मनुष्योंके साथ सर्वथा निन्दनीय व्यवहार करता है, वह निन्दित आचरण करनेवाला पापात्मा सब लोगोंके लिये वध्य है ॥ १० ॥

**निकारा मनुजश्रेष्ठ पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया।**
**अनुभूताः सहामात्यैर्निकृतैरधिदेवने ॥ ११ ॥**

नरश्रेष्ठ ! जूएके समय जो बारंबार छल-कपट और अपमानके शिकार हुए थे, अपने मन्त्रियोंसहित उन पाण्डवोंने केवल आपका ही मुँह देखकर सब तरहके तिरस्कार सहन किये हैं ॥ ११ ॥

**हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम्।**
**वैशसं समरे वृत्तं यत् तन्मे शृणु सर्वशः ॥ १२ ॥**

इस समय युद्धके कारण घोड़ों, हाथियों तथा अमिततेजस्वी राजाओंका जो विनाश प्राप्त हुआ है, उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझसे सुनिये ॥ १२ ॥

**स्थिरो भूत्वा महाप्राज्ञ सर्वलोकक्षयोदयम्।**
**यथाभूतं महायुद्धे श्रुत्वा चैकमना भव ॥ १३ ॥**

महामते ! इस महायुद्धमें सम्पूर्ण लोकोंके विनाशको सूचित करनेवाला जो-जो वृत्तान्त जैसे-जैसे घटित हुआ है, वह सब स्थिर होकर सुनिये और सुनकर एकचित्त बने रहिये ( व्याकुल न होइये ) ॥ १३ ॥

**न ह्येव कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः।**
**अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥ १४ ॥**

क्योंकि मनुष्य पुण्य और पापके फलभोगकी प्रक्रियामें स्वतन्त्र कर्ता नहीं है; क्योंकि मनुष्य प्रारब्धके अधीन है, उसे तो कठपुतलीकी भाँति उस कार्यमें प्रवृत्त होना पड़ता है ॥

**केचिदीश्वरनिर्दिष्टाः केचिदेव यदृच्छया।**
**पूर्वकर्मभिरप्यन्ये त्रैधमेतत् प्रदृश्यते।**
**तस्मादनर्थमापन्नः स्थिरो भूत्वा निशामय ॥ १५ ॥**

कोई ईश्वरकी प्रेरणासे कार्य करते हैं, कुछ लोग आकस्मिक संयोगवश कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं तथा दूसरे बहुत-से लोग अपने पूर्वकर्मोंकी प्रेरणासे कार्य करते हैं। इस प्रकार ये कार्यकी त्रिविध अवस्थाएँ देखी जाती हैं, इसलिये इस महान् संकटमें पड़कर आप स्थिरभावसे ( स्वस्थ चित्त होकर ) सारा वृत्तान्त सुनिये ॥ १५ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि संजयवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें संजयवाक्यविषयक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५९ ॥

## ( उलूकदूतागमनपर्व )

# षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

### दुर्योधनका उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजना और उनसे कहनेके लिये संदेश देना

*संजय उवाच*

**हिरण्वत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु।**
**न्यविशन्त महाराज कौरवेया यथाविधि ॥ १ ॥**

**संजय कहते हैं**—महाराज ! महात्मा पाण्डवोंने जब हिरण्वती नदीके तटपर अपना पड़ाव डाल दिया, तब कौरवोंने भी विधिपूर्वक दूसरे स्थानपर अपनी छावनी डाली ॥

**तत्र दुर्योधनो राजा निवेश्य बलमोजसा।**
**सम्मानयित्वा नृपतीन् न्यस्य गुल्मांस्तथैव च ॥ २ ॥**

राजा दुर्योधनने वहाँ अपनी शक्तिशालिनी सेना ठहराकर समस्त राजाओंका समादर करके उन सबकी रक्षाके लिये कई गुल्म सैनिकोंकी टुकड़ियोंको तैनात कर दिया ॥ २ ॥

**आरक्षस्य विधिं कृत्वा योधानां तत्र भारत।**
**कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चापि सौबलम् ॥ ३ ॥**
**आनाय्य नृपतिस्तत्र मन्त्रयामास भारत।**

भारत ! इस प्रकार योद्धाओंके संरक्षणकी व्यवस्था करके राजा दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनिको बुलाकर गुप्तरूपसे मन्त्रणा की ॥ ३½ ॥

**तत्र दुर्योधनो राजा कर्णेन सह भारत ॥ ४ ॥**
**सम्भाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा दुःशासनेन च।**
**सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ ॥ ५ ॥**
**आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत्।**

राजेन्द्र ! भरतनन्दन ! नरश्रेष्ठ ! दुर्योधनने कर्ण, भाई दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनिसे सम्भाषण एवं सलाह करके उलूकको एकान्तमें बुलाकर उसे इस प्रकार कहा—

**उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान् सहसोमकान् ॥ ६ ॥**
**गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः।**
**इदं तत् समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ॥ ७ ॥**
**पाण्डवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयंकरम्।**

द्यूतकुशल शकुनिके पुत्र उलूक ! तुम सोमकों और पाण्डवोंके पास जाओ तथा वहाँ पहुँचकर वासुदेव श्रीकृष्णके सामने ही उनसे मेरा यह संदेश कहो—'कितने ही वर्षोंसे जिसका विचार चल रहा था, वह सम्पूर्ण जगत्के लिये

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अत्यन्त भयंकर कौरव-पाण्डवोंका युद्ध अब सिरपर आ पहुँचा है ॥ ६-७½ ॥

**यदेतत् कत्थनावाक्यं संजयो महदब्रवीत् ॥ ८ ॥**
**वासुदेवसहायस्य गर्जतः सानुजस्य ते ।**
**मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥**
**यथा वः सम्प्रतिज्ञातं तत् सर्वं क्रियतामिति ।**

'कुन्तीकुमार युधिष्ठिर ! श्रीकृष्णकी सहायता पाकर भाइयोंसहित गर्जना करते हुए तुमने संजयसे जो आत्मश्लाघा-पूर्ण बातें कही थीं और जिन्हें संजयने कौरवोंकी सभामें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर सुनाया था, उन सबको सत्य करके दिखाने-का यह अवसर आ गया है । तुमलोगोंने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उन सबको पूर्ण करो' ॥ ८-९½ ॥

**ज्येष्ठं तथैव कौन्तेयं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ॥ १० ॥**

उलूक ! तुम मेरे कहनेसे कुन्तीके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरके सामने जाकर इस प्रकार कहना—॥ १० ॥

**भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः ।**
**कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः ॥ ११ ॥**

'राजन् ! तुम तो अपने सभी भाइयों, सोमकों और केकयोंसहित बड़े धर्मात्मा बनते हो । धर्मात्मा होकर अधर्ममें कैसे मन लगा रहे हो ? ॥ ११ ॥

**य इच्छसि जगत् सर्वं नश्यमानं नृशंसवत् ।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो दाता त्वमिति मे मतिः ॥ १२ ॥**

'मेरा तो ऐसा विश्वास था कि तुमने समस्त प्राणियों-को अभयदान दे दिया है; परंतु इस समय तुम एक निर्दय मनुष्यकी भाँति सम्पूर्ण जगत्‌का विनाश देखना चाहते हो॥

**श्रूयते हि पुरा गीतः श्लोकोऽयं भरतर्षभ ।**
**प्रह्रादेनाथ भद्रं ते हृते राज्ये तु दैवतैः ॥ १३ ॥**

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारा कल्याण हो । सुना जाता है कि पूर्वकालमें जब देवताओंने प्रह्लादका राज्य छीन लिया था, तब उन्होंने इस श्लोकका गान किया था ॥' १३ ॥

**यस्य धर्मध्वजो नित्यं सुरा ध्वज इवोच्छ्रितः ।**
**प्रच्छन्नानि च पापानि वैडालं नाम तद् व्रतम् ॥ १४ ॥**

'देवताओ ! साधारण ध्वजकी भाँति जिसकी धर्ममयी ध्वजा सदा ऊँचेतक फहराती रहती है; परंतु जिसके द्वारा गुप्तरूपसे पाप भी होते रहते हैं, उसके उस व्रतको बिडाल-व्रत कहते हैं ॥ १४ ॥

**अत्र ते वर्तयिष्यामि आख्यानमिदमुत्तमम् ।**
**कथितं नारदेनेह पितुर्मम नराधिप ॥ १५ ॥**

'नरेश्वर ! इस विषयमें तुम्हें यह उत्तम आख्यान सुना रहा हूँ, जिसे नारदजीने मेरे पिताजीसे कहा था ॥ १५ ॥

**मार्जारः किल दुष्टात्मा निश्चेष्टः सर्वकर्मसु ।**
**ऊर्ध्वबाहुः स्थितो राजन् गङ्गातीरे कदाचन ॥ १६ ॥**

'राजन् ! यह प्रसिद्ध है कि किसी समय एक दुष्ट बिलाव दोनों भुजाएँ ऊपर किये गङ्गाजीके तटपर खड़ा रहा । वह किसी भी कार्यके लिये तनिक भी चेष्टा नहीं करता था ॥ १६ ॥

**स वै कृत्वा मनःशुद्धिं प्रत्ययार्थं शरीरिणाम् ।**
**करोमि धर्ममित्याह सर्वानेव शरीरिणः ॥ १७ ॥**

'इस प्रकार समस्त देहधारियोंपर विश्वास जमानेके लिये वह सभी प्राणियोंसे यही कहा करता था कि अब मैं मानसिक शुद्धि करके—हिंसा छोड़कर धर्माचरण कर रहा हूँ ॥ १७ ॥

**तस्य कालेन महता विश्रम्भं जग्मुरण्डजाः ।**
**समेत्य च प्रशंसन्ति मार्जारं तं विशाम्पते ॥ १८ ॥**

'राजन् ! दीर्घकालके पश्चात् धीरे-धीरे पक्षियोंने उसपर विश्वास कर लिया । अब वे उस बिलावके पास आकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ १८ ॥

**पूज्यमानस्तु तैः सर्वैः पक्षिभिः पक्षिभोजनः ।**
**आत्मकार्यं कृतं मेने चर्यायाश्च कृतं फलम् ॥ १९ ॥**

'पक्षियोंको अपना आहार बनानेवाला वह बिलाव जब उन समस्त पक्षियोंद्वारा अधिक आदर-सत्कार पाने लगा, तब उसने यह समझ लिया कि मेरा काम बन गया और मुझे धर्मानुष्ठानका भी अभीष्ट फल प्राप्त हो गया ॥ १९ ॥

**अथ दीर्घस्य कालस्य तं देशं मूषिका ययुः ।**
**ददृशुस्तं च ते तत्र धार्मिकं व्रतचारिणम् ॥ २० ॥**

'तदनन्तर बहुत समयके पश्चात् उस स्थानमें चूहे भी गये । वहाँ जाकर उन्होंने कठोर व्रतका पालन करनेवाले उस धर्मात्मा बिलावको देखा ॥ २० ॥

**कार्येण महता युक्तं दम्भयुक्तेन भारत ।**
**तेषां मतिरियं राजन्नासीत् तत्र विनिश्चये ॥ २१ ॥**

'भारत ! दम्भयुक्त महान् कर्मोंके अनुष्ठानमें लगे हुए उस बिलावको देखकर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ ॥

**बहुमित्रा वयं सर्वे तेषां नो मातुलो ह्ययम् ।**
**रक्षां करोतु सततं वृद्धबालस्य सर्वशः ॥ २२ ॥**

'हम सब लोगोंके बहुत-से मित्र हैं, अतः अब यह बिलाव भी हमारा मामा होकर रहे और हमारे यहाँ जो वृद्ध तथा बालक हैं, उन सबकी सदा रक्षा करता रहे ॥ २२ ॥

**उपगम्य तु ते सर्वे बिडालमिदमब्रुवन् ।**
**भवत्प्रसादादिच्छामश्चर्तुं चैव यथासुखम् ॥ २३ ॥**
**भवान् नो गतिरव्यग्रा भवान् नः परमः सुहृत् ।**
**ते वयं सहिताः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ २४ ॥**

'यह सोचकर वे सभी उस बिलावके पास गये और इस प्रकार बोले—'मामाजी ! हम सब लोग आपकी कृपासे सुख-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पूर्वक विचरना चाहते हैं । आप ही हमारे निर्भय आश्रय हैं और आप ही हमारे परम सुहृद् हैं । हम सब लोग एक साथ संगठित होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २३-२४ ॥

**भवान् धर्मपरो नित्यं भवान् धर्मे व्यवस्थितः ।**
**स नो रक्ष महाप्राज्ञ त्रिदशानिव वज्रभृत् ॥ २५ ॥**

'आप सदा धर्ममें तत्पर रहते हैं और धर्ममें ही आपकी निष्ठा है । महामते ! जैसे वज्रधारी इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें' ॥२५॥

**एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्मूषिकैः स विशाम्पते ।**
**प्रत्युवाच ततः सर्वान् मूषिकान् मूषिकान्तकृत् ॥२६॥**
**द्वयोर्योगं न पश्यामि तपसो रक्षणस्य च ।**
**अवश्यं तु मया कार्यं वचनं भवतां हितम् ॥ २७ ॥**

'प्रजानाथ ! उन सम्पूर्ण चूहोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मूषकोंके लिये यमराजस्वरूप उस बिलावने उन सबको इस प्रकार उत्तर दिया—'मैं तपस्या भी करूँ और तुम्हारी रक्षा भी—इन दोनों कार्योंका परस्पर सम्बन्ध मुझे दिखायी नहीं देता है—ये दोनों काम एक साथ नहीं चल सकते हैं । तथापि मुझे तुमलोगोंके हितकी बात भी अवश्य करनी चाहिये ॥ २६-२७ ॥

**युष्माभिरपि कर्तव्यं वचनं मम नित्यशः ।**
**तपसास्मि परिश्रान्तो दृढं नियममास्थितः ॥ २८ ॥**
**न चापि गमने शक्तिं काञ्चित् पश्यामि चिन्तयन् ।**
**सोऽस्मि नेयः सदा ताता नदीकूलमितः परम् ॥ २९ ॥**

'तुम्हें भी प्रतिदिन मेरी एक आज्ञाका पालन करना होगा । मैं तपस्या करते-करते बहुत थक गया हूँ और दृढ़तापूर्वक संयम-नियमके पालनमें लगा रहता हूँ । बहुत सोचनेपर भी मुझे अपने भीतर चलने-फिरनेकी कोई शक्ति नहीं दिखायी देती; अतः तात ! तुम्हें सदा मुझे यहाँसे नदीके तटतक पहुँचाना पड़ेगा' ॥ २८-२९ ॥

**तथेति तं प्रतिज्ञाय मूषिका भरतर्षभ ।**
**वृद्धबालमथो सर्वं मार्जाराय न्यवेदयन् ॥ ३० ॥**

'भरतश्रेष्ठ ! 'बहुत अच्छा' कहकर चूहोंने बिलावकी आज्ञाका पालन करनेके लिये हामी भर ली और वृद्ध तथा बालकोंसहित अपना सारा परिवार उस बिलावको सौंप दिया ॥

**ततः स पापो दुष्टात्मा मूषिकानथ भक्षयन् ।**
**पीवरश्च सुवर्णश्च दृढबन्धश्च जायते ॥ ३१ ॥**

'फिर तो वह पापी एवं दुष्टात्मा बिलाव प्रतिदिन चूहोंको खा-खाकर मोटा और सुन्दर होने लगा । उसके अङ्गोंकी एक-एक जोड़ मजबूत हो गयी ॥ ३१ ॥

**मूषिकाणां गणश्चात्र भृशं संक्षीयतेऽथ सः ।**
**मार्जारो वर्धते चापि तेजोबलसमन्वितः ॥ ३२ ॥**

'इधर चूहोंकी संख्या बड़े वेगसे घटने लगी और वह बिलाव तेज और बलसे सम्पन्न हो प्रतिदिन बढ़ने लगा ॥

**ततस्ते मूषिकाः सर्वे समेत्यान्योऽन्यमब्रुवन् ।**
**मातुलो वर्धते नित्यं वयं क्षीयामहे भृशम् ॥ ३३ ॥**

'तब वे चूहे परस्पर मिलकर एक-दूसरेसे कहने लगे—'क्यों जी ! क्या कारण है कि मामा तो नित्य मोटा-ताजा होता जा रहा है और हमारी संख्या बड़े वेगसे घटती चली जा रही है' ॥ ३३ ॥

**ततः प्राज्ञतमः कश्चिड्डिण्डिको नाम मूषिकः ।**
**अब्रवीद् वचनं राजन् मूषिकाणां महागणम् ॥ ३४ ॥**
**गच्छतां वो नदीतीरं सहितानां विशेषतः ।**
**पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि सहैव मातुलेन तु ॥ ३५ ॥**

'राजन् ! उन चूहोंमें कोई डिंडिक नामवाला चूहा सबसे अधिक समझदार था । उसने मूषकोंके उस महान् समुदायसे इस प्रकार कहा—'तुम सब लोग विशेषतः एक साथ नदीके तटपर जाओ । पीछेसे मैं भी मामाके साथ ही वहाँ जाऊँगा' ॥ ३४—३५ ॥

**साधु साध्विति ते सर्वे पूजयांचक्रिरे तदा ।**
**चक्रुश्चैव यथान्यायं डिण्डिकस्य वचोऽर्थवत् ॥ ३६ ॥**

'तब बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उन सबने डिंडिककी बड़ी प्रशंसा की और यथोचितरूपसे उसके सार्थक वचनोंका पालन किया ॥ ३६ ॥

**अविज्ञानात् ततः सोऽथ डिण्डिकं ह्युपभुक्तवान् ।**
**ततस्ते सहिताः सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ॥ ३७ ॥**

'बिलावको चूहोंकी जागरूकताका कुछ पता नहीं था; अतः वह डिंडिकको भी खा गया । तदनन्तर एक दिन सब चूहे एक साथ मिलकर आपसमें सलाह करने लगे ॥ ३७ ॥

**तत्र वृद्धतमः कश्चित् कोलिको नाम मूषिकः ।**
**अब्रवीद् वचनं राजन् ज्ञातिमध्ये यथातथम् ॥ ३८ ॥**

'उनमें कोलिक नामसे प्रसिद्ध कोई चूहा था, जो अपने भाई-बन्धुओंमें सबसे बूढ़ा था । उसने सब लोगोंको यथार्थ बात बतायी—॥ ३८ ॥

**न मातुलो धर्मकामश्छद्ममात्रं कृता शिखा ।**
**न मूलफलभक्षस्य विष्ठा भवति लोमशा ॥ ३९ ॥**

'भाइयो ! मामाको धर्माचरणकी रत्तीभर भी कामना नहीं है । उसने हम-जैसे लोगोंको धोखा देनेके लिये ही जटा रक्खी है । जो फल—मूल खानेवाला है, उसकी विष्ठामें रोएँ नहीं होते ॥ ३९ ॥

**अस्य गात्राणि वर्धन्ते गणश्च परिहीयते ।**
**अद्य सप्ताष्टदिवसान् डिण्डिकोऽपि न दृश्यते ॥ ४० ॥**

'उसके अङ्ग दिनों-दिन हृष्ट-पुष्ट होते जाते हैं और हमारा यह दल रोज-रोज घटता जा रहा है । आज

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'आठ दिनोंसे डिंडिकका भी दर्शन नहीं हो रहा है' ॥ ४० ॥

**एतच्छ्रुत्वा वचः सर्वे मूषिका विप्रदुद्रुवुः ।**
**बिडालोऽपि स दुष्टात्मा जगामैव यथागतम् ॥ ४१ ॥**

'कोलिककी यह बात सुनकर सब चूहे भाग गये और वह दुष्टात्मा बिलाव भी अपना-सा मुँह लेकर जैसे आया था, वैसे चला गया ॥ ४१ ॥

**तथा त्वमपि दुष्टात्मन् बैडालं व्रतमास्थितः ।**
**चरसि ज्ञातिषु सदा बिडालो मूषिकेष्विव ॥ ४२ ॥**

'दुष्टात्मन् ! तुमने भी इसी प्रकार बिडालव्रत धारण कर रक्खा है । जैसे चूहोंमें बिडालने धर्माचरणका ढोंग रच रक्खा था, उसी प्रकार तुम भी जाति-भाइयोंमें धर्माचारी बने फिरते हो ॥ ४२ ॥

**अन्यथा किल ते वाक्यमन्यथा कर्म दृश्यते ।**
**दम्भनार्थाय लोकस्य वेदाश्चोपशमश्च ते ॥ ४३ ॥**

'तुम्हारी बातें तो कुछ और हैं; परंतु कर्म कुछ और ही ढंगका दिखायी देता है । तुम्हारा वेदाध्ययन और शान्त स्वभाव लोगोंको दिखानेके लिये पाखण्डमात्र है ॥४३॥

**त्यक्त्वा छद्म त्विदं राजन् क्षत्रधर्मं समाश्रितः ।**
**कुरु कार्याणि सर्वाणि धर्मिष्ठोऽसि नरर्षभ ॥ ४४ ॥**

'राजन् ! नरश्रेष्ठ ! यदि तुम धर्मनिष्ठ हो तो यह छल-छद्म छोड़कर क्षत्रिय-धर्मका आश्रय ले उसीके अनुसार सब कार्य करो ॥ ४४ ॥

**बाहुवीर्येण पृथिवीं लब्ध्वा भरतसत्तम ।**
**देहि दानं द्विजातिभ्यः पितृभ्यश्च यथोचितम् ॥ ४५ ॥**

'भरतश्रेष्ठ ! अपने बाहुबलसे इस पृथ्वीका राज्य प्राप्त करके तुम ब्राह्मणोंको दान दो और पितरोंको उनका यथोचित भाग अर्पण करो ॥ ४५ ॥

**क्लिष्टाया वर्षपूगांश्च मातुर्मातृहिते स्थितः ।**
**प्रमार्जाश्रु रणे जित्वा सम्मानं परमावह ॥ ४६ ॥**

'तुम्हारी माता वर्षोंसे कष्ट भोग रही है; अतः माताके हितमें तत्पर हो उसके आँसू पोंछो और युद्धमें विजय प्राप्त करके परम सम्मानके भागी बनो ॥ ४६ ॥

**पञ्च ग्रामा वृता यत्नान्नास्माभिरपवर्जिताः ।**
**युध्यामहे कथं संख्ये कोपयेम च पाण्डवान् ॥ ४७ ॥**

'तुमने केवल पाँच गाँव माँगे थे, परंतु हमने प्रयत्न-पूर्वक तुम्हारी वह माँग इसलिये ठुकरा दी है कि पाण्डवोंको किसी प्रकार कुपित करें, जिससे संग्राम-भूमिमें उनके साथ युद्ध करनेका अवसर प्राप्त हो ॥ ४७ ॥

**त्वत्कृते दुष्टभावस्य संत्यागो विदुरस्य च ।**
**जातुषे च गृहे दाहं स्मर तं पुरुषो भव ॥ ४८ ॥**

'तुम्हारे लिये ही मैंने दुष्टात्मा विदुरका परित्याग कर दिया है । लाक्षागृहमें अपने जलाये जानेकी घटनाका स्मरण करो और अबसे भी मर्द बन जाओ ॥ ४८ ॥

**यच्च कृष्णमवोचस्त्वमायान्तं कुरुसंसदि ।**
**अयमस्मि स्थितो राजन् शमाय समराय च ॥ ४९ ॥**
**तस्यायमागतः कालः समरस्य नराधिप ।**
**एतदर्थं मया सर्वं कृतमेतद् युधिष्ठिर ॥ ५० ॥**

'तुमने कौरव-सभामें आये हुए श्रीकृष्णसे जो यह संदेश दिलाया था कि 'राजन् ! मैं शान्ति और युद्ध दोनों-के लिये तैयार हूँ ।' नरेश्वर ! उस समरका यह उपयुक्त अवसर आ गया है । युधिष्ठिर ! इसीके लिये मैंने यह सब कुछ किया है ॥ ४९-५० ॥

**किं नु युद्धात् परं लाभं क्षत्रियो बहु मन्यते ।**
**किं च त्वं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथितो भुवि ॥ ५१ ॥**

'भला, क्षत्रिय युद्धसे बढ़कर दूसरे किस लाभको महत्त्व देता है ? इसके सिवा, तुमने भी तो क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होकर इस पृथ्वीपर बड़ी ख्याति प्राप्त की है ॥ ५१ ॥

**द्रोणादस्त्राणि संप्राप्य कृपाच्च भरतर्षभ ।**
**तुल्ययोनौ समबले वासुदेवं समाश्रितः ॥ ५२ ॥**

'भरतश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्य और कृपाचार्यसे अस्त्र-विद्या प्राप्त करके जाति और बलमें हमारे समान होते हुए भी तुमने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका आश्रय ले रक्खा है ( फिर तुम्हें युद्धसे क्यों डरना या पीछे हटना चाहिये ? )' ॥५२॥

**ब्रूयास्त्वं वासुदेवं च पाण्डवानां समीपतः ।**
**आत्मार्थं पाण्डवार्थं च यत्तो मां प्रति योधय ॥ ५३ ॥**

उलूक ! तुम पाण्डवोंके समीप वासुदेव श्रीकृष्णसे भी कहना—'जनार्दन ! अब तुम पूरी तैयारी और तत्परताके साथ अपनी और पाण्डवोंकी भलाईके लिये मेरे साथ युद्ध करो ॥

**सभामध्ये च यद्रूपं मायया कृतवानसि ।**
**तत् तथैव पुनः कृत्वा सार्जुनो मामभिद्रव ॥ ५४ ॥**

'तुमने सभामें मायाद्वारा जो विकट रूप बना लिया था; उसे पुनः उसी रूपमें प्रकट करके अर्जुनके साथ मुझपर धावा बोल दो ॥ ५४ ॥'

**इन्द्रजालं च माया वै कुहका वापि भीषणा ।**
**आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ५५ ॥**

'इन्द्रजाल, माया अथवा भयानक कृत्या—ये युद्धमें हथियार उठाये हुए शूरवीरके क्रोध एवं सिंहनादको और भी बढ़ा देती हैं ( उसे डरा नहीं सकतीं ) ॥ ५५ ॥

**वयमप्युत्सहेम द्यां खं च गच्छेम मायया ।**
**रसातलं विशामोऽपि ऐन्द्रं वा पुरमेव तु ॥ ५६ ॥**

'हम भी मायासे आकाशमें उड़ सकते हैं, अन्तरिक्षमें जा सकते हैं तथा रसातल या इन्द्रपुरीमें भी प्रवेश कर सकते हैं ॥ ५६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दर्शयेम च रूपाणि स्वशरीरे बहून्यपि ।
न तु पर्यायतः सिद्धिर्बुद्धिमाप्नोति मानुषीम् ॥ ५७ ॥

'इतना ही नहीं, हम अपने शरीरमें बहुत-से रूप भी प्रकट करके दिखा सकते हैं; परंतु इन सब प्रदर्शनोंसे न तो अपने अभीष्टकी सिद्धि होती है और न अपना शत्रु ही मानवीय बुद्धि अर्थात् भयको प्राप्त हो सकता है ॥ ५७ ॥

मनसैव हि भूतानि धातैव कुरुते वशे ।
यद् ब्रवीषि च वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ५८ ॥
घातयित्वा प्रदास्यामि पार्थेभ्यो राज्यमुत्तमम् ।
आचचक्षे च मे सर्वं संजयस्तद् भाषितम् ॥ ५९ ॥

'एकमात्र विधाता ही अपने मानसिक संकल्पमात्रसे समस्त प्राणियोंको वशमें कर लेता है । वार्ष्णेय ! तुम जो यह कहा करते थे कि मैं युद्धमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मरवा-कर उनका सारा उत्तम राज्य कुन्तीके पुत्रोंको दे दूँगा । तुम्हारा वह सारा भाषण संजयने मुझे सुना दिया था ॥

मद्द्वितीयेन पार्थेन वैरं वः सव्यसाचिना ।
स सत्यसंगरो भूत्वा पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ ६० ॥

'तुमने यह भी कहा था कि 'कौरवो ! मैं जिनका सहायक हूँ, उन्हीं सव्यसाची अर्जुनके साथ तुम्हारा वैर बढ़ रहा है,' इत्यादि । अतः अब सत्यप्रतिज्ञ होकर पाण्डवोंके लिये पराक्रमी बनो ॥ ६० ॥

युध्यस्वाद्य रणे यत्तः पश्यामः पुरुषो भव ।
यस्तु शत्रुमभिज्ञाय शुद्धं पौरुषमास्थितः ॥ ६१ ॥
करोति द्विषतां शोकं स जीवति सुजीवितम् ।

'युद्धमें अब प्रयत्नपूर्वक डट जाओ । हम तुम्हारी राह देखते हैं । अपने पुरुषत्वका परिचय दो । जो पुरुष शत्रुको अच्छी तरह समझ-बूझकर विशुद्ध पुरुषार्थका आश्रय ले शत्रुओंको शोकमग्न कर देता है, वही श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है ॥ ६१½ ॥

अकस्माच्चैव ते कृष्ण ख्यातं लोके महद् यशः ॥ ६२ ॥
अद्येदानीं विजानीमः सन्ति षण्ढाः सशृङ्गकाः ।

'श्रीकृष्ण ! मैं देखता हूँ संसारमें अकस्मात् ही तुम्हारा महान् यश फैल गया है; परंतु अब इस समय हमें मालूम हुआ है कि जो लोग तुम्हारे पूजक हैं, वे वास्तवमें पुरुषत्वका चिह्न धारण करनेवाले हिजड़े ही हैं ॥ ६२½ ॥

मद्विधो नापि नृपतिस्त्वयि युक्तः कथञ्चन ॥ ६३ ॥
संनाहं संयुगे कर्तुं कंसभृत्ये विशेषतः ।

'मेरे-जैसे राजाको तुम्हारे साथ, विशेषतः कंसके एक सेवकके साथ लड़नेके लिये कवच धारण करके युद्धभूमिमें उतरना किसी तरह उचित नहीं है, ॥ ६३½ ॥

तं च तूबरकं बालं बह्वाशिनमविद्यकम् ॥ ६४ ॥
उलूक मद्वचो ब्रूहि असकृद्भीमसेनकम् ।
विराटनगरे पार्थ यस्त्वं सूदो ह्यभूः पुरा ॥ ६५ ॥
बल्लवो नाम विख्यातस्तन्ममैव हि पौरुषम् ।

'उलूक ! उस बिना मूँछोंके मर्द ( अथवा बोझ ढोने-वाले बैल ), अधिक खानेवाले, अज्ञानी और मूर्ख भीमसेनसे भी बारंबार मेरा यह संदेश कहना 'कुन्तीकुमार ! पहले विराटनगरमें जो तू रसोइया बनकर रहा और बल्लवके नामसे विख्यात हुआ, वह सब मेरा ही पुरुषार्थ था ६४-६५½

प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा ॥ ६६ ॥
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ।

'पहले कौरवसभामें तूने जो प्रतिज्ञा की थी, वह मिथ्या नहीं होनी चाहिये । यदि तुझमें शक्ति हो तो आकर दुःशासनका रक्त पी लेना ॥ ६६½ ॥

यद् ब्रवीषि च कौन्तेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ६७ ॥
निहनिष्यामि तरसा तस्य कालोऽयमागतः ।

'कुन्तीकुमार ! तुम जो कहा करते हो कि मैं युद्धमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंको वेगपूर्वक मार डालूँगा, उसका यह समय आ गया है ॥ ६७½ ॥

त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्यो भक्ष्ये पेये च भारत ॥ ६८ ॥
क्व युद्धं क्व च भोक्तव्यं युध्यस्व पुरुषो भव ।

'भारत ! तुम निरे भोजनभट्ट हो । अतः अधिक खाने-पीनेमें पुरस्कार पानेके योग्य हो । किंतु कहाँ युद्ध और कहाँ भोजन ? शक्ति हो तो युद्ध करो और मर्द बनो ॥ ६८½

शयिष्यसे हतो भूमौ गदामालिङ्ग्य भारत ॥ ६९ ॥
तद् वृथा च सभामध्ये वल्गितं ते वृकोदर ।

'भारत ! युद्धभूमिमें मेरे हाथसे मारे जाकर तुम गदा-को छातीसे लगाये सदाके लिये सो जाओगे । वृकोदर ! तुमने सभामें जाकर जो उछल-कूद मचायी थी, वह व्यर्थ ही है' ॥ ६९½ ॥

उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत ॥ ७० ॥
युध्यस्वाद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम् ।
युधिष्ठिरानुरागं च द्वेषं च मयि भारत ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं स्मरेदानीं यथातथम् ॥ ७१ ॥

उलूक ! नकुलसे भी कहना—'भारत ! तुम मेरे कहनेसे अब स्थिरतापूर्वक युद्ध करो । हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखेंगे । तुम युधिष्ठिरके प्रति अपने अनुरागको, मेरे प्रति बढ़े हुए द्वेषको तथा द्रौपदीके क्लेशको भी इन दिनों अच्छी तरह याद कर लो' ॥ ७०-७१ ॥

ब्रूयास्त्वं सहदेवं च राजमध्ये वचो मम ।
युद्धस्वेदानीं रणे यत्तः क्लेशान् स्मर च पाण्डव ॥ ७२ ॥

उलूक ! तुम राजाओंके बीच सहदेवसे भी मेरी यह बात कहना—'पाण्डुनन्दन ! पहलेके दिये हुए क्लेशोंको याद कर लो और अब तत्पर होकर समरभूमिमें युद्ध करो' ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**विराटद्रुपदौ चोभौ ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।**
**न दृष्टपूर्वा भर्तारो भृत्यैरपि महागुणैः ॥ ७३ ॥**
**तथार्थपतिभिर्भृत्या यतः सृष्टाः प्रजास्ततः ।**
**अश्लाघ्योऽयं नरपतिर्युवयोरिति चागतम् ॥ ७४ ॥**

'तदनन्तर विराट और द्रुपदसे भी मेरी ओरसे कहना—'विधाताने जबसे प्रजाकी सृष्टि की है, तभीसे परम गुणवान् सेवकोंने भी अपने स्वामियोंकी अच्छी तरह परख नहीं की; उनके गुण-अवगुणको भलीभाँति नहीं पहिचाना । इसी प्रकार स्वामियोंने भी सेवकोंको ठीक-ठीक नहीं समझा । इसीलिये युधिष्ठिर श्रद्धाके योग्य नहीं हैं; तो भी तुम दोनों उन्हें अपना राजा मानकर उनकी ओरसे युद्धके लिये यहाँ आये हो ॥७३-७४॥

**ते यूयं संहता भूत्वा तद्वधार्थं ममापि च ।**
**आत्मार्थं पाण्डवार्थं च प्रयुद्ध्यध्वं मया सह ॥ ७५ ॥**

'इसलिये तुम सब लोग संगठित होकर मेरे वधके लिये प्रयत्न करो । अपनी और पाण्डवोंकी भलाईके लिये मेरे साथ युद्ध करो' ॥ ७५ ॥

**धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।**
**एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयापि सः ॥ ७६ ॥**

'फिर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको भी मेरा यह संदेश सुना देना—'राजकुमार ! यह तुम्हारे योग्य समय प्राप्त हुआ है । तुम्हें आचार्य द्रोण अपने सामने ही मिल जायँगे ॥७६॥

**द्रोणमासाद्य समरे ज्ञास्यसे हितमुत्तमम् ।**
**युध्यस्व ससुहृत् पापं कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥ ७७ ॥**

'समरभूमिमें द्रोणाचार्यके सामने जाकर ही तुम यह जान सकोगे कि तुम्हारा उत्तम हित किस बातमें है । आओ, अपने सुहृदोंके साथ रहकर युद्ध करो और गुरुके वधका अत्यन्त दुष्कर पाप कर डालो' ॥ ७७ ॥

**शिखण्डिनमथो ब्रूहि उलूक वचनान्मम ।**
**स्त्रीति मत्वा महाबाहुर्न हनिष्यति कौरवः ॥ ७८ ॥**
**गाङ्गेयो धन्विनां श्रेष्ठो युद्ध्यस्वेदानीं सुनिर्भयः ।**
**कुरु कर्म रणे यत्तः पश्यामः पौरुषं तव ॥ ७९ ॥**

'उलूक ! इसके बाद तुम शिखण्डीसे भी मेरी यह बात कहना—'धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ गङ्गापुत्र कुरुवंशी महाबाहु भीष्म तुम्हें स्त्री समझकर नहीं मारेंगे; इसलिये तुम अब निर्भय होकर युद्ध करना और समरभूमिमें यत्नपूर्वक पराक्रम प्रकट करना । हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखेंगे' ॥ ७८-७९ ॥

**एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत् ।**
**धनंजयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ८० ॥**

ऐसा कहते-कहते राजा दुर्योधन खिलखिलाकर हँस पड़ा । तत्पश्चात् उलूकसे पुनः इस प्रकार बोला—'उलूक ! तुम वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके सामने ही अर्जुनसे पुनः इस प्रकार कहना—॥ ८० ॥

**अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।**
**अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शयिष्यसि ॥ ८१ ॥**

'वीर धनंजय ! या तो तुम्हीं हमलोगोंको परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो या हमारे ही हाथोंसे मारे जाकर रणभूमिमें सदाके लिये सो जाओ ॥ ८१ ॥

**राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव ।**
**कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ८२ ॥**

'पाण्डुनन्दन ! राज्यसे निर्वासित होने, वनमें निवास करने तथा द्रौपदीके अपमानित होनेके क्लेशोंको याद करके अब भी तो मर्द बनो ॥ ८२ ॥

**यदर्थं क्षत्रिया सूते सर्वं तदिदमागतम् ।**
**बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम् ॥ ८३ ॥**
**पौरुषं दर्शयन् युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् ।**

'क्षत्राणी जिसके लिये पुत्र पैदा करती है, वह सब प्रयोजन सिद्ध करनेका यह समय आ गया है । तुम युद्धमें बल, पराक्रम, उत्तम शौर्य, अस्त्र-संचालनकी फुर्ती और पुरुषार्थ दिखाते हुए अपने बढ़े हुए क्रोधको ( हमारे ऊपर प्रयोग करके ) शान्त कर लो ॥ ८३½ ॥

**परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालोषितस्य च ।**
**हृदयं कस्य न स्फोटेदैश्वर्याद् भ्रंशितस्य च ॥ ८४ ॥**

'जिसे नाना प्रकारका क्लेश दिया गया हो, दीर्घकालके लिये राज्यसे निर्वासित किया गया हो तथा जिसे राज्यसे वञ्चित होकर दीनभावसे जीवन बिताना पड़ा हो, ऐसे किस स्वाभिमानी पुरुषका हृदय विदीर्ण न हो जायगा ? ॥

**कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेष्वगृध्यतः ।**
**आस्थितं राज्यमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत् ॥ ८५ ॥**

'जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, शूरवीर तथा पराये धनके प्रति लोभ न रखनेवाला हो, उसके राज्यको यदि कोई दबा बैठा हो तो वह किस वीरके क्रोधको उद्दीप्त न कर देगा ? ॥ ८५ ॥

**यत् तदुक्तं महद् वाक्यं कर्मणा तद् विभाव्यताम् ।**
**अकर्मणा कत्थितेन सन्तः कुपुरुषं विदुः ॥ ८६ ॥**

'तुमने जो बड़ी-बड़ी बातें कही हैं, उन्हें कार्यरूपमें परिणत करके दिखाओ । जो क्रियाद्वारा कुछ न करके केवल मुँहसे बातें बनाता है, उसे सज्जन पुरुष कायर मानते हैं ॥

**अमित्राणां वशे स्थानं राज्यं च पुनरुद्धर ।**
**द्वावर्थौ युद्धकामस्य तस्मात् तत् कुरु पौरुषम् ॥ ८७ ॥**

'तुम्हारा स्थान और राज्य शत्रुओंके हाथमें पड़ा है, उसका पुनरुद्धार करो । युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके ये दो ही प्रयोजन होते हैं; अतः उनकी सिद्धिके लिये पुरुषार्थ करो ॥

**पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम् ।**
**शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ८८ ॥**

'तुम जूएमें पराजित हुए और तुम्हारी स्त्री द्रौपदीको सभामें लाया गया । अपनेको पुरुष माननेवाले किसी भी मनुष्यको इन बातोंके लिये भारी अमर्ष हो सकता है ॥८८॥

**द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद् विवासितः ।**
**संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ८९ ॥**



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'तुम बारह वर्षोंतक राज्यसे निर्वासित होकर वनमें रहे हो और एक वर्षतक तुम्हें विराटका दास होकर रहना पड़ा है ॥

**राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव ।**
**कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ९० ॥**

'पाण्डुनन्दन ! राज्यसे निर्वासनका, वनवासका और द्रौपदीके अपमानका क्लेश याद करके तो मर्द बनो ॥ ९० ॥

**अप्रियाणां च वचनं प्रब्रुवत्सु पुनः पुनः ।**
**अमर्षं दर्शयस्व त्वममर्षो ह्येव पौरुषम् ॥ ९१ ॥**

'हमलोग बार-बार तुमलोगोंके प्रति अप्रिय वचन कहते हैं। तुम हमारे ऊपर अपना अमर्ष तो दिखाओ; क्योंकि अमर्ष ही पौरुष है ॥ ९१ ॥

**क्रोधो बलं तथा वीर्यं ज्ञानयोगोऽस्त्रलाघवम् ।**
**इह ते दृश्यतां पार्थ युद्ध्यस्व पुरुषो भव ॥ ९२ ॥**

'पार्थ ! यहाँ लोग तुम्हारे क्रोध, बल, वीर्य, ज्ञानयोग और अस्त्र चलानेकी फुर्ती आदि गुणोंको देखें । युद्ध करो और अपने पुरुषत्वका परिचय दो ॥ ९२ ॥

**लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।**
**पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युद्ध्यस्व सकेशवः ॥ ९३ ॥**

'अब लोहमय अस्त्र-शस्त्रोंको बाहर निकालकर तैयार करनेका कार्य पूरा हो चुका है। कुरुक्षेत्रकी कीच भी सूख गयी है। तुम्हारे घोड़े खूब हृष्ट-पुष्ट हैं और सैनिकोंका भी तुमने अच्छी तरह भरण-पोषण किया है; अतः कल सबेरेसे ही श्रीकृष्णके साथ आकर युद्ध करो ॥ ९३ ॥

**असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे ।**
**आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ९४ ॥**
**एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन् पुरुषो भव ।**

'अभी युद्धमें भीष्मजीके साथ मुठभेड़ किये बिना तुम क्यों अपनी झूठी प्रशंसा करते हो ? कुन्तीनन्दन ! जैसे कोई शक्तिहीन एवं मन्दबुद्धि पुरुष गन्धमादन पर्वतपर चढ़ना चाहता हो, उसी प्रकार तुम भी अपनी झूठी बड़ाई करते हो। मिथ्या आत्मप्रशंसा न करके पुरुष बनो ॥ ९४½ ॥

**सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥ ९५ ॥**
**द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।**
**अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥ ९६ ॥**

'पार्थ ! अत्यन्त दुर्जय वीर सूतपुत्र कर्ण, बलवानोंमें श्रेष्ठ शल्य तथा युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी एवं बलवानोंमें अग्रगण्य द्रोणाचार्यको युद्धमें परास्त किये बिना तुम यहाँ राज्य कैसे लेना चाहते हो ? ॥ ९५-९६ ॥

**ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः ।**
**युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥ ९७ ॥**
**द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।**
**न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ ९८ ॥**

'कुन्तीपुत्र ! आचार्य द्रोण ब्राह्मवेद और धनुर्वेद इन दोनोंके पारङ्गत पण्डित हैं। ये युद्धका भार वहन करनेमें समर्थ, अक्षोभ्य, सेनाके मध्यभागमें विचरनेवाले तथा युद्धके मैदानसे पीछे न हटनेवाले हैं। इन महातेजस्वी द्रोणको जो तुम जीतनेकी इच्छा रखते हो, वह मिथ्या साहसमात्र है। वायुने सुमेरु पर्वतको उखाड़ फेंका हो, यह कभी हमारे सुननेमें नहीं आया है ( इसी प्रकार तुम्हारे लिये भी आचार्यको जीतना असम्भव है ) ॥ ९७-९८ ॥

**अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वापि निपतेन्महीम् ।**
**युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद् यथाऽऽत्थ माम् ॥ ९९ ॥**

'तुमने मुझसे जो कुछ कहा है, वह यदि सत्य हो जाय, तब तो हवा मेरुको उठा ले, स्वर्गलोक इस पृथ्वीपर गिर पड़े अथवा युग ही बदल जाय ॥ ९९ ॥

**को ह्यस्ति जीविताकाङ्क्षी प्राप्येममरिमर्दनम् ।**
**पार्थो वा इतरो वापि कोऽन्यः स्वस्ति गृहान् व्रजेत् ॥ १०० ॥**

'अर्जुन हो या दूसरा कोई, जीवनकी इच्छा रखनेवाला कौन ऐसा वीर है, जो युद्धमें इन शत्रुदमन आचार्यके पास पहुँचकर कुशलपूर्वक घरको लौट सके ? ॥ १०० ॥

**कथमाभ्यामभिध्यातः संस्पृष्टो दारुणेन वा ।**
**रणे जीवन् प्रमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १०१ ॥**

'ये दोनों द्रोण और भीष्म जिसे मारनेका निश्चय कर लें अथवा उनके भयानक अस्त्र आदिसे जिसके शरीरका स्पर्श हो जाय, ऐसा कोई भी भूतलनिवासी मरणधर्मा मनुष्य युद्धमें जीवित कैसे बच सकता है ? ॥ १०१ ॥

**किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां**
**न बुध्यसे राजचमूं समेताम् ।**
**दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां**
**गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ १०२ ॥**
**प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-**
**रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च ।**
**शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमध्यदेश्यै-**
**र्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥ १०३ ॥**

'जैसे देवता स्वर्गकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओंके नरेश तथा काम्बोज, शक, खश, शाल्व, मत्स्य, कुरु और मध्यप्रदेशके सैनिक एवं म्लेच्छ, पुलिन्द, द्रविड़, आन्ध्र और काञ्चीदेशीय योद्धा जिस सेनाकी रक्षा करते हैं, जो देवताओंकी सेनाके समान दुर्धर्ष एवं संगठित है, कौरवराजकी ( समुद्रतुल्य ) उस सेनाको क्या तुम कूपमण्डूककी भाँति अच्छी तरह समझ नहीं पाते ? ॥ १०२-१०३ ॥

**नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं**
**गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम् ।**
**मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये**
**युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ १०४ ॥**

'ओ अल्पबुद्धि मूढ़ अर्जुन ! जिसका वेग युद्धकालमें गङ्गाके वेगके समान बढ़ जाता है और जिसे पार करना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

असम्भव है, नाना प्रकारके जनसमुदायसे भरी हुई मेरी उस विशाल वाहिनीके साथ तथा गजसेनाके बीचमें खड़े हुए मुझ दुर्योधनके साथ भी तुम युद्धकी इच्छा कैसे रखते हो ? ॥

**अक्षय्याविषुधी चैव अग्निदत्तं च ते रथम्।**
**जानीमो हि रणे पार्थ केतुं दिव्यं च भारत ॥१०५॥**

'भारत ! हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम्हारे पास अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस हैं, अग्निदेवका दिया हुआ दिव्य रथ है और युद्धकालमें उसपर दिव्य ध्वजा फहराने लगती है ॥ १०५ ॥

**अकत्थमानो युद्ध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु।**
**पर्यायात् सिद्धिरेतस्य नैतत् सिध्यति कत्थनात् ॥१०६॥**

'अर्जुन ! बातें न बनाकर युद्ध करो। बहुत शेखी क्यों बघारते हो ? विभिन्न प्रकारोंसे युद्ध करनेपर ही राज्यकी सिद्धि हो सकती है। झूठी आत्मप्रशंसा करनेसे इस कार्यमें सफलता नहीं मिल सकती ॥ १०६ ॥

**यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनंजय।**
**सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः ॥१०७॥**

'धनंजय ! यदि जगत्में अपनी झूठी प्रशंसा करनेसे ही अभीष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती, तब तो सब लोग सिद्धकाम हो जाते; क्योंकि बातें बनानेमें कौन दरिद्र और दुर्बल होगा ?

**जानामि ते वासुदेवं सहायं**
**जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम्।**
**जानाम्यहं त्वादृशो नास्ति योद्धा**
**जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि ॥१०८॥**

'मैं जानता हूँ कि तुम्हारे सहायक वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण हैं, मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे पास चार हाथ लंबा गाण्डीव धनुष है तथा मुझे यह भी मालूम है कि तुम्हारे-जैसा दूसरा कोई योद्धा नहीं है; यह सब जानकर भी मैं तुम्हारे इस राज्यका अपहरण करता हूँ ॥ १०८ ॥

**न तु पर्यायधर्मेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः।**
**मनसैवानुकूलानि धातैव कुरुते वशे ॥१०९॥**

'कोई भी मनुष्य नाममात्रके धर्मद्वारा सिद्धि नहीं पाता, केवल विधाता ही मानसिक संकल्पमात्रसे सबको अपने अनुकूल और अधीन कर लेता है ॥ १०९ ॥

**त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव।**
**भूयश्चैव प्रशासिष्ये त्वां निहत्य सबान्धवम् ॥११०॥**

'तुम रोते-बिलखते रह गये और मैंने तेरह वर्षोंतक तुम्हारा राज्य भोगा। अब भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके आगे भी मैं ही इस राज्यका शासन करूँगा ॥११०॥

**क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद् यत् त्वं दासपणैर्जितः।**
**क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥१११॥**

'दास अर्जुन ! जब तुम जूएके दाँवपर जीत लिये गये, उस समय तुम्हारा गाण्डीव धनुष कहाँ था ? भीमसेनका बल भी उस समय कहाँ चला गया था ? ॥ १११ ॥

**सगदाद् भीमसेनाद् वा फाल्गुनाद् वा सगाण्डिवात्।**
**न वै मोक्षस्तदाभूद् वो विना कृष्णामनिन्दिताम् ॥११२॥**

'गदाधारी भीमसेन अथवा गाण्डीवधारी अर्जुनसे भी उस समय सती साध्वी द्रौपदीका सहारा लिये बिना तुमलोगोंका दासभावसे उद्धार न हो सका ॥ ११२ ॥

**सा वो दास्ये समापन्नान् मोक्षयामास पार्षती।**
**अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान् ॥११३॥**

'तुम सब लोग अमनुष्योचित दीन दशाको प्राप्त हो दासभावमें स्थित थे। उस समय द्रुपदकुमारी कृष्णाने ही दासताके संकटमें पड़े हुए तुम सब लोगोंको छुड़ाया था ॥ ११३ ॥

**अवोचं यत् 'षण्ढतिलान्' वस्तथ्यमेव तत्।**
**धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥११४॥**

'मैंने जो उन दिनों तुमलोगोंको हिजड़ा या नपुंसक कहा था, वह ठीक ही निकला; क्योंकि अज्ञातवासके समय विराटनगरमें अर्जुनको अपने सिरपर स्त्रियोंकी भाँति वेणी धारण करनी पड़ी ॥ ११४ ॥

**सूदकर्मणि विश्रान्तं विराटस्य महानसे।**
**भीमसेनेन कौन्तेय यत् तु तन्मम पौरुषम् ॥११५॥**

'कुन्तीकुमार ! तुम्हारे भाई भीमसेनको राजा विराटके रसोईघरमें रसोइयेके काममें ही संलग्न रहकर जो भारी श्रम उठाना पड़ा, वह सब मेरा ही पुरुषार्थ है ॥ ११५ ॥

**एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः।**
**वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥११६॥**

'इसी प्रकार सदासे ही क्षत्रियोंने अपने विरोधी क्षत्रियको दण्ड दिया है। इसीलिये तुम्हें भी सिरपर वेणी रखाकर और हिजड़ोंका वेष बनाकर राजाके अन्तःपुरमें लड़कियोंको नचानेका काम करना पड़ा ॥ ११६ ॥

**न भयाद् वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन।**
**राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युद्ध्यस्व सहकेशवः ॥११७॥**

'फाल्गुन ! श्रीकृष्णके या तुम्हारे भयसे मैं राज्य नहीं लौटाऊँगा। तुम श्रीकृष्णके साथ आकर युद्ध करो ॥११७॥

**न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा।**
**आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥११८॥**

'माया, इन्द्रजाल अथवा भयानक छलना संग्रामभूमिमें हथियार उठाये हुए वीरके क्रोध और सिंहनादको ही बढ़ाती हैं ( उसे भयभीत नहीं कर सकती हैं ) ॥ ११८ ॥

**वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा।**
**आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥११९॥**

'हजारों श्रीकृष्ण और सैकड़ों अर्जुन भी अमोघ बाणोंवाले मुझ वीरके पास आकर दसों दिशाओंमें भाग जायँगे ॥

**संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम्।**
**तरस्व वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥१२०॥**

'तुम भीष्मके साथ युद्ध करो या सिरसे पहाड़ फोड़ो

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

या सैनिकोंके अत्यन्त गहरे महासागरको दोनों बाँहोंसे तैरकर पार करो ॥ १२० ॥

शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।
बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥१२१॥

'हमारे सैन्यरूपी महासमुद्रमें कृपाचार्य महामत्स्यके समान हैं, विविंशति उसके भीतर रहनेवाला महान् सर्प है, बृहद्बल उसके भीतर उठनेवाले विशाल ज्वारके समान है, भूरिश्रवा तिमिंगिल नामक मत्स्यके स्थानमें है ॥ १२१ ॥

भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।
कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥१२२॥

'भीष्म उसके असीम वेग हैं, द्रोणाचार्यरूपी ग्राहके होनेसे इस सैन्यसागरमें प्रवेश करना अत्यन्त दुष्कर है, कर्ण और शल्य क्रमशः मत्स्य तथा आवर्त ( भँवर ) का काम करते हैं और काम्बोजराज सुदक्षिण इसमें बड़वानल हैं ॥

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं
सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं
दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥१२३॥

'दुःशासन उसके तीव्र प्रवाहके समान है, शल और शल्य मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुध नाग और मकरके समान हैं; जयद्रथ पर्वत है; पुरुमित्र उसकी गम्भीरता है, दुर्मर्षण जल है और शकुनि प्रपात ( झरने ) का काम देता है ॥ १२३ ॥

शस्त्रौघमक्षय्यमभिप्रवृद्धं
यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धव-
स्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥१२४॥

'भाँति-भाँतिके शस्त्र इस सैन्यसागरके जलप्रवाह हैं। यह अक्षय होनेके साथ ही खूब बढ़ा हुआ है। इसमें प्रवेश करनेपर अधिक श्रमके कारण जब तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी, तुम्हारे समस्त बन्धु मार दिये जायँगे, उस समय तुम्हारे मनको बड़ा संताप होगा ॥ १२४ ॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचे-
र्निवर्तिता पार्थ महीप्रशासनात् ।
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया
बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना ॥१२५॥

'पार्थ ! जैसे अपवित्र मनुष्यका मन स्वर्गकी ओरसे निवृत्त हो जाता है ( क्योंकि उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति असम्भव है ), उसी प्रकार तुम्हारा मन भी उस समय इस पृथ्वीपर राज्यशासन करनेसे निराश होकर निवृत्त हो जायगा। अर्जुन ! शान्त होकर बैठ जाओ । राज्य तुम्हारे लिये अत्यन्त दुर्लभ है। जिसने तपस्या नहीं की है, वह जैसे स्वर्ग पाना चाहे, उसी प्रकार तुमने भी राज्यकी अभिलाषा की है।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि दुर्योधनवाक्ये षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूतागमनपर्वमें दुर्योधनवाक्यविषयक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१६०॥

# एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

## पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचकर उलूकका भरी सभामें दुर्योधनका संदेश सुनाना

*संजय उवाच*

सेनानिवेशं सम्प्राप्तः कैतव्यः पाण्डवस्य ह ।
समागतः पाण्डवेयैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १ ॥

**संजय कहते हैं**—राजन् ! तदनन्तर जुआरी शकुनिका पुत्र उलूक पाण्डवोंकी छावनीमें जाकर उनसे मिला और युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोला—॥१॥

अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम ।
दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥ २ ॥

'राजन् ! आप दूतके वचनोंका मर्म जाननेवाले हैं। दुर्योधनने जो संदेश दिया है, उसे मैं ज्यों-का-त्यों दोहरा दूँगा। उसे सुनकर आपको मुझपर क्रोध नहीं करना चाहिये'।२।

*युधिष्ठिर उवाच*

उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः ।
यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥ ३ ॥

**युधिष्ठिरने कहा**—उलूक ! तुम्हें ( तनिक भी ) भय नहीं है। तुम निश्चिन्त होकर लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधनका अभिप्राय सुनाओ ॥ ३ ॥

ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सृञ्जयानां च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः ॥ ४ ॥
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च संनिधौ ।
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ॥ ५ ॥

( संजय कहते हैं— ) तब वहाँ बैठे हुए तेजस्वी महात्मा पाण्डवों, सृञ्जयों, मत्स्यों, यशस्वी श्रीकृष्ण तथा पुत्रों सहित द्रुपद और विराटके समीप समस्त राजाओंके बीचमें उलूकने यह बात कही ॥ ४-५ ॥

*उलूक उवाच*

इदं त्वामब्रवीद् राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

**उलूक बोला**—महाराज युधिष्ठिर ! महामना धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने कौरववीरोंके समक्ष आपको यह संदेश कहलाया है, इसे सुनिये ॥ ६ ॥

पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम् ।
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ७ ॥

'तुम जूएमें हारे और तुम्हारी पत्नी द्रौपदीको सभा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लाया गया । इस दशामें अपनेको पुरुष माननेवाला प्रत्येक मनुष्य क्रोध कर सकता है ॥ ७ ॥

**द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद् विवासितः ।**
**संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ८ ॥**

'बारह वर्षोंतक तुम राज्यसे निर्वासित होकर वनमें रहे और एक वर्षतक तुम्हें राजा विराटका दास बनकर रहना पड़ा ॥

**अमर्षं राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।**
**द्रौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ९ ॥**

'पाण्डुनन्दन ! तुम अपने अमर्षको, राज्यके अपहरणको, वनवासको और द्रौपदीको दिये गये क्लेशको भी याद करके मर्द बनो ॥ ९ ॥

**अशक्तेन च यच्छप्तं भीमसेनेन पाण्डव ।**
**दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥ १० ॥**

'पाण्डुपुत्र ! तुम्हारे भाई भीमसेनने उस समय कुछ करनेमें असमर्थ होनेके कारण जो दुर्वचन कहा था, उसे याद करके वे आवें और यदि शक्ति हो, तो दुःशासनका रक्त पीयें ॥

**लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।**
**समः पन्था भृतास्तेऽश्वाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥ ११ ॥**

'लोहेके अस्त्र-शस्त्रोंको बाहर निकालकर उन्हें तैयार करने आदिका कार्य पूरा हो गया है, कुरुक्षेत्रकी कीचड़ सूख गयी है, मार्ग बराबर हो गया है और तुम्हारे अश्व भी खूब पले हुए हैं; अतः कल सवेरेसे ही श्रीकृष्णके साथ आकर युद्ध करो ।११।

**असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे ।**
**आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ १२ ॥**
**एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन् पुरुषो भव ।**

'युद्धक्षेत्रमें भीष्मका सामना किये बिना ही तुम क्यों अपनी झूठी प्रशंसा करते हो ? कुन्तीनन्दन ! जैसे कोई अशक्त एवं मन्दबुद्धि पुरुष गन्धमादन पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करे, उसी प्रकार तुम भी अपने बारेमें बड़ी-बड़ी बातें किया करते हो । बातें न बनाओ; पुरुष बनो ( पुरुषत्वका परिचय दो ) ॥ १२½ ॥

**सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥ १३ ॥**
**द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।**
**अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥ १४ ॥**

'पार्थ ! अत्यन्त दुर्जय वीर सूतपुत्र कर्ण, बलवानोंमें श्रेष्ठ शल्य तथा युद्धमें शचीपति इन्द्रके समान पराक्रमी महाबली द्रोणको युद्धमें जीते बिना तुम यहाँ राज्य कैसे लेना चाहते हो ? ॥ १३-१४ ॥

**ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः ।**
**युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥ १५ ॥**
**द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।**
**न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ १६ ॥**

'आचार्य द्रोण ब्राह्मवेद और धनुर्वेद दोनोंके पारङ्गत पण्डित हैं । वे युद्धका भार वहन करनेमें समर्थ, अक्षोभ्य, सेनाके मध्यमें विचरनेवाले तथा संग्रामभूमिसे कभी पीछे न हटनेवाले हैं । पार्थ ! तुम उन्हीं महातेजस्वी द्रोणको जो जीतनेकी इच्छा करते हो, वह व्यर्थ दुःसाहसमात्र है । वायुने कभी सुमेरु पर्वतको उखाड़ फेंका हो, यह कभी हमारे सुननेमें नहीं आया ॥ १५-१६ ॥

**अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वापि निपतेन्महीम् ।**
**युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद् यथाऽऽत्थ माम् ॥ १७ ॥**

'तुम जैसा मुझसे कहते हो, वैसा ही यदि सम्भव हो जाय, तब तो वायु भी सुमेरु पर्वतको उठा ले, स्वर्गलोक पृथ्वीपर गिर पड़े अथवा युग ही बदल जाय ॥ १७ ॥

**को ह्यस्ति जीविताकाङ्क्षी प्राप्येममरिमर्दनम् ।**
**गजो वाजी रथो वापि पुनः स्वस्ति गृहान् व्रजेत् ॥ १८ ॥**

'जीवित रहनेकी इच्छावाला कौन ऐसा हाथीसवार, घुड़सवार अथवा रथी है, जो इन शत्रुमर्दन द्रोणसे भिड़कर कुशलपूर्वक अपने घरको लौट सके ? ॥ १८ ॥

**कथमाभ्यामभिध्यातः संस्पृष्टो दारुणेन वा ।**
**रणे जीवन् विमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १९ ॥**

'भीष्म और द्रोणने जिसे मारनेका निश्चय कर लिया हो अथवा जो युद्धमें इनके भयंकर अस्त्रोंसे छू गया हो, ऐसा कौन भूतलनिवासी जीवित बच सकता है ? ॥ १९ ॥

**किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां**
**न बुध्यसे राजचमूं समेताम् ।**
**दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां**
**गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ २० ॥**
**प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-**
**रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च ।**
**शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमध्यदेश्यै-**
**र्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥ २१ ॥**

'जैसे देवता स्वर्गकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओंके नरेश तथा काम्बोज, शक, खश, शाल्व, मत्स्य, कुरु और मध्यप्रदेशके सैनिक एवं म्लेच्छ, पुलिन्द, द्रविड़, आन्ध्र और काञ्चीदेशीय योद्धा जिस सेनाकी रक्षा करते हैं, जो देवताओंकी सेनाके समान दुर्धर्ष एवं संगठित है, कौरवराजकी उस ( समुद्रतुल्य ) सेनाको क्या तुम कूपमण्डूककी भाँति अच्छी तरह समझ नहीं पाते ? ॥ २०-२१ ॥

**नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं**
**गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम् ।**
**मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये**
**युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ २२ ॥**

'अल्पबुद्धि मूढ़ युधिष्ठिर ! जिसका वेग युद्धकालमें गङ्गाके वेगके समान बढ़ जाता है और जिसे पार करना असम्भव है, नाना प्रकारके जनसमुदायसे भरी हुई मेरी उस विशाल वाहिनीके साथ तथा गजसेनाके बीचमें खड़े हुए मुझ

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दुर्योधनके साथ भी तुम युद्धकी इच्छा कैसे रखते हो ?' । २२ ।

**इत्येवमुक्त्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।**
**अभ्यावृत्य पुनर्जिष्णुमुलूकः प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥**

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर उलूक अर्जुनकी ओर मुड़ा और तत्पश्चात् उनसे भी इस प्रकार कहने लगा—॥ २३॥

**अकत्थमानो युध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु।**
**पर्यायात् सिद्धिरेतस्य नैतत् सिध्यति कत्थनात् ॥ २४॥**

'अर्जुन ! बातें न बनाकर युद्ध करो । क्यों आत्म-प्रशंसा क्यों करते हो ? विभिन्न प्रकारोंसे युद्ध करनेपर ही राज्यकी सिद्धि हो सकती है । झूठी आत्मप्रशंसा करनेसे इस कार्यमें सफलता नहीं मिल सकती ॥ २४ ॥

**यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनंजय।**
**सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः ॥ २५ ॥**

'धनंजय ! यदि जगत्में अपनी झूठी प्रशंसा करनेसे ही अभीष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती, तब तो सब लोग सिद्धकाम हो जाते; क्योंकि बातें बनानेमें कौन दरिद्र और दुर्बल होगा ? ।२५।

**जानामि ते वासुदेवं सहायं**
**जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम्।**
**जानाम्येतत् त्वादृशो नास्ति योद्धा**
**जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि ॥ २६ ॥**

'मैं जानता हूँ कि तुम्हारे सहायक वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण हैं, मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे पास चार हाथ लम्बा गाण्डीव धनुष है तथा मुझे यह भी मालूम है कि तुम्हारे-जैसा दूसरा कोई योद्धा नहीं है; यह सब जानकर भी मैं तुम्हारे इस राज्यका अपहरण करता हूँ ॥ २६ ॥

**न तु पर्यायधर्मेण राज्यं प्राप्नोति मानुषः।**
**मनसैवानुकूलानि विधाता कुरुते वशे ॥ २७ ॥**

'कोई भी मनुष्य नाममात्रके धर्मद्वारा राज्य नहीं पाता; केवल विधाता ही मानसिक संकल्पमात्रसे सबको अपने अनुकूल और अधीन कर लेता है ॥ २७ ॥

**त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव।**
**भूयश्चैव प्रशासिष्ये निहत्य त्वां सबान्धवम् ॥ २८ ॥**

'तुम रोते-विलखते रह गये और मैंने तेरह वर्षोंतक तुम्हारा राज्य भोगा । अब भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके आगे भी मैं ही इस राज्यका शासन करूँगा ॥ २८ ॥

**क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद् यत् त्वं दासः पणैर्जितः।**
**क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥ २९ ॥**

'दास अर्जुन ! जब तुमलोग जूएके दाँवपर जीत लिये गये, उस समय तुम्हारा गाण्डीव धनुष कहाँ था ? भीमसेनका बल भी उस समय कहाँ चला गया था ? ॥ २९ ॥

**सगदाद् भीमसेनाद् वा पार्थाद् वापि सगाण्डिवात्।**
**न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद् विना कृष्णामनिन्दिताम् ॥ ३० ॥**

'गदाधारी भीमसेन अथवा गाण्डीवधारी अर्जुनसे भी उस समय सती साध्वी द्रौपदीका सहारा लिये बिना तुम-लोगोंका दासभावसे उद्धार न हो सका ॥ ३० ॥

**सा वो दास्ये समापन्नान् मोक्षयामास पार्षती।**
**अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान् ॥ ३१ ॥**

'तुम सब लोग अमनुष्योचित दीन दशाको प्राप्त हो दासभावमें स्थित थे । उस समय उस द्रुपदकुमारी कृष्णाने ही दासताके संकटमें पड़े हुए तुम सब लोगोंको छुड़ाया था ॥

**अवोचं यत् षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत्।**
**धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ३२ ॥**

'मैंने जो उन दिनों तुमलोगोंको हिजड़ा या नपुंसक कहा था, वह ठीक ही निकला; क्योंकि अज्ञातवासके समय विराटनगरमें अर्जुनको अपने सिरपर स्त्रियोंकी भाँति वेणी धारण करनी पड़ी ॥ ३२ ॥

**सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे।**
**भीमसेनेन कौन्तेय यच्च तन्मम पौरुषम् ॥ ३३ ॥**

'कुन्तीकुमार ! तुम्हारे भाई भीमसेनको राजा विराटके रसोईघरमें रसोइयेके काममें ही संलग्न रहकर जो भारी श्रम उठाना पड़ा, वह सब मेरा ही पुरुषार्थ है ॥ ३३ ॥

**एवमेतत् सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः।**
**वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥ ३४ ॥**

'इसी प्रकार सदासे ही क्षत्रियोंने अपने विरोधी क्षत्रियको दण्ड दिया है । इसीलिये तुम्हें भी सिरपर वेणी रखाकर और हिजड़ोंका वेष बनाकर राजा विराटकी कन्याको नचानेका काम करना पड़ा ॥ ३४ ॥

**न भयाद् वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन।**
**राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युद्ध्यस्व सहकेशवः ॥ ३५ ॥**

'फाल्गुन ! श्रीकृष्णके या तुम्हारे भयसे मैं राज्य नहीं लौटाऊँगा । तुम श्रीकृष्णके साथ आकर युद्ध करो ॥ ३५ ॥

**न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा।**
**आत्तशस्त्रस्य मे युद्धे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ३६ ॥**

'माया, इन्द्रजाल अथवा भयानक छलना संग्रामभूमिमें हथियार उठाये हुए मुझ दुर्योधनके क्रोध और सिंहनादको ही बढ़ाती हैं ( मुझे भयभीत नहीं कर सकती हैं ) ॥ ३६ ॥

**वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा।**
**आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥ ३७ ॥**

'हजारों श्रीकृष्ण और सैकड़ों अर्जुन भी अमोघ बाणोंवाले मुझ वीरके पास आकर दसों दिशाओंमें भाग जायँगे। ३७।

**संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम्।**
**तरेमं वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥ ३८ ॥**

'तुम भीष्मके साथ युद्ध करो या सिरसे पहाड़ फोड़ो या सैनिकोंके अत्यन्त गहरे महासागरको दोनों बाँहोंसे तैरकर पार करो ॥

**शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम्।**
**बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥ ३९ ॥**

'हमारे सैन्यरूपी महासमुद्रमें कृपाचार्य महामत्स्यके समान हैं, विविंशति उसके भीतर रहनेवाला महासर्प है,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बृहद्बल उसके भीतर उठनेवाले महान् ज्वारके समान हैं, भूरिश्रवा तिमिंगिल नामक मत्स्यके स्थानमें हैं ॥ ३९ ॥

भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।
कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥ ४० ॥

'भीष्म उसके असीम वेग हैं, द्रोणाचार्यरूपी ग्राहके होनेसे इस सैन्यसागरमें प्रवेश करना अत्यन्त दुष्कर है, कर्ण और शल्य मत्स्य तथा आवर्त ( भँवर ) का काम करते हैं और काम्बोजराज सुदक्षिण इसमें बड़वानल हैं ॥ ४० ॥

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं
सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं
दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ ४१ ॥

'दुःशासन इसके तीव्र प्रवाहके समान है, शल और शल्य मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुध नाग और मकरके समान हैं, जयद्रथ पर्वत है, पुरुमित्र उसकी गम्भीरता है, दुर्मर्षण जल है और शकुनि प्रपात ( झरने ) का काम देता है।४१।

शस्त्रौघमक्षय्यमतिप्रवृद्धं
यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धव-
स्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥ ४२ ॥

'भाँति-भाँतिके शस्त्र इस सैन्यसागरके जलप्रवाह हैं। यह अक्षय होनेके साथ ही खूब बढ़ा हुआ है। इसमें प्रवेश करने-पर अधिक श्रमके कारण जब तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी, तुम्हारे समस्त बन्धु मार दिये जायँगे, उस समय तुम्हारे मनको बड़ा संताप होगा ॥ ४२ ॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचे-
र्निवर्तिता पार्थ महीप्रशासनात् ।
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया
बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना ॥ ४३ ॥

'पार्थ ! जैसे अपवित्र मनुष्यका मन स्वर्गकी ओरसे निवृत्त हो जाता है, क्योंकि उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति असम्भव है, उसी प्रकार तुम्हारा मन भी उस समय इस पृथ्वीके राज्य-शासनसे निराश होकर निवृत्त हो जायगा। अर्जुन ! शान्त होकर बैठ जाओ। राज्य तुम्हारे लिये अत्यन्त दुर्लभ है। जिसने तपस्या नहीं की है, वह जैसे स्वर्ग पाना चाहे, उसी प्रकार तुमने भी राज्यकी अभिलाषा की है' ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकवाक्ये एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूतागमनपर्वमें उलूकवाक्यविषयक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६१ ॥

# द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

## पाण्डवपक्षकी ओरसे दुर्योधनको उसके संदेशका उत्तर

संजय उवाच

उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उलूकने विषधर सर्पके समान क्रोधमें भरे हुए अर्जुनको अपने वाग्बाणोंसे और भी पीड़ा देते हुए दुर्योधनकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं ॥ १ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम् ।
प्रागेव भृशसंक्रुद्धाः कैतव्येनापि धर्षिताः ॥ २ ॥

उसकी बात सुनकर पाण्डवोंको बड़ा रोष हुआ। एक तो वे पहलेसे ही अधिक क्रुद्ध थे, दूसरे जुआरी शकुनिके बेटेने भी उनका बड़ा तिरस्कार किया ॥ २ ॥

आसनेषूदतिष्ठन्त बाहूंश्चैव प्रचिक्षिपुः ।
आशीविषा इव क्रुद्धा वीक्षांचक्रुः परस्परम् ॥ ३ ॥

वे आसनोंसे उठकर खड़े हो गये और अपनी भुजाओंको इस प्रकार हिलाने लगे, मानो प्रहार करनेके लिये उद्यत हों। वे विषैले सर्पोंके समान अत्यन्त कुपित हो एक-दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ ३ ॥

अवाक्शिरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम् ।
नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन् ॥ ४ ॥

भीमसेनने फुफकारते हुए विषधर नागकी भाँति लम्बी साँसें खींचते हुए सिर नीचे किये लाल नेत्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखा ॥ ४ ॥

आर्तं वातात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाभिहतं भृशम् ।
उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥

वायुपुत्र भीमको क्रोधसे अत्यन्त पीड़ित और आहत देख दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्णने उलूकसे मुसकराते हुए-से कहा—।

प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम् ।
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत् ते तथास्तु तत् ॥ ६ ॥

'जुआरी शकुनिके पुत्र उलूक ! तू शीघ्र लौट जा और दुर्योधनसे कह दे—'पाण्डवोंने तुम्हारा संदेश सुना और उसके अर्थको समझकर स्वीकार किया। युद्धके विषयमें जैसा तुम्हारा मत है, वैसा ही हो' ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः केशवो राजसत्तम ।
पुनरेव महाप्राज्ञं युधिष्ठिरमुदैक्षत ॥ ७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर महाबाहु केशवने पुनः परम बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरकी ओर देखा ॥ ७ ॥

सृञ्जयानां च सर्वेषां कृष्णस्य च यशस्विनः ।
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च संनिधौ ॥ ८ ॥
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ।
उलूकोऽप्यर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया ।
कृष्णादींश्चैव तान् सर्वान् यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥

फिर उलूकने भी समस्त सृंजयवंशी क्षत्रियसमुदाय, यशस्वी श्रीकृष्ण तथा पुत्रोंसहित द्रुपद और विराटके समीप सम्पूर्ण राजाओंकी मण्डलीमें शेष बातें कहीं । उसने विषधर सर्पके सदृश कुपित हुए अर्जुनको पुनः अपने वाग्बाणोंसे पीड़ा देते हुए दुर्योधनकी कही हुई सब बातें कह सुनायीं । साथ ही श्रीकृष्ण आदि अन्य सब लोगोंसे कहनेके लिये भी उसने जो-जो संदेश दिये थे, उन्हें भी उन सबको यथावत्‌रूपसे सुना दिया ॥ ८–१० ॥

उलूकस्य तु तद् वाक्यं पापं दारुणमीरितम् ।
श्रुत्वा विचुक्षुभे पार्थो ललाटं चाप्यमार्जयत् ॥ ११ ॥

उलूकके कहे हुए उस पापपूर्ण दारुण वचनको सुनकर कुन्तीपुत्र अर्जुनको बड़ा क्षोभ हुआ । उन्होंने हाथसे ललाटका पसीना पोंछा ॥ ११ ॥

तदवस्थं तदा दृष्ट्वा पार्थं सा समितिर्नृप ।
नामृष्यन्त महाराज पाण्डवानां महारथाः ॥ १२ ॥

नरेश्वर ! अर्जुनको उस अवस्थामें देखकर राजाओंकी वह समिति तथा पाण्डव महारथी सहन न कर सके ॥ १२ ॥

अधिक्षेपेण कृष्णस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
श्रुत्वा ते पुरुषव्याघ्राः क्रोधाज्जज्वलुरच्युताः ॥ १३ ॥

राजन् ! महात्मा अर्जुन तथा श्रीकृष्णके प्रति आक्षेपपूर्ण वचन सुनकर वे पुरुषसिंह शूरवीर क्रोधसे जल उठे ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १४ ॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ।
भीमसेनश्च विक्रान्तो यमजौ च महारथौ ॥ १५ ॥
उत्पेतुरासनात् सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
बाहून् प्रगृह्य रुचिरान् रक्तचन्दनरूषितान् ।
अङ्गदैः पारिहार्यैश्च केयूरैश्च विभूषितान् ॥ १६ ॥
दन्तान् दन्तेषु निष्पिष्य सृक्किणी परिलेलिहन् ।

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, महारथी सात्यकि, पाँच भाई केकयराजकुमार, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, राजा धृष्टकेतु, पराक्रमी भीमसेन तथा महारथी नकुल-सहदेव—ये सबके सब क्रोधसे लाल आँखें किये अपने आसनोंसे उछलकर खड़े हो गये और अङ्गद, पारिहार्य ( मोतियोंके गुच्छों ) तथा केयूरोंसे विभूषित एवं लाल चन्दनसे चर्चित अपनी सुन्दर भुजाओंको थामकर दाँतोंपर दाँत रगड़ते हुए ओठोंके दोनों कोने चाटने लगे ॥

तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ १७ ॥
उदतिष्ठत् स वेगेन क्रोधेन प्रज्वलन्निव ।
उद्वृत्य सहसा नेत्रे दन्तान् कटकटाय्य च ॥ १८ ॥
हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत् ।

उनकी आकृति और भावको जानकर कुन्तीपुत्र वृकोदर बड़े वेगसे उठे और क्रोधसे जलते हुएके समान सहसा आँखें फाड़-फाड़कर देखते, दाँत कटकटाते और हाथसे हाथ रगड़ते हुए उलूकसे इस प्रकार बोले—॥ १७-१८ ॥

अशक्तानामिवास्माकं प्रोत्साहननिमित्तकम् ॥ १९ ॥
श्रुतं ते वचनं मूर्ख यत् त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

'ओ मूर्ख ! दुर्योधनने तुझसे जो कुछ कहा है, वह तेरा वचन हमने सुन लिया । मानो हम असमर्थ हों और तू हमें प्रोत्साहन देनेके निमित्त यह सब कुछ कह रहा हो ॥ १९ ॥

तन्मे कथयतो मन्द शृणु वाक्यं दुरासदम् ॥ २० ॥
सर्वक्षत्रस्य मध्ये तं यद् वक्ष्यसि सुयोधनम् ।
शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च त्वं दुरात्मनः ॥ २१ ॥

'मूर्ख उलूक ! अब तू मेरी कही हुई दुःसह बातें सुन और समस्त राजाओंकी मण्डलीमें सूतपुत्र कर्ण और अपने दुरात्मा पिता शकुनिके सामने दुर्योधनको सुना देना—॥ २०-२१ ॥

अस्माभिः प्रीतिकामैस्तु भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ।
मर्षितं ते दुराचार तत् त्वं न बहु मन्यसे ॥ २२ ॥

'दुराचारी दुर्योधन ! हमलोगोंने सदा अपने बड़े भाईको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे तेरे बहुत-से अत्याचारोंको चुपचाप सह लिया है; परंतु तू इन बातोंको अधिक महत्त्व नहीं दे रहा है ॥ २२ ॥

प्रेषितश्च हृषीकेशः शमाकाङ्क्षी कुरून् प्रति ।
कुलस्य हितकामेन धर्मराजेन धीमता ॥ २३ ॥

'बुद्धिमान् धर्मराजने कौरवकुलके हितकी इच्छासे शान्ति चाहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको कौरवोंके पास भेजा था ।

त्वं कालचोदितो नूनं गन्तुकामो यमक्षयम् ।
गच्छस्वाहवमस्माभिस्तच्च श्वो भविता ध्रुवम् ॥ २४ ॥

'परंतु तू निश्चय ही कालसे प्रेरित हो यमलोकमें जाना चाहता है ( इसीलिये संधिकी बात नहीं मान सका ) । अच्छा, हमारे साथ युद्धमें चल । कल निश्चय ही युद्ध होगा ॥ २४ ॥

मयापि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते ।
स तथा भविता पाप नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥

'पापात्मन् ! मैंने भी जो तेरे और तेरे भाइयोंके वधकी प्रतिज्ञा की है, वह उसी रूपमें पूर्ण होगी । इस विषयमें तुझे कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥

वेलामतिक्रमेत् सद्यः सागरो वरुणालयः ।
पर्वताश्च विशीर्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत् ॥ २६ ॥

'वरुणालय समुद्र शीघ्र ही अपनी सीमाका उल्लङ्घन कर जाय और पर्वत जीर्ण-शीर्ण होकर बिखर जायँ, परंतु मेरी कही हुई बात झूठी नहीं हो सकती ॥ २६ ॥

सहायस्ते यदि यमः कुबेरो रुद्र एव वा ।
यथाप्रतिज्ञं दुर्बुद्धे प्रकरिष्यन्ति पाण्डवाः ।
दुःशासनस्य रुधिरं पाता चास्मि यथेप्सितम् ॥ २७ ॥

'दुर्बुद्धे ! तेरी सहायताके लिये यमराज, कुबेर अथवा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भगवान् रुद्र ही क्यों न आ जायँ, पाण्डव अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सब कार्य अवश्य करेंगे। मैं अपनी इच्छाके अनुसार दुःशासनका रक्त अवश्य पीऊँगा ॥ २७ ॥

**यश्चेह प्रतिसंरब्धः क्षत्रियो माभियास्यति।**
**अपि भीष्मं पुरस्कृत्य तं नेष्यामि यमक्षयम् ॥ २८ ॥**

'उस समय साक्षात् भीष्मको भी आगे करके जो कोई भी क्षत्रिय क्रोधपूर्वक मेरे ऊपर धावा करेगा, उसे उसी क्षण यमलोक पहुँचा दूँगा ॥२८॥

**यच्चैतदुक्तं वचनं मया क्षत्रस्य संसदि।**
**यथैतद् भविता सत्यं तथैवात्मानमालभे ॥ २९ ॥**

'मैंने क्षत्रियोंकी सभामें यह बात कही है, जो अवश्य सत्य होगी। यह मैं अपनी सौगन्ध खाकर कहता हूँ' ॥२९॥

**भीमसेनवचः श्रुत्वा सहदेवोऽप्यमर्षणः।**
**क्रोधसंरक्तनयनस्ततो वाक्यमुवाच ह ॥ ३० ॥**

भीमसेनका वचन सुनकर सहदेवका भी अमर्ष जाग उठा। तब उन्होंने भी क्रोधसे आँखें लाल करके यह बात कही—॥

**शौटीरशूरसदृशमनीकजनसंसदि ।**
**शृणु पाप वचो मह्यं यद्वाच्यो हि पिता त्वया ॥ ३१ ॥**

'ओ पापी ! मैं इन वीर सैनिकोंकी सभामें गर्वीले शूरवीरके योग्य वचन बोल रहा हूँ। तू इसे सुन ले और अपने पिताके पास जाकर सुना दे ॥ ३१ ॥

**नास्माकं भविता भेदः कदाचित् कुरुभिः सह।**
**धृतराष्ट्रस्य सम्बन्धो यदि न स्यात् त्वया सह ॥ ३२ ॥**

'यदि धृतराष्ट्रका तेरे साथ सम्बन्ध न होता, तो कभी कौरवोंके साथ हमलोगोंकी फूट नहीं होती ॥३२॥

**त्वं तु लोकविनाशाय धृतराष्ट्रकुलस्य च।**
**उत्पन्नो वैरपुरुषः स्वकुलघ्नश्च पापकृत् ॥ ३३ ॥**

'तू सम्पूर्ण जगत् तथा धृतराष्ट्रकुलके विनाशके लिये पापाचारी मूर्तिमान् वैरपुरुष होकर उत्पन्न हुआ है। तू अपने कुलका भी नाश करनेवाला है ॥३३॥

**जन्मप्रभृति चास्माकं पिता ते पापपूरुषः।**
**अहितानि नृशंसानि नित्यशः कर्तुमिच्छति ॥ ३४ ॥**

'उलूक ! तेरा पापात्मा पिता जन्मसे ही हमलोगोंके प्रति प्रतिदिन क्रूरतापूर्ण अहितकर बर्ताव करना चाहता है ॥

**तस्य वैरानुषङ्गस्य गन्तास्म्यन्तं सुदुर्गमम्।**
**अहमादौ निहत्य त्वां शकुनेः सम्प्रपश्यतः ॥ ३५ ॥**
**ततोऽस्मि शकुनिं हन्ता मिषतां सर्वधन्विनाम्।**

'इसलिये मैं शकुनिके देखते देखते सबसे पहले तेरा वध करके सम्पूर्ण धनुर्धरोंके सामने शकुनिको भी मार डालूँगा और इस प्रकार अत्यन्त दुर्गम शत्रुतासे पार हो जाऊँगा' ॥ ३५½ ॥

**भीमस्य वचनं श्रुत्वा सहदेवस्य चोभयोः ॥ ३६ ॥**
**उवाच फाल्गुनो वाक्यं भीमसेनं स्मयन्निव।**
**भीमसेन न ते सन्ति येषां वैरं त्वया सह ॥ ३७ ॥**
**मन्दा गृहेषु सुखिनो मृत्युपाशवशं गताः।**

भीमसेन और सहदेव दोनोंके वचन सुनकर अर्जुनने भीमसेनसे मुसकराते हुए कहा—'आर्य भीम ! जिनका आपके साथ वैर ठन गया है, वे घरमें बैठकर सुखका अनुभव करनेवाले मूर्ख कौरव कालके पाशमें बँध गये हैं (अर्थात् उनका जीवन नहींके बराबर है) ॥३६-३७½॥

**उलूकश्च न ते वाच्यः परुषं पुरुषोत्तम ॥ ३८ ॥**
**दूताः किमपराध्यन्ते यथोक्तस्यानुभाषिणः।**

'पुरुषोत्तम ! आपको इस उलूकसे कोई कठोर बात नहीं कहनी चाहिये। बेचारे दूतोंका क्या अपराध है ? वे तो कही हुई बातका अनुवादमात्र करनेवाले हैं' ॥३८½॥

**एवमुक्त्वा महाबाहुर्भीमं भीमपराक्रमम् ॥ ३९ ॥**
**धृष्टद्युम्नमुखान् वीरान् सुहृदः समभाषत।**

भयंकर पराक्रमी भीमसेनसे ऐसा कहकर महाबाहु अर्जुनने धृष्टद्युम्न आदि वीर सुहृदोंसे कहा—॥३९½॥

**श्रुतं वस्तस्य पापस्य धार्तराष्ट्रस्य भाषितम् ॥ ४० ॥**
**कुत्सनं वासुदेवस्य मम चैव विशेषतः।**
**श्रुत्वा भवन्तः संरब्धा अस्माकं हितकाम्यया ॥ ४१ ॥**

'बन्धुओ ! आपलोगोंने उस पापी दुर्योधनकी बात सुनी है न ? इसमें उसके द्वारा विशेषतः मेरी और भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा की गयी है। आपलोग हमारे हितकी कामना रखते हैं, इसलिये इस निन्दाको सुनकर कुपित हो उठे हैं ॥४०-४१॥

**प्रभावाद् वासुदेवस्य भवतां च प्रयत्नतः।**
**समग्रं पार्थिवं क्षत्रं सर्वं न गणयाम्यहम् ॥ ४२ ॥**

'परंतु भगवान् वासुदेवके प्रभाव और आपलोगोंके प्रयत्नसे मैं इस समस्त भूमण्डलके सम्पूर्ण क्षत्रियोंको भी कुछ नहीं गिनता हूँ ॥ ४२ ॥

**भवद्भिः समनुज्ञातो वाक्यमस्य यदुत्तरम्।**
**उलूके प्रापयिष्यामि यद् वक्ष्यति सुयोधनम् ॥ ४३ ॥**

'यदि आपलोगोंकी आज्ञा हो तो मैं इस बातका उत्तर उलूकको दे दूँ, जिसे यह दुर्योधनको सुना देगा ॥४३॥

**श्वोभूते कत्थितस्यास्य प्रतिवाक्यं चमूमुखे।**
**गाण्डीवेनाभिधास्यामि क्लीबा हि वचनोत्तराः ॥ ४४ ॥**

'अथवा आपकी सम्मति हो, तो कल सबेरे सेनाके मुहानेपर उसकी इन शेखीभरी बातोंका ठीक-ठीक उत्तर गाण्डीव धनुषद्वारा दे दूँगा; क्योंकि केवल बातोंमें उत्तर देनेवाले तो नपुंसक होते हैं' ॥ ४४ ॥

**ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रशशंसुर्धनंजयम्।**
**तेन वाक्योपचारेण विस्मिता राजसत्तमाः ॥ ४५ ॥**

अर्जुनकी इस प्रवचन-शैलीसे सभी श्रेष्ठ भूपाल आश्चर्यचकित हो उठे और वे सबके सब उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥

**अनुनीय च तान् सर्वान् यथामान्यं यथावयः।**



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धर्मराजस्तदा वाक्यं तत्प्राप्यं प्रत्यभाषत ॥ ४६ ॥

तदनन्तर धर्मराजने उन समस्त राजाओंको उनकी अवस्था और प्रतिष्ठाके अनुसार अनुनय-विनय करके शान्त किया और दुर्योधनको देने योग्य जो संदेश था, उसे इस प्रकार कहा—॥ ४६ ॥

आत्मानमवमन्वानो न हि स्यात् पार्थिवोत्तमः।
तत्रोत्तरं प्रवक्ष्यामि तव शुश्रूषणे रतः ॥ ४७ ॥

'उलूक ! कोई भी श्रेष्ठ राजा शान्त रहकर अपनी अवज्ञा सहन नहीं कर सकता। मैंने तुम्हारी बातें ध्यान देकर सुनी है। अब मैं तुम्हें उत्तर देता हूँ, उसे सुनो' ॥ ४७ ॥

उलूकं भरतश्रेष्ठ सामपूर्वमथोर्जितम्।
दुर्योधनस्य तद् वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ॥ ४८ ॥
अतिलोहितनेत्राभ्यामाशीविष इव श्वसन्।
स्मयमान इव क्रोधात् सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ४९ ॥
जनार्दनमभिप्रेक्ष्य भ्रातृंश्चैवेदमब्रवीत्।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! इस प्रकार युधिष्ठिरने उलूकसे पहले मधुर वचन बोलकर फिर ओजस्वी शब्दोंमें उत्तर दिया। (उलूकके मुखसे) पहले दुर्योधनके पूर्वोक्त संदेशको सुनकर भरतकुलभूषण युधिष्ठिर रोषसे अत्यन्त लाल हुए नेत्रोंद्वारा देखते हुए विषधर सर्पके समान उच्छ्वास लेने लगे। फिर ओठोंके दोनों कोनोंको चाटते हुए वे श्रीकृष्ण तथा भाइयोंकी ओर देखकर बोलनेको प्रस्तुत हुए। वे अपनी विशाल भुजा ऊपर उठा धूर्त जुआरी शकुनिके पुत्र उलूकसे मुसकराते हुए-से बोले—॥ ४८—५० ॥

उलूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम्।
कृतघ्नं वैरपुरुषं दुर्मतिं कुलपांसनम् ॥ ५१ ॥

'जुआरी शकुनिके पुत्र तात उलूक ! तुम जाओ और वैरके मूर्तिमान् स्वरूप उस कृतघ्न, दुर्बुद्धि एवं कुलाङ्गार दुर्योधनसे इस प्रकार कह दो—॥५१॥

पाण्डवेषु सदा पाप नित्यं जिह्मं प्रवर्तसे।
स्ववीर्याद् यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान्।
अभीतः पूरयन् वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान् ॥ ५२ ॥

'पापी दुर्योधन ! तू पाण्डवोंके साथ सदा कुटिल बर्ताव करता आ रहा है। पापात्मन् ! जो किसीसे भयभीत न होकर अपने वचनोंका पालन करता है और अपने ही बाहुबलसे पराक्रम प्रकट करके शत्रुओंको युद्धके लिये बुलाता है, वही पुरुष क्षत्रिय है ॥ ५२ ॥

स पापः क्षत्रियो भूत्वा अस्मानाहूय संयुगे।
मान्यामान्यान् पुरस्कृत्य युद्धं मा गाः कुलाधम ॥ ५३ ॥

'कुलाधम ! तू पापी है ! देख, क्षत्रिय होकर और हमलोगोंको युद्धके लिये बुलाकर ऐसे लोगोंको आगे करके रणभूमिमें न आना, जो हमारे माननीय वृद्ध गुरुजन और स्नेहास्पद बालक हों ॥५३॥

आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यं च कौरव।
आह्वयस्व रणे पार्थान् सर्वथा क्षत्रियो भव ॥ ५४ ॥

'कुरुनन्दन ! तू अपने तथा भरणीय सेवकवर्गके बल और पराक्रमका आश्रय लेकर ही कुन्तीके पुत्रोंका युद्धके लिये आह्वान कर। सब प्रकारसे क्षत्रियत्वका परिचय दे॥

परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।
अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥ ५५ ॥

'जो स्वयं सामना करनेमें असमर्थ होनेके कारण दूसरोंके पराक्रमका भरोसा करके शत्रुओंको युद्धके लिये ललकारता है, उसका यह कार्य उसकी नपुंसकताका ही सूचक है॥

स त्वं परेषां वीर्येण आत्मानं बहु मन्यसे।
कथमेवमशक्तस्त्वमस्मान् समभिगर्जसि ॥ ५६ ॥

'तू तो दूसरोंके ही बलसे अपने आपको बहुत अधिक शक्तिशाली मानता है; परंतु ऐसा असमर्थ होकर तू हमारे सामने गर्जना कैसे कर रहा है ?' ॥५६॥

श्रीकृष्ण उवाच

मद्वचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः।
श्व इदानीं प्रपद्येथाः पुरुषो भव दुर्मते ॥ ५७ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उलूक ! इसके बाद तू दुर्योधनसे मेरी यह बात भी कह देना—'दुर्मते ! अब कल ही तू रणभूमिमें आ जा और अपने पुरुषत्वका परिचय दे॥

मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः।
सारथ्येन वृतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च ॥ ५८ ॥

'मूढ़ ! तू जो यह समझता है कि कुन्तीके पुत्रोंने श्रीकृष्णसे सारथि बननेका अनुरोध किया है, अतः वे युद्ध नहीं करेंगे। सम्भवतः इसीलिये तू मुझसे डर नहीं रहा है ।५८

जघन्यकालमप्येतन्न भवेत् सर्वपार्थिवान्।
निर्दहेयमहं क्रोधात् तृणानीव हुताशनः ॥ ५९ ॥

'परंतु याद रख, मैं चाहूँ, तो इन सम्पूर्ण नरेशोंको अपनी क्रोधाग्निसे उसी प्रकार भस्म कर सकता हूँ, जैसे आग घास-फूसको जला डालती है। किंतु युद्धके अन्त तक मुझे ऐसा करनेका अवसर न मिले; यही मेरी इच्छा है॥

युधिष्ठिरनियोगात् तु फाल्गुनस्य महात्मनः।
करिष्ये युध्यमानस्य सारथ्यं विजितात्मनः ॥ ६० ॥

'राजा युधिष्ठिरके अनुरोधसे मैं जितेन्द्रिय महात्मा अर्जुनके युद्ध करते समय उनके सारथिका काम अवश्य करूँगा॥

यद्युत्पतसि लोकांस्त्रीन् यद्याविशसि भूतलम्।
तत्र तत्रार्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसे पुनः ॥ ६१ ॥

'अब तू यदि तीनों लोकोंसे ऊपर उड़ जाय अथवा धरतीमें समा जाय, तो भी (तू जहाँ-जहाँ जायगा), वहाँ-वहाँ कल प्रातःकाल अर्जुनका रथ पहुँचा हुआ देखेगा ॥६१॥

यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघभाषितम्।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतमद्यावधार्यताम् ॥ ६२ ॥

'इसके सिवा, तू जो भीमसेनकी कही हुई बातोंको व्यर्थ मानने लगा है, यह ठीक नहीं है। तू आज ही निश्चितरूपसे समझ ले कि भीमसेनने दुःशासनका रक्त पी लिया ॥ ६२ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

न त्वां समीक्षते पार्थो नापि राजा युधिष्ठिरः।
न भीमसेनो न यमौ प्रतिकूलप्रभाषिणम् ॥ ६३ ॥

'तू पाण्डवोंके विपरीत कटुभाषण करता जा रहा है, परंतु अर्जुन, राजा युधिष्ठिर, भीमसेन तथा नकुल-सहदेव तुझे कुछ भी नहीं समझते हैं' ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूताभिगमनपर्वणि कृष्णादिवाक्ये द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूताभिगमनपर्वमें श्रीकृष्ण आदिके वचनविषयक एक सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१६२॥

## त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

### पाँचों पाण्डवों, विराट, द्रुपद, शिखण्डी और धृष्टद्युम्नका संदेश लेकर उलूकका लौटना और उलूककी बात सुनकर दुर्योधनका सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेका आदेश देना

*संजय उवाच*

दुर्योधनस्य तद् वाक्यं निशम्य भरतर्षभ।
नेत्राभ्यामतिताम्राभ्यां कैतव्यं समुदैक्षत ॥ १ ॥
स केशवमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशाः।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! दुर्योधनके पूर्वोक्त वचनको सुनकर महायशस्वी अर्जुनने क्रोधसे लाल आँखें करके शकुनिकुमार उलूककी ओर देखा। तत्पश्चात् अपनी विशाल भुजाको ऊपर उठाकर श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए उन्होंने कहा—॥ १-२ ॥

स्ववीर्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान्।
अभीतो युध्यते शत्रून् स वै पुरुष उच्यते ॥ ३ ॥

'जो अपने ही बल-पराक्रमका भरोसा करके शत्रुओंको ललकारता है और उनके साथ निर्भय होकर युद्ध करता है, वही पुरुष कहलाता है ॥ ३ ॥

परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।
क्षत्रबन्धुरशक्तत्वाल्लोके स पुरुषाधमः ॥ ४ ॥

'जो दूसरेके बल-पराक्रमका आश्रय ले शत्रुओंको युद्धके लिये बुलाता है, वह क्षत्रबन्धु असमर्थ होनेके कारण लोकमें पुरुषाधम कहा गया है ॥ ४ ॥

स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे वीर्यमात्मनः।
स्वयं कापुरुषो मूढ परांश्च क्षेप्तुमिच्छसि ॥ ५ ॥

'मूढ़ ! तू दूसरोंके पराक्रमसे ही अपनेको बल-पराक्रमसे सम्पन्न मानता है और स्वयं कायर होकर दूसरोंपर आक्षेप करना चाहता है ॥ ५ ॥

यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम्।
मरणाय महाप्राज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे ॥ ६ ॥

'जो समस्त राजाओंमें वृद्ध, सबके प्रति हितबुद्धि रखनेवाले, जितेन्द्रिय तथा महाज्ञानी हैं, उन्हीं पितामहको तू मरणके लिये रणकी दीक्षा दिलाकर अपनी बहादुरीकी बातें करता है ॥ ६ ॥

भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन।
न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति हि ॥ ७ ॥

'खोटी बुद्धिवाले कुलाङ्गार ! तेरा मनोभाव हमने समझ लिया है। तू जानता है कि पाण्डवलोग दयावश गङ्गानन्दन भीष्मका वध नहीं करेंगे ॥ ७ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्र विकत्थसे।
हन्तास्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ८ ॥

'धृतराष्ट्रपुत्र ! तू जिनके पराक्रमका आश्रय लेकर बड़ी-बड़ी बातें बनाता है, उन पितामह भीष्मको ही मैं सबसे पहले तेरे समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मार डालूँगा ॥ ८ ॥

कैतव्य गत्वा भरतान् समेत्य
सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व।
तथेत्युवाचार्जुनः सव्यसाची
निशाव्यपाये भविता विमर्दः ॥ ९ ॥

'उलूक ! तू भरतवंशियोंके यहाँ जाकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे कह दे कि सव्यसाची अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर तेरी चुनौती स्वीकार कर ली है। आजकी रात बीतते ही युद्ध आरम्भ हो जायगा ॥ ९ ॥

यद् वाब्रवीद् वाक्यमदीनसत्त्वो
मध्ये कुरूणां हर्षयन् सत्यसंधः।
अहं हन्ता सृञ्जयानामनीकं
शाल्वेयकांश्चेति ममैष भारः ॥ १० ॥
हन्यामहं द्रोणमृतेऽपि लोकं
न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः।
ततो हि ते लब्धतमं च राज्य-
मापद्गताः पाण्डवाश्चेति भावः ॥ ११ ॥

'सत्यप्रतिज्ञ और महान् शक्तिशाली भीष्मजीने कौरव-सैनिकोंके बीचमें उनका हर्ष बढ़ाते हुए जो यह कहा था कि मैं सृंजय वीरोंकी सेनाका तथा शाल्वदेशके सैनिकोंका भी संहार कर डालूँगा। इन सबके मारनेका भार मेरे ही ऊपर है। दुर्योधन ! मैं द्रोणाचार्यके बिना भी सम्पूर्ण जगत्‌का संहार कर सकता हूँ; अतः तुम्हें पाण्डवोंसे कोई भय नहीं है। भीष्मके इस वचनसे ही तूने अपने मनमें यह धारणा बना ली है कि राज्य मुझे ही प्राप्त होगा और पाण्डव भारी विपत्तिमें पड़ जायँगे ॥ १०-११ ॥

स दर्पपूर्णो न समीक्षसे त्व-
मनर्थमात्मन्यपि वर्तमानम्।
तस्मादहं ते प्रथमं समूहे
हन्ता समक्षं कुरुवृद्धमेव ॥ १२ ॥

'इसीलिये तू घमंडमें भरकर अपने ऊपर आये हुए

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वर्तमान संकटको नहीं देख पाता है, अतः मैं सबसे पहले तेरे सेनासमूहमें प्रवेश करके कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भीष्मका ही तेरी आँखोंके सामने वध करूँगा ॥ १२ ॥

सूर्योदये युक्तसेनः प्रतीक्ष्य
ध्वजी रथी रक्ष तं सत्यसंधम्।
अहं हि वः पश्यतां द्वीपमेनं
भीष्मं रथात् पातयिष्यामि बाणैः॥१३॥

'तू सूर्योदयके समय सेनाको सुसज्जित करके ध्वज और रथसे सम्पन्न हो सब ओर दृष्टि रखते हुए सत्यप्रतिज्ञ भीष्म-की रक्षा कर । मैं तेरे सैनिकोंके देखते-देखते तेरे लिये आश्रय बने हुए इन भीष्मजीको बाणोंद्वारा मारकर रथसे नीचे गिरा दूँगा ॥ १३ ॥

श्वोभूते कत्थनावाक्यं विज्ञास्यति सुयोधनः ।
आचितं शरजालेन मया दृष्ट्वा पितामहम् ॥ १४ ॥

'कल सबेरे पितामहको मेरे द्वारा चलाये हुए बाणोंके समूहसे व्याप्त देखकर दुर्योधनको अपनी बढ़-बढ़कर कही हुई बातोंका परिणाम ज्ञात होगा ॥ १४ ॥

यदुक्तश्च सभामध्ये पुरुषो ह्रस्वदर्शनः ।
क्रुद्धेन भीमसेनेन भ्राता दुःशासनस्तव ॥ १५ ॥
अधर्मज्ञो नित्यवैरी पापबुद्धिर्नृशंसकृत् ।
सत्यां प्रतिज्ञामचिराद् द्रक्ष्यसे तां सुयोधन ॥ १६ ॥

'सुयोधन ! क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने उस क्षुद्र विचार-वाले, अधर्मज्ञ, नित्य वैरी, पापबुद्धि और क्रूरकर्मा तेरे भाई दुःशासनके प्रति जो बात कही है, उस प्रतिज्ञाको तू शीघ्र ही सत्य हुई देखेगा ॥ १५-१६॥

अभिमानस्य दर्पस्य क्रोधपारुष्ययोस्तथा ।
नैष्ठुर्यस्यावलेपस्य आत्मसम्भावनस्य च ॥ १७ ॥
नृशंसतायास्तैक्ष्ण्यस्य धर्मविद्वेषणस्य च ।
अधर्मस्यातिवादस्य वृद्धातिक्रमणस्य च ॥ १८ ॥
दर्शनस्य च वक्रस्य कृत्स्नस्यापनयस्य च ।
द्रक्ष्यसि त्वं फलं तीव्रमचिरेण सुयोधन ॥ १९ ॥

'दुर्योधन ! तू अभिमान, दर्प, क्रोध, कटुभाषण, निष्ठुरता, अहंकार, आत्मप्रशंसा, क्रूरता, तीक्ष्णता, धर्म-विद्वेष, अधर्म, अतिवाद, वृद्ध पुरुषोंके अपमान तथा टेढ़ी आँखोंसे देखनेका और अपने समस्त अन्याय एवं अत्याचारों-का घोर फल शीघ्र ही देखेगा ॥ १७–१९ ॥

वासुदेवद्वितीये हि मयि क्रुद्धे नराधम ।
आशा ते जीविते मूढ राज्ये वा केन हेतुना ॥ २० ॥

'मूढ़ नराधम ! भगवान् श्रीकृष्णके साथ मेरे कुपित होने-पर तू किस कारणसे जीवन तथा राज्यकी आशा करता है ? ॥

शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते ।
निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि ॥ २१ ॥

'भीष्म, द्रोणाचार्य तथा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर तू अपने जीवन, राज्य तथा पुत्रोंकी रक्षाकी ओरसे निराश हो जायगा ॥ २१ ॥

भ्रातॄणां निधनं श्रुत्वा पुत्राणां च सुयोधन ।
भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि ॥ २२ ॥

'सुयोधन ! तू अपने भाइयों और पुत्रोंका मरण सुन-कर और भीमसेनके हाथसे स्वयं भी मारा जाकर अपने पापों-को याद करेगा ॥ २२ ॥

न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिजानामि कैतव ।
सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत् सर्वं सत्यं भविष्यति ॥ २३ ॥
युधिष्ठिरोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।
उलूक मद्वचो ब्रूहि गत्वा तात सुयोधनम् ॥ २४ ॥

'शकुनिपुत्र ! मैं दूसरी बार प्रतिज्ञा करना नहीं जानता। तुझसे सच्ची बात कहता हूँ । यह सब कुछ सत्य होकर रहेगा।' तत्पश्चात् युधिष्ठिरने भी धूर्त जुआरीके पुत्र उलूकसे इस प्रकार कहा—'वत्स उलूक ! तू दुर्योधनके पास जाकर मेरी यह बात कहना—॥ २३-२४ ॥

स्वेन वृत्तेन मे वृत्तं नाधिगन्तुं त्वमर्हसि ।
उभयोरन्तरं वेद सूनृतानृतयोरपि ॥ २५ ॥

'सुयोधन ! तुझे अपने आचरणके अनुसार ही मेरे आचरणको नहीं समझना चाहिये । मैं दोनोंके बर्तावको तथा सत्य और झूठका भी अन्तर समझता हूँ ॥ २५ ॥

न चाहं कामये पापमपि कीटपिपीलयोः ।
किं पुनर्ज्ञातिषु वधं कामयेयं कथंचन ॥ २६ ॥

'मैं तो कीड़ों और चींटियोंको भी कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता; फिर अपने भाई-बन्धुओं अथवा कुटुम्बीजनोंके वधकी कामना किसी प्रकार भी कैसे कर सकता हूँ ? ॥ २६ ॥

एतदर्थं मया तात पञ्च ग्रामा वृताः पुरा ।
कथं तव सुदुर्बुद्धे न प्रेक्षे व्यसनं महत् ॥ २७ ॥

'तात ! इसीलिये पहले मैंने केवल पाँच ही गाँव माँगे थे । दुर्बुद्धे ! मेरे ऐसा करनेका यही उद्देश्य था कि किसी तरह तेरे ऊपर महान् संकट आया हुआ न देखूँ ॥ २७ ॥

स त्वं कामपरीतात्मा मूढभावाच्च कत्थसे ।
तथैव वासुदेवस्य न गृह्णासि हितं वचः ॥ २८ ॥

'परंतु तेरा मन लोभ और तृष्णामें डूबा हुआ है । तू मूर्खताके कारण अपनी झूठी प्रशंसा करता है और भगवान् श्रीकृष्णके हितकारक वचनको भी नहीं मान रहा है ॥ २८ ॥

किं चेदानीं बहूक्तेन युध्यस्व सह बान्धवैः ।

'अब इस समय अधिक कहनेसे क्या लाभ ? तू अपने भाई-बन्धुओंके साथ आकर युद्ध कर' ॥ २८½ ॥

मम विप्रियकर्तारं कैतव्य ब्रूहि कौरवम् ॥ २९ ॥
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत् ते तथास्तु तत् ।

'उलूक ! तू मेरा अप्रिय करनेवाले दुर्योधनसे कहना— 'तेरा संदेश सुना और उसका अभिप्राय समझ लिया । तेरी जैसी इच्छा है, वैसा ही हो' ॥ २९½ ॥

भीमसेनस्ततो वाक्यं भूय आह नृपात्मजम् ॥ ३० ॥
उलूक मद्वचो ब्रूहि दुर्मतिं पापपूरुषम् ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**शठं नैकृतिकं पापं दुराचारं सुयोधनम् ॥ ३१ ॥**

तदनन्तर भीमसेनने पुनः राजकुमार उलूकसे यह बात कही—'उलूक ! तू दुर्बुद्धि, पापात्मा, शठ, कपटी, पापी तथा दुराचारी दुर्योधनसे मेरी यह बात भी कह देना—॥

**गृध्रोदरे वा वस्तव्यं पुरे वा नागसाह्वये ।**
**प्रतिज्ञातं मया तच्च सभामध्ये नराधम ॥ ३२ ॥**
**कर्ताहं तद् वचः सत्यं सत्येनैव शपामि ते ।**

'नराधम ! तुझे या तो मरकर गीधके पेटमें निवास करना चाहिये या हस्तिनापुरमें जाकर छिप जाना चाहिये। मैंने सभामें जो प्रतिज्ञा की है, उसे अवश्य सत्य कर दिखाऊँगा । यह बात मैं सत्यकी ही शपथ खाकर तुझसे कहता हूँ ॥ ३२½ ॥

**दुःशासनस्य रुधिरं हत्वा पास्याम्यहं मृधे ॥ ३३ ॥**
**सक्थिनी तव भङ्क्त्वैव हत्वा हि तव सोदरान् ।**
**सर्वेषां धार्तराष्ट्राणामहं मृत्युः सुयोधन ॥ ३४ ॥**

'मैं युद्धमें दुःशासनको मारकर उसका रक्त पीऊँगा और तेरे सारे भाइयोंको मारकर तेरी जाँघें भी तोड़कर ही रहूँगा । सुयोधन ! मैं धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंकी मृत्यु हूँ ॥

**सर्वेषां राजपुत्राणामभिमन्युरसंशयम् ।**
**कर्मणा तोषयिष्यामि भूयश्चैव वचः शृणु ॥ ३५ ॥**

'इसी प्रकार सारे राजकुमारोंकी मृत्युका कारण अभिमन्यु होगा, इसमें संशय नहीं है। मैं अपने पराक्रमद्वारा तुझे अवश्य संतुष्ट करूँगा । तू मेरी एक बात और सुन ले ॥

**हत्वा सुयोधन त्वां वै सहितं सर्वसोदरैः ।**
**आक्रमिष्ये पदा मूर्ध्नि धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥**

'सुयोधन ! तुझे समस्त भाइयोंसहित मारकर धर्मराज युधिष्ठिरके देखते-देखते तेरे मस्तकको पैरसे कुचल दूँगा' ॥

**नकुलस्तु ततो वाक्यमिदमाह महीपते ।**
**उलूक ब्रूहि कौरव्यं धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३७ ॥**
**श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेव यथातथम् ।**
**तथा कर्तास्मि कौरव्य यथा त्वमनुशास्सि माम् ॥ ३८ ॥**

जनमेजय ! तत्पश्चात् नकुलने भी इस प्रकार कहा—'उलूक ! तू कुरुकुलकलंक धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे कहना, तेरी कही हुई सारी बातें मैंने यथार्थरूपसे सुन लीं । कौरव ! तू मुझे जैसा उपदेश दे रहा है, उसके अनुसार ही मैं सब कुछ करूँगा' ॥ ३७-३८ ॥

**सहदेवोऽपि नृपते इदमाह वचोऽर्थवत् ।**
**सुयोधन मतिर्या ते वृथैषा ते भविष्यति ॥ ३९ ॥**
**शोचिष्यसे महाराज सपुत्रज्ञातिबान्धवः ।**
**इमं च क्लेशमस्माकं हृष्टो यत् त्वं विकत्थसे ॥ ४० ॥**

राजन् ! तदनन्तर सहदेवने भी यह सार्थक वचन कहा—'महाराज दुर्योधन ! आज जो तेरी बुद्धि है, वह व्यर्थ हो जायगी। इस समय हमारे इस महान् क्लेशका जो तू हर्षोत्फुल्ल होकर वर्णन कर रहा है, इसका फल यह होगा कि तू अपने पुत्र, कुटुम्बी तथा बन्धुजनोंसहित शोकमें डूब जायगा' ॥

**विराटद्रुपदौ वृद्धावुलूकमिदमूचतुः ।**
**दासभावं नियच्छेव साधोरिति मतिः सदा ।**
**तौ च दासावदासौ वा पौरुषं यस्य यादृशम् ॥ ४१ ॥**

तदनन्तर बूढ़े राजा विराट और द्रुपदने उलूकसे इस प्रकार कहा—'उलूक ! तू दुर्योधनसे कहना, राजन् ! हम दोनोंका विचार सदा यही रहता है कि हम साधु पुरुषोंके दास हो जायँ । वे दोनों हम विराट और द्रुपद दास हैं या अदास; इसका निर्णय युद्धमें जिसका जैसा पुरुषार्थ होगा, उसे देखकर किया जायगा' ॥ ४१ ॥

**शिखण्डी तु ततो वाक्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।**
**वक्तव्यो भवता राजा पापेष्वभिरतः सदा ॥ ४२ ॥**

तत्पश्चात् शिखण्डीने उलूकसे इस प्रकार कहा—'उलूक ! सदा पापमें ही तत्पर रहनेवाले अपने राजाके पास जाकर तू इस प्रकार कहना—॥ ४२ ॥

**पश्य त्वं मां रणे राजन् कुर्वाणं कर्म दारुणम् ।**
**यस्य वीर्यं समासाद्य मन्यसे विजयं युधि ॥ ४३ ॥**
**तमहं पातयिष्यामि रथात् तव पितामहम् ।**

'राजन् ! तुम संग्राममें मुझे भयानक कर्म करते हुए देखना । जिसके पराक्रमका भरोसा करके तुम युद्धमें अपनी विजय हुई मानते हो, तुम्हारे उस पितामहको मैं रथसे मार गिराऊँगा ॥ ४३½ ॥

**अहं भीष्मवधात् सृष्टो नूनं धात्रा महात्मना ॥ ४४ ॥**
**सोऽहं भीष्मं हनिष्यामि मिषतां सर्वधन्विनाम् ।**

'निश्चय ही महामना विधाताने भीष्मके वधके लिये ही मेरी सृष्टि की है। अतः मैं समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते भीष्मको मार डालूँगा' ॥ ४४½ ॥

**धृष्टद्युम्नोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत् ॥ ४५ ॥**
**सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः ।**
**अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम् ॥ ४६ ॥**

इसके बाद धृष्टद्युम्नने भी कितवकुमार उलूकसे यह बात कही—'उलूक ! तू राजपुत्र दुर्योधनसे मेरी यह बात कह देना, मैं द्रोणाचार्यको उनके गणों और बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा ॥ ४५-४६ ॥

**अवश्यं च मया कार्यं पूर्वेषां चरितं महत् ।**
**कर्ता चाहं तथा कर्म यथा नान्यः करिष्यति ॥ ४७ ॥**

'मुझे अपने पूर्वजोंके महान् चरित्रका अनुकरण अवश्य करना चाहिये। अतः मैं युद्धमें वह पराक्रम कर दिखाऊँगा, जैसा दूसरा कोई नहीं करेगा' ॥ ४७ ॥

**तमब्रवीद् धर्मराजः कारुण्यार्थं वचो महत् ।**
**नाहं ज्ञातिवधं राजन् कामयेयं कथंचन ॥ ४८ ॥**

तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने करुणावश फिर यह महत्त्वपूर्ण बात कही—'राजन् ! मैं किसी प्रकार भी अपने कुटुम्बियोंका वध नहीं कराना चाहता ॥ ४८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तवैव दोषाद् दुर्बुद्धे सर्वमेतत् त्वनावृतम् ।
स गच्छ मा चिरं तात उलूक यदि मन्यसे ॥ ४९ ॥
इह वा तिष्ठ भद्रं ते वयं हि तव बान्धवाः ।

'किंतु दुर्बुद्धे ! यह सब कुछ तेरे ही दोषसे प्राप्त हुआ है । तात उलूक ! तेरी इच्छा हो, तो शीघ्र चला जा । अथवा तेरा कल्याण हो, तू यहीं रह; क्योंकि हम भी तेरे भाई-बन्धु ही हैं' ॥ ४९½ ॥

उलूकस्तु ततो राजन् धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥
आमन्त्र्य प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।

जनमेजय ! तदनन्तर उलूक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे विदा ले जहाँ राजा दुर्योधन था, वहीं चला गया ॥ ५०½ ॥

उलूकस्तत आगम्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ५१ ॥
अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ।
वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम् ॥ ५२ ॥

वहाँ आकर उलूकने अमर्षशील दुर्योधनको अर्जुनका सारा संदेश ज्यों-का-त्यों सुना दिया । इसी प्रकार उसने भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन और धर्मराज युधिष्ठिरकी पुरुषार्थ-भरी बातोंका भी वर्णन किया ॥ ५१-५२ ॥

नकुलस्य विराटस्य द्रुपदस्य च भारत ।
सहदेवस्य च वचो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ।
केशवार्जुनयोर्वाक्यं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

भारत ! फिर उसने नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके भी सारे वचनों को ज्यों-का-त्यों कह दिया ॥ ५३ ॥

कैतव्यस्य तु तद् वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ।
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि भारत ॥ ५४ ॥

भारत ! उलूकका वह कथन सुनकर भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ने दुःशासन, कर्ण तथा शकुनिसे कहा—॥ ५४ ॥

आज्ञापयत राज्ञश्च बलं मित्रबलं तथा ।
यथा प्रागुदयात् सर्वे युक्तास्तिष्ठन्त्वनीकिनः ॥ ५५ ॥

'बन्धुओ ! राजाओं तथा मित्रोंकी सेनाओंको आज्ञा दे दो, जिससे समस्त सैनिक कल सूर्योदयसे पूर्व ही तैयार हो कर युद्धके मैदानमें डट जायँ' ॥ ५५ ॥

ततः कर्णसमादिष्टा दूताः संत्वरिता रथैः ।
उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः ॥ ५६ ॥
तूर्णं परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात् ।
आज्ञापयन्तो राज्ञश्च योगः प्रागुदयादिति ॥ ५७ ॥

तत्पश्चात् कर्णके भेजे हुए दूत बड़ी उतावलीके साथ रथों, ऊँट-ऊँटनियों तथा अत्यन्त वेगशाली अच्छे-अच्छे घोड़ों पर सवार हो तीव्र गतिसे सम्पूर्ण सेनाओंमें गये और कर्णके आदेशके अनुसार सबको राजाकी यह आज्ञा सुनाने लगे कि कल सूर्योदयसे पहले ही युद्धके लिये तैयार हो जाना चाहिये ॥ ५६-५७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकापयाने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूतागमनपर्वमें उलूकके लौट जानेसे सम्बन्ध रखनेवाला एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६३ ॥

# चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

## पाण्डवसेनाका युद्धके मैदानमें जाना और धृष्टद्युम्नके द्वारा योद्धाओंकी अपने-अपने योग्य विपक्षियोंके साथ युद्ध करनेके लिये नियुक्ति

*संजय उवाच*

उलूकस्य वचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
सेनां निर्यापयामास धृष्टद्युम्नपुरोगमाम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इधर उलूककी बातें सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्नके नेतृत्वमें अपनी सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान कराया ॥ १ ॥

पदातिनीं नागवतीं रथिनीमश्ववृन्दिनीम् ।
चतुर्विधबलां भीमामकम्प्यां पृथिवीमिव ॥ २ ॥

उसमें पैदल, हाथी, रथ और अश्वसमूह भी थे । इस प्रकार वह चतुरंगिणी सेना बड़ी भयंकर और पृथ्वीके समान अविचल थी ॥ २ ॥

भीमसेनादिभिर्गुप्तां सार्जुनैश्च महारथैः ।
धृष्टद्युम्नवशां दुर्गां सागरस्तिमितोपमाम् ॥ ३ ॥

अर्जुन और भीमसेन आदि महारथी उसकी रक्षा करते थे । वह दुर्गम सेना धृष्टद्युम्नके अधीन थी और प्रशान्त एवं स्थिर समुद्रके समान जान पड़ती थी ॥ ३ ॥

तस्यास्त्वग्रे महेष्वासः पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
द्रोणप्रेप्सुरनीकानि धृष्टद्युम्नो व्यकर्षत ॥ ४ ॥

उसके आगे-आगे रणदुर्मद पाञ्चालराजकुमार महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न चल रहे थे, जो सदा आचार्य द्रोणसे युद्ध करनेकी इच्छा रखते थे । वे सारी सेनाको अपने पीछे लिये जाते थे ॥ ४ ॥

यथाबलं यथोत्साहं रथिनः समुपादिशत् ।
अर्जुनं सूतपुत्राय भीमं दुर्योधनाय च ॥ ५

उन्होंने जिस वीरका जैसा बल और उत्साह था, उसे विचार करते हुए अपने रथियोंको योग्य प्रतिपक्षीके साथ युद्ध करनेका आदेश दिया। अर्जुनको सूतपुत्र कर्णका और

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पाण्डवोंकी विशाल सेना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सेनको दुर्योधनका सामना करनेके लिये नियुक्त किया ॥५॥

**धृष्टकेतुं च शल्याय गौतमायोत्तमौजसम्।**
**अश्वत्थाम्ने च नकुलं शैब्यं च कृतवर्मणे ॥ ६ ॥**
**सैन्धवाय च वार्ष्णेयं युयुधानं समादिशत्।**
**शिखण्डिनं च भीष्माय प्रमुखे समकल्पयत् ॥ ७ ॥**

धृष्टकेतुको शल्यसे, उत्तमौजाको कृपाचार्यसे, नकुलको अश्वत्थामासे, शैब्यको कृतवर्मासे, वृष्णिवंशी सात्यकिको सिन्धुराज जयद्रथसे और शिखण्डीको भीष्मसे मुख्यतः युद्ध करनेका आदेश दिया ॥ ६-७ ॥

**सहदेवं शकुनये चेकितानं शलाय वै।**
**द्रौपदेयांस्तथा पञ्च त्रिगर्तेभ्यः समादिशत् ॥ ८ ॥**

सहदेवको शकुनिका, चेकितानको शलका और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको त्रिगर्तोंका सामना करनेके लिये नियत कर दिया ॥ ८ ॥

**वृषसेनाय सौभद्रं शेषाणां च महीक्षिताम्।**
**स समर्थं हि तं मेने पार्थादभ्यधिकं रणे ॥ ९ ॥**

कर्णपुत्र वृषसेन तथा शेष राजाओंके साथ युद्ध करनेका काम सुभद्राकुमार अभिमन्युको सौंपा, क्योंकि वे उसे युद्धमें अर्जुनसे भी अधिक शक्तिशाली समझते थे ॥ ९ ॥

**एवं विभज्य योधांस्तान् पृथक् च सह चैव ह।**
**ज्वालावर्णो महेष्वासो द्रोणमंशमकल्पयत् ॥ १० ॥**
**धृष्टद्युम्नो महेष्वासः सेनापतिपतिस्ततः।**

इस प्रकार समस्त योद्धाओंका पृथक्-पृथक् और एक साथ विभाजन करके सेनापतियोंके पति प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान् महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको अपने हिस्सेमें रक्खा ॥ १०½ ॥

**विधिवद् व्यूह्य मेधावी युद्धाय धृतमानसः ॥ ११ ॥**
**यथोद्दिष्टानि सैन्यानि पाण्डवानामयोजयत्।**
**जयाय पाण्डुपुत्राणां यत्तस्तस्थौ रणाजिरे ॥ १२ ॥**

उनके मनमें युद्धके लिये दृढ निश्चय था। मेधावी धृष्टद्युम्नने पाण्डवोंकी पूर्वोक्त सेनाओंकी विधिपूर्वक व्यूह-रचना करके उन सबको युद्धके लिये नियुक्त किया। तत्पश्चात् वे पाण्डवोंकी विजयके लिये संनद्ध होकर समराङ्गणमें खड़े हुए ॥ ११-१२ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि सेनापतिनियोगे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूतागमनपर्वमें सेनापतिके द्वारा सैनिकोंकी युद्धमें नियुक्तिविषयक एक सौ चौंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६४ ॥

## ( रथातिरथसंख्यानपर्व )

# पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

### दुर्योधनके पूछनेपर भीष्मका कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका परिचय देना

*धृतराष्ट्र उवाच*

**प्रतिज्ञाते फाल्गुनेन वधे भीष्मस्य संयुगे।**
**किमकुर्वत मे मन्दाः पुत्रा दुर्योधनादयः ॥ १ ॥**

**धृतराष्ट्रने पूछा**—संजय! जब अर्जुनने युद्धभूमिमें भीष्मका वध करनेकी प्रतिज्ञा कर ली, तब दुर्योधन आदि मेरे मूर्ख पुत्रोंने क्या किया? ॥ १ ॥

**हतमेव हि पश्यामि गाङ्गेयं पितरं रणे।**
**वासुदेवसहायेन पार्थेन दृढधन्वना ॥ २ ॥**

अर्जुन सुदृढ़ धनुष धारण करते हैं। इसके सिवा भगवान् श्रीकृष्ण उनके सहायक हैं; अतः मैं रणभूमिमें अपने पिता गङ्गानन्दन भीष्मको उनके द्वारा मारा गया ही मानता हूँ ॥

**स चापरिमितप्रज्ञस्तच्छ्रुत्वा पार्थभाषितम्।**
**किमुक्तवान् महेष्वासो भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ३ ॥**

अर्जुनकी उस प्रतिज्ञाको सुनकर अमित बुद्धिमान् योद्धाओंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर भीष्मने क्या कहा? ॥ ३ ॥

**सैनापत्यं च सम्प्राप्य कौरवाणां धुरन्धरः।**
**किमचेष्टत गाङ्गेयो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ ४ ॥**

कौरवकुलका भार वहन करनेवाले परम बुद्धिमान् और पराक्रमी गङ्गापुत्र भीष्मने सेनापतिका पद प्राप्त करनेके पश्चात् युद्धके लिये कौन-सी चेष्टा की? ॥ ४ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**ततस्तत् संजयस्तस्मै सर्वमेव न्यवेदयत्।**
**यथोक्तं कुरुवृद्धेन भीष्मेणामिततेजसा ॥ ५ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय! तदनन्तर संजयने अमिततेजस्वी कुरुवृद्ध भीष्मने जैसा कहा था, वह सब कुछ राजा धृतराष्ट्रको बताया ॥ ५ ॥

*संजय उवाच*

**सैनापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप।**
**दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव ॥ ६ ॥**

**संजय बोले**—नरेश्वर! सेनापतिका पद प्राप्त करके शान्तनुनन्दन भीष्मने दुर्योधनका हर्ष बढ़ाते हुए-से उससे यह बात कही— ॥ ६ ॥

**नमस्कृत्य कुमाराय सेनान्ये शक्तिपाणये।**
**अहं सेनापतिस्तेऽद्य भविष्यामि न संशयः ॥ ७ ॥**

'राजन्! मैं हाथमें शक्ति धारण करनेवाले देवसेनापति कुमार कार्तिकेयको नमस्कार करके अब तुम्हारी सेनाका अधिपति होऊँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च ।
कर्म कारयितुं चैव भृतानप्यभृतांस्तथा ॥ ८ ॥

'मुझे सेनासम्बन्धी प्रत्येक कर्मका ज्ञान है । मैं नाना प्रकारके व्यूहोंके निर्माणमें भी कुशल हूँ । तुम्हारी सेनामें जो वेतनभोगी अथवा वेतन न लेनेवाले मित्रसेनाके सैनिक हैं, उन सबसे यथायोग्य काम करा लेनेकी भी कला मुझे ज्ञात है ॥ ८ ॥

यात्रायाने च युद्धे च तथा प्रशमनेषु च ।
भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः ॥ ९ ॥

'महाराज ! मैं युद्धके लिये यात्रा करने युद्ध करने, तथा विपक्षीके चलाये हुए अस्त्रोंका प्रतीकार करनेके विषयमें जैसा बृहस्पति जानते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण आवश्यक बातोंकी विशेष जानकारी रखता हूँ ॥ ९ ॥

व्यूहानां च समारम्भान् दैवगान्धर्वमानुषान् ।
तैरहं मोहयिष्यामि पाण्डवान् व्येतु ते ज्वरः ॥ १० ॥

'मुझे देवता, गन्धर्व और मनुष्य—तीनोंकी ही व्यूहरचनाका ज्ञान है । उनके द्वारा मैं पाण्डवोंको मोहित कर दूँगा । अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ १० ॥

सोऽहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम् ।
यथावच्छास्त्रतो राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ११ ॥

'राजन् ! मैं तुम्हारी सेनाकी रक्षा करता हुआ शास्त्रीय विधानके अनुसार यथार्थरूपसे पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा । अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जाय' ॥ ११ ॥

*दुर्योधन उवाच*

विद्यते मे न गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि ।
समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १२ ॥

**दुर्योधन बोला**—महाबाहु गङ्गानन्दन ! मैं आपसे सत्य कहता हूँ, मुझे सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंसे भी कभी भय नहीं होता है ॥ १२ ॥

किं पुनस्त्वयि दुर्धर्षे सैनापत्ये व्यवस्थिते ।
द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि ॥ १३ ॥

फिर जब आप-जैसे दुर्धर्ष वीर हमारे सेनापतिके पदपर स्थित हैं तथा युद्धका अभिनन्दन करनेवाले पुरुषसिंह द्रोणाचार्य-जैसे योद्धा मेरे लिये युद्धभूमिमें उपस्थित हैं, तब तो मुझे भय हो ही कैसे सकता है ? ॥ १३ ॥

भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजये मम ।
न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! जब आप दोनों पुरुषप्रवर वीर मेरी विजयके लिये यहाँ खड़े हैं, तब तो अवश्य ही मेरे लिये देवताओंका राज्य भी दुर्लभ नहीं है ॥ १४ ॥

रथसंख्यां तु कार्त्स्न्येन परेषामात्मनस्तथा ।
तथैवातिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव ॥ १५ ॥
पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ १६ ॥

कुरुनन्दन ! आप शत्रुओंके तथा अपने पक्षके रथियों और अतिरथियोंकी संख्याको पूर्णरूपसे जानते हैं, अतः मैं भी आपसे इस विषयकी जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ; क्योंकि पितामह शत्रुपक्ष तथा अपने पक्षकी सभी बातोंके ज्ञानमें निपुण हैं, अतः मैं इन सब राजाओंके साथ आपके मुँहसे इस विषयको सुनना चाहता हूँ ॥ १५-१६ ॥

*भीष्म उवाच*

गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले ।
ये रथाः पृथिवीपाल तथैवातिरथाश्च ये ॥ १७ ॥

**भीष्म बोले**—राजेन्द्र गान्धारीनन्दन ! तुम अपनी सेनाके रथियोंकी संख्या श्रवण करो । भूपाल ! तुम्हारी सेनामें जो रथी और अतिरथी हैं, उन सबका वर्णन करता हूँ ॥ १७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
रथानां तव सेनायां यथामुख्यं तु मे शृणु ॥ १८ ॥

तुम्हारी सेनामें रथियोंकी संख्या अनेक सहस्र, लक्ष और अर्बुदों ( करोड़ों ) तक पहुँच जाती है; तथापि उनमें जो प्रधान-प्रधान हैं, उनके नाम मुझसे सुनो ॥ १८ ॥

भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः ।
दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसम्मितैः ॥ १९ ॥

सबसे पहले अपने दुःशासन आदि सौ सहोदर भाइयोंके साथ तुम्हीं बहुत बड़े उदार रथी हो ॥ १९ ॥

सर्वे कृतप्रहरणाश्छेदभेदविशारदाः ।
रथोपस्थे गजस्कन्धे गदाप्रासासिचर्मणि ॥ २० ॥

तुम सब लोग अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा छेदन-भेदनमें कुशल हो । रथपर और हाथीकी पीठपर बैठकर भी युद्ध कर सकते हो । गदा, प्रास तथा ढाल-तलवारके प्रयोगमें भी कुशल हो ॥ २० ॥

संयन्तारः प्रहर्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः ।
इष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ २१ ॥

तुमलोग रथके संचालन और अस्त्रोंके प्रहारमें निपुण हो । अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा भार उठानेमें भी समर्थ हो । धनुष-बाणकी विद्यामें तो तुमलोग द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके सुयोग्य शिष्य हो ॥ २१ ॥

एते हनिष्यन्ति रणे पञ्चालान् युद्धदुर्मदान् ।
कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्तराष्ट्रा मनस्विनः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्रके ये सभी मनस्वी पुत्र पाण्डवोंके साथ वैर किये हुए हैं; अतः युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले पाञ्चाल योद्धाओंको ये समरभूमिमें मार डालेंगे ॥ २२ ॥

तथाहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव ।
शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मैं तो तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाका प्रधान सेनापति ही हूँ; अतः पाण्डवोंको कष्ट देकर शत्रुसेनाके सैनिकोंका संहार करूँगा ॥ २३ ॥

न त्वात्मनो गुणान् वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते ।
कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः ॥ २४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भीष्म-दुर्योधन-संवाद

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मैं अपने मुँहसे अपने ही गुणोंका बखान करना उचित नहीं समझता। तुम तो मुझे जानते ही हो। शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भोजवंशी कृतवर्मा तुम्हारे दलमें अतिरथी वीर हैं। २४।

**अर्थसिद्धिं तव रणे करिष्यति न संशयः।**
**शस्त्रविद्भिरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः॥ २५॥**
**हनिष्यति चमूं तेषां महेन्द्रो दानवानिव।**

ये युद्धमें तुम्हारे अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करेंगे। इसमें संशय नहीं है। बड़े-बड़े शस्त्रवेत्ता भी इन्हें परास्त नहीं कर सकते। इनके आयुध अत्यन्त दृढ़ हैं और ये दूरके लक्ष्यको भी मार गिरानेमें समर्थ हैं। जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार ये भी पाण्डवोंकी सेनाका विनाश करेंगे॥ २५½॥

**मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः॥ २६॥**
**स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे।**

महाधनुर्धर मद्रराज शल्यको भी मैं अतिरथी मानता हूँ, जो प्रत्येक युद्धमें सदा भगवान् श्रीकृष्णके साथ स्पर्धा रखते हैं॥ २६½॥

**भागिनेयान् निजांस्त्यक्त्वा शल्यस्तेऽतिरथो मतः।**
**एष योत्स्यति संग्रामे पाण्डवांश्च महारथान्॥ २७॥**
**सागरोर्मिसमैर्बाणैः प्लावयन्निव शात्रवान्।**

ये अपने सगे भानजों नकुल-सहदेवको छोड़कर अन्य सभी पाण्डव महारथियोंसे समरभूमिमें युद्ध करेंगे। तुम्हारी सेनाके इन वीरशिरोमणि शल्यको मैं अतिरथी ही समझता हूँ। ये समुद्रकी लहरोंके समान अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके सैनिकोंको डुबाते हुए-से युद्ध करेंगे॥ २७½॥

**भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत्॥ २८॥**
**सौमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः।**
**बलक्षयममित्राणां सुमहान्तं करिष्यति॥ २९॥**

सोमदत्तके पुत्र महाधनुर्धर भूरिश्रवा भी अस्त्रविद्याके पण्डित और तुम्हारे हितैषी सुहृद् हैं। ये रथियोंके यूथपतियोंके भी यूथपति हैं, अतः तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाका महान् संहार करेंगे॥ २८-२९॥

**सिन्धुराजो महाराज मतो मे द्विगुणो रथः।**
**योत्स्यते समरे राजन् विक्रान्तो रथसत्तमः॥ ३०॥**

महाराज! सिन्धुराज जयद्रथको मैं दो रथियोंके बराबर समझता हूँ। ये बड़े पराक्रमी तथा रथी योद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं। राजन्! ये भी समराङ्गणमें पाण्डवोंके साथ युद्ध करेंगे॥३०॥

**द्रौपदीहरणे राजन् परिक्लिष्टश्च पाण्डवैः।**
**संस्मरंस्तं परिक्लेशं योत्स्यते परवीरहा॥ ३१॥**

नरेश्वर! द्रौपदीहरणके समय पाण्डवोंने इन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया था। उस महान् क्लेशको याद करके शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले जयद्रथ अवश्य युद्ध करेंगे॥ ३१॥

**एतेन हि तदा राजंस्तप आस्थाय दारुणम्।**
**सुदुर्लभो वरो लब्धः पाण्डवान् योद्धुमाहवे॥ ३२॥**

राजन्! उस समय इन्होंने कठोर तपस्या करके युद्धमें पाण्डवोंसे मुठभेड़ कर सकनेका अत्यन्त दुर्लभ वर प्राप्त किया था॥ ३२॥

**स एष रथशार्दूलस्तद् वैरं संस्मरन् रणे।**
**योत्स्यते पाण्डवैस्तात प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ३३**

तात! ये रथियोंमें श्रेष्ठ जयद्रथ युद्धमें उस पुराने वैरको याद करके अपने दुस्त्यज प्राणोंकी भी बाजी लगाकर पाण्डवोंके साथ संग्राम करेंगे॥ ३३॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६५॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६५॥

# षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

## कौरवपक्षके रथियोंका परिचय

*भीष्म उवाच*

**सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो मतः।**
**तवार्थसिद्धिमाकाङ्क्षन् योत्स्यते समरे परैः॥ १॥**

भीष्मने कहा—राजन्! काम्बोजदेशके राजा सुदक्षिण एक रथी माने गये हैं। ये तुम्हारे कार्यकी सिद्धि चाहते हुए समराङ्गणमें शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे॥ १॥

**एतस्य रथसिंहस्य तवार्थे राजसत्तम।**
**पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यन्ति कुरवो युधि॥ २॥**

नृपश्रेष्ठ! रथियोंमें सिंहके समान पराक्रमी ये काम्बोजराज तुम्हारे लिये युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रम प्रकट करेंगे और समस्त कौरव इनके पराक्रमको देखेंगे॥ २॥

**एतस्य रथवंशो हि तिग्मवेगप्रहारिणः।**
**काम्बोजानां महाराज शलभानामिवायतिः॥ ३॥**

महाराज! प्रचण्ड वेगसे प्रहार करनेवाले इन काम्बोजनरेशके रथियोंके समुदायमें काम्बोजदेशीय सैनिकोंकी श्रेणी टिड्डियोंके दल-सी दृष्टिगोचर होती है॥ ३॥

**नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मा रथस्तव।**
**रथवंशेन कदनं शत्रूणां वै करिष्यति॥ ४॥**

माहिष्मतीपुरीके निवासी राजा नील भी तुम्हारे दलके एक रथी हैं। इन्होंने नीले रंगका कवच पहन रक्खा है। ये अपने रथसमूहद्वारा शत्रुओंका संहार कर डालेंगे॥ ४॥

**कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन मारिष।**
**योत्स्यते सततं राजंस्तवार्थे कुरुनन्दन॥ ५॥**

कुरुनन्दन! पूर्वकालमें सहदेवके साथ इनकी शत्रुता हो गयी थी। राजन्! ये सदा तुम्हारे शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ संमतौ रथसत्तमौ।
कृतिनौ समरे तात दृढवीर्यपराक्रमौ ॥ ६ ॥

अवन्तीदेशके दोनों वीर राजकुमार विन्द और अनुविन्द श्रेष्ठ रथी माने गये हैं। तात! वे युद्धकलाके पण्डित तथा सुदृढ़ बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ ६ ॥

एतौ तौ पुरुषव्याघ्रौ रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः।
गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च करच्युतैः ॥ ७ ॥

ये दोनों पुरुषसिंह अपने हाथसे छूटे हुए गदा, प्रास, खड्ग, नाराच तथा तोमरोंद्वारा शत्रुसेनाको दग्ध कर डालेंगे ॥

युद्धाभिकामौ समरे क्रीडन्ताविव यूथपौ।
यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत् ॥ ८ ॥

महाराज! जैसे दो यूथपति गजराज हाथियोंके झुंडमें खेल-सा करते हुए विचरते हैं, उसी प्रकार युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले विन्द और अनुविन्द समराङ्गणमें यमराजके समान विचरण करते हैं ॥ ८ ॥

त्रिगर्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम।
कृतवैराश्च पार्थैस्ते विराटनगरे तदा ॥ ९ ॥

त्रिगर्तदेशीय पाँचों भ्राताओंको मैं उदार रथी मानता हूँ। विराटनगरमें दक्षिणगोग्रहके युद्धके समय चार पाण्डवोंके साथ इनका वैर बढ़ गया था ॥ ९ ॥

मकरा इव राजेन्द्र समुद्धततरङ्गिणीम्।
गङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि वाहिनीम् ॥ १० ॥

राजेन्द्र! जैसे ग्राहगण उत्ताल तरङ्गोंवाली गङ्गाको मथ डालते हैं, उसी प्रकार ये त्रिगर्तदेशीय पाँचों क्षत्रिय वीर पाण्डवोंकी सेनामें हलचल मचा देंगे ॥ १० ॥

ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम्।
एते योत्स्यन्ति संग्रामे संस्मरन्तः पुराकृतम् ॥ ११ ॥
व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनानुजेन ह।
दिशो विजयता राजन् श्वेतवाहेन भारत ॥ १२ ॥

महाराज! ये पाँचों भाई रथी हैं और सत्यरथ उनमें प्रधान है। भारत! भीमसेनके छोटे भाई श्वेत घोड़ोंवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने दिग्विजयके समय जो त्रिगर्तोंका अप्रिय किया था, उस पहलेके वैरको याद रखते हुए ये पाँचों वीर संग्राममूमिमें मन लगाकर युद्ध करेंगे ॥ ११-१२ ॥

ते हनिष्यन्ति पार्थानां तानासाद्य महारथान्।
वरान् वरान् महेष्वासान् क्षत्रियाणां धुरन्धरान् ॥ १३ ॥

ये पाण्डवोंके बड़े-बड़े महारथियोंके पास जा उन महाधनुर्धर क्षत्रियशिरोमणि वीरोंका संहार कर डालेंगे ॥ १३ ॥

लक्ष्मणस्तव पुत्रश्च तथा दुःशासनस्य च।
उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ संग्रामेष्वपलायिनौ ॥ १४ ॥

तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दुःशासनका पुत्र—ये दोनों पुरुषसिंह युद्धसे पलायन करनेवाले नहीं हैं ॥ १४ ॥

तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ।
युद्धानां च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः ॥ १५ ॥

ये दोनों तरुण और सुकुमार राजपुत्र बड़े वेगशाली हैं, अनेक युद्धोंके विशेषज्ञ हैं और सब प्रकारसे सेनानायक होने योग्य हैं ॥ १५ ॥

रथौ तौ कुरुशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ।
क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १६ ॥

कुरुश्रेष्ठ! ये दोनों वीर रथी तो हैं ही, रथियोंमें श्रेष्ठ भी हैं। ये क्षत्रियधर्ममें तत्पर होकर युद्धमें महान् पराक्रम करेंगे ॥

दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभ।
योत्स्यते तव संग्रामे स्वेन सैन्येन पालितः ॥ १७ ॥

महाराज! नरश्रेष्ठ! अपनी सेनामें दण्डधार भी एक रथी हैं, जो तुम्हारे लिये संग्राममें अपनी सेनासे सुरक्षित होकर लड़ेंगे ॥

बृहद्बलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः।
रथो मम मतस्तात महावेगपराक्रमः ॥ १८ ॥

तात! महान् वेग और पराक्रमसे सम्पन्न कोसलदेशके राजा बृहद्बल भी मेरी दृष्टिमें एक रथी हैं और रथियोंमें इनका स्थान बहुत ऊँचा है ॥ १८ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे स्वान् बन्धून् सम्प्रहर्षयन्।
उग्रायुधो महेष्वासो धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ १९ ॥

ये धृतराष्ट्रपुत्रोंके हितमें तत्पर हो भयंकर अस्त्र-शस्त्र तथा महान् धनुष धारण किये अपने बन्धुओंका हर्ष बढ़ाते हुए समराङ्गणमें बड़े उत्साहसे युद्ध करेंगे ॥ १९ ॥

कृपः शारद्वतो राजन् रथयूथपयूथपः।
प्रियान् प्राणान् परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव ॥ २० ॥

राजन्! शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य तो रथयूथपतियोंके भी यूथपति हैं। ये अपने प्यारे प्राणोंकी परवा न करके तुम्हारे शत्रुओंको जला डालेंगे ॥ २० ॥

गौतमस्य महर्षेर्य आचार्यस्य शरद्वतः।
कार्तिकेय इवाजेयः शरस्तम्बात् सुतोऽभवत् ॥ २१ ॥

गौतमवंशी महर्षि आचार्य शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य कार्तिकेयकी भाँति सरकण्डोंसे उत्पन्न हुए हैं और उन्हींकी भाँति अजेय भी हैं ॥ २१ ॥

एष सेनाः सुबहुला विविधायुधकार्मुकाः।
अग्निवत् समरे तात चरिष्यति विनिर्दहन् ॥ २२ ॥

तात! ये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं धनुष धारण करनेवाली बहुत-सी सेनाओंको अग्निके समान दग्ध करते हुए समरभूमिमें विचरण करेंगे ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

## कौरवपक्षके रथी, महारथी और अतिरथियोंका वर्णन

*भीष्म उवाच*

**शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप।**
**प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥**

भीष्मने कहा—नरेश्वर ! यह तुम्हारा मामा शकुनि भी एक रथी है। यह पाण्डवोंसे वैर बाँधकर युद्ध करेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ १ ॥

**एतस्य सेना दुर्धर्षा समरे प्रतियायिनः।**
**विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे ॥ २ ॥**

युद्धमें डटकर शत्रुओंका सामना करनेवाले इस शकुनिकी सेना दुर्धर्ष है। इसका वेग वायुके समान है तथा यह विविध आकारवाले अनेक आयुधोंसे विभूषित है ॥ २ ॥

**द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वानेवाति धन्विनः।**
**समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः ॥ ३ ॥**

महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो सभी धनुर्धरोंसे बढ़कर है। वह युद्धमें विचित्र ढंगसे शत्रुओंका सामना करनेवाला, सुदृढ़ अस्त्रोंसे सम्पन्न तथा महारथी है ॥ ३ ॥

**एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः।**
**शरासनविनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः ॥ ४ ॥**

महाराज ! गाण्डीवधारी अर्जुनकी भाँति इसके धनुषसे एक साथ छूटे हुए बहुत-से बाण भी परस्पर सटे हुए ही लक्ष्यतक पहुँचते हैं ॥ ४ ॥

**नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः।**
**निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महारथः ॥ ५ ॥**

रथियोंमें श्रेष्ठ इस वीर पुरुषके महत्त्वकी गणना नहीं की जा सकती। यह महारथी चाहे, तो तीनों लोकोंको दग्ध कर सकता है ॥ ५ ॥

**क्रोधस्तेजश्च तपसा सम्भृतोऽऽश्रमवासिनाम्।**
**द्रोणेनानुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः ॥ ६ ॥**

इसमें क्रोध है, तेज है और आश्रमवासी महर्षियोंके योग्य तपस्या भी संचित है। इसकी बुद्धि उदार है। द्रोणाचार्यने सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंका ज्ञान देकर इसपर महान् अनुग्रह किया है ॥ ६ ॥

**दोषस्त्वस्य महानेको येनैव भरतर्षभ।**
**न मे रथो नातिरथो मतः पार्थिवसत्तम ॥ ७ ॥**

किंतु भरतश्रेष्ठ ! नृपशिरोमणे ! इसमें एक ही बहुत बड़ा दोष है, जिससे मैं इसे न तो अतिरथी मानता हूँ और न रथी ही ॥ ७ ॥

**जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः।**
**न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि ॥ ८ ॥**

इस ब्राह्मणको अपना जीवन बहुत प्रिय है, अतः यह सदा दीर्घायु बना रहना चाहता है ( यही इसका दोष है )। अन्यथा दोनों सेनाओंमें इसके समान शक्तिशाली कोई नहीं है ॥ ८ ॥

**हन्यादेकरथेनैव देवानामपि वाहिनीम्।**
**वपुष्मांस्तलघोषेण स्फोटयेदपि पर्वतान् ॥ ९ ॥**

यह एकमात्र रथका सहारा लेकर देवताओंकी सेनाका भी संहार कर सकता है। इसका शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं विशाल है। यह अपनी तालीकी आवाजसे पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकता है ॥ ९ ॥

**असंख्येयगुणो वीरः प्रहर्ता दारुणद्युतिः।**
**दण्डपाणिरिवासह्यः कालवत् प्रचरिष्यति ॥ १० ॥**

इस वीरमें असंख्य गुण हैं। यह प्रहार करनेमें कुशल और भयंकर तेजसे सम्पन्न है; अतः दण्डधारी कालके समान असह्य होकर युद्धभूमिमें विचरण करेगा ॥ १० ॥

**युगान्ताग्निसमः क्रोधात् सिंहग्रीवो महाद्युतिः।**
**एष भारतयुद्धस्य पृष्ठं संशमयिष्यति ॥ ११ ॥**

क्रोधमें यह प्रलयकालकी अग्निके समान जान पड़ता है। इसकी ग्रीवा सिंहके समान है। यह महातेजस्वी अश्वत्थामा महाभारत-युद्धके शेषभागका शमन करेगा ॥ ११ ॥

**पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः।**
**रणे कर्म महत् कर्ता अत्र मे नास्ति संशयः ॥ १२ ॥**

अश्वत्थामाके पिता द्रोणाचार्य महान् तेजस्वी हैं। ये बूढ़े होनेपर भी नवयुवकोंसे अच्छे हैं। इस युद्धमें ये अपना महान् पराक्रम प्रकट करेंगे, इसमें मुझे संशय नहीं है ॥ १२ ॥

**अस्त्रवेगानिलोद्भूतः सेनाकक्षेन्धनोत्थितः।**
**पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति रणे धृतः ॥ १३ ॥**

समरभूमिमें डटे हुए द्रोणाचार्य अग्निके समान हैं। अस्त्रवेग-रूपी वायुका सहारा पाकर ये उद्दीप्त होंगे और सेनारूपी घास-फूस तथा ईंधनोंको पाकर प्रज्वलित हो उठेंगे। इस प्रकार ये प्रज्वलित होकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी सेनाओंको जलाकर भस्म कर डालेंगे ॥ १३ ॥

**रथयूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः।**
**भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हितं तव ॥ १४ ॥**

ये नरश्रेष्ठ भरद्वाजनन्दन रथयूथपतियोंके समुदायके भी यूथपति हैं। ये तुम्हारे हितके लिये तीव्र पराक्रम प्रकट करेंगे ॥

**सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः।**
**गच्छेदन्तं सृंजयानां प्रियस्त्वस्य धनंजयः ॥ १५ ॥**

सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंके ये आचार्य एवं वृद्ध गुरु हैं। ये सृंजयवंशी क्षत्रियोंका विनाश कर डालेंगे; परंतु अर्जुन इन्हें बहुत प्रिय हैं ॥ १५ ॥

**नैष जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम्।**
**हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम् ॥ १६ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

महाधनुर्धर द्रोणाचार्यका समुज्ज्वल आचार्यभाव अर्जुनके गुणोंद्वारा जीत लिया गया है। उसका स्मरण करके ये अनायास ही महान् कर्म करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुनको कदापि नहीं मारेंगे ॥ १६ ॥

**श्लाघतेऽयं सदा वीर पार्थस्य गुणविस्तरैः।**
**पुत्रादभ्यधिकं चैनं भारद्वाजोऽनुपश्यति ॥ १७ ॥**

वीर ! ये आचार्य द्रोण अर्जुनके गुणोंका विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए सदा उनकी प्रशंसा करते हैं और उन्हें पुत्रसे भी अधिक प्रिय मानते हैं ॥ १७ ॥

**हन्यादेकरथेनैव देवगन्धर्वमानुषान्।**
**एकीभूतानपि रणे दिव्यैरस्त्रैः प्रतापवान् ॥ १८ ॥**

प्रतापी द्रोणाचार्य एकमात्र रथका ही आश्रय ले रणभूमिमें एकत्र एवं एकीभूत हुए सम्पूर्ण देवताओं, गन्धर्वों और मनुष्योंको अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा नष्ट कर सकते हैं ॥ १८ ॥

**पौरवो राजशार्दूलस्तव राजन् महारथः।**
**मतो मम रथोदारः परवीररथारुजः ॥ १९ ॥**

राजन् ! तुम्हारी सेनामें जो नृपश्रेष्ठ पौरव हैं, वे मेरे मतमें रथियोंमें उदार महारथी हैं। वे विपक्षके वीर रथियोंको पीड़ा देनेमें समर्थ हैं ॥ १९ ॥

**स्वेन सैन्येन महता प्रतपन् शत्रुवाहिनीम्।**
**प्रधक्ष्यति स पञ्चालान् कक्षमग्निगतिर्यथा ॥ २० ॥**

राजा पौरव अपनी विशाल सेनाके द्वारा शत्रुवाहिनीको संतप्त करते हुए पाञ्चालोंको उसी प्रकार भस्म कर डालेंगे, जैसे आग घास-फूसको ॥ २० ॥

**सत्यश्रवा रथस्त्वेको राजपुत्रो बृहद्बलः।**
**तव राजन् रिपुबले कालवत् प्रचरिष्यति ॥ २१ ॥**

राजन् ! राजकुमार बृहद्बल भी एक रथी हैं। संसारमें उनकी सच्ची कीर्तिका विस्तार हुआ है। वे तुम्हारे शत्रुओंकी सेनामें कालके समान विचरेंगे ॥ २१ ॥

**एतस्य योधा राजेन्द्र विचित्रकवचायुधाः।**
**विचरिष्यन्ति संग्रामे निघ्नन्तः शात्रवांस्तव ॥ २२ ॥**

राजेन्द्र ! उनके सैनिक विचित्र कवच और अस्त्र-शस्त्र धारण करके तुम्हारे शत्रुओंका संहार करते हुए संग्रामभूमिमें विचरण करेंगे ॥ २२ ॥

**वृषसेनो रथस्तेऽग्र्यः कर्णपुत्रो महारथः।**
**प्रधक्ष्यति रिपूणां ते बलं तु बलिनां वरः ॥ २३ ॥**

कर्णका पुत्र वृषसेन भी तुम्हारी सेनाका एक श्रेष्ठ रथी है। इसे महारथी भी कह सकते हैं। बलवानोंमें श्रेष्ठ वृषसेन तुम्हारे वैरियोंकी विशाल वाहिनीको भस्म कर डालेगा ॥ २३ ॥

**जलसंधो महातेजा राजन् रथवरस्तव।**
**त्यक्ष्यते समरे प्राणान् माधवः परवीरहा ॥ २४ ॥**

राजन् ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मधुवंशी महातेजस्वी जलसंध तुम्हारी सेनामें श्रेष्ठ रथी हैं। ये तुम्हारे लिये युद्धमें अपने प्राणतक दे डालेंगे ॥ २४ ॥

**एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः।**
**रथेन वा महाबाहुः क्षपयन् शत्रुवाहिनीम् ॥ २५ ॥**

महाबाहु जलसंध रथ अथवा हाथीकी पीठपर बैठकर युद्ध करनेमें कुशल हैं। ये संग्राममें शत्रुसेनाका संहार करते हुए लड़ेंगे ॥ २५ ॥

**रथ एष महाराज मतो मे राजसत्तम।**
**त्वदर्थे त्यक्ष्यते प्राणान् सहसैन्यो महारणे ॥ २६ ॥**

महाराज ! नृपश्रेष्ठ ! ये मेरे मतमें रथी ही हैं और इस महायुद्धमें तुम्हारे लिये अपनी सेनासहित प्राणत्याग करेंगे ॥

**एष विक्रान्तयोधी च चित्रयोधी च सङ्गरे।**
**वीतभीश्चापि ते राजन् शत्रुभिः सह योत्स्यते ॥ २७ ॥**

राजन् ! ये समराङ्गणमें महान् पराक्रम प्रकट करते हुए विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले हैं। ये तुम्हारे शत्रुओंके साथ निर्भय होकर युद्ध करेंगे ॥ २७ ॥

**बाह्लीकोऽतिरथश्चैव समरे चानिवर्तनः।**
**मम राजन् मतो युद्धे शूरो वैवस्वतोपमः ॥ २८ ॥**

बाह्लीक अतिरथी वीर हैं। ये युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं। राजन् ! मैं समरभूमिमें इन्हें यमराजके समान शूरवीर मानता हूँ ॥ २८ ॥

**न ह्येष समरं प्राप्य निवर्तेत कथञ्चन।**
**यथा सततगो राजन् स हि हन्यात् परान् रणे ॥ २९ ॥**

ये रणक्षेत्रमें पहुँचकर किसी तरह पीछे पैर नहीं हटा सकते। राजन् ! ये वायुके समान वेगसे रणभूमिमें शत्रुओंको मारेंगे ॥ २९ ॥

**सेनापतिर्महाराज सत्यवांस्ते महारथः।**
**रणेष्वद्भुतकर्मा च रथी पररथारुजः ॥ ३० ॥**

महाराज ! रथारूढ हो युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखाने और शत्रुपक्षके रथियोंको मार भगानेवाले तुम्हारे सेनापति सत्यवान् भी महारथी हैं ॥ ३० ॥

**एतस्य समरं दृष्ट्वा न व्यथास्ति कथञ्चन।**
**उत्स्मयन्नुत्पतत्येष परान् रथपथे स्थितान् ॥ ३१ ॥**

युद्ध देखकर इनके मनमें किसी प्रकार भी भय एवं दुःख नहीं होता। ये रथके मार्गमें खड़े हुए शत्रुओंपर हँसते-हँसते कूद पड़ते हैं ॥ ३१ ॥

**एष चारिषु विक्रान्तः कर्म सत्पुरुषोचितम्।**
**कर्ता विमर्दे सुमहत् त्वदर्थे पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥**

पुरुषश्रेष्ठ सत्यवान् शत्रुओंपर महान् पराक्रम दिखाते हैं। ये युद्धमें तुम्हारे लिये श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य महान् कर्म करेंगे ॥ ३२ ॥

**अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महारथः।**
**हनिष्यति परान् राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३३ ॥**

क्रूरकर्मा राक्षसराज अलम्बुष भी महारथी है। राजन् ! यह पहलेके वैरको याद करके शत्रुओंका संहार करेगा ॥ ३३ ॥

**एष राक्षससैन्यानां सर्वेषां रथसत्तमः।**
**मायावी दृढवैरश्च समरे विचरिष्यति ॥ ३४ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मायावी, वैरभावको दृढ़तापूर्वक सुरक्षित रखनेवाला तथा समस्त राक्षस सैनिकोंमें श्रेष्ठ रथी यह अलम्बुष संग्राम-भूमिमें ( निर्भय होकर ) विचरेगा ॥ ३४ ॥

**प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान् ।**
**गजाङ्कुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः ॥ ३५ ॥**

प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त बड़े वीर और प्रतापी हैं। हाथमें अङ्कुश लेकर हाथियोंको काबूमें रखनेवाले वीरोंमें इनका सबसे ऊँचा स्थान है। ये रथयुद्धमें भी कुशल हैं॥३५॥

**एतेन युद्धमभवत् पुरा गाण्डीवधन्वनः ।**
**दिवसान् सुबहून् राजन्नुभयोर्जयगृद्धिनोः ॥ ३६ ॥**

राजन् ! पहले इनके साथ गाण्डीवधारी अर्जुनका युद्ध हुआ था। उस संग्राममें दोनों अपनी-अपनी विजय चाहते हुए बहुत दिनोंतक लड़ते रहे ॥ ३६ ॥

**ततः सखायं गान्धारे मानयन् पाकशासनम् ।**
**अकरोत् संविदं तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ३७ ॥**

गान्धारीकुमार ! कुछ दिनों बाद भगदत्तने अपने सखा इन्द्रका सम्मान करते हुए महात्मा पाण्डुनन्दन अर्जुनके साथ संधि कर ली थी॥ ३७ ॥

**एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।**
**ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः ॥ ३८ ॥**

राजा भगदत्त हाथीकी पीठपर बैठकर युद्ध करनेमें अत्यन्त कुशल हैं। ये ऐरावतपर बैठे हुए देवराज इन्द्रके समान संग्राममें तुम्हारे शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे ॥ ३८ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६७ ॥

# अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

## कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका वर्णन, कर्ण और भीष्मका रोषपूर्वक संवाद तथा दुर्योधनद्वारा उसका निवारण

*भीष्म उवाच*

**अचलो वृषकश्चैव सहितौ भ्रातरावुभौ ।**
**रथौ तव दुराधर्षौ शत्रून् विध्वंसयिष्यतः ॥ १ ॥**

**भीष्म कहते हैं**—अचल और वृषक—ये साथ रहनेवाले दोनों भाई दुर्धर्ष रथी हैं, जो तुम्हारे शत्रुओंका विध्वंस कर डालेंगे ॥ १ ॥

**बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढक्रोधौ प्रहारिणौ ।**
**गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ ॥ २ ॥**

गान्धारदेशके ये प्रधान वीर मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी, बलवान्, अत्यन्त क्रोधी, प्रहार करनेमें कुशल, तरुण, दर्शनीय एवं महाबली हैं ॥ २ ॥

**सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः ।**
**उत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥**
**परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव ।**
**मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः ॥ ४ ॥**

राजन् ! यह जो तुम्हारा प्रिय सखा कर्ण है, जो तुम्हें पाण्डवोंके साथ युद्धके लिये सदा उत्साहित करता रहता है और रणक्षेत्रमें सदा अपनी क्रूरताका परिचय देता है, बड़ा ही कटुभाषी, आत्मप्रशंसी और नीच है। यह कर्ण तुम्हारा मन्त्री, नेता और बन्धु बना हुआ है। यह अभिमानी तो है ही, तुम्हारा आश्रय पाकर बहुत ऊँचे चढ़ गया है ॥३-४॥

**एष नैव रथः कर्णो न चाप्यतिरथो रणे ।**
**वियुक्तः कवचेनैष सहजेन विचेतनः ॥ ५ ॥**
**कुण्डलाभ्यां च दिव्याभ्यां वियुक्तः सततं घृणी ।**
**अभिशापाच्च रामस्य ब्राह्मणस्य च भाषणात् ॥ ६ ॥**
**करणानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथो मतः ।**
**नैष फाल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन् विमोक्ष्यते ॥ ७ ॥**

यह कर्ण युद्धभूमिमें न तो अतिरथी है और न रथी ही कहलाने योग्य है, क्योंकि यह मूर्ख अपने सहज कवच तथा दिव्य कुण्डलोंसे हीन हो चुका है। यह दूसरोंके प्रति सदा घृणाका भाव रखता है। परशुरामजीके अभिशापसे, ब्राह्मणकी शापोक्तिसे तथा विजयसाधक उपर्युक्त उपकरणोंको खो देनेसे मेरी दृष्टिमें यह कर्ण अर्धरथी है। अर्जुनसे भिड़नेपर यह कदापि जीवित नहीं बच सकता ॥ ५—७ ॥

**ततोऽब्रवीत् पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।**
**एवमेतद् यथाऽऽत्थ त्वं न मिथ्यास्ति कदाचन ॥ ८ ॥**

यह सुनकर समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी बोल उठे—'आप जैसा कहते हैं, बिल्कुल ठीक है। आपका यह मत कदापि मिथ्या नहीं है ॥ ८ ॥

**रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते ।**
**घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥ ९ ॥**

'यह प्रत्येक युद्धमें घमंड तो बहुत दिखाता है; परंतु वहाँसे भागता ही देखा जाता है। कर्ण दयालु और प्रमादी है। इसलिये मेरी रायमें भी यह अर्धरथी ही है' ॥ ९ ॥

**एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फाल्य लोचने ।**
**उवाच भीष्मं राधेयस्तुदन् वाग्भिः प्रतोदवत् ॥ १० ॥**

यह सुनकर राधानन्दन कर्ण क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा और अपने वचनरूपी चाबुकसे पीड़ा देता हुआ भीष्मसे बोला— ॥ १० ॥

**पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि ।**
**अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे ॥ ११ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'पितामह ! यद्यपि मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है, तो भी सदा मुझसे द्वेष रखनेके कारण तुम इसी प्रकार पग-पगपर मुझे अपने वाग्बाणोंद्वारा इच्छानुसार चोट पहुँचाते रहते हो ॥ ११ ॥

**मर्षयामि च तत् सर्वं दुर्योधनकृतेन वै।**
**त्वं तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा ॥ १२ ॥**

'मैं दुर्योधनके कारण यह सब कुछ चुपचाप सह लेता हूँ; परंतु तुम मुझे मूर्ख और कायरके समान समझते हो ॥ १२ ॥

**भवानर्धरथो मह्यं मतो वै नात्र संशयः।**
**सर्वस्य जगतश्चैव गाङ्गेयो न मृषा वदेत् ॥ १३ ॥**

'तुम मेरे विषयमें जो अर्धरथी होनेका मत प्रकट कर रहे हो, इससे सम्पूर्ण जगत्को निःसंदेह ऐसा ही प्रतीत होने लगेगा; क्योंकि सब यही जानते हैं कि गङ्गानन्दन भीष्म झूठ नहीं बोलते ॥ १३ ॥

**कुरूणामहितो नित्यं न च राजावबुध्यते।**
**को हि नाम समानेषु राजसूदारकर्मसु ॥ १४ ॥**
**तेजोवधमिमं कुर्याद् विभेदयिषुराहवे।**
**यथा त्वं गुणविद्वेषादपरागं चिकीर्षसि ॥ १५ ॥**

'तुम कौरवोंका सदा अहित करते हो; परंतु राजा दुर्योधन इस बातको नहीं समझते हैं। तुम मेरे गुणोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण जिस प्रकार राजाओंकी मुझपर विरक्ति कराना चाहते हो, वैसा प्रयत्न तुम्हारे सिवा दूसरा कौन कर सकता है ? इस समय युद्धका अवसर उपस्थित है और समान श्रेणीके उदारचरित राजा एकत्र हुए हैं; ऐसे अवसरपर आपसमें भेद ( फूट ) उत्पन्न करनेकी इच्छा रखकर कौन पुरुष अपने ही पक्षके योद्धाका इस प्रकार तेज और उत्साह नष्ट करेगा ? ॥ १४-१५ ॥

**न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः।**
**महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥ १६ ॥**

'कौरव ! केवल बड़ी अवस्था हो जाने, बाल पक जाने, अधिक धनका संग्रह कर लेने तथा बहुसंख्यक भाई-बन्धुओंके होनेसे ही किसी क्षत्रियको महारथी नहीं गिना जा सकता ॥ १६ ॥

**बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः।**
**धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः ॥ १७ ॥**

'क्षत्रियजातिमें जो बलमें अधिक हो, वही श्रेष्ठ माना गया है। ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके ज्ञानसे, वैश्य अधिक धनसे और शूद्र अधिक आयु होनेसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं ॥ १७ ॥

**यथेच्छकं स्वयं वृथा रथानतिरथांस्तथा।**
**कामद्वेषसमायुक्तो मोहात् प्रकुरुते भवान् ॥ १८ ॥**

'तुम राग-द्वेषसे भरे हुए हो; अतः मोहवश मनमाने ढंगसे रथी-अतिरथियोंका विभाग कर रहे हो ॥ १८ ॥

**दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम्।**
**त्यज्यतां दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्बिषकृत् तव ॥ १९ ॥**

'महाबाहु दुर्योधन ! तुम अच्छी तरह विचार करके देख लो। ये भीष्म दुर्भावसे दूषित होकर तुम्हारी बुराई कर रहे हैं। तुम इन्हें अभी त्याग दो ॥ १९ ॥

**भिन्ना हि सेना नृपते दुःसंधेया भवत्युत।**
**मौला हि पुरुषव्याघ्र किमु नानासमुत्थिताः ॥ २० ॥**

'नरेश्वर ! पुरुषसिंह ! एक बार सेनामें फूट पड़ जानेपर उसमें पुनः मेल कराना कठिन हो जाता है। उस दशामें मौलिक ( पीढ़ियोंसे चले आनेवाले ) सेवक भी हाथसे निकल जाते हैं। फिर जो भिन्न-भिन्न स्थानोंके लोग किसी एक कार्यके लिये उद्यत होकर एकत्र हुए हों, उनकी तो बात ही क्या है ? ॥ २० ॥

**एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत।**
**तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः ॥ २१ ॥**

'भारत ! इन योद्धाओंमें युद्धके अवसरपर दुविधा उत्पन्न हो गयी है। तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो, हमारे तेज और उत्साहकी विशेषरूपसे हत्या की जा रही है ॥ २१ ॥

**रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः।**
**अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २२ ॥**

'कहाँ रथियोंको समझना और कहाँ अल्पबुद्धि भीष्म ! मैं अकेला ही पाण्डवोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दूँगा।

**आसाद्य माममोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश।**
**पाण्डवाः सहपञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव ॥ २३ ॥**

'मेरे बाण अमोघ हैं। मेरे सामने आकर पाण्डव और पाञ्चाल उसी प्रकार दसों दिशाओंमें भाग जायँगे, जैसे सिंहको देखकर बैल भागते हैं ॥ २३ ॥

**क्व च युद्धं विमर्दो वा मन्त्रे सुव्याहृतानि च।**
**क्व च भीष्मो गतवया मन्दात्मा कालचोदितः ॥ २४ ॥**

'कहाँ युद्ध, मारकाट और गुप्त मन्त्रणामें अच्छी सलाह बतानेका कार्य और कहाँ कालप्रेरित मन्दबुद्धि भीष्म, जिनकी आयु समाप्त हो चुकी है ॥ २४ ॥

**एकाकी स्पर्धते नित्यं सर्वेण जगता सह।**
**न चान्यं पुरुषं कंचिन्मन्यते मोघदर्शनः ॥ २५ ॥**

'ये अकेले ही सदा सम्पूर्ण जगत्के साथ स्पर्धा रखते हैं और अपनी व्यर्थ दृष्टिके कारण दूसरे किसीको पुरुष ही नहीं समझते हैं ॥ २५ ॥

**श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम्।**
**न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः ॥ २६ ॥**

'वृद्धोंकी बातें सुननी चाहिये; यह शास्त्रका आदेश है, परंतु जो अत्यन्त बूढ़े हो गये हैं, उनकी बातें श्रवण करने योग्य नहीं हैं; क्योंकि वे तो फिर बालकोंके ही समान माने गये हैं ॥ २६ ॥

**अहमेको हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम्।**
**सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ॥ २७ ॥**

'नृपश्रेष्ठ ! मैं इस युद्धमें अकेला ही पाण्डवोंकी सेना

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विनाश करूँगा; परंतु सारा यश भीष्मको मिल जायगा ॥

**कृतः सेनापतिस्त्वेष त्वया भीष्मो नराधिप ।**
**सेनापतौ यशो गन्ता न तु योधान् कथंचन ॥ २८ ॥**

'नरेश्वर ! तुमने इन भीष्मको ही सेनापति बनाया है। विजयका यश सेनापतिको ही प्राप्त होता है; योद्धाओंको किसी प्रकार नहीं मिलता ॥ २८ ॥

**नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन् कथंचन ।**
**हते भीष्मे तु योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः ॥ २९ ॥**

'अतः राजन् ! मैं भीष्मके जीते-जी किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा; परंतु भीष्मके मारे जानेपर सम्पूर्ण महारथियों-के साथ टक्कर लूँगा' ॥ २९ ॥

*भीष्म उवाच*

**समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान् सागरोपमः ।**
**धार्तराष्ट्रस्य संग्रामे वर्षपूगाभिचिन्तितः ॥ ३० ॥**
**तस्मिन्नभ्यागते काले प्रतप्ते लोमहर्षणे ।**
**मिथो भेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ॥ ३१ ॥**

**भीष्मने कहा**—सूतपुत्र ! इस युद्धमें दुर्योधनका यह समुद्रके समान अत्यन्त गुरुतर भार मैंने अपने कंधोंपर उठाया है। जिसके लिये मैं बहुत वर्षोंसे चिन्तित हो रहा था, वह संतापदायक रोमाञ्चकारी समय अब आकर उपस्थित हो ही गया, ऐसे अवसरमें मुझे यह पारस्परिक भेद नहीं उत्पन्न करना चाहिये, इसीलिये तू अभीतक जी रहा है ॥३०-३१॥

**न ह्यहं त्वद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव ।**
**युद्धश्रद्धामहं छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज ॥ ३२ ॥**

सूतकुमार ! यदि ऐसी बात न होती तो मैं वृद्ध होनेपर भी पराक्रम करके आज तुझ बालककी युद्धविषयक श्रद्धा और जीवनकी आशाका एक ही साथ उच्छेद कर डालता ॥

**जामदग्न्येन रामेण महास्त्राणि विमुञ्चता ।**
**न मे व्यथा कृता काचित् त्वं तु मे किं करिष्यसि ॥३३॥**

जमदग्निनन्दन परशुरामने मेरे ऊपर बड़े-बड़े अस्त्रों-का प्रयोग किया था; परंतु वे भी मुझे कोई पीड़ा न दे सके। फिर तू तो मेरा कर ही क्या लेगा ? ॥ ३३ ॥

**कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम् ।**
**वक्ष्यामि तु त्वां संतप्तो निहीनकुलपांसन ॥ ३४ ॥**

नीचकुलाङ्गार ! साधु पुरुष अपने बलकी प्रशंसा करना कदापि अच्छा नहीं मानते हैं, तथापि तेरे व्यवहारसे संतप्त होकर मैं अपनी प्रशंसाकी बात भी कह रहा हूँ ॥

**समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराजस्वयंवरे ।**
**निर्जित्यैकरथेनैव याः कन्यास्तरसा हृताः ॥ ३५ ॥**

काशिराजके यहाँ स्वयंवरमें समस्त भूमण्डलके क्षत्रिय-नरेश एकत्र हुए थे, परंतु मैंने केवल एक रथपर ही आरूढ़ होकर उन सबको जीतकर बलपूर्वक काशिराजकी कन्याओंका अपहरण किया था ॥ ३५ ॥

**ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः ।**
**मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे ॥ ३६ ॥**

'यहाँ जो लोग एकत्र हुए हैं, ऐसे तथा इनसे भी बढ़-चढ़कर पराक्रमी हजारों नरेश वहाँ एकत्र थे; परंतु मैंने समराङ्गणमें अकेले ही उन सबको सेनाओंसहित परास्त कर दिया था ॥ ३६ ॥'

**त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणामनयो महान् ।**
**उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव ॥ ३७ ॥**

तू वैरका मूर्तिमान् स्वरूप है । तेरा सहारा पाकर कुरुकुलके विनाशके लिये बहुत बड़ा अन्याय उपस्थित हो गया है। अब तू रक्षाका प्रबन्ध कर और पुरुषत्वका परिचय दे ॥

**युद्ध्यस्व समरे पार्थं येन विस्पर्धसे सह ।**
**द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद् युद्धात् सुदुर्मते॥ ३८ ॥**

दुर्मते ! तू जिसके साथ सदा स्पर्धा रखता है, उस अर्जुनके साथ समरभूमिमें युद्ध कर। मैं देखूँगा कि तू इस संग्रामसे किस प्रकार बच जाता है ? ॥ ३८ ॥

**तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।**
**मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ ३९ ॥**

तदनन्तर प्रतापी राजा दुर्योधनने भीष्मजीसे कहा—'गङ्गानन्दन ! आप मेरी ओर देखिये; क्योंकि इस समय महान् कार्य उपस्थित है ॥ ३९ ॥

**चिन्त्यतामिदमेकाग्रं मम निःश्रेयसं परम् ।**
**उभावपि भवन्तौ मे महत् कर्म करिष्यतः ॥ ४० ॥**

'आप एकाग्रचित्त होकर मेरे परम कल्याणकी बात सोचिये। आप और कर्ण दोनों ही मेरा महान् कार्य सिद्ध करेंगे॥

**भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान् ।**
**ये चैवातिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ॥ ४१ ॥**

'अब मैं पुनः शत्रुपक्षके श्रेष्ठ रथियों, अतिरथियों तथा रथयूथपतियोंका परिचय सुनना चाहता हूँ ॥ ४१ ॥

**बलाबलममित्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव ।**
**प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ॥ ४२ ॥**

'कुरुनन्दन ! शत्रुओंके बलाबलको सुननेकी मेरी इच्छा है। आजकी रात बीतते ही कल प्रातःकाल यह युद्ध प्रारम्भ हो जायगा' ॥ ४२ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि भीष्मकर्णसंवादे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें भीष्मकर्णसंवादविषयक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१६८॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## पाण्डवपक्षके रथी आदिका एवं उनकी महिमाका वर्णन

भीष्म उवाच

**एते रथास्तवाख्यातास्तथैवातिरथा नृप।**
**ये चाप्यर्धरथा राजन् पाण्डवानामतः शृणु ॥ १ ॥**

भीष्मजी कहते हैं—नरेश्वर ! ये तुम्हारे पक्षके रथी, अतिरथी और अर्धरथी बताये गये हैं। राजन्! अब तुम पाण्डवपक्षके रथी आदिका वर्णन सुनो ॥ १ ॥

**यदि कौतूहलं तेऽद्य पाण्डवानां बले नृप।**
**रथसंख्यां शृणुष्व त्वं सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ २ ॥**

नरेश ! अब यदि पाण्डवोंकी सेनाके विषयमें भी जानकारी करनेके लिये तुम्हारे मनमें कौतूहल हो तो इन भूमिपालोंके साथ तुम उनके रथियोंकी गणना सुनो ॥ २ ॥

**स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः।**
**अग्निवत् समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥ ३ ॥**

तात ! कुन्तीका आनन्द बढ़ानेवाले स्वयं पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर एक श्रेष्ठ रथी ( महारथी ) हैं। वे समरभूमिमें अग्निके समान सब ओर विचरेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ३ ॥

**भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः।**
**न तस्यास्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि ॥ ४ ॥**
**नागायुतबलो मानी तेजसा न स मानुषः।**

राजेन्द्र ! भीमसेन तो अकेले आठ रथियोंके बराबर हैं। गदा और बाणोंद्वारा किये जानेवाले युद्धमें उनके समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है। उनमें दस हजार हाथियोंका बल है। वे बड़े ही मानी तथा अलौकिक तेजसे सम्पन्न हैं ॥ ४½ ॥

**माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ॥ ५ ॥**
**अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ।**

माद्रीके दोनों पुत्र अश्विनीकुमारोंके समान रूपवान् और तेजस्वी हैं। वे दोनों ही पुरुषरत्न रथी हैं ॥ ५½ ॥

**एते चमूमुपगताः स्मरन्तः क्लेशमुत्तमम् ॥ ६ ॥**
**रुद्रवत् प्रचरिष्यन्ति तत्र मे नास्ति संशयः।**

ये चारों भाई महान् क्लेशोंका स्मरण करके तुम्हारी सेनामें घुसकर रुद्रदेवके समान संहार करते हुए विचरेंगे; इस विषयमें मुझे संशय नहीं है ॥ ६½ ॥

**सर्व एव महात्मानः शालस्तम्भा इवोद्गताः ॥ ७ ॥**
**प्रादेशेनाधिकाः पुम्भिरन्यैस्ते च प्रमाणतः।**

ये सभी महामना पाण्डव शालवृक्षके स्तम्भोंके समान ऊँचे हैं। उनकी ऊँचाईका मान अन्य पुरुषोंसे एक बित्ता अधिक है ॥ ७½ ॥

**सिंहसंहननाः सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः ॥ ८ ॥**
**चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे तात तपस्विनः।**
**ह्रीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ॥ ९ ॥**

सभी पाण्डव सिंहके समान सुगठित शरीरवाले और महान् बलवान् हैं। तात ! उन सबने ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया है, पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी पाण्डव तपस्वी, लज्जाशील और व्याघ्रके समान उत्कट बलशाली हैं ॥ ८-९ ॥

**जवे प्रहारे सम्मर्दे सर्व एवातिमानुषाः।**
**सर्वैर्जिता महीपाला दिग्जये भरतर्षभ ॥ १० ॥**

भरतश्रेष्ठ ! वे वेग, प्रहार और संघर्षमें अमानुषिक शक्तिसे सम्पन्न हैं। उन सबने दिग्विजयके समय बहुत-से राजाओंपर विजय पायी है ॥ १० ॥

**न चैषां पुरुषाः केचिदायुधानि गदाः शरान्।**
**विषहन्ति सदा कर्तुमधिज्यान्यपि कौरव ॥ ११ ॥**
**उद्यन्तुं वा गदा गुर्वीः शरान् वा क्षेप्तुमाहवे।**
**जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ॥ १२ ॥**
**बालैरपि भवन्तस्तैः सर्व एव विशेषिताः।**

कुरुनन्दन ! इनके आयुधों, गदाओं और बाणोंके आघात कोई भी नहीं सह सकते हैं। इसके सिवा न तो कोई इनके धनुषपर प्रत्यञ्चा ही चढ़ा पाते हैं, न युद्धमें इनकी भारी गदाको ही उठा सकते हैं और न इनके बाणोंका प्रयोग कर सकते हैं। वेगसे चलने, लक्ष्य-भेद करने, खाने-पीने तथा धूलि-क्रीड़ा करने आदिमें उन सबने बाल्यावस्थामें भी तुम्हें पराजित कर दिया था ॥ ११-१२½ ॥

**एतत् सैन्यं समासाद्य सर्व एव बलोत्कटाः ॥ १३ ॥**
**विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः।**

इस सेनामें आकर वे सभी उत्कट बलशाली हो गये हैं। युद्धमें आनेपर वे तुम्हारी सेनाका विध्वंस कर डालेंगे। चाहता हूँ उनसे कहीं भी तुम्हारी मुठभेड़ न हो ॥ १३½ ॥

**एकैकशस्ते सम्मर्दे हन्युः सर्वान् महीक्षितः ॥ १४ ॥**
**प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र राजसूये यथाभवत्।**

उनमेंसे एक-एकमें इतनी शक्ति है कि वे समस्त राजाओंका युद्धमें संहार कर सकते हैं। राजेन्द्र ! राजसूय-यज्ञमें जैसा जो कुछ हुआ था, वह सब तुमने अपनी आँखों देखा था ॥

**द्रौपद्याश्च परिक्लेशं द्यूते च परुषा गिरः ॥ १५ ॥**
**ते स्मरन्तश्च संग्रामे चरिष्यन्ति च रुद्रवत्।**

द्यूतक्रीडाके समय द्रौपदीको जो महान् क्लेश दिया गया और पाण्डवोंके प्रति कठोर बातें सुनायी गयीं, उन सबको याद करके वे संग्रामभूमिमें रुद्रके समान विचरेंगे ॥

**लोहिताक्षो गुडाकेशो नारायणसहायवान् ॥ १६ ॥**
**उभयोः सेनयोर्वीरो रथो नास्तीति तादृशः।**

लाल नेत्रोंवाले निद्राविजयी अर्जुनके सखा और सहायक नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण हैं। कौरव-पाण्डव दोनों सेनाओंमें अर्जुनके समान वीर रथी दूसरा कोई नहीं है ॥

**न हि देवेषु सर्वेषु नासुरेषूरगेषु च ॥ १७ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

राक्षसेष्वथ यक्षेषु नरेषु कुत एव तु।
भूतोऽथवा भविष्यो वा रथः कश्चिन्मया श्रुतः ॥ १८ ॥

समस्त देवताओं, असुरों, नागों, राक्षसों तथा यक्षोंमें भी अर्जुनके समान कोई नहीं है; फिर मनुष्योंमें तो हो ही कैसे सकता है ? भूत या भविष्यमें भी कोई ऐसा रथी मेरे सुननेमें नहीं आया है ॥ १७-१८ ॥

समायुक्तो महाराज रथः पार्थस्य धीमतः।
वासुदेवश्च संयन्ता योद्धा चैव धनंजयः ॥ १९ ॥

महाराज ! बुद्धिमान् अर्जुनका रथ जुता हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण उसके सारथि और युद्धकुशल धनंजय रथी हैं॥

गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं ते चाश्वा वातरंहसः।
अभेद्यं कवचं दिव्यमक्षय्यौ च महेषुधी ॥ २० ॥

दिव्य गाण्डीव धनुष है, वायुके समान वेगशाली अश्व हैं, अभेद्य दिव्य कवच है तथा अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो महान् तरकस हैं ॥ २० ॥

अस्त्रग्रामश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौबेर एव च।
याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ॥ २१ ॥

उस रथमें अस्त्रोंके समुदाय—महेन्द्र, रुद्र, कुबेर, यम एवं वरुणसम्बन्धी अस्त्र हैं, भयंकर दिखायी देनेवाली गदाएँ हैं॥

वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि च।
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ २२ ॥
हतान्येकरथेनाजौ कस्तस्य सदृशो रथः।

वज्र आदि भाँति-भाँतिके श्रेष्ठ आयुध भी उस रथमें विद्यमान हैं। अर्जुनने युद्धमें एकमात्र उस रथकी सहायतासे हिरण्यपुरमें निवास करनेवाले सहस्रों दानवोंका संहार किया है। उसके समान दूसरा कौन रथ हो सकता है ? ॥ २२½ ॥

एष हन्याद्धि संरम्भी बलवान् सत्यविक्रमः ॥ २३ ॥
तव सेनां महाबाहुः स्वां चैव परिपालयन्।

वह बलवान्, सत्यपराक्रमी, महाबाहु अर्जुन क्रोधमें आकर तुम्हारी सेनाका संहार करेंगे और अपनी सेनाकी रक्षामें संलग्न रहेंगे ॥ २३½ ॥

अहं चैनं प्रत्युदियामाचार्यो वा धनंजयम् ॥ २४ ॥
न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि।
य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद् रथी ॥ २५ ॥

मैं अथवा द्रोणाचार्य ही धनंजयका सामना कर सकते हैं। राजेन्द्र ! दोनों सेनाओंमें तीसरा कोई ऐसा रथी नहीं है, जो बाणोंकी वर्षा करते हुए अर्जुनके सामने जा सके ॥

जीमूत इव घर्मान्ते महावातसमीरितः।
समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान्।
तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावामुभावपि ॥ २६ ॥

ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें प्रचण्ड वायुसे प्रेरित महामेघकी भाँति श्रीकृष्णसहित अर्जुन युद्धके लिये तैयार है। वह अस्त्रोंका विद्वान् और तरुण भी है। इधर हम दोनों वृद्ध हो चले हैं॥

*वैशम्पायन उवाच*

एतच्छ्रुत्वा तु भीष्मस्य राज्ञां दध्वंसिरे तदा।
काञ्चनाङ्गदिनः पीना भुजाश्चन्दनरूषिताः ॥ २७ ॥
मनोभिः सह संवेगैः संस्मृत्य च पुरातनम्।
सामर्थ्यं पाण्डवेयानां यथा प्रत्यक्षदर्शनात् ॥ २८ ॥

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! भीष्मकी यह बात सुनकर पाण्डवोंके पुरातन बल-पराक्रमको प्रत्यक्ष देखनेकी भाँति स्मरण करके राजाओंकी सुवर्णमय भुजबंदोंसे विभूषित चन्दनचर्चित स्थूल भुजाएँ एवं मन भी आवेगयुक्त होकर शिथिल हो गयें ॥ २७-२८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि पाण्डवरथातिरथसंख्यायां एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें पाण्डवपक्षके रथियों और अतिरथियोंकी संख्याविषयक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६९ ॥

# सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## पाण्डवपक्षके रथियों और महारथियोंका वर्णन तथा विराट और द्रुपदकी प्रशंसा

*भीष्म उवाच*

द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः।
वैराटिरुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम ॥ १ ॥

**भीष्मजी कहते हैं**—महाराज ! द्रौपदीके जो पाँच पुत्र हैं, वे सबके सब महारथी हैं। विराटपुत्र उत्तरको मैं उदार रथी मानता हूँ ॥ १ ॥

अभिमन्युर्महाबाहू रथयूथपयूथपः।
समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चारिहा ॥ २ ॥
लब्धास्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः।
संस्मरन् वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति ॥ ३ ॥

महाबाहु अभिमन्यु रथ-यूथपतियोंका भी यूथपति है। वह शत्रुनाशक वीर समरभूमिमें अर्जुन और श्रीकृष्णके समान पराक्रमी है। उसने अस्त्रविद्याकी विधिवत् शिक्षा प्राप्त की है। वह युद्धकी विचित्र कलाएँ जानता है तथा दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला और मनस्वी है। वह अपने पिताके क्लेशको याद करके अवश्य पराक्रम दिखायेगा ॥ २-३ ॥

सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः।
एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः ॥ ४ ॥

मधुवंशी शूरवीर सात्यकि भी रथ-यूथपतियोंके भी यूथपति हैं। वृष्णिवंशके प्रमुख वीरोंमें ये सात्यकि बड़े ही अमर्षशील हैं। इन्होंने भयको जीत लिया है ॥ ४ ॥

उत्तमौजास्तथा राजन् रथोदारो मतो मम।


CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम ॥ ५ ॥

राजन् ! उत्तमौजाको भी मैं उदार रथी मानता हूँ। पराक्रमी युधामन्यु भी मेरे मतमें एक श्रेष्ठ रथी हैं ॥ ५ ॥

एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा।
योत्स्यन्ते ते तनूंस्त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया॥ ६ ॥

इनके कई हजार रथ, हाथी और घोड़े हैं, जो कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने शरीरको निछावर करके युद्ध करेंगे ॥ ६ ॥

पाण्डवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत।
अग्निमारुतवद् राजन्नाह्वयन्तः परस्परम् ॥ ७ ॥

भारत ! राजेन्द्र ! वे पाण्डवोंके साथ तुम्हारी सेनामें प्रवेश करके एक-दूसरेका आह्वान करते हुए अग्नि और वायुकी भाँति विचरेंगे ॥ ७ ॥

अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदौ तथा।
महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥ ८ ॥

वृद्ध राजा विराट और द्रुपद भी युद्धमें अजेय हैं। इन दोनों महापराक्रमी नरश्रेष्ठ वीरोंको मैं महारथी मानता हूँ ॥ ८ ॥

वयोवृद्धावपि हि तौ क्षत्रधर्मपरायणौ।
यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि ॥ ९ ॥

यद्यपि वे दोनों अवस्थाकी दृष्टिसे बहुत बूढ़े हैं, तथापि क्षत्रिय-धर्मका आश्रय ले वीरोंके मार्गमें स्थित हो अपनी शक्ति-भर युद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे ॥ ९ ॥

सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यबलान्वयात्।
आर्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहपाशसितावुभौ ॥ १० ॥

राजेन्द्र ! वे दोनों नरेश वीर्य और बलसे संयुक्त श्रेष्ठ पुरुषोंके समान सदाचारी और महान् धनुर्धर हैं। पाण्डवोंके साथ सम्बन्ध होनेके कारण वे दोनों उनके स्नेह-बन्धनमें बँधे हुए हैं ॥ १० ॥

कारणं प्राप्य तु नराः सर्व एव महाभुजाः।
शूरा वा कातरा वापि भवन्ति कुरुपुङ्गव ॥ ११ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! कोई कारण पाकर प्रायः सभी महाबाहु मानव शूर अथवा कायर हो जाते हैं ॥ ११ ॥

एकायनगतावेतौ पार्थिवौ दृढधन्विनौ।
प्राणांस्त्यक्त्वा परं शक्त्या घट्टितारौ परंतप ॥ १२ ॥

परंतप ! दृढतापूर्वक धनुष धारण करनेवाले राजा विराट और द्रुपद एकमात्र वीरपथका आश्रय ले चुके हैं। वे अपने प्राणोंका त्याग करके भी पूरी शक्तिसे तुम्हारी सेनाके साथ टक्कर लेंगे ॥ १२ ॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तावुभौ संयति दारुणौ।
सम्बन्धिभावं रक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १३ ॥

वे दोनों युद्धमें बड़े भयंकर हैं, अतः अपने सम्बन्धकी रक्षा करते हुए पृथक्-पृथक् अक्षौहिणी सेना साथ लिये महान् पराक्रम करेंगे ॥ १३ ॥

लोकवीरौ महेष्वासौ त्यक्तात्मानौ च भारत।
प्रत्ययं परिरक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १४ ॥

भारत ! महान् धनुर्धर तथा जगत्के सुप्रसिद्ध वीर दोनों नरेश अपने विश्वास और सम्मानकी रक्षा करते हुए शरीरकी परवा न करके युद्धभूमिमें महान् पुरुषार्थ प्रकट करेंगे ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७० ॥

# एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## पाण्डवपक्षके रथी, महारथी एवं अतिरथी आदिका वर्णन

*भीष्म उवाच*

पञ्चालराजस्य सुतो राजन् परपुरंजयः।
शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! भरतनन्दन ! पाञ्चाल-राज द्रुपदका पुत्र शिखण्डी शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाला है, मैं उसे युधिष्ठिरकी सेनाका एक प्रमुख रथी मानता हूँ ॥ १ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन् पूर्वसंस्थितम्।
परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥ २ ॥

भारत ! वह तुम्हारी सेनामें प्रवेश करके अपने पूर्व अपयशका नाश तथा उत्तम सुयशका विस्तार करता हुआ बड़े उत्साहसे युद्ध करेगा ॥ २ ॥

एतस्य बहुलाः सेनाः पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः।
तेनासौ रथवंशेन महत् कर्म करिष्यति ॥ ३ ॥

उसके साथ पाञ्चालों और प्रभद्रकोंकी बहुत बड़ी सेना है। वह उन रथियोंके समूहद्वारा युद्धमें महान् कर्म कर दिखायेगा ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नश्च सेनानीः सर्वसेनासु भारत।
मतो मेऽतिरथो राजन् द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ४ ॥

भारत ! जो पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाका सेनापति है, वह द्रोणाचार्यका महारथी शिष्य धृष्टद्युम्न मेरे विचारसे अतिरथी है ॥ ४ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे सूदयन् वै परान् रणे।
भगवानिव संक्रुद्धः पिनाकी युगसंक्षये ॥ ५ ॥

जैसे प्रलयकालमें पिनाकधारी भगवान् रुद्र कुपित हो प्रजाका संहार करते हैं, उसी प्रकार यह संग्राममें शत्रुओंका संहार करता हुआ युद्ध करेगा ॥ ५ ॥

एतस्य तद् रथानीकं कथयन्ति रणप्रियाः।
बहुत्वात् सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे ॥ ६ ॥

इसके पास रथियोंकी जो देवसेनाके समान विशाल

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्न

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

है, उसकी संख्या बहुत होनेके कारण युद्धप्रेमी सैनिक रणक्षेत्रमें उसे समुद्रके समान बताते हैं ॥ ६ ॥

**क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप।**
**धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नातिकृतश्रमः ॥ ७ ॥**

राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्नका पुत्र क्षत्रधर्मा मेरी समझमें अभी अर्धरथी है। बाल्यावस्था होनेके कारण उसने अस्त्र-विद्यामें अधिक परिश्रम नहीं किया है ॥ ७ ॥

**शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः।**
**धृष्टकेतुर्महेष्वासः सम्बन्धी पाण्डवस्य ह ॥ ८ ॥**

शिशुपालका वीर पुत्र महाधनुर्धर चेदिराज धृष्टकेतु पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका सम्बन्धी एवं महारथी है ॥ ८ ॥

**एष चेदिपतिः शूरः सह पुत्रेण भारत।**
**महारथानां सुकरं महत् कर्म करिष्यति ॥ ९ ॥**

भारत ! यह शौर्यसम्पन्न चेदिराज अपने पुत्रके साथ आकर महारथियोंके लिये सहजसाध्य महान् पराक्रम कर दिखायेगा ॥

**क्षत्रधर्मरतो मह्यं मतः परपुरंजयः।**
**क्षत्रदेवस्तु राजेन्द्र पाण्डवेषु रथोत्तमः ॥ १० ॥**

राजेन्द्र ! शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाला क्षत्रियधर्मपरायण क्षत्रदेव मेरे मतमें पाण्डव-सेनाका एक श्रेष्ठ रथी है ॥

**जयन्तश्चामितौजाश्च सत्यजिच्च महारथः।**
**महारथा महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः ॥ ११ ॥**
**योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः।**

जयन्त, अमितौजा और महारथी सत्यजित्—ये सभी पाञ्चालशिरोमणि महामनस्वी वीर महारथी ही हैं। तात ! ये सबके सब क्रोधमें भरे हुए गजराजोंकी भाँति समरभूमिमें युद्ध करेंगे ॥ ११½ ॥

**अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवार्थे महारथौ ॥ १२ ॥**
**योत्स्येते बलिनौ शूरौ परं शक्त्या क्षयिष्यतः।**

पाण्डवोंके लिये महान् पराक्रम करनेवाले बलवान् शूरवीर अज और भोज दोनों महारथी हैं। वे सम्पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध करेंगे और अपने पुरुषार्थका परिचय देंगे ॥

**शीघ्रास्त्राश्चित्रयोद्धारः कृतिनो दृढविक्रमाः ॥ १३ ॥**
**केकयाः पञ्च राजेन्द्र भ्रातरो दृढविक्रमाः।**
**सर्वे चैव रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः ॥ १४ ॥**

राजेन्द्र ! शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले, विचित्र योद्धा, युद्धकलामें निपुण और दृढ़ पराक्रमी जो पाँच भाई केकयराजकुमार हैं, वे सभी उदार रथी माने गये हैं। उन सबकी ध्वजा लाल रंगकी है ॥ १३-१४ ॥

**काशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चापरो नृप।**
**सूर्यदत्तश्च शङ्खश्च मदिराश्वश्च नामतः ॥ १५ ॥**
**सर्व एव रथोदाराः सर्वे चाहवलक्षणाः।**
**सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम ॥ १६ ॥**

सुकुमार, काशिक, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख और मदिराश्व नामक ये सभी योद्धा उदार रथी हैं। युद्ध ही इन सबका शौर्यसूचक चिह्न है। मैं इन सभीको सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता और महामनस्वी मानता हूँ ॥ १५-१६ ॥

**वार्धक्षेमिर्महाराज मतो मम महारथः।**
**चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः ॥ १७ ॥**

महाराज ! वार्धक्षेमिको मैं महारथी मानता हूँ तथा राजा चित्रायुध मेरे विचारसे श्रेष्ठ रथी हैं ॥ १७ ॥

**स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः।**
**चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ।**
**द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम ॥ १८ ॥**

चित्रायुध संग्राममें शोभा पानेवाले तथा अर्जुनके भक्त हैं। चेकितान और सत्यधृति—वे दो पुरुषसिंह पाण्डव-सेनाके महारथी हैं। मैं इन्हें रथियोंमें श्रेष्ठ मानता हूँ ॥ १८ ॥

**व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चन्द्रसेनश्च भारत।**
**मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः ॥ १९ ॥**

भरतनन्दन ! महाराज ! व्याघ्रदत्त और चन्द्रसेन—ये दो नरेश भी मेरे मतमें पाण्डवसेनाके श्रेष्ठ रथी हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ १९ ॥

**सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः।**
**यः समो वासुदेवेन भीमसेनेन वा विभो ॥ २० ॥**
**स योत्स्यति हि विक्रम्य समरे तव सैनिकैः।**

राजेन्द्र ! राजा सेनाबिन्दुका दूसरा नाम क्रोधहन्ता भी है। प्रभो ! वे भगवान् कृष्ण तथा भीमसेनके समान पराक्रमी माने जाते हैं। वे समराङ्गणमें तुम्हारे सैनिकोंके साथ पराक्रम प्रकट करते हुए युद्ध करेंगे ॥ २०½ ॥

**मां च द्रोणं कृपं चैव यथा सम्मन्यते भवान् ॥ २१ ॥**
**तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः।**
**काश्यः परमशीघ्रास्त्रः श्लाघनीयो नरोत्तमः ॥ २२ ॥**

तुम मुझको, आचार्य द्रोणको तथा कृपाचार्यको जैसा समझते हो, युद्धमें दूसरे वीरोंसे स्पर्धा रखनेवाले तथा बहुत ही फुर्तीके साथ अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले प्रशंसनीय एवं उत्तम रथी नरश्रेष्ठ काशिराजको भी तुम्हें वैसा ही मानना चाहिये ॥ २१-२२ ॥

**रथ एकगुणो मह्यं ज्ञेयः परपुरंजयः।**
**अयं च युधि विक्रान्तो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः ॥ २३ ॥**

मेरी दृष्टिमें शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले काशिराजको साधारण अवस्थामें एक रथी समझना चाहिये; परंतु जिस समय ये युद्धमें पराक्रम प्रकट करने लगते हैं उस समय इन्हें आठ रथियोंके बराबर मानना चाहिये ॥ २३ ॥

**सत्यजित् समरश्लाघी द्रुपदस्यात्मजो युवा।**
**गतः सोऽतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन सम्मितः ॥ २४ ॥**
**पाण्डवानां यशस्कामः परं कर्म करिष्यति।**

द्रुपदका तरुण पुत्र सत्यजित् सदा युद्धकी स्पृहा रखनेवाला है। वह धृष्टद्युम्नके समान ही अतिरथीका पद प्राप्त

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कर चुका है। वह पाण्डवोंके यशोविस्तारकी इच्छा रखकर युद्धमें महान् कर्म करेगा ॥ २४½ ॥

**अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान् ॥ २५ ॥**
**पाण्ड्यराजो महावीर्यः पाण्डवानां धुरंधरः।**
**दृढधन्वा महेष्वासः पाण्डवानां महारथः ॥ २६ ॥**

पाण्डवपक्षके धुरंधर वीर महापराक्रमी पाण्ड्यराज भी एक अन्य महारथी हैं। ये पाण्डवोंके प्रति अनुराग रखनेवाले और शूरवीर हैं। इनका धनुष महान् और सुदृढ़ है। ये पाण्डवसेनाके सम्माननीय महारथी हैं ॥ २५-२६ ॥

**श्रेणिमान् कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः।**
**उभावेतावतिरथौ मतौ परपुरंजयौ ॥ २७ ॥**

कौरवश्रेष्ठ! राजा श्रेणिमान् और वसुदान—ये दोनों वीर अतिरथी माने गये हैं। ये शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेमें समर्थ हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७१ ॥

# द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## भीष्मका पाण्डवपक्षके अतिरथी वीरोंका वर्णन करते हुए शिखण्डी और पाण्डवोंका वध न करनेका कथन

*भीष्म उवाच*

**रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः।**
**योत्स्यतेऽमरवत् संख्ये परसैन्येषु भारत ॥ १ ॥**

भीष्मजी कहते हैं—महाराज! भारत! पाण्डवपक्षमें राजा रोचमान महारथी हैं। वे युद्धमें शत्रुसेनाके साथ देवताओंके समान पराक्रम दिखाते हुए युद्ध करेंगे ॥ १ ॥

**पुरुजित् कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः।**
**मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः ॥ २ ॥**

कुन्तिभोजकुमार राजा पुरुजित् जो भीमसेनके मामा हैं, वे भी महाधनुर्धर और अत्यन्त बलवान् हैं। मैं इन्हें भी अतिरथी मानता हूँ ॥ २ ॥

**एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह।**
**चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुङ्गवः ॥ ३ ॥**

इनका धनुष महान् है। ये अस्त्रविद्याके विद्वान् और युद्धकुशल हैं। रथियोंमें श्रेष्ठ वीर पुरुजित् विचित्र युद्ध करनेवाले और शक्तिशाली हैं ॥ ३ ॥

**स योत्स्यति हि विक्रम्य मघवानिव दानवैः।**
**योधा ये चास्य विख्याताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥**

जैसे इन्द्र दानवोंके साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध करते हैं, उसी प्रकार ये भी शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे। उनके साथ जो सैनिक आये हैं, वे सभी युद्धकी कलामें निपुण और विख्यात वीर हैं ॥ ४ ॥

**भागिनेयकृते वीरः स करिष्यति संगरे।**
**सुमहत् कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते रतः ॥ ५ ॥**

वीर पुरुजित् पाण्डवोंके प्रिय एवं हितमें तत्पर हो अपने भानजोंके लिये युद्धमें महान् कर्म करेंगे ॥ ५ ॥

**भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः।**
**मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥ ६ ॥**

महाराज! भीमसेन और हिडिम्बाका पुत्र राक्षसराज घटोत्कच बड़ा मायावी है। वह मेरे मतमें रथयूथपतियोंका भी यूथपति है ॥ ६ ॥

**योत्स्यते समरे तात मायावी समरप्रियः।**
**ये चास्य राक्षसा वीराः सचिवा वशवर्तिनः ॥ ७ ॥**

उसको युद्ध करना बहुत प्रिय है। तात! वह मायावी राक्षस समरभूमिमें उत्साहपूर्वक युद्ध करेगा। उसके साथ जो वीर राक्षस एवं सचिव हैं, वे सब उसीके वशमें रहनेवाले हैं।

**एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः।**
**समेताः पाण्डवस्यार्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ८ ॥**

ये तथा और भी बहुत-से वीर क्षत्रिय जो विभिन्न जनपदोंके स्वामी हैं और जिनमें श्रीकृष्ण का सबसे प्रधान स्थान है, पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके लिये यहाँ एकत्र हुए हैं ॥ ८ ॥

**एते प्राधान्यतो राजन् पाण्डवस्य महात्मनः।**
**रथाश्चातिरथाश्चैव ये चान्येऽर्धरथा नृप ॥ ९ ॥**

राजन्! ये महात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके मुख्य-मुख्य रथी, अतिरथी और अर्धरथी यहाँ बताये गये हैं ॥ ९ ॥

**नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप।**
**महेन्द्रेणेव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना ॥ १० ॥**

नरेश्वर! देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी किरीटधारी वीरवर अर्जुनके द्वारा सुरक्षित हुई युधिष्ठिरकी भयंकर सेनाको ये उपर्युक्त वीर समराङ्गणमें संचालन करेंगे ॥ १० ॥

**तैरहं समरे वीर मायाविद्भिर्जयैषिभिः।**
**योत्स्यामि जयमाकाङ्क्षन्नथवा निधनं रणे ॥ ११ ॥**

वीर! मैं तुम्हारी ओरसे रणभूमिमें उन मायावेत्ता और विजयाभिलाषी पाण्डव-वीरोंके साथ अपनी विजय अथवा मृत्युकी आकाङ्क्षा लेकर युद्ध करूँगा ॥ ११ ॥

**वासुदेवं च पार्थं च चक्रगाण्डीवधारिणौ।**
**संध्यागताविवार्केन्दू समेष्येते रथोत्तमौ ॥ १२ ॥**

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और अर्जुन रथियोंमें श्रेष्ठ हैं। वे क्रमशः सुदर्शन चक्र और गाण्डीव धनुष धारण करते हैं। वे संध्याकालीन सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति परस्पर मिलकर जब युद्धमें पधारेंगे, उस समय मैं उनका सामना करूँगा ॥

**ये चैव ते रथोदाराः पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः।**
**सहसैन्यानहं तांश्च प्रतीयां रणमूर्धनि ॥ १३ ॥**

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके और भी जो-जो श्रेष्ठ रथी सैनिक हैं, उनका और उनकी सेनाओंका मैं युद्धके मुहानेपर सामना करूँगा।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एते रथाश्चातिरथाश्च तुभ्यं
यथाप्रधानं नृप कीर्तिता मया।
तथापरे येऽर्धरथाश्च केचित्
तथैव तेषामपि कौरवेन्द्र ॥ १४ ॥

राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हारे इन मुख्य-मुख्य रथियों और अतिरथियोंका वर्णन किया है। इनके सिवा, जो कोई अर्धरथी हैं, उनका भी परिचय दिया है। कौरवेन्द्र! इसी प्रकार पाण्डवपक्षके भी रथी आदिका दिग्दर्शन कराया गया है ॥

अर्जुनं वासुदेवं च ये चान्ये तत्र पार्थिवाः।
सर्वांस्तान् वारयिष्यामि यावद् द्रक्ष्यामि भारत ॥ १५ ॥

भारत! अर्जुन, श्रीकृष्ण तथा अन्य जो-जो भूपाल हैं, मैं उनमेंसे जितनोंको देखूँगा, उन सबको आगे बढ़नेसे रोक दूँगा ॥

पाञ्चाल्यं तु महाबाहो नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥ १६ ॥

परंतु महाबाहो! पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीको धनुषपर बाण चढ़ाये युद्धमें अपना सामना करते देखकर भी मैं नहीं मारूँगा ॥ १६ ॥

लोकस्तं वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया।
प्राप्तं राज्यं परित्यज्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ॥ १७ ॥

सारा जगत् यह जानता है कि मैं मिले हुए राज्यको पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे ठुकराकर ब्रह्मचर्यके पालनमें दृढ़तापूर्वक लग गया ॥ १७ ॥

चित्राङ्गदं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम्।
विचित्रवीर्यं च शिशुं यौवराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ १८ ॥

माता सत्यवतीके ज्येष्ठ पुत्र चित्राङ्गदको कौरवोंके राज्यपर और बालक विचित्रवीर्यको युवराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया था ॥ १८ ॥

देवव्रतत्वं विज्ञाप्य पृथिवीं सर्वराजसु।
नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥ १९ ॥

सम्पूर्ण भूमण्डलमें समस्त राजाओंके यहाँ अपने देवव्रत-स्वरूपकी ख्याति कराकर मैं कभी भी किसी स्त्रीको अथवा जो पहले स्त्री रहा हो, उस पुरुषको भी नहीं मार सकता ॥ १९ ॥

स हि स्त्रीपूर्वको राजन् शिखण्डी यदि ते श्रुतः।
कन्या भूत्वा पुमान् जातो न योत्स्ये तेन भारत ॥ २० ॥

राजन्! शायद तुम्हारे सुननेमें आया होगा, शिखण्डी पहले 'स्त्रीरूप' में ही उत्पन्न हुआ था; भारत! पहले कन्या होकर वह फिर पुरुष हो गया था; इसीलिये मैं उससे युद्ध नहीं करूँगा ॥ २० ॥

सर्वांस्त्वन्यान् हनिष्यामि पार्थिवान् भरतर्षभ।
यान् समेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतान् नृप ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ! मैं अन्य सब राजाओंको, जिन्हें युद्धमें पाऊँगा, मारूँगा; परंतु कुन्तीके पुत्रोंका वध कदापि नहीं करूँगा ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

## ( अम्बोपाख्यानपर्व )

# त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## अम्बोपाख्यानका आरम्भ—भीष्मजीके द्वारा काशिराजकी कन्याओंका अपहरण

*दुर्योधन उवाच*

किमर्थं भरतश्रेष्ठ नैव हन्याः शिखण्डिनम्।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा समरेष्वाततायिनम् ॥ १ ॥

**दुर्योधनने पूछा**—भरतश्रेष्ठ! जब शिखण्डी धनुष-बाण उठाये समरमें आततायीकी भाँति आपको मारने आयेगा, उस समय उसे इस रूपमें देखकर भी आप क्यों नहीं मारेंगे?

पूर्वमुक्त्वा महाबाहो पञ्चालान् सह सोमकैः।
हनिष्यामीति गाङ्गेय तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

महाबाहु गङ्गानन्दन! पितामह! आप पहले तो यह कह चुके हैं कि 'मैं सोमकोंसहित पञ्चालोंका वध करूँगा' (फिर आप शिखण्डीको छोड़ क्यों रहे हैं?) यह मुझे बताइये ॥

*भीष्म उवाच*

शृणु दुर्योधन कथां सहैभिर्वसुधाधिपैः।
यदर्थं युधि सम्प्रेक्ष्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ॥ ३ ॥

**भीष्मजीने कहा**—दुर्योधन! मैं जिस कारणसे समराङ्गणमें प्रहार करते देखकर भी शिखण्डीको नहीं मारूँगा, उसकी कथा कहता हूँ, इन भूमिपालोंके साथ सुनो ॥ ३ ॥

महाराजो मम पिता शान्तनुर्लोकविश्रुतः।
दिष्टान्तमाप धर्मात्मा समये भरतर्षभ ॥ ४ ॥
ततोऽहं भरतश्रेष्ठ प्रतिज्ञां परिपालयन्।
चित्राङ्गदं भ्रातरं वै महाराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! मेरे धर्मात्मा पिता लोकविख्यात महाराज शान्तनुका जब निधन हो गया, उस समय अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए मैंने भाई चित्राङ्गदको इस महान् राज्यपर अभिषिक्त कर दिया ॥ ४-५ ॥

तस्मिंश्च निधनं प्राप्ते सत्यवत्या मते स्थितः।
विचित्रवीर्यं राजानमभ्यषिञ्चं यथाविधि ॥ ६ ॥

तदनन्तर जब चित्राङ्गदकी भी मृत्यु हो गयी, तब माता सत्यवतीकी सम्मतिसे मैंने विधिपूर्वक विचित्रवीर्यका राजाके पदपर अभिषेक किया ॥ ६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मयाभिषिक्तो राजेन्द्र यवीयानपि धर्मतः।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा मामेव समुदैक्षत ॥ ७ ॥

राजेन्द्र ! छोटे होनेपर भी मेरे द्वारा अभिषिक्त होकर धर्मात्मा विचित्रवीर्य धर्मतः मेरी ही ओर देखा करते थे अर्थात् मेरी सम्मतिसे ही सारा राजकार्य करते थे ॥ ७ ॥

तस्य दारक्रियां तात चिकीर्षुरहमप्युत।
अनुरूपादिव कुलादित्येव च मनो दधे ॥ ८ ॥

तात ! तब मैंने अपने योग्य कुलसे कन्या लाकर उनका विवाह करनेका निश्चय किया ॥ ८ ॥

तथाश्रौषं महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वयंवराः।
रूपेणाप्रतिमाः सर्वाः काशिराजसुतास्तदा।
अम्बां चैवाम्बिकां चैव तथैवाम्बालिकामपि ॥ ९ ॥

महाबाहो ! उन्हीं दिनों मैंने सुना कि काशिराजकी तीन कन्याएँ हैं, जो सब-की-सब अप्रतिम रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित हैं और वे स्वयंवर-सभामें स्वयं ही पतिका चुनाव करनेवाली हैं। उनके नाम हैं अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका ॥९॥

राजानश्च समाहूताः पृथिव्यां भरतर्षभ।
अम्बा ज्येष्ठाभवत् तासामम्बिका त्वथ मध्यमा ॥ १० ॥
अम्बालिका च राजेन्द्र राजकन्या यवीयसी।
सोऽहमेकरथेनैव गतः काशिपतेः पुरीम् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजेन्द्र ! उन तीनोंके स्वयंवरके लिये भूमण्डलके सम्पूर्ण नरेश आमन्त्रित किये गये थे। उनमें अम्बा सबसे बड़ी थी, अम्बिका मझली थी और राजकन्या अम्बालिका सबसे छोटी थी। स्वयंवरका समाचार पाकर मैं एक ही रथके द्वारा काशिराजके नगरमें गया ॥ १०-११ ॥

अपश्यं तां महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः।
राज्ञश्चैव समाहूतान् पार्थिवान् पृथिवीपते ॥ १२ ॥

महाबाहो ! वहाँ पहुँचकर मैंने वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हुई उन तीनों कन्याओंको देखा। पृथ्वीपते ! वहाँ उसी समय आमन्त्रित होकर आये हुए सम्पूर्ण राजाओंपर भी मेरी दृष्टि पड़ी॥

ततोऽहं तान् नृपान् सर्वानाहूय समरे स्थितान्।
रथमारोपयांचक्रे कन्यास्ता भरतर्षभ ॥ १३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर मैंने युद्धके लिये खड़े हुए उन समस्त राजाओंको ललकारकर उन तीनों कन्याओंको अपने रथपर बैठा लिया ॥ १३ ॥

वीर्यशुल्काश्च ता ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा।
अवोचं पार्थिवान् सर्वानहं तत्र समागतान्।
भीष्मः शान्तनवः कन्या हरतीति पुनः पुनः ॥ १४ ॥
ते यतध्वं परं शक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिवाः।
प्रसह्य हि हराम्येष मिषतां वो नरर्षभाः ॥ १५ ॥

पराक्रम ही इन कन्याओंका शुल्क है, यह जानकर उन्हें रथपर चढ़ा लेनेके पश्चात् मैंने वहाँ आये हुए समस्त भूपालोंसे कहा—'नरश्रेष्ठ राजाओ ! शान्तनुपुत्र भीष्म इन राजकन्याओंका अपहरण कर रहा है, तुम सब लोग पूरी शक्ति लगाकर इन्हें छुड़ानेका प्रयत्न करो; क्योंकि मैं तुम्हारे देखते-देखते बलपूर्वक इन्हें लिये जाता हूँ'; इस बातको मैंने बारंबार दुहराया ॥ १४-१५ ॥

ततस्ते पृथिवीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः।
योगो योग इति क्रुद्धाः सारथीनभ्यचोदयन् ॥ १६ ॥

फिर तो वे महीपाल कुपित हो हाथमें हथियार लिये टूट पड़े और अपने सारथियोंको 'रथ तैयार करो, रथ तैयार करो' इस प्रकार आदेश देने लगे ॥ १६ ॥

ते रथैर्गजसंकाशैर्गजैश्च गजयोधिनः।
पुष्टैश्चाश्वैर्महीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ॥ १७ ॥

वे राजा हाथियोंके समान विशाल रथों, हाथियों और हृष्ट-पुष्ट अश्वोंपर सवार हो अस्त्र-शस्त्र लिये मुझपर आक्रमण करने लगे। उनमेंसे कितने ही हाथियोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले थे ॥ १७ ॥

ततस्ते मां महीपालाः सर्व एव विशाम्पते।
रथव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ १८ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर उन सब नरेशोंने विशाल रथ-समूहद्वारा मुझे सब ओरसे घेर लिया ॥ १८ ॥

तानहं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयम्।
सर्वान् नृपांश्चाप्यजयं देवराडिव दानवान् ॥ १९ ॥

तब मैंने भी बाणोंकी वर्षा करके चारों ओरसे उनकी प्रगति रोक दी और जैसे देवराज इन्द्र दानवोंपर विजय पाते हैं, उसी प्रकार मैंने भी उन सब नरेशोंको जीत लिया ॥१९॥

अपातयं शरैर्दीप्तैः प्रहसन् भरतर्षभ।
तेषामापततां चित्रान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान् ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ ! जिस समय उन्होंने आक्रमण किया उसी समय मैंने प्रज्वलित बाणोंद्वारा हँसते-हँसते उनके स्वर्ण-भूषित विचित्र ध्वजोंको काट गिराया ॥ २० ॥

एकैकेन हि बाणेन भूमौ पातितवानहम्।
हयांस्तेषां गजांश्चैव सारथींश्चाप्यहं रणे ॥ २१ ॥

फिर एक-एक बाण मारकर मैंने समरभूमिमें उनके घोड़ों, हाथियों और सारथियोंको भी धराशायी कर दिया॥२१॥

ते निवृत्ताश्च भग्नाश्च दृष्ट्वा तल्लाघवं मम।
(प्रणिपेतुश्च सर्वे वै प्रशशंसुश्च पार्थिवाः।
तत आदाय ताः कन्या नृपतींश्च विसृज्य तान् ॥)
अथाहं हास्तिनपुरमायां जित्वा महीक्षितः ॥ २२ ॥

मेरे हाथोंकी वह फुर्ती देखकर वे पीछे हटने और भागने लगे। वे सब भूपाल नतमस्तक हो गये और मेरी प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् मैं राजाओंको परास्त करके उन सबको वहीं छोड़ तीनों कन्याओंको साथ ले हस्तिनापुरमें आया ॥ २२ ॥

ततोऽहं ताश्च कन्या वै भ्रातुरर्थाय भारत।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तच्च कर्म महाबाहो सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ २३ ॥

महाबाहु भरतनन्दन ! फिर मैंने उन कन्याओंको अपने भाईसे ब्याहनेके लिये माता सत्यवतीको सौंप दिया और अपना वह पराक्रम भी उन्हें बताया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि कन्याहरणे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें कन्याहरणविषयक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७३ ॥

( दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल २४ श्लोक हैं )

# चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## अम्बाका शाल्वराजके प्रति अपना अनुराग प्रकट करके उनके पास जानेके लिये भीष्मसे आज्ञा माँगना

*भीष्म उवाच*

**ततोऽहं भरतश्रेष्ठ मातरं वीरमातरम् ।**
**अभिगम्योपसंगृह्य दाशेयीमिदमब्रुवम् ॥ १ ॥**

**भीष्मजी** कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर मैंने वीरजननी दाशराजकी कन्या माता सत्यवतीके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

**इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य पार्थिवान् ।**
**विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का हृता इति ॥ २ ॥**

'माँ ! ये काशिराजकी कन्याएँ हैं । पराक्रम ही इनका शुल्क था । इसलिये मैं समस्त राजाओंको जीतकर भाई विचित्रवीर्यके लिये इन्हें हर लाया हूँ' ॥ २ ॥

**ततो मूर्धन्युपाघ्राय पर्यश्रुनयना नृप ।**
**आह सत्यवती हृष्टा दिष्ट्या पुत्र जितं त्वया ॥ ३ ॥**

नरेश्वर ! यह सुनकर माता सत्यवतीके नेत्रोंमें हर्षके आँसू छलक आये । उन्होंने मेरा मस्तक सूँघकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बेटा ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम विजयी हुए' ॥

**सत्यवत्यास्त्वनुमते विवाहे समुपस्थिते ।**
**उवाच वाक्यं सव्रीडा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ॥ ४ ॥**

सत्यवतीकी अनुमतिसे जब विवाहका कार्य उपस्थित हुआ, तब काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्री अम्बाने कुछ लज्जित होकर मुझसे कहा— ॥ ४ ॥

**भीष्म त्वमसि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।**
**श्रुत्वा च वचनं धर्म्यं मह्यं कर्तुमिहार्हसि ॥ ५ ॥**

'भीष्म ! तुम धर्मके ज्ञाता और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हो । मेरी बात सुनकर मेरे साथ धर्मपूर्ण बर्ताव करना चाहिये ॥ ५ ॥

**मया शाल्वपतिः पूर्वं मनसाभिवृतो वरः ।**
**तेन चास्मि वृता पूर्वं रहस्यविदिते पितुः ॥ ६ ॥**

'मैंने अपने मनसे पहले शाल्वराजको अपना पति चुन लिया है और उन्होंने भी एकान्तमें मेरा वरण कर लिया है । यह पहलेकी बात है, जो मेरे पिताको भी ज्ञात नहीं है ॥ ६ ॥

**कथं मामन्यकामां त्वं राजधर्ममतीत्य वै ।**
**वासयेथा गृहे भीष्म कौरवः सन् विशेषतः ॥ ७ ॥**

'भीष्म ! मैं दूसरेकी कामना करनेवाली राजकन्या हूँ । तुम विशेषतः कुरुवंशी होकर राजधर्मका उल्लङ्घन करके मुझे अपने घरमें कैसे रक्खोगे ? ॥ ७ ॥

**एतद् बुद्ध्या विनिश्चित्य मनसा भरतर्षभ ।**
**यत् क्षमं ते महाबाहो तदिहारब्धुमर्हसि ॥ ८ ॥**

'महाबाहु भरतश्रेष्ठ ! अपनी बुद्धि और मनसे इस विषयमें निश्चित विचार करके तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करना चाहिये ॥ ८ ॥

**स मां प्रतीक्षते व्यक्तं शाल्वराजो विशाम्पते ।**
**तस्मान्मां त्वं कुरुश्रेष्ठ समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ९ ॥**

'प्रजानाथ ! शाल्वराज निश्चय ही मेरी प्रतीक्षा करते होंगे; अतः कुरुश्रेष्ठ ! तुम्हें मुझे उनकी सेवामें जानेकी आज्ञा देनी चाहिये ॥ ९ ॥

**कृपां कुरु महाबाहो मयि धर्मभृतां वर ।**
**त्वं हि सत्यव्रतो वीर पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥ १० ॥**

'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! महाबाहु वीर ! मुझपर कृपा करो । मैंने सुना है कि इस पृथ्वीपर तुम सत्यव्रती महात्मा हो' ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बावाक्ये चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें अम्बावाक्यविषयक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७४ ॥

# पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## अम्बाका शाल्वके यहाँ जाना और उससे परित्यक्त होकर तापसोंके आश्रममें आना, वहाँ शैखावत्य और अम्बाका संवाद

*भीष्म उवाच*

**ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं गन्धवतीं तदा ।**
**मन्त्रिणश्चर्त्विजश्चैव तथैव च पुरोहितान् ॥ १ ॥**
**समनुज्ञासिषं कन्यामम्बां ज्येष्ठां नराधिप ।**

**भीष्मजी** कहते हैं—नरेश्वर ! तब मैंने माता गन्धवती कालीसे आज्ञा ले मन्त्रियों, ऋत्विजों तथा पुरोहितोंसे पूछकर बड़ी राजकुमारी अम्बाको जानेकी आज्ञा दे दी ॥ १½ ॥

**अनुज्ञाता ययौ सा तु कन्या शाल्वपतेः पुरम् ॥ २ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता धात्र्या चानुगता तदा ।
अतीत्य च तमध्वानमासाद्य नृपतिं तथा ॥ ३ ॥
सा तमासाद्य राजानं शाल्वं वचनमब्रवीत् ।
आगताहं महाबाहो त्वामुद्दिश्य महामते ॥ ४ ॥

आज्ञा पाकर राजकन्या अम्बा वृद्ध ब्राह्मणोंके संरक्षणमें रहकर शाल्वराजके नगरकी ओर गयी । उसके साथ उसकी धाय भी थी । उस मार्गको लाँघकर वह राजाके यहाँ पहुँच गयी और शाल्वराजसे मिलकर इस प्रकार बोली—'महाबाहो ! महामते ! मैं तुम्हारे पास ही आयी हूँ ॥ २-४ ॥

( अभिनन्दस्व मां राजन् सदा प्रियहिते रताम् ।
प्रतिपादय मां राजन् धर्मार्थं चैव धर्मतः ॥
त्वं हि मनसा ध्यातस्त्वया चाप्युपमन्त्रिता ॥)

'राजन् ! मैं सदा तुम्हारे प्रिय और हितमें तत्पर रहनेवाली हूँ । मुझे अपनाकर आनन्दित करो । नरेश्वर ! मुझे धर्मानुसार ग्रहण करके धर्मके लिये ही अपने चरणोंमें स्थान दो । मैंने मन-ही-मन सदा तुम्हारा ही चिन्तन किया है और तुमने भी एकान्तमें मेरे साथ विवाहका प्रस्ताव किया था' ॥

तामब्रवीच्छाल्वपतिः स्मयन्निव विशाम्पते ।
त्वयान्यपूर्वया नाहं भार्यार्थी वरवर्णिनि ॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! अम्बाकी बात सुनकर शाल्वराजने मुसकराते हुए-से कहा—'सुन्दरी ! तुम पहले दूसरेकी हो चुकी हो; अतः तुम्हारी-जैसी स्त्रीके साथ विवाह करनेकी मेरी इच्छा नहीं है ॥ ५ ॥

गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाशं भीष्मकस्य वै ।
नाहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रसह्य वै ॥ ६ ॥

'भद्रे ! तुम पुनः वहाँ भीष्मके ही पास जाओ । भीष्मने तुम्हें बलपूर्वक पकड़ लिया था, अतः अब तुम्हें मैं अपनी पत्नी बनाना नहीं चाहता ॥ ६ ॥

त्वं हि भीष्मेण निर्जित्य नीता प्रीतिमती तदा ।
परामृश्य महायुद्धे निर्जित्य पृथिवीपतीन् ॥ ७ ॥

'भीष्मने उस महायुद्धमें समस्त भूपालोंको हराकर तुम्हें जीता और तुम्हें उठाकर वे अपने साथ ले गये । तुम उस समय उनके साथ प्रसन्न थीं ॥ ७ ॥

नाहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि ।
कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥
नारीं विदितविज्ञानः परेषां धर्ममादिशन् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ॥९॥

'वरवर्णिनि ! जो पहले औरकी हो चुकी हो, ऐसी स्त्रीको मैं अपनी पत्नी बनाऊँ, यह मेरी इच्छा नहीं है । जिस नारीपर पहले किसी दूसरे पुरुषका अधिकार हो गया हो, उसे सारी बातोंको ठीक-ठीक जाननेवाला मेरे-जैसा राजा जो दूसरोंको धर्मका उपदेश करता है, कैसे अपने घरमें प्रविष्ट करायेगा । भद्रे ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ । तुम्हारा यह समय यहाँ व्यर्थ न बीते' ॥ ८-९ ॥

अम्बा तमब्रवीद् राजन्ननङ्गशरपीडिता ।
नैवं वद महीपाल नैतदेवं कथंचन ॥ १० ॥
नास्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेणामित्रकर्शन ।
बलान्नीतास्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन् ॥ ११ ॥

राजन् ! यह सुनकर कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हुई अम्बा शाल्वराजसे बोली—'भूपाल ! तुम किसी तरह भी ऐसी बात मुँहसे न निकालो । शत्रुसूदन ! मैं भीष्मके साथ प्रसन्नतापूर्वक नहीं गयी थी । उन्होंने समस्त राजाओंको खदेड़कर बलपूर्वक मेरा अपहरण किया था और मैं रोती हुई ही उनके साथ गयी थी ॥ १०-११ ॥

भजस्व मां शाल्वपते भक्तां बालामनागसम् ।
भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ १२ ॥

'शाल्वराज ! मैं निरपराध अबला हूँ । तुम्हारे प्रति अनुरक्त हूँ । मुझे स्वीकार करो; क्योंकि भक्तोंका परित्याग किसी भी धर्ममें अच्छा नहीं बताया गया है ॥ १२ ॥

साहमामन्त्र्य गाङ्गेयं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
अनुज्ञाता च तेनैव ततोऽहं भृशमागता ॥ १३ ॥

'युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले गङ्गानन्दन भीष्मसे पूछकर, उनकी आज्ञा लेकर अत्यन्त उत्कण्ठाके साथ मैं यहाँ आयी हूँ ॥ १३ ॥

न स भीष्मो महाबाहुर्मामिच्छति विशाम्पते ।
भ्रातृहेतोः समारम्भो भीष्मस्येति श्रुतं मया ॥ १४ ॥

'राजन् ! महाबाहु भीष्म मुझे नहीं चाहते । उनका यह आयोजन अपने भाईके विवाहके लिये था, ऐसा मैंने सुना है १४

भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप ।
प्रादाद् विचित्रवीर्याय गाङ्गेयो हि यवीयसे ॥ १५ ॥

'नरेश्वर ! भीष्म जिन मेरी दो बहिनों—अम्बिका और अम्बालिकाको हरकर ले गये थे, उन्हें उन्होंने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यको ब्याह दिया है ॥ १५ ॥

यथा शाल्वपते नान्यं वरं ध्यामि कथंचन ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र तथा मूर्धानमालभे ॥ १६ ॥

'पुरुषसिंह शाल्वराज ! मैं अपना मस्तक छूकर कहती हूँ; तुम्हारे सिवा दूसरे किसी वरका मैं किसी प्रकार भी चिन्तन नहीं करती हूँ ॥ १६ ॥

न चान्यपूर्वा राजेन्द्र त्वामहं समुपस्थिता ।
सत्यं ब्रवीमि शाल्वैतत् सत्येनात्मानमालभे ॥ १७ ॥

'राजेन्द्र शाल्व ! मुझपर किसी भी दूसरे पुरुषका पहले कभी अधिकार नहीं रहा है । मैं स्वेच्छापूर्वक पहले-पहल तुम्हारी ही सेवामें उपस्थित हुई हूँ । यह मैं सत्य कहती हूँ और इस सत्यके द्वारा ही इस शरीरकी शपथ खाती हूँ ॥ १७ ॥

भजस्व मां विशालाक्ष स्वयं कन्यामुपस्थिताम् ।
अनन्यपूर्वां राजेन्द्र त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणीम् ॥ १८ ॥

'विशाल नेत्रोंवाले महाराज ! मैंने आजसे पहले किसी दूसरे पुरुषको अपना पति नहीं समझा है । मैं तुम्हारी कृपाकी अभिलाषा रखती हूँ । स्वयं ही अपनी सेवामें उपस्थित हुई मुझ कुमारी कन्याको धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये' १८

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तामेवं भाषमाणां तु शाल्वः काशिपतेः सुताम् ।
अत्यजद् भरतश्रेष्ठ जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार अनुनय-विनय करती हुई काशिराजकी उस कन्याको शाल्वने उसी प्रकार त्याग दिया, जैसे सर्प पुरानी केंचुलको छोड़ देता है ॥ १९ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तया नृपः ।
नाश्रद्दधच्छाल्वपतिः कन्यायां भरतर्षभ ॥ २० ॥

भरतभूषण ! इस तरह नाना प्रकारके वचनोंद्वारा बार-बार याचना करनेपर भी शाल्वराजने उस कन्याकी बातोंपर विश्वास नहीं किया ॥ २० ॥

ततः सा मन्युनाऽऽविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।
अब्रवीत् साश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा ॥ २१ ॥

तब काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्री अम्बा क्रोध एवं दुःखसे व्याप्त हो नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई अश्रुगद्गद वाणीमें बोली—॥

त्वया त्यक्ता गमिष्यामि यत्र तत्र विशाम्पते ।
तत्र मे गतयः सन्तु सन्तः सत्यं यथा ध्रुवम् ॥ २२ ॥

'राजन् ! यदि मेरी कही बात निश्चितरूपसे सत्य हो तो तुमसे परित्यक्त होनेपर मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, वहाँ-वहाँ साधु पुरुष मुझे सहारा देनेवाले हों' ॥ २२ ॥

एवं तां भाषमाणां तु कन्यां शाल्वपतिस्तदा ।
परितत्याज कौरव्य करुणं परिदेवतीम् ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन ! राजकन्या अम्बा करुणस्वरसे विलाप करती हुई इसी प्रकार कितनी ही बातें कहती रही; परंतु शाल्व-राजने उसे सर्वथा त्याग दिया ॥ २३ ॥

गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत ।
बिभेमि भीष्मात् सुश्रोणि त्वं च भीष्मपरिग्रहः ॥ २४ ॥

शाल्वने बारंबार उससे कहा—'सुश्रोणि ! तुम जाओ, चली जाओ, मैं भीष्मसे डरता हूँ । तुम भीष्मके द्वारा ग्रहण की हुई हो' ॥ २४ ॥

एवमुक्ता तु सा तेन शाल्वेनादीर्घदर्शिना ।
निश्चक्राम पुराद् दीना रुदती कुररी यथा ॥ २५ ॥

अदूरदर्शी शाल्वके ऐसा कहनेपर अम्बा कुररीकी भाँति दीनभावसे रुदन करती हुई उस नगरसे निकल गयी ॥ २५ ॥

*भीष्म उवाच*

निष्क्रामन्ती तु नगराच्चिन्तयामास दुःखिता ।
पृथिव्यां नास्ति युवतिर्विषमस्थतरा मया ॥ २६ ॥

**भीष्मजी कहते हैं**—राजन् ! नगरसे निकलते समय वह दुःखिनी नारी इस प्रकार चिन्ता करने लगी—'इस पृथ्वीपर कोई भी ऐसी युवती नहीं होगी, जो मेरे समान भारी संकटमें पड़ गयी हो ॥ २६ ॥

बन्धुभिर्विप्रहीणास्मि शाल्वेन च निराकृता ।
न च शक्यं पुनर्गन्तुं मया वारणसाह्वयम् ॥ २७ ॥

'भाई-बन्धुओंसे तो दूर हो ही गयी हूँ । राजा शाल्वने भी मुझे त्याग दिया है । अब मैं हस्तिनापुरमें भी नहीं जा सकती ॥ २७ ॥

अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वमुद्दिश्य कारणम् ।
किं नु गर्हाम्यथात्मानमथ भीष्मं दुरासदम् ॥ २८ ॥

'क्योंकि शाल्वके अनुरागको कारण बताकर मैंने भीष्मसे यहाँ आनेकी आज्ञा ली थी । अब मैं अपनी ही निन्दा करूँ या उस दुर्जय वीर भीष्मको कोसूँ ? ॥ २८ ॥

अथवा पितरं मूढं यो मेऽकार्षीत् स्वयंवरम् ।
ममायं स्वकृतो दोषो याहं भीष्मरथात् तदा ॥ २९ ॥
प्रवृत्ते दारुणे युद्धे शाल्वार्थं नापतं पुरा ।

'अथवा अपने मूढ़ पिताको दोष दूँ, जिन्होंने मेरा स्वयंवर किया । मेरे द्वारा सबसे बड़ा दोष यह हुआ है कि पूर्वकाल-में जिस समय वह भयंकर युद्ध चल रहा था, उसी समय मैं शाल्वके लिये भीष्मके रथसे कूद नहीं पड़ी ॥ २९½ ॥

तस्येयं फलनिर्वृत्तिर्यदापन्नास्मि मूढवत् ॥ ३० ॥
धिग् भीष्मं धिक् च मे मन्दं पितरं मूढचेतसम् ।
येनाहं वीर्यशुल्केन पण्यस्त्रीव प्रचोदिता ॥ ३१ ॥

'उसीका यह फल प्राप्त हुआ है कि मैं एक मूर्ख स्त्रीकी भाँति भारी आपत्तिमें पड़ गयी हूँ । भीष्मको धिक्कार है, विवेकशून्य हृदयवाले मेरे मन्दबुद्धि पिताको भी धिक्कार है, जिन्होंने पराक्रमका शुल्क नियत करके मुझे बाजारू स्त्रीकी भाँति जनसमूहमें निकलनेकी आज्ञा दी ॥ ३०-३१ ॥

धिङ्मां धिक् शाल्वराजानं धिग् धातारमथापि वा ।
येषां दुर्नीतभावेन प्राप्तास्म्यापदमुत्तमाम् ॥ ३२ ॥

'मुझे धिक्कार है, शाल्वराजको धिक्कार है और विधाता-को भी धिक्कार है, जिनकी दुर्नीतियोंसे मैं इस भारी विपत्तिमें फँस गयी हूँ ॥ ३२ ॥

सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति मानवः ।
अनयस्यास्य तु मुखं भीष्मः शान्तनवो मम ॥ ३३ ॥

'मनुष्य सर्वथा वही पाता है जो उसके भाग्यमें होता है । मुझपर जो यह अन्याय हुआ है, उसका मुख्य कारण शान्तनुनन्दन भीष्म हैं ॥ ३३ ॥

सा भीष्मे प्रतिकर्तव्यमहं पश्यामि साम्प्रतम् ।
तपसा वा युधा वापि दुःखहेतुः स मे मतः ॥ ३४ ॥

'अतः इस समय तपस्या अथवा युद्धके द्वारा भीष्मसे ही बदला लेना मुझे उचित दिखायी देता है; क्योंकि मेरे दुःखके प्रधान कारण वे ही हैं ॥ ३४ ॥

को नु भीष्मं युधा जेतुमुत्सहेत महीपतिः ।
एवं सा परिनिश्चित्य जगाम नगराद् बहिः ॥ ३५ ॥

'परंतु कौन ऐसा राजा है जो युद्धके द्वारा भीष्मको परास्त कर सके ।' ऐसा निश्चय करके वह नगरसे बाहर चली गयी॥

आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ।
ततस्तामवसद् रात्रिं तापसैः परिवारिता ॥ ३६ ॥

उसने पुण्यशील तपस्वी महात्माओंके आश्रमपर जाकर वहीं वह रात बितायी । उस आश्रममें तपस्वीलोगोंने सब



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ओरसे घेरकर उसकी रक्षा की थी ॥ ३६ ॥

**आचख्यौ च यथावृत्तं सर्वमात्मनि भारत ।**
**विस्तरेण महाबाहो निखिलेन शुचिस्मिता ।**
**हरणं च विसर्गं च शाल्वेन च विसर्जनम् ॥ ३७ ॥**

महाबाहु भरतनन्दन !, पवित्र मुसकानवाली अम्बाने अपने ऊपर बीता हुआ सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक उन महात्माओंसे बताया । किस प्रकार उसका अपहरण हुआ ? कैसे भीष्मसे छुटकारा मिला ? और फिर किस प्रकार शाल्वने उसे त्याग दिया, ये सारी बातें उसने कह सुनायीं ॥ ३७ ॥

**ततस्तत्र महानासीद् ब्राह्मणः संशितव्रतः ।**
**शैखावत्यस्तपोवृद्धः शास्त्रे चारण्यके गुरुः ॥ ३८ ॥**

उस आश्रममें कठोर व्रतका पालन करनेवाले शैखावत्य नामसे प्रसिद्ध एक तपोवृद्ध श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, जो शास्त्र और आरण्यक आदिकी शिक्षा देनेवाले सद्गुरु थे ॥ ३८ ॥

**आर्तां तामाह स मुनिः शैखावत्यो महातपाः ।**
**निःश्वसन्तीं सतीं बालां दुःखशोकपरायणाम् ॥ ३९ ॥**

महातपस्वी शैखावत्य मुनिने वहाँ सिसकती हुई उस दुःखशोकपरायणा सती साध्वी आर्त अबलासे कहा—॥ ३९ ॥

**एवं गते तु किं भद्रे शक्यं कर्तुं तपस्विभिः ।**
**आश्रमस्थैर्महाभागे तपोयुक्तैर्महात्मभिः ॥ ४० ॥**

'भद्रे ! महाभागे ! ऐसी दशामें इस आश्रममें निवास करनेवाले तपःपरायण तपोधन महात्मा तुम्हारा क्या सहयोग कर सकते हैं ?' ॥ ४० ॥

**सा त्वेनमब्रवीद् राजन् क्रियतां मदनुग्रहः ।**
**प्राव्राज्यमहमिच्छामि तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ॥ ४१ ॥**

राजन् ! तब अम्बाने उनसे कहा—'भगवन् ! मुझपर अनुग्रह कीजिये । मैं संन्यासियोंका-सा धर्म पालन करना चाहती हूँ । यहाँ रहकर दुष्कर तपस्या करूँगी ॥ ४१ ॥

**मयैव यानि कर्माणि पूर्वदेहे तु मूढया ।**
**कृतानि नूनं पापानि तेषामेतत् फलं ध्रुवम् ॥ ४२ ॥**

'मुझ मूढ़ नारीने अपने पूर्वजन्मके शरीरसे जो पापकर्म किये थे, अवश्य ही उन्हींका यह दुःखदायक फल प्राप्त हुआ है ॥

**नोत्सहे तु पुनर्गन्तुं स्वजनं प्रति तापसाः ।**
**प्रत्याख्याता निरानन्दा शाल्वेन च निराकृता ॥ ४३ ॥**

'तपस्वी महात्माओ ! अब मैं अपने स्वजनोंके यहाँ फिर नहीं लौट सकती; क्योंकि राजा शाल्वने मुझे कोरा उत्तर देकर त्याग दिया है, उससे मेरा सारा जीवन आनन्दशून्य (दुःखमय) हो गया है ॥ ४३ ॥

**उपदिष्टमिहेच्छामि तापस्यं वीतकल्मषाः ।**
**युष्माभिर्देवसंकाशैः कृपा भवतु वो मयि ॥ ४४ ॥**

'निष्पाप तापसगण ! मैं चाहती हूँ कि आप देवोपम साधु पुरुष मुझे तपस्याका उपदेश दें, मुझपर आपलोगोंकी कृपा हो' ॥

**स तामाश्वासयत् कन्यां दृष्टान्तागमहेतुभिः ।**
**सान्त्वयामास कार्यं च प्रतिजज्ञे द्विजैः सह ॥ ४५ ॥**

तब शैखावत्य मुनिने लौकिक दृष्टान्तों, शास्त्रीय वचनों तथा युक्तियोंद्वारा उस कन्याको आश्वासन देकर धैर्य बँधाया और ब्राह्मणोंके साथ मिलकर उसके कार्य-साधनके लिये प्रयत्न करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ४५ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शैखावत्याम्बासंवादे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें शैखावत्य तथा अम्बाका संवादविषयक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७५ ॥

**( दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ४६½ श्लोक हैं )**

# षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## तापसोंके आश्रममें राजर्षि होत्रवाहन और अकृतव्रणका आगमन तथा उनसे अम्बाकी बातचीत

*भीष्म उवाच*

**ततस्ते तापसाः सर्वे कार्यवन्तोऽभवंस्तदा ।**
**तां कन्यां चिन्तयन्तस्ते किं कार्यमिति धर्मिणः ॥ १ ॥**

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर वे सब धर्मात्मा तपस्वी उस कन्याके विषयमें चिन्ता करते हुए यह सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? उस समय वे उसके लिये कुछ करनेको उद्यत थे ॥ १ ॥

**केचिदाहुः पितुर्वेश्म नीयतामिति तापसाः ।**
**केचिदस्मदुपालम्भे मतिं चक्रुर्हि तापसाः ॥ २ ॥**

कुछ तपस्वी यह कहने लगे कि इस राजकन्याको इसके पिताके घर पहुँचा दिया जाय । कुछ तापसोंने मुझे उलाहना देनेका निश्चय किया ॥ २ ॥

**केचिच्छाल्वपतिं गत्वा नियोज्यमिति मेनिरे ।**
**नेति केचिद् व्यवस्यन्ति प्रत्याख्याता हि तेन सा ॥ ३ ॥**

कुछ लोग यह सम्मति प्रकट करने लगे कि चलकर शाल्वराजको बाध्य करना चाहिये कि वह इसे स्वीकार करे और कुछ लोगोंने यह निश्चय प्रकट किया था कि ऐसा होना सम्भव नहीं है; क्योंकि उसने इस कन्याको कोरा उत्तर देकर ग्रहण करनेसे इन्कार कर दिया है ॥ ३ ॥

**एवं गते तु किं शक्यं भद्रे कर्तुं मनीषिभिः ।**
**पुनरूचुश्च तां सर्वे तापसाः संशितव्रताः ॥ ४ ॥**

'भद्रे ! ऐसी स्थितिमें मनीषी तापस क्या कर सकते हैं !' ऐसा कहकर वे कठोर व्रतका पालन करनेवाले सभी तापस उस राजकन्यासे फिर बोले—॥ ४ ॥

**अलं प्रव्रजितेनेह भद्रे शृणु हितं वचः ।**
**इतो गच्छस्व भद्रं ते पितुरेव निवेशनम् ॥ ५ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

प्रतिपत्स्यति राजा स पिता ते यदनन्तरम् ।
तत्र वत्स्यसि कल्याणि सुखं सर्वगुणान्विता ॥ ६ ॥

'भद्रे ! घर त्यागकर संन्यासियोंके-से धर्माचरणमें संलग्न होनेकी आवश्यकता नहीं है । तुम हमारा हितकर वचन सुनो, तुम्हारा कल्याण हो । यहाँसे पिताके घरको ही चली जाओ । इसके बाद जो आवश्यक कार्य होगा, उसे तुम्हारे पिता काशिराज सोचे-समझेंगे । कल्याणि ! तुम वहाँ सर्वगुणसम्पन्न होकर सुखसे रह सकोगी ॥ ५-६ ॥

न च तेऽन्या गतिर्न्याय्या भवेद् भद्रे यथा पिता ।
पतिर्वापि गतिर्नार्याः पिता वा वरवर्णिनि ॥ ७ ॥

'भद्रे ! तुम्हारे लिये पिताका आश्रय लेना जैसा न्यायसंगत है, वैसा दूसरा कोई सहारा नहीं है । वरवर्णिनि ! नारीके लिये पति अथवा पिता ही गति ( आश्रय ) है ॥७॥

गतिः पतिः समस्थाया विषमे च पिता गतिः ।
प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः ॥ ८ ॥

'सुखकी परिस्थितिमें नारीके लिये पति आश्रय होता है और संकटकालमें उसके लिये पिताका आश्रय लेना उत्तम है । विशेषतः तुम सुकुमारी हो, अतः तुम्हारे लिये यह प्रव्रज्या ( गृहत्याग ) अत्यन्त दुःखसाध्य है ॥ ८ ॥

राजपुत्र्याः प्रकृत्या च कुमार्यास्तव भामिनि ।
भद्रे दोषा हि विद्यन्ते बहवो वरवर्णिनि ॥ ९ ॥
आश्रमे वै वसन्त्यास्ते न भवेयुः पितुर्गृहे ।

'भामिनि ! एक तो तुम राजकुमारी और दूसरे स्वभावतः सुकुमारी हो, अतः सुन्दरी ! यहाँ आश्रममें तुम्हारे रहनेसे अनेक दोष प्रकट हो सकते हैं । पिताके घरमें वे दोष नहीं प्राप्त होंगे' ॥ ९½ ॥

ततस्त्वन्येऽब्रुवन् वाक्यं तापसास्तां तपस्विनीम् ॥ १० ॥
त्वामिहैकाकिनीं दृष्ट्वा निर्जने गहने वने ।
प्रार्थयिष्यन्ति राजानस्तस्मान्मैवं मनः कृथाः ॥ ११ ॥

तदनन्तर दूसरे तापसोंने उस तपस्विनीसे कहा—'इस निर्जन गहन वनमें तुम्हें अकेली देख कितने ही राजा तुमसे प्रणय-प्रार्थना करेंगे, अतः तुम इस प्रकार तपस्या करनेका विचार न करो' ॥ १०-११ ॥

*अम्बोवाच*

न शक्यं काशिनगरं पुनर्गन्तुं पितुर्गृहान् ।
अवज्ञाता भविष्यामि बान्धवानां न संशयः ॥ १२ ॥

**अम्बा बोली**—तापसो ! अब मेरे लिये पुनः काशिनगरमें पिताके घर लौट जाना असम्भव है; क्योंकि वहाँ मुझे बन्धु-बान्धवोंमें अपमानित होकर रहना पड़ेगा ॥१२॥

उषितास्मि तथा बाल्ये पितुर्वेश्मनि तापसाः ।
नाहं गमिष्ये भद्रं वस्तत्र यत्र पिता मम ।
तपस्तप्तुमभीप्सामि तापसैः परिरक्षिता ॥ १३ ॥

तापसो ! मैं बाल्यावस्थामें पिताके घर रह चुकी हूँ । आपका कल्याण हो । अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगी, जहाँ मेरे पिता होंगे । मैं आप तपस्वी जनोंद्वारा सुरक्षित होकर यहाँ तपस्या करनेकी ही इच्छा रखती हूँ ॥ १३ ॥

यथा परेऽपि मे लोके न स्यादेवं महात्ययः ।
दौर्भाग्यं तापसश्रेष्ठास्तस्मात् तप्स्याम्यहं तपः ॥ १४ ॥

तापसश्रेष्ठ महर्षियो ! मैं तपस्या इसलिये करना चाहती हूँ, जिससे परलोकमें भी मुझे इस प्रकार महान् संकट एवं दुर्भाग्यका सामना न करना पड़े । अतः मैं तपस्या ही करूँगी ॥ १४ ॥

*भीष्म उवाच*

इत्येवं तेषु विप्रेषु चिन्तयत्सु यथातथम् ।
राजर्षिस्तद् वनं प्राप्तस्तपस्वी होत्रवाहनः ॥ १५ ॥

**भीष्मजी कहते हैं**—इस प्रकार वे ब्राह्मण जब यथावत् चिन्तामें मग्न हो रहे थे, उसी समय तपस्वी राजर्षि होत्रवाहन उस वनमें आ पहुँचे ॥ १५ ॥

ततस्ते तापसाः सर्वे पूजयन्ति स्म तं नृपम् ।
पूजाभिः स्वागताद्याभिरासनेनोदकेन च ॥ १६ ॥

तब उन सब तापसोंने स्वागत, कुशल-प्रश्न, आसन-समर्पण और जल-दान आदि अतिथि-सत्कारके उपचारोंद्वारा राजा होत्रवाहनका समादर किया ॥ १६ ॥

तस्योपविष्टस्य सतो विश्रान्तस्योपशृण्वतः ।
पुनरेव कथां चक्रुः कन्यां प्रति वनौकसः ॥ १७ ॥

जब वे आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके, उस समय उनके सुनते हुए ही वे वनवासी तपस्वी पुनः उस कन्याके विषयमें बातचीत करने लगे ॥ १७ ॥

अम्बायास्तां कथां श्रुत्वा काशिराज्ञश्च भारत ।
राजर्षिः स महातेजा बभूवोद्विग्नमानसः ॥ १८ ॥

भारत ! अम्बा और काशिराजकी वह चर्चा सुनकर महातेजस्वी राजर्षि होत्रवाहनका चित्त उद्विग्न हो उठा ।१८।

तां तथावादिनीं श्रुत्वा दृष्ट्वा च स महातपाः ।
राजर्षिः कृपयाऽऽविष्टो महात्मा होत्रवाहनः ॥ १९ ॥

पूर्वोक्त रूपसे दीनतापूर्वक अपना दुःख निवेदन करनेवाली राजकन्या अम्बाकी बातें सुनकर महातपस्वी, महात्मा राजर्षि होत्रवाहन दयासे द्रवित हो गये ॥ १९ ॥

स वेपमान उत्थाय मातुस्तस्याः पिता तदा ।
तां कन्यामङ्कमारोप्य पर्यश्वासयत प्रभो ॥ २० ॥

वे अम्बाके नाना थे । राजन् ! वे काँपते हुए उठे और उस राजकन्याको गोदमें बिठाकर उसे सान्त्वना देने लगे ॥

स तामपृच्छत् कार्त्स्न्येन व्यसनोत्पत्तिमादितः ।
सा च तस्मै यथावृत्तं विस्तरेण न्यवेदयत् ॥ २१ ॥

उन्होंने उससे संकट आनेकी सारी बातें आरम्भसे ही पूछी और अम्बाने भी जो कुछ जैसे-जैसे हुआ था, वह सारा वृत्तान्त उनसे विस्तारपूर्वक बताया ॥ २१ ॥

ततः स राजर्षिरभूद् दुःखशोकसमन्वितः ।
कार्यं च प्रतिपेदे तन्मनसा सुमहातपाः ॥ २२ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तब उन महातपस्वी राजर्षिने दुःख और शोकसे संतप्त हो मन-ही-मन आवश्यक कर्तव्यका निश्चय किया ॥

**अब्रवीद् वेपमानश्च कन्यामार्तां सुदुःखितः ।**
**मा गाः पितृगृहं भद्रे मातुस्ते जनको ह्यहम् ॥ २३ ॥**

और अत्यन्त दुखी हो, काँपते हुए ही उन्होंने उस दुःखिनी कन्यासे इस प्रकार कहा—'भद्रे ! (यदि) तू पिताके घर (नहीं जाना चाहती हो तो) न जा। मैं तेरी माँका पिता हूँ ॥ २३ ॥

**दुःखं छिन्द्यामहं ते वै मयि वर्तस्व पुत्रिके ।**
**पर्याप्तं ते मनो वत्से यदेवं परिशुष्यसि ॥ २४ ॥**

'बेटी ! मैं तेरा दुःख दूर करूँगा, तू मेरे पास रह । वत्से ! तेरे मनमें बड़ा संताप है, तभी तो इस प्रकार सूखी जा रही है ॥ २४ ॥

**गच्छ मद्वचनाद् रामं जामदग्न्यं तपस्विनम् ।**
**रामस्ते सुमहद् दुःखं शोकं चैवापनेष्यति ॥ २५ ॥**

'तू मेरे कहनेसे तपस्यापरायण जमदग्निनन्दन परशुराम-जीके पास जा । वे तेरे महान् दुःख और शोकको अवश्य दूर करेंगे ॥ २५ ॥

**हनिष्यति रणे भीष्मं न करिष्यति चेद् वचः ।**
**तं गच्छ भार्गवश्रेष्ठं कालाग्निसमतेजसम् ॥ २६ ॥**

'यदि भीष्म उनकी बात नहीं मानेंगे तो वे युद्धमें उन्हें मार डालेंगे । भार्गवश्रेष्ठ परशुराम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हैं । तू उन्हींकी शरणमें जा ॥ २६ ॥

**प्रतिष्ठापयिता स त्वां समे पथि महातपाः ।**
**ततस्तु सुस्वरं बाष्पमुत्सृजन्ती पुनः पुनः ॥ २७ ॥**
**अब्रवीत् पितरं मातुः सा तदा होत्रवाहनम् ।**
**अभिवादयित्वा शिरसा गमिष्ये तव शासनात् ॥ २८ ॥**

'वे महातपस्वी राम तुझे न्यायोचित मार्गपर प्रतिष्ठित करेंगे ।' यह सुनकर अम्बा बारंबार आँसू बहाती हुई अपने नाना होत्रवाहनको मस्तक नवाकर प्रणाम करके मधुर स्वरमें इस प्रकार बोली—'नानाजी ! मैं आपकी आज्ञासे वहाँ अवश्य जाऊँगी ॥ २७-२८ ॥

**अपि नामाद्य पश्येयमार्यं तं लोकविश्रुतम् ।**
**कथं च तीव्रं दुःखं मे नाशयिष्यति भार्गवः ।**
**एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं यथा यास्यामि तत्र वै ॥ २९ ॥**

'परंतु मैं आज उन विश्वविख्यात श्रेष्ठ महात्माका दर्शन कैसे कर सकूँगी और वे भृगुनन्दन परशुरामजी मेरे इस दुःसह दुःखका नाश किस प्रकार करेंगे ? मैं यह सब जानना चाहती हूँ, जिससे वहाँ जा सकूँ' ॥ २९ ॥

होत्रवाहन उवाच

**रामं द्रक्ष्यसि भद्रे त्वं जामदग्न्यं महावने ।**
**उग्रे तपसि वर्तन्तं सत्यसंधं महाबलम् ॥ ३० ॥**

होत्रवाहन बोले—भद्रे ! जमदग्निनन्दन परशुराम एक महान् वनमें उग्र तपस्या कर रहे हैं । वे महान् शक्तिशाली और सत्यप्रतिज्ञ हैं । तुझे अवश्य ही उनका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ३० ॥

**महेन्द्रं वै गिरिश्रेष्ठं रामो नित्यमुपास्ति ह ।**
**ऋषयो वेदविद्वांसो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ३१ ॥**

परशुरामजी सदा पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्रपर रहा करते हैं । वहाँ वेदवेत्ता महर्षि, गन्धर्व तथा अप्सराओंका भी निवास है ॥ ३१ ॥

**तत्र गच्छस्व भद्रं ते ब्रूयाश्चैनं वचो मम ।**
**अभिवाद्य च तं मूर्ध्ना तपोवृद्धं दृढव्रतम् ॥ ३२ ॥**

बेटी ! तेरा कल्याण हो । तू वहीं जा और उन दृढव्रती तपोवृद्ध महात्माको अभिवादन करके पहले उनसे मेरी बात कहना ॥ ३२ ॥

**ब्रूयाश्चैनं पुनर्भद्रे यत् ते कार्यं मनीषितम् ।**
**मयि संकीर्तिते रामः सर्वं तत् ते करिष्यति ॥ ३३ ॥**

भद्रे ! तत्पश्चात् तेरे मनमें जो अभीष्ट कार्य है वह सब उनसे निवेदन करना । मेरा नाम लेनेपर परशुरामजी तेरा सब कार्य करेंगे ॥ ३३ ॥

**मम रामः सखा वत्से प्रीतियुक्तः सुहृच्च मे ।**
**जमदग्निसुतो वीरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥**

वत्से ! सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ जमदग्निनन्दन वीरवर परशुराम मेरे सखा और प्रेमी सुहृद् हैं ॥ ३४ ॥

**एवं ब्रुवति कन्यां तु पार्थिवे होत्रवाहने ।**
**अकृतव्रणः प्रादुरासीद् रामस्यानुचरः प्रियः ॥ ३५ ॥**

राजा होत्रवाहन जब राजकन्या अम्बासे इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय परशुरामजीके प्रिय सेवक अकृतव्रण वहाँ प्रकट हुए ॥ ३५ ॥

**ततस्ते मुनयः सर्वे समुत्तस्थुः सहस्रशः ।**
**स च राजा वयोवृद्धः सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥ ३६ ॥**

उन्हें देखते ही वे सहस्रों मुनि तथा सृंजयवंशी वयोवृद्ध राजा होत्रवाहन सभी उठकर खड़े हो गये ॥ ३६ ॥

**ततो दृष्ट्वा कृतातिथ्यमन्योन्यं ते वनौकसः ।**
**सहिता भरतश्रेष्ठ निषेदुः परिवार्य तम् ॥ ३७ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर उनका आदर-सत्कार किया गया; फिर वे वनवासी महर्षि एक दूसरेकी ओर देखते हुए एक साथ उन्हें घेरकर बैठे ॥ ३७ ॥

**ततस्ते कथयामासुः कथास्तास्ता मनोरमाः ।**
**धन्या दिव्याश्च राजेन्द्र प्रीतिहर्षमुदा युताः ॥ ३८ ॥**

राजेन्द्र ! तत्पश्चात् वे सब लोग प्रेम और हर्षके साथ दिव्य, धन्य एवं मनोरम वार्तालाप करने लगे ॥ ३८ ॥

**ततः कथान्ते राजर्षिर्महात्मा होत्रवाहनः ।**
**रामं श्रेष्ठं महर्षीणामपृच्छदकृतव्रणम् ॥ ३९ ॥**

बातचीत समाप्त होनेपर राजर्षि महात्मा होत्रवाहनने महर्षियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीके विषयमें अकृतव्रणसे पूछा—

**क्व सम्प्रति महाबाहो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।**
**अकृतव्रण शक्यो वै द्रष्टुं वेदविदां वरः ॥ ४० ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'महाबाहु अकृतव्रण ! इस समय वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और प्रतापी जमदग्निनन्दन परशुरामजीका दर्शन कहाँ हो सकता है ?' ॥

*अकृतव्रण उवाच*

**भवन्तमेव सततं रामः कीर्तयति प्रभो ।**
**सृञ्जयो मे प्रियसखो राजर्षिरिति पार्थिव ॥ ४१ ॥**

**अकृतव्रणने** कहा—राजन् ! परशुरामजी तो सदा आपकी ही चर्चा किया करते हैं । उनका कहना है कि सृंजयवंशी राजर्षि होत्रवाहन मेरे प्रिय सखा हैं ॥ ४१ ॥

**इह रामः प्रभाते श्वो भवितेति मतिर्मम ।**
**द्रष्टास्येनमिहायान्तं तव दर्शनकाङ्क्षया ॥ ४२ ॥**

मेरा विश्वास है कि कल सबेरेतक परशुरामजी यहाँ उपस्थित हो जायँगे । वे आपसे ही मिलनेके लिये आ रहे हैं । अतः आप यहीं उनका दर्शन कीजियेगा ॥ ४२ ॥

**इयं च कन्या राजर्षे किमर्थं वनमागता ।**
**कस्य चेयं तव च का भवतीच्छामि वेदितुम् ॥ ४३ ॥**

राजर्षे ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह कन्या किस लिये वनमें आयी है ? यह किसकी पुत्री है और आपकी क्या लगती है ? ॥ ४३ ॥

*होत्रवाहन उवाच*

**दौहित्रीयं मम विभो काशिराजसुता प्रिया ।**
**ज्येष्ठा स्वयंवरे तस्थौ भगिनीभ्यां सहानघ ॥ ४४ ॥**
**इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।**
**अम्बिकाम्बालिके कन्ये कनीयस्यौ तपोधन ॥ ४५ ॥**

**होत्रवाहन बोले**—प्रभो ! यह मेरी दौहित्री ( पुत्रीकी पुत्री ) है । अनघ ! काशिराजकी परमप्रिय ज्येष्ठ पुत्री अपनी दो छोटी बहिनोंके साथ स्वयंवरमें उपस्थित हुई थी । उनमेंसे यही अम्बा नामसे विख्यात काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्री है । तपोधन ! इसकी दोनों छोटी बहिनें अम्बिका और अम्बालिका कहलाती हैं ॥ ४४-४५ ॥

**समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां ततोऽभवत् ।**
**कन्यानिमित्तं विप्रर्षे तत्रासीदुत्सवो महान् ॥ ४६ ॥**

ब्रह्मर्षे ! काशीपुरीमें इन्हीं कन्याओंके लिये भूमण्डलका समस्त क्षत्रियसमुदाय एकत्र हुआ था । उस अवसरपर वहाँ महान् स्वयंवरोत्सवका आयोजन किया गया था ॥ ४६ ॥

**ततः किल महावीर्यो भीष्मः शान्तनवो नृपान् ।**
**अधिक्षिप्य महातेजास्तिस्रः कन्या जहार ताः ॥ ४७ ॥**

कहते हैं उस अवसरपर महातेजस्वी और महापराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्म सब राजाओंको जीतकर इन तीनों कन्याओंको हर लाये ॥ ४७ ॥

**निर्जित्य पृथिवीपालानथ भीष्मो गजाह्वयम् ।**
**आजगाम विशुद्धात्मा कन्याभिः सह भारतः ॥ ४८ ॥**

भरतनन्दन भीष्मका हृदय इन कन्याओंके प्रति सर्वथा शुद्ध था । वे समस्त भूपालोंको परास्त करके कन्याओंको साथ लिये हस्तिनापुरमें आये ॥ ४८ ॥

**सत्यवत्यै निवेद्याथ विवाहं समनन्तरम् ।**
**भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य समाज्ञापयत प्रभुः ॥ ४९ ॥**

वहाँ आकर शक्तिशाली भीष्मने सत्यवतीको ये कन्याएँ सौंप दीं और इनके साथ अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यका विवाह करनेकी आज्ञा दे दी ॥ ४९ ॥

**तं तु वैवाहिकं दृष्ट्वा कन्येयं समुपार्जितम् ।**
**अब्रवीत् तत्र गाङ्गेयं मन्त्रिमध्ये द्विजर्षभ ॥ ५० ॥**

द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ वैवाहिक आयोजन आरम्भ हुआ देख यह कन्या मन्त्रियोंके बीचमें गङ्गानन्दन भीष्मसे बोली—॥

**मया शाल्वपतिर्वीरो मनसाभिवृतः पतिः ।**
**न मामर्हसि धर्मज्ञ दातुं भ्रात्रेऽन्यमानसाम् ॥ ५१ ॥**

'धर्मज्ञ ! मैंने मन-ही मन वीरवर शाल्वराजको अपना पति चुन लिया है; अतः मेरा मन अन्यत्र अनुरक्त होनेके कारण आपको अपने भाईके साथ मेरा विवाह नहीं करना चाहिये' ॥ ५१ ॥

**तच्छ्रुत्वा वचनं भीष्मः सम्मन्त्र्य सह मन्त्रिभिः ।**
**निश्चित्य विससर्जेमां सत्यवत्या मते स्थितः ॥ ५२ ॥**

अम्बाका यह वचन सुनकर भीष्मने मन्त्रियोंके साथ सलाह करके माता सत्यवतीकी सम्मति प्राप्त करके एक निश्चयपर पहुँचकर इस कन्याको छोड़ दिया ॥ ५२ ॥

**अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वं सौभपतिं ततः ।**
**कन्येयं मुदिता तत्र काले वचनमब्रवीत् ॥ ५३ ॥**

भीष्मकी आज्ञा पाकर यह कन्या मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो सौभ विमानके स्वामी शाल्वके यहाँ गयी और वहाँ उस समय इस प्रकार बोली—॥ ५३ ॥

**विसर्जितास्मि भीष्मेण धर्मं मां प्रतिपादय ।**
**मनसाभिवृतः पूर्वं मया त्वं पार्थिवर्षभ ॥ ५४ ॥**

'नृपश्रेष्ठ ! भीष्मने मुझे छोड़ दिया है; क्योंकि पूर्वकालमें मैंने अपने मनसे आपको ही पति चुन लिया था, अतः आप मुझे धर्मपालनका अवसर दें' ॥ ५४ ॥

**प्रत्याचख्यौ च शाल्वोऽस्याश्चारित्रस्याभिशङ्कितः ।**
**सेयं तपोवनं प्राप्ता तापस्येऽभिरता भृशम् ॥ ५५ ॥**

शाल्वराजको इसके चरित्रपर संदेह हुआ; अतः उसने इसके प्रस्तावको ठुकरा दिया है । इस कारण तपस्यामें अत्यन्त अनुरक्त होकर यह इस तपोवनमें आयी है ॥ ५५ ॥

**मया च प्रत्यभिज्ञाता वंशस्य परिकीर्तनात् ।**
**अस्य दुःखस्य चोत्पत्तिं भीष्ममेवेह मन्यते ॥ ५६ ॥**

इसके कुलका परिचय प्राप्त होनेसे मैंने इसे पहचाना है । यह अपने इस दुःखकी प्राप्तिमें भीष्मको ही कारण मानती है ॥

*अम्बोवाच*

**भगवन्नेवमेवेह यथाऽऽह पृथिवीपतिः ।**
**शरीरकर्ता मातुर्मे सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥ ५७ ॥**

**अम्बा बोली**—भगवन् ! जैसा कि मेरी माताके पिता सृंजयवंशी महाराज होत्रवाहनने कहा है, ठीक ऐसी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ही मेरी परिस्थिति है ॥ ५७ ॥

**न ह्युत्सहे स्वनगरं प्रतियातुं तपोधन ।**
**अपमानभयाच्चैव व्रीडया च महामुने ॥ ५८ ॥**

तपोधन ! महामुने ! लज्जा और अपमानके भयसे अपने नगरको जानेके लिये मेरे मनमें उत्साह नहीं है ॥ ५८ ॥

**यत् तु मां भगवान् रामो वक्ष्यति द्विजसत्तम ।**
**तन्मे कार्यतमं कार्यमिति मे भगवन् मतिः ॥ ५९ ॥**

भगवन् ! द्विजश्रेष्ठ ! अब भगवान् परशुराम मुझसे जो कुछ कहेंगे, वही मेरे लिये सर्वोत्तम कर्तव्य होगा; यही मैंने निश्चय किया है ॥ ५९ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि होत्रवाहनाम्बासंवादे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें अम्बाहोत्रवाहनसंवादविषयक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७६ ॥

# सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

## अकृतव्रण और परशुरामजीकी अम्बासे बातचीत

*अकृतव्रण उवाच*

**दुःखद्वयमिदं भद्रे कतरस्य चिकीर्षसि ।**
**प्रतिकर्तव्यमबले तत् त्वं वत्से वदस्व मे ॥ १ ॥**

**अकृतव्रणने कहा**—भद्रे ! तुम्हें दुःख देनेवाले दो कारण ( भीष्म और शाल्व ) उपस्थित हैं । वत्से ! तुम इन दोनोंमेंसे किससे बदला लेनेकी इच्छा रखती हो ? यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

**यदि सौभपतिर्भद्रे नियोक्तव्यो मतस्तव ।**
**नियोक्ष्यति महात्मा स रामस्त्वद्धितकाम्यया ॥ २ ॥**

भद्रे ! यदि तुम्हारा यह विचार हो कि सौभपति शाल्वराजको ही विवाहके लिये विवश करना चाहिये तो महात्मा परशुराम तुम्हारे हितकी इच्छासे शाल्वराजको अवश्य इस कार्यमें नियुक्त करेंगे ॥ २ ॥

**अथापगेयं भीष्मं त्वं रामेणेच्छसि धीमता ।**
**रणे विनिर्जितं द्रष्टुं कुर्यात् तदपि भार्गवः ॥ ३ ॥**

अथवा यदि तुम गङ्गानन्दन भीष्मको बुद्धिमान् परशुरामजीके द्वारा युद्धमें पराजित देखना चाहती हो तो वे महात्मा भार्गव यह भी कर सकते हैं ॥ ३ ॥

**सृञ्जयस्य वचः श्रुत्वा तव चैव शुचिस्मिते ।**
**यदत्र ते भृशं कार्यं तदद्यैव विचिन्त्यताम् ॥ ४ ॥**

शुचिस्मिते ! सृंजयवंशी राजा होत्रवाहनकी बात सुनकर और अपना विचार प्रकट करके जो कार्य तुम्हें अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हो उसका आज ही विचार कर लो ॥ ४ ॥

*अम्बोवाच*

**अपनीतास्मि भीष्मेण भगवन्नविजानता ।**
**नाभिजानाति मे भीष्मो ब्रह्मन् शाल्वगतं मनः ॥ ५ ॥**

**अम्बा बोली**—भगवन् ! भीष्म बिना जाने-बूझे मुझे हर लाये थे । ब्रह्मन् ! उन्हें इस बातका पता नहीं था कि मेरा मन शाल्वमें अनुरक्त है ॥ ५ ॥

**एतद् विचार्य मनसा भवानेतद् विनिश्चयम् ।**
**विचिनोतु यथान्यायं विधानं क्रियतां तथा ॥ ६ ॥**

इस बातपर मन-ही-मन विचार करके आप ही कुछ निश्चय करें और जो न्यायसंगत प्रतीत हो, वही कार्य करें ॥

**भीष्मे वा कुरुशार्दूले शाल्वराजेऽथवा पुनः ।**
**उभयोरेव वा ब्रह्मन् युक्तं यत् तत् समाचर ॥ ७ ॥**

ब्रह्मन् ! कुरुश्रेष्ठ भीष्मके साथ अथवा शाल्वराजके साथ अथवा दोनोंके ही साथ जो उचित बर्ताव हो, वह करें ॥७॥

**निवेदितं मया ह्येतद् दुःखमूलं यथातथम् ।**
**विधानं तत्र भगवन् कर्तुमर्हसि युक्तितः ॥ ८ ॥**

मैंने अपने दुःखके इस मूल कारणको यथार्थरूपसे निवेदन कर दिया । भगवन् ! अब आप अपनी युक्तिसे ही इस विषयमें न्यायोचित कार्य करें ॥ ८ ॥

*अकृतव्रण उवाच*

**उपपन्नमिदं भद्रे यदेवं वरवर्णिनि ।**
**धर्मं प्रति वचो ब्रूयाः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥**

**अकृतव्रण बोले**—भद्रे ! तुम जो इस प्रकार धर्मानुकूल बात कहती हो, यही तुम्हारे लिये उचित है । वरवर्णिनि ! अब मेरी यह बात सुनो ॥ ९ ॥

**यदि त्वामापगेयो वै न नयेद् गजसाह्वयम् ।**
**शाल्वस्त्वां शिरसा भीरु गृह्णीयाद् रामचोदितः ॥ १० ॥**

भीरु ! यदि गङ्गानन्दन भीष्म तुम्हें हस्तिनापुर न ले जाते तो राजा शाल्व परशुरामजीके कहनेपर तुम्हें आदरपूर्वक स्वीकार कर लेता ॥ १० ॥

**तेन त्वं निर्जिता भद्रे यस्मान्नीतासि भाविनि ।**
**संशयः शाल्वराजस्य तेन त्वयि सुमध्यमे ॥ ११ ॥**

परंतु भद्रे ! भीष्म तुम्हें जीतकर अपने साथ ले गये । भाविनि ! सुमध्यमे ! यही कारण है कि शाल्वराजके मनमें तुम्हारे प्रति संशय उत्पन्न हो गया है ॥ ११ ॥

**भीष्मः पुरुषमानी च जितकाशी तथैव च ।**
**तस्मात् प्रतिक्रिया युक्ता भीष्मे कारयितुं तव ॥ १२ ॥**

भीष्मको अपने पुरुषार्थका अभिमान है और वे इस समय अपनी विजयसे उल्लसित हो रहे हैं । अतः भीष्मसे ही बदला लेना तुम्हारे लिये उचित होगा ॥ १२ ॥

*अम्बोवाच*

**ममाप्येष सदा ब्रह्मन् हृदि कामोऽभिवर्तते ।**
**घातयेयं यदि रणे भीष्ममित्येव नित्यदा ॥ १३ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भीष्मं वा शाल्वराजं वा यं वा दोषेण गच्छसि।
प्रशाधि तं महाबाहो यत्कृतेऽहं सुदुःखिता ॥ १४ ॥

अम्बा बोली—ब्रह्मन्! मेरे मनमें भी सदा यह इच्छा बनी रहती है कि मैं युद्धमें भीष्मका वध करा दूँ। महाबाहो! आप भीष्मको या शाल्वराजको जिसे भी दोषी समझते हों, उसीको दण्ड दीजिये, जिसके कारण मैं अत्यन्त दुःखमें पड़ गयी हूँ ॥ १३-१४ ॥

*भीष्म उवाच*

एवं कथयतामेव तेषां स दिवसो गतः।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ सुखशीतोष्णमारुता ॥ १५ ॥

भीष्मजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार बातचीत करते हुए उन सब लोगोंका वह दिन बीत गया। सुखदायिनी सरदी, गर्मी और हवासे युक्त रात भी समाप्त हो गयी ॥ १५ ॥

ततो रामः प्रादुरासीत् प्रज्वलन्निव तेजसा।
शिष्यैः परिवृतो राजन् जटाचीरधरो मुनिः ॥ १६ ॥

राजन्! तदनन्तर अपने शिष्योंसे घिरे हुए जटावल्कल-धारी मुनिवर परशुरामजी वहाँ प्रकट हुए। वे अपने तेजके कारण प्रज्वलित-से हो रहे थे ॥ १६ ॥

धनुष्पाणिरदीनात्मा खड्गं बिभ्रत् परश्वधी।
विरजा राजशार्दूल सृञ्जयं सोऽभ्ययान्नृपम् ॥ १७ ॥

नृपश्रेष्ठ! उनके हृदयमें दीनताका नाम नहीं था। उन्होंने अपने हाथोंमें धनुष, खड्ग और फरसा ले रक्खे थे। उनके हृदयसे रजोगुण दूर हो गया था, वे राजा संजयके निकट आये ॥ १७ ॥

ततस्तं तापसा दृष्ट्वा स च राजा महातपाः।
तस्थुः प्राञ्जलयो राजन् सा च कन्या तपस्विनी ॥ १८ ॥

राजन्! उन्हें देखकर वे तपस्वी मुनि, महातपस्वी नरेश तथा वह तपस्विनी राजकन्या—ये सब-के-सब हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ १८ ॥

पूजयामासुरव्यग्रा मधुपर्केण भार्गवम्।
अर्चितश्च यथान्यायं निषसाद सहैव तैः ॥ १९ ॥

फिर उन्होंने स्वस्थचित्त होकर मधुपर्कद्वारा भार्गव परशुरामजीका पूजन किया। विधिपूर्वक पूजित होनेपर वे उन्हींके साथ वहाँ बैठे ॥ १९ ॥

ततः पूर्वव्यतीतानि कथयन्तौ स तावुभौ।
आसातां जामदग्न्यश्च सृञ्जयश्चैव भारत ॥ २० ॥

भारत! तत्पश्चात् परशुरामजी और संजय (होत्रवाहन) दोनों मित्र पहलेकी बीती बातें कहते हुए एक जगह बैठ गये ॥ २० ॥

तथा कथान्ते राजर्षिर्भृगुश्रेष्ठं महाबलम्।
उवाच मधुरं काले रामं वचनमर्थवत् ॥ २१ ॥

बातचीतके अन्तमें राजर्षि होत्रवाहनने महाबली भृगुश्रेष्ठ परशुरामजीसे मधुर वाणीमें उस समय यह अर्थयुक्त वचन कहा— ॥ २१ ॥

रामेयं मम दौहित्री काशिराजसुता प्रभो।
अस्याः शृणु यथातत्त्वं कार्यं कार्यविशारद ॥ २२ ॥

'कार्यसाधनकुशल प्रभो! परशुराम! यह मेरी पुत्रीकी पुत्री काशिराजकी कन्या है। इसका कुछ कार्य है, उसे आप इसीके मुँहसे ठीक-ठीक सुन लें' ॥ २२ ॥

परमं कथ्यतां चेति तां रामः प्रत्यभाषत।
ततः साभ्यगमद् रामं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २३ ॥
ततोऽभिवाद्य चरणौ रामस्य शिरसा शुभौ।
स्पृष्ट्वा पद्मदलाभाभ्यां पाणिभ्यामग्रतः स्थिता ॥ २४ ॥

'बहुत अच्छा, कहो बेटी' इस प्रकार उस कन्याको जब परशुरामजीने प्रेरित किया; तब वह प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी परशुरामजीके पास आयी और उनके कल्याणकारी चरणोंको सिरसे प्रणाम करके कमलदलके समान सुशोभित होनेवाले दोनों हाथोंसे उनका स्पर्श करती हुई सामने खड़ी हो गयी ॥ २३-२४ ॥

रुरोद सा शोकवती बाष्पव्याकुललोचना।
प्रपेदे शरणं चैव शरण्यं भृगुनन्दनम् ॥ २५ ॥

उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह शोकसे आतुर होकर रोने लगी और सबको शरण देनेवाले भृगुनन्दन परशुरामजीकी शरणमें गयी ॥ २५ ॥

*राम उवाच*

यथा त्वं सृञ्जयस्यास्य तथा मे त्वं नृपात्मजे।
ब्रूहि यत् ते मनोदुःखं करिष्ये वचनं तव ॥ २६ ॥

परशुरामजी बोले—राजकुमारी! जैसे तू इन संजयकी दौहित्री है, उसी प्रकार मेरी भी है। तेरे मनमें जो दुःख है, उसे बता। मैं तेरे कथनानुसार सब कार्य करूँगा ॥ २६ ॥

*अम्बोवाच*

भगवञ्छरणं त्वाद्य प्रपन्नास्मि महाव्रतम्।
शोकपङ्कार्णवान्मग्नां घोरादुद्धर मां विभो ॥ २७ ॥

अम्बा बोली—भगवन्! आप महान् व्रतधारी हैं। आज मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। प्रभो! इस भयंकर शोकसागरमें डूबनेसे मुझे बचाइये ॥ २७ ॥

*भीष्म उवाच*

तस्याश्च दृष्ट्वा रूपं च वपुश्चाभिनवं पुनः।
सौकुमार्यं परं चैव रामश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ २८ ॥
किमियं वक्ष्यतीत्येवं विममर्श भृगूद्वहः।
इति दध्यौ चिरं रामः कृपयाभिपरिप्लुतः ॥ २९ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! उसके सुन्दर रूप, नूतन (तरुण) शरीर तथा अत्यन्त सुकुमारताको देखकर परशुरामजी चिन्तामें पड़ गये कि न जाने यह क्या कहेगी? उसके प्रति दयाभावसे परिपूर्ण हो भृगुकुलभूषण परशुराम बहुत देरतक उसीके विषयमें चिन्ता करते रहे ॥ २८-२९ ॥

कथ्यतामिति सा भूयो रामेणोक्ता शुचिस्मिता।
सर्वमेव यथातत्त्वं कथयामास भार्गवे ॥ ३० ॥

तदनन्तर परशुरामजीके पुनः यह कहनेपर कि तुम अपनी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बातें कहीं, पवित्र मुसकानवाली अम्बाने उनसे अपना सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया ॥ ३० ॥

**तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु राजपुत्र्या वचस्तदा।**
**उवाच तां वरारोहां निश्चित्यार्थविनिश्चयम् ॥ ३१ ॥**

राजकुमारी अम्बाका यह कथन सुनकर जमदग्निनन्दन परशुरामने क्या करना है, इसका निश्चय करके उस सुन्दर अङ्गोंवाली राजकुमारीसे कहा ॥ ३१ ॥

*राम उवाच*

**प्रेषयिष्यामि भीष्माय कुरुश्रेष्ठाय भाविनि।**
**करिष्यति वचो मह्यं श्रुत्वा च स नराधिपः ॥ ३२ ॥**

परशुरामजी बोले—भाविनि ! मैं तुझे कुरुश्रेष्ठ भीष्मके पास भेजूँगा । नरपति भीष्म सुनते ही मेरी आज्ञाका पालन करेगा ॥ ३२ ॥

**न चेत् करिष्यति वचो मयोक्तं जाह्नवीसुतः।**
**धक्ष्याम्यहं रणे भद्रे सामात्यं शस्त्रतेजसा ॥ ३३ ॥**

भद्रे ! यदि गङ्गानन्दन भीष्म मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं युद्धमें अस्त्र-शस्त्रोंके तेजसे मन्त्रियोंसहित उसे भस्म कर डालूँगा ॥ ३३ ॥

**अथवा ते मतिस्तत्र राजपुत्रि न वर्तते।**
**यावच्छाल्वपतिं वीरं योजयाम्यत्र कर्मणि ॥ ३४ ॥**

अथवा राजकुमारी ! यदि वहाँ जानेका तेरा विचार न हो तो मैं वीर शाल्वराजको ही पहले इस कार्यमें नियुक्त करूँ ( उसके साथ तेरा ब्याह करा दूँ ) ॥ ३४ ॥

*अम्बोवाच*

**विसर्जिताहं भीष्मेण श्रुत्वैव भृगुनन्दन।**
**शाल्वराजगतं भावं मम पूर्वं मनीषितम् ॥ ३५ ॥**

अम्बा बोली—भृगुनन्दन ! शाल्वराजमें मेरा अनुराग है और मैं पहलेसे ही उन्हें पाना चाहती हूँ । यह सुनते ही भीष्मने मुझे विदा कर दिया था ॥ ३५ ॥

**सौभराजमुपेत्याहमवोचं दुर्वचं वचः।**
**न च मां प्रत्यगृह्णात् स चारित्र्यपरिशङ्कितः ॥ ३६ ॥**

तब सौभराजके पास जाकर मैंने उनसे ऐसी बातें कहीं जिन्हें अपने मुँहसे कहना स्त्रीजातिके लिये अत्यन्त दुष्कर होता है; परंतु मेरे चरित्रपर संदेह हो जानेके कारण उसने मुझे स्वीकार नहीं किया ॥ ३६ ॥

**एतत् सर्वं विनिश्चित्य स्वबुद्ध्या भृगुनन्दन।**
**यदत्रौपयिकं कार्यं तच्चिन्तयितुमर्हसि ॥ ३७ ॥**

भृगुनन्दन ! इन सब बातोंपर बुद्धिपूर्वक विचार करके जो उचित प्रतीत हो, उसी कार्यकी ओर आप ध्यान दें ॥ ३७ ॥

**मम तु व्यसनस्यास्य भीष्मो मूलं महाव्रतः।**
**येनाहं वशमानीता समुत्क्षिप्य बलात् तदा ॥ ३८ ॥**

मेरी इस विपत्तिका मूल कारण महान् व्रतधारी भीष्म है, जिसने उस समय बलपूर्वक मुझे उठाकर रथपर रख लिया और इस प्रकार मुझे वशमें करके वह हस्तिनापुर ले आया ॥ ३८ ॥

**भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम्।**
**प्राप्ताहं भृगुशार्दूल चराम्यप्रियमुत्तमम् ॥ ३९ ॥**

महाबाहु भृगुसिंह ! आप भीष्मको ही मार डालिये, जिसके कारण मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है और मैं इस प्रकार विवश होकर अत्यन्त अप्रिय आचरणमें प्रवृत्त हुई हूँ ॥ ३९ ॥

**स हि लुब्धश्च नीचश्च जितकाशी च भार्गव।**
**तस्मात् प्रतिक्रिया कर्तुं युक्ता तस्मै त्वयानघ ॥ ४० ॥**

निष्पाप भार्गव ! भीष्म लोभी, नीच और विजयोल्लाससे परिपूर्ण है; अतः आपको उसीसे बदला लेना उचित है ॥ ४० ॥

**एष मे क्रियमाणाया भारतेन तदा विभो।**
**अभवद्धृदि संकल्पो घातयेयं महाव्रतम् ॥ ४१ ॥**

प्रभो ! भरतवंशी भीष्मने जबसे मुझे इस दशामें डाल दिया है, तबसे मेरे हृदयमें यही संकल्प उठता है कि मैं उस महान् व्रतधारीका वध करा दूँ ॥ ४१ ॥

**तस्मात् कामं ममाद्येमं राम सम्पादयानघ।**
**जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरंदरः ॥ ४२ ॥**

निष्पाप महाबाहु राम ! आज आप मेरी इसी कामनाको पूर्ण कीजिये । जैसे इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था, उसी प्रकार आप भी भीष्मको मार डालिये ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामाम्बासंवादे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें अम्बा-परशुराम-संवादविषयक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७७ ॥

## अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

### अम्बा और परशुरामजीका संवाद, अकृतव्रणकी सलाह, परशुराम और भीष्मकी रोषपूर्ण बातचीत तथा उन दोनोंका युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें उतरना

*भीष्म उवाच*

**एवमुक्तस्तदा रामो जहि भीष्ममिति प्रभो।**
**उवाच रुदतीं कन्यां चोदयन्तीं पुनः पुनः ॥ १ ॥**
**काश्ये न कामं गृह्णामि शस्त्रं वै वरवर्णिनि।**
**ऋते ब्रह्मविदां हेतोः किमन्यत् करवाणि ते ॥ २ ॥**

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! अम्बाके ऐसा कहनेपर कि प्रभो ! भीष्मको मार डालिये । परशुरामजीने रो-रोकर बारंबार प्रेरणा देनेवाली उस कन्यासे इस प्रकार कहा—'सुन्दरी काशिराजकुमारी ! मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार किसी वेदवेत्ता ब्राह्मणकी आवश्यकता हो तो उसीके लिये शस्त्र उठाता हूँ । बिना कारण हुए बिना इच्छानुसार हथियार नहीं उठाता । अतः प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए मैं तेरा दूसरा कौन-सा कार्य करूँ ?

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**वाचा भीष्मश्च शाल्वश्च मम राज्ञि वशानुगौ ।**
**भविष्यतोऽनवद्याङ्गि तत् करिष्यामि मा शुचः ॥ ३ ॥**

'राजकन्ये ! भीष्म और शाल्व दोनों मेरी आज्ञाके अधीन होंगे । अतः निर्दोष अङ्गोंवाली सुन्दरी ! मैं तेरा कार्य करूँगा। तू शोक न कर ॥ ३ ॥

**न तु शस्त्रं ग्रहीष्यामि कथंचिदपि भाविनि ।**
**ऋते नियोगाद् विप्राणामेष मे समयः कृतः ॥ ४ ॥**

'भाविनि ! मैं किसी तरह ब्राह्मणोंकी आज्ञाके बिना हथियार नहीं उठाऊँगा, ऐसी मैंने प्रतिज्ञा कर रक्खी है' ॥ ४ ॥

*अम्बोवाच*

**मम दुःखं भगवता व्यपनेयं यतस्ततः ।**
**तच्च भीष्मप्रसूतं मे तं जहीश्वर मा चिरम् ॥ ५ ॥**

**अम्बा बोली**—भगवन् ! आप जैसे हो सके वैसे ही मेरा दुःख दूर करें । वह दुःख भीष्मने पैदा किया है; अतः प्रभो ! उसीका शीघ्र वध कीजिये ॥ ५ ॥

*राम उवाच*

**काशिकन्ये पुनर्ब्रूहि भीष्मस्ते चरणावुभौ ।**
**शिरसा वन्दनार्होऽपि ग्रहीष्यति गिरा मम ॥ ६ ॥**

**परशुरामजी बोले**—काशिराजकी पुत्री ! तू पुनः सोच-कर बता । यद्यपि भीष्म तेरे लिये वन्दनीय है, तथापि मेरे कहनेसे वह तेरे चरणोंको अपने सिरपर उठा लेगा ॥ ६ ॥

*अम्बोवाच*

**जहि भीष्मं रणे राम गर्जन्तमसुरं यथा ।**
**समाहूतो रणे राम मम चेदिच्छसि प्रियम् ।**
**प्रतिश्रुतं च यदपि तत् सत्यं कर्तुमर्हसि ॥ ७ ॥**

**अम्बा बोली**—राम ! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो युद्धमें आमन्त्रित हो, असुरके समान गर्जना करनेवाले भीष्मको मार डालिये और आपने जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है, उसे भी सत्य कीजिये ॥ ७ ॥

*भीष्म उवाच*

**तयोः संवदतोरेवं राजन् रामाम्बयोस्तदा ।**
**ऋषिः परमधर्मात्मा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥**

**भीष्मजी कहते हैं**—राजन् ! परशुराम और अम्बामें जब इस प्रकार बातचीत हो रही थी, उसी समय परम धर्मात्मा ऋषि अकृतव्रणने यह बात कही—॥ ८ ॥

**शरणागतां महाबाहो कन्यां न त्यक्तुमर्हसि ।**
**यदि भीष्मो रणे राम समाहूतस्त्वया मृधे ॥ ९ ॥**
**निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूयात् कुर्याद् वा वचनं तव ।**
**कृतमस्या भवेत् कार्यं कन्याया भृगुनन्दन ॥ १० ॥**

'महाबाहो ! यह कन्या शरणमें आयी है; अतः आपको इसका त्याग नहीं करना चाहिये । भृगुनन्दन राम ! यदि युद्धमें आपके बुलानेपर भीष्म सामने आकर अपनी पराजय स्वीकार करे अथवा आपकी बात ही मान ले तो इस कन्या-का कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ ९-१० ॥

**वाक्यं सत्यं च ते वीर भविष्यति कृतं विभो ।**
**इयं चापि प्रतिज्ञा ते तदा राम महामुने ॥ ११ ॥**
**जित्वा वै क्षत्रियान् सर्वान् ब्राह्मणेषु प्रतिश्रुता ।**
**ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव रणे यदि ॥ १२ ॥**
**ब्रह्मद्विड् भविता तं वै हनिष्यामीति भार्गव ।**
**शरणार्थं प्रपन्नानां भीतानां शरणार्थिनाम् ॥ १३ ॥**
**न शक्ष्यामि परित्यागं कर्तुं जीवन् कथंचन ।**
**यश्च कृत्स्नं रणे क्षत्रं विजेष्यति समागतम् ॥ १४ ॥**
**दीप्तात्मानमहं तं च हनिष्यामीति भार्गव ।**

'महामुने राम ! प्रभो ! ऐसा होनेसे आपकी कही हुई बात सत्य सिद्ध होगी । वीरवर भार्गव ! आपने समस्त क्षत्रियों-को जीतकर ब्राह्मणोंके बीचमें यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करेगा तो मैं उसे निश्चय ही मार डालूँगा । साथ ही भयभीत होकर शरणमें आये हुए शरणार्थियोंका परित्याग मैं जीते-जी किसी प्रकार नहीं कर सकूँगा और जो युद्धमें एकत्र हुए सम्पूर्ण क्षत्रियोंको जीत लेगा, उस तेजस्वी पुरुषका भी मैं वध कर डालूँगा ॥ ११-१४½ ॥

**स एवं विजयी राम भीष्मः कुरुकुलोद्वहः ।**
**तेन युध्यस्व संग्रामे समेत्य भृगुनन्दन ॥ १५ ॥**

'भृगुनन्दन राम ! इस प्रकार कुरुकुलका भार वहन करने-वाला भीष्म समस्त क्षत्रियोंपर विजय पा चुका है; अतः आप संग्राममें उसके सामने जाकर युद्ध कीजिये' ॥ १५ ॥

*राम उवाच*

**स्मराम्यहं पूर्वकृतां प्रतिज्ञामृषिसत्तम ।**
**तथैव च करिष्यामि यथा साम्नैव लप्स्यते ॥ १६ ॥**

**परशुरामजी बोले**—मुनिश्रेष्ठ ! मुझे अपनी पहलेकी की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण है, तथापि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि सामनीतिसे ही काम बन जाय ॥ १६ ॥

**कार्यमेतन्महद् ब्रह्मन् काशिकन्यामनोगतम् ।**
**गमिष्यामि स्वयं तत्र कन्यामादाय यत्र सः ॥ १७ ॥**

ब्रह्मन् ! काशिराजकी कन्याके मनमें जो यह कार्य है, वह महान् है । मैं उसकी सिद्धिके लिये इस कन्याको साथ लेकर स्वयं ही वहाँ जाऊँगा, जहाँ भीष्म है ॥ १७ ॥

**यदि भीष्मो रणश्लाघी न करिष्यति मे वचः ।**
**हनिष्याम्येनमुद्रिक्तमिति मे निश्चिता मतिः ॥ १८ ॥**

यदि युद्धकी स्पृहा रखनेवाला भीष्म मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं उस अभिमानीको मार डालूँगा; यह मेरा निश्चित विचार है ॥ १८ ॥

**न हि बाणा मयोत्सृष्टाः सज्जन्तीह शरीरिणाम् ।**
**कायेषु विदितं तुभ्यं पुरा क्षत्रियसंगरे ॥ १९ ॥**

मेरे चलाये हुए बाण देहधारियोंके शरीरमें अटकते नहीं हैं । ( उन्हें विदीर्ण करके बाहर निकल जाते हैं । ) यह बात तुम्हें पूर्वकालमें क्षत्रियोंके साथ होनेवाले युद्धके समय ज्ञात हो चुकी है ॥ १९ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**एवमुक्त्वा ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः।**
**प्रयाणाय मतिं कृत्वा समुत्तस्थौ महातपाः ॥ २० ॥**

ऐसा कहकर महातपस्वी परशुरामजी उन ब्रह्मवादी महर्षियोंके साथ प्रस्थान करनेका निश्चय करके उसके लिये उद्यत हो गये ॥ २० ॥

**ततस्ते तामुषित्वा तु रजनीं तत्र तापसाः।**
**हुताग्नयो जप्तजप्याः प्रतस्थुर्मज्जिघांसया ॥ २१ ॥**

तत्पश्चात् रातभर वहीं रहकर प्रातःकाल संध्योपासन, गायत्री-जप और अग्निहोत्र करके वे तपस्वी मुनि मेरा वध करनेकी इच्छासे उस आश्रमसे चले ॥ २१ ॥

**अभ्यगच्छत् ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः।**
**कुरुक्षेत्रं महाराज कन्यया सह भारत ॥ २२ ॥**

महाराज भरतनन्दन ! फिर उन वेदवादी मुनियोंको साथ ले परशुरामजी राजकन्या अम्बाके साथ कुरुक्षेत्रमें आये ॥

**न्यविशन्त ततः सर्वे परिगृह्य सरस्वतीम्।**
**तापसास्ते महात्मानो भृगुश्रेष्ठपुरस्कृताः ॥ २३ ॥**

वहाँ भृगुश्रेष्ठ परशुरामजीको आगे करके उन सभी तपस्वी महात्माओंने सरस्वती नदीके तटका आश्रय ले रात्रिमें निवास किया ॥ २३ ॥

*भीष्म उवाच*

**ततस्तृतीये दिवसे संदिदेश व्यवस्थितः।**
**कुरु प्रियं स मे राजन् प्राप्तोऽस्मीति महाव्रतः ॥ २४ ॥**

**भीष्मजी कहते हैं**—तदनन्तर तीसरे दिन ( हस्तिनापुरके बाहर ) एक स्थानपर ठहरकर महान् व्रतधारी परशुरामजीने मुझे संदेश दिया—'राजन्! मैं यहाँ आया हूँ। तुम मेरा प्रिय कार्य करो' ॥ २४ ॥

**तमागतमहं श्रुत्वा विषयान्तं महाबलम्।**
**अभ्यगच्छं जवेनाशु प्रीत्या तेजोनिधिं प्रभुम् ॥ २५ ॥**

तेजके भण्डार और महाबली भगवान् परशुरामको अपने राज्यकी सीमापर आया हुआ सुनकर मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ वेगपूर्वक उनके पास गया ॥ २५ ॥

**गां पुरस्कृत्य राजेन्द्र ब्राह्मणैः परिवारितः।**
**ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च तथैव च पुरोहितैः ॥ २६ ॥**

राजेन्द्र ! उस समय एक गौको आगे करके ब्राह्मणोंसे घिरा हुआ मैं देवताओंके समान तेजस्वी ऋत्विजों तथा पुरोहितोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुआ ॥ २६ ॥

**स मामभिगतं दृष्ट्वा जामदग्न्यः प्रतापवान्।**
**प्रतिजग्राह तां पूजां वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥**

मुझे अपने समीप आया हुआ देख प्रतापी परशुरामजीने मेरी दी हुई पूजा स्वीकार की और इस प्रकार कहा॥

*राम उवाच*

**भीष्म कां बुद्धिमास्थाय काशिराजसुता तदा।**
**अकामेन त्वयाऽऽनीता पुनश्चैव विसर्जिता ॥ २८ ॥**

**परशुरामजी बोले**—भीष्म ! तुमने किस विचारसे उन दिनों स्वयं पत्नीकी कामनासे रहित होते हुए भी काशिराजकी इस कन्याका अपहरण किया, अपने घर ले आये और पुनः इसे निकाल बाहर किया ॥ २८ ॥

**विभ्रंशिता त्वया हीयं धर्मादास्ते यशस्विनी।**
**परामृष्टां त्वया हीमां को हि गन्तुमिहार्हति ॥ २९ ॥**

तुमने इस यशस्विनी राजकुमारीको धर्मसे भ्रष्ट कर दिया है। तुम्हारे द्वारा इसका स्पर्श कर लिया गया है, ऐसी दशामें इसे दूसरा कौन ग्रहण कर सकता है ? ॥ २९ ॥

**प्रत्याख्याता हि शाल्वेन त्वयाऽऽनीतेति भारत।**
**तस्मादिमां मन्नियोगात् प्रतिगृह्णीष्व भारत ॥ ३० ॥**

भारत ! तुम इसे हरकर लाये थे। इसी कारणसे शाल्वराजने इसके साथ विवाह करनेसे इन्कार कर दिया है; अतः अब तुम मेरी आज्ञासे इसे ग्रहण कर लो ॥ ३० ॥

**स्वधर्मं पुरुषव्याघ्र राजपुत्री लभत्वियम्।**
**न युक्तस्त्ववमानोऽयं राज्ञां कर्तुं त्वयानघ ॥ ३१ ॥**

पुरुषसिंह ! तुम्हें ऐसा करना चाहिये, जिससे इस राजकुमारीको स्वधर्मपालनका अवसर प्राप्त हो। अनघ ! तुम्हें राजाओंका इस प्रकार अपमान करना उचित नहीं है ॥ ३१ ॥

**ततस्तं वै विमनसमुदीक्ष्याहमथाब्रुवम्।**
**नाहमेनां पुनर्दद्यां ब्रह्मन् भ्रात्रे कथंचन ॥ ३२ ॥**

तब मैंने परशुरामजीको उदास देखकर इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन् ! अब मैं इसका विवाह अपने भाईके साथ किसी प्रकार नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

**शाल्वस्याहमिति प्राह पुरा मामेव भार्गव।**
**मया चैवाभ्यनुज्ञाता गतेयं नगरं प्रति ॥ ३३ ॥**

'भृगुनन्दन ! इसने पहले मुझसे ही आकर कहा कि मैं शाल्वकी हूँ, तब मैंने इसे जानेकी आज्ञा दे दी और यह शाल्वराजके नगरको चली गयी ॥ ३३ ॥

**न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थलोभान्न काम्यया।**
**क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥ ३४ ॥**

'मैं भयसे, दयासे, धनके लोभसे तथा और किसी कामनासे भी क्षत्रियधर्मका त्याग नहीं कर सकता, यह मेरा स्वीकार किया हुआ व्रत है' ॥ ३४ ॥

**अथ मामब्रवीद् रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः।**
**न करिष्यसि चेदेतद् वाक्यं मे नरपुङ्गव ॥ ३५ ॥**
**हनिष्यामि सहामात्यं त्वामद्येति पुनः पुनः।**

तब यह सुनकर परशुरामजीके नेत्रोंमें क्रोधका भाव व्याप्त हो गया और वे मुझसे इस प्रकार बोले—'नरश्रेष्ठ ! यदि तुम मेरी यह बात नहीं मानोगे तो आज मैं मन्त्रियोंसहित तुम्हें मार डालूँगा।' इस बातको उन्होंने बार-बार दुहराया ॥ ३५½ ॥

**संरम्भादब्रवीद् रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३६ ॥**
**तमहं गीर्भिरिष्टाभिः पुनः पुनररिंदम।**
**अयाचं भृगुशार्दूलं न चैव प्रशशाम सः ॥ ३७ ॥**

शत्रुदमन दुर्योधन ! परशुरामजीने क्रोधभरे नेत्रोंसे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

देखते हुए बड़े रोषावेशमें आकर यह बात कही थी, तथापि मैं प्रिय वचनोंद्वारा उन भृगुश्रेष्ठ महात्मासे बार-बार शान्त रहनेके लिये प्रार्थना करता रहा; पर वे किसी प्रकार शान्त न हो सके ॥ ३६-३७ ॥

**प्रणम्य तमहं मूर्ध्ना भूयो ब्राह्मणसत्तमम् ।**
**अब्रुवं कारणं किं तद् यत् त्वं युद्धं मयेच्छसि ॥ ३८ ॥**
**इष्वस्त्रं मम बालस्य भवतैव चतुर्विधम् ।**
**उपदिष्टं महाबाहो शिष्योऽस्मि तव भार्गव ॥ ३९ ॥**

तब मैंने उन ब्राह्मणशिरोमणिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर पुनः प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! क्या कारण है कि आप मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं ? बाल्यावस्थामें आपने ही मुझे चार प्रकारके धनुर्वेदकी शिक्षा दी है। महाबाहु भार्गव ! मैं तो आपका शिष्य हूँ' ॥ ३८-३९ ॥

**ततो मामब्रवीद् रामः क्रोधसंरक्तलोचनः ।**
**जानीषे मां गुरुं भीष्म गृह्णासीमां न चैव ह ॥ ४० ॥**
**सुतां काश्यस्य कौरव्य मत्प्रियार्थं महामते ।**
**न हि ते विद्यते शान्तिरन्यथा कुरुनन्दन ॥ ४१ ॥**

तब परशुरामजीने क्रोधसे लाल आँखें करके मुझसे कहा—'महामते भीष्म ! तुम मुझे अपना गुरु तो समझते हो; परंतु मेरा प्रिय करनेके लिये काशिराजकी इस कन्याको ग्रहण नहीं करते हो; किंतु कुरुनन्दन ! ऐसा किये बिना तुम्हें शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ४०-४१ ॥

**गृहाणेमां महाबाहो रक्षस्व कुलमात्मनः ।**
**त्वया विभ्रंशिता हीयं भर्तारं नाधिगच्छति ॥ ४२ ॥**

'महाबाहो ! इसे ग्रहण कर लो और इस प्रकार अपने कुलकी रक्षा करो। तुम्हारे द्वारा अपनी मर्यादासे गिर जानेके कारण इसे पतिकी प्राप्ति नहीं हो रही है' ॥ ४२ ॥

**तथा ब्रुवन्तं तमहं रामं परपुरंजयम् ।**
**नैतदेवं पुनर्भावि ब्रह्मर्षे किं श्रमेण ते ॥ ४३ ॥**

ऐसी बातें करते हुए शत्रुनगरविजयी परशुरामजीसे मैंने स्पष्ट कह दिया—'ब्रह्मर्षे ! अब फिर ऐसी बात नहीं हो सकती। इस विषयमें आपके परिश्रमसे क्या होगा ? ॥४३॥

**गुरुत्वं त्वयि सम्प्रेक्ष्य जामदग्न्य पुरातनम् ।**
**प्रसादये त्वां भगवंस्त्यक्तैषा तु पुरा मया ॥ ४४ ॥**

'जमदग्निनन्दन ! भगवन् ! आप मेरे प्राचीन गुरु हैं, यह सोचकर ही मैं आपको प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। इस अम्बाको तो मैंने पहले ही त्याग दिया था ॥ ४४ ॥

**को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमिव स्थिताम् ।**
**वासयेत गृहे जानन् स्त्रीणां दोषो महात्ययः ॥ ४५ ॥**

'दूसरेके प्रति अनुराग रखनेवाली नारी सर्पिणीके समान भयंकर होती है। कौन ऐसा पुरुष होगा, जो जान-बूझकर उसे कभी भी अपने घरमें स्थान देगा; क्योंकि स्त्रियोंका ( परपुरुषमें अनुरागरूप ) दोष महान् अनर्थका कारण होता है ॥

**न भयाद् वासवस्यापि धर्मं जह्यां महाव्रत ।**
**प्रसीद मा वा यद् वा ते कार्यं तत् कुरु मा चिरम् ॥ ४६ ॥**

'महान् व्रतधारी राम ! मैं इन्द्रके भी भयसे धर्मका त्याग नहीं कर सकता। आप प्रसन्न हों या न हों। आपको जो कुछ करना हो, शीघ्र कर डालिये ॥ ४६ ॥

**अयं चापि विशुद्धात्मन् पुराणे श्रूयते विभो ।**
**मरुत्तेन महाबुद्धे गीतः श्लोको महात्मना ॥ ४७ ॥**
**"गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।**
**उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते" ॥ ४८ ॥**

'विशुद्ध हृदयवाले परम बुद्धिमान् राम ! पुराणमें महात्मा मरुत्तके द्वारा कहा हुआ यह श्लोक सुननेमें आता है कि यदि गुरु भी गर्वमें आकर कर्तव्य और अकर्तव्यको न समझते हुए कुपथका आश्रय ले तो उसका परित्याग कर दिया जाता है॥

**स त्वं गुरुरिति प्रेम्णा मया सम्मानितो भृशम् ।**
**गुरुवृत्तिं न जानीषे तस्माद् योत्स्यामि वै त्वया ॥४९॥**

'आप मेरे गुरु हैं, यह समझकर मैंने प्रेमपूर्वक आपका अधिक-से-अधिक सम्मान किया है; परंतु आप गुरुका-सा बर्ताव नहीं जानते; अतः मैं आपके साथ युद्ध करूँगा ॥४९॥

**गुरुं न हन्यां समरे ब्राह्मणं च विशेषतः ।**
**विशेषतस्तपोवृद्धमेवं क्षान्तं मया तव ॥ ५० ॥**

'एक तो आप गुरु हैं। उसमें भी विशेषतः ब्राह्मण हैं। उसपर भी विशेष बात यह है कि आप तपस्यामें बढ़े-चढ़े हैं। अतः आप-जैसे पुरुषको मैं कैसे मार सकता हूँ ? यही सोचकर मैंने अबतक आपके तीक्ष्ण बर्तावको चुपचाप सह लिया॥

**उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत् ।**
**यो हन्यात् समरे क्रुद्धं युध्यन्तमपलायिनम् ॥ ५१ ॥**
**ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः ।**
**क्षत्रियाणां स्थितो धर्मे क्षत्रियोऽस्मि तपोधन ॥ ५२ ॥**

'यदि ब्राह्मण भी क्षत्रियकी भाँति धनुष-बाण उठाकर युद्धमें क्रोधपूर्वक सामने आकर युद्ध करने लगे और पीठ दिखाकर भागे नहीं तो उसे इस दशामें देखकर जो योद्धा मार डालता है, उसे ब्रह्महत्याका दोष नहीं लगता, यह धर्मशास्त्रोंका निर्णय है। तपोधन ! मैं क्षत्रिय हूँ और क्षत्रियोंके ही धर्ममें स्थित हूँ ॥ ५१-५२ ॥

**यो यथा वर्तते यस्मिंस्तस्मिन्नेव प्रवर्तयन् ।**
**नाधर्मं समवाप्नोति न चाश्रेयश्च विन्दति ॥ ५३ ॥**

'जो जैसा बर्ताव करता है, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करनेवाला पुरुष न तो अधर्मको प्राप्त होता है और न अमङ्गलका ही भागी होता है ॥ ५३ ॥

**अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित् ।**
**अर्थसंशयमापन्नः श्रेयान्निःसंशयो नरः ॥ ५४ ॥**

'अर्थ ( लौकिक कृत्य ) और धर्मके विवेचनमें कुशल तथा देश-कालके तत्त्वको जाननेवाला पुरुष यदि अर्थके विषयमें संशय उत्पन्न होनेपर उसे छोड़कर संशयशून्य हृदयसे केवल धर्मका ही अनुष्ठान करे तो वह श्रेष्ठ माना गया है ॥ ५४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

यस्मात् संशयितेऽप्यर्थेऽयथान्यायं प्रवर्तसे।
तस्माद् योत्स्यामि सहितस्त्वया राम महाहवे ॥ ५५ ॥

'राम! 'अम्बा ग्रहण करने योग्य है या नहीं' यह संशयग्रस्त विषय है तो भी आप इसे ग्रहण करनेके लिये मुझसे न्यायोचित बर्ताव नहीं कर रहे हैं; इसलिये महान् समराङ्गणमें आपके साथ युद्ध करूँगा ॥ ५५ ॥

पश्य मे बाहुवीर्यं च विक्रमं चातिमानुषम्।
एवं गतेऽपि तु मया यच्छक्यं भृगुनन्दन ॥ ५६ ॥
तत् करिष्ये कुरुक्षेत्रे योत्स्ये विप्र त्वया सह।
द्वन्द्वे राम यथेष्टं मे सज्जीभव महाद्युते ॥ ५७ ॥

'आप उस समय मेरे बाहुबल और अलौकिक पराक्रमको देखियेगा। भृगुनन्दन! ऐसी स्थितिमें भी मैं जो कुछ कर सकता हूँ, उसे अवश्य करूँगा। विप्रवर! मैं कुरुक्षेत्रमें चलकर आपके साथ युद्ध करूँगा। महातेजस्वी राम! आप द्वन्द्व-युद्धके लिये इच्छानुसार तैयारी कर लीजिये ॥ ५६-५७ ॥

तत्र त्वं निहतो राम मया शरशतार्दितः।
प्राप्स्यसे निर्जितांल्लोकान् शस्त्रपूतो महारणे ॥ ५८ ॥

'राम! उस महान् युद्धमें मेरे सैकड़ों बाणोंसे पीड़ित एवं शस्त्रपूत हो मारे जानेपर आप पुण्य कर्मोंद्वारा जीते हुए दिव्य लोकोंको प्राप्त करेंगे ॥ ५८ ॥

स गच्छ विनिवर्तस्व कुरुक्षेत्रं रणप्रिय।
तत्रैष्यामि महाबाहो युद्धाय त्वां तपोधन ॥ ५९ ॥

'युद्धप्रिय महाबाहु तपोधन! अब आप लौटिये और कुरुक्षेत्रमें ही चलिये। मैं युद्धके लिये वहीं आपके पास आऊँगा॥

अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितुः।
तत्राहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्तास्मि भार्गव ॥ ६० ॥

'भृगुनन्दन परशुराम! जहाँ पूर्वकालमें अपने पिताको अञ्जलि-दान देकर आपने आत्मशुद्धिका अनुभव किया था, वहीं मैं भी आपको मारकर आत्मशुद्धि करूँगा ॥ ६० ॥

तत्र राम समागच्छ त्वरितं युद्धदुर्मद।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं पौराणं ब्राह्मणब्रुव ॥ ६१ ॥

'ब्राह्मण कहलानेवाले रणदुर्मद राम! आप तुरंत कुरुक्षेत्रमें पधारिये। मैं वहीं आकर आपके पुरातन दर्पका दलन करूँगा ॥ ६१ ॥

यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिषत्सु वै।
निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु ॥ ६२ ॥

'राम! आप जो बहुत बार भरी सभाओंमें अपनी प्रशंसाके लिये यह कहा करते हैं कि मैंने अकेले ही संसारके समस्त क्षत्रियोंको जीत लिया था तो उसका उत्तर सुन लीजिये ॥

न तदा जातवान् भीष्मः क्षत्रियो वापि मद्विधः।
पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया ॥ ६३ ॥

'उन दिनों भीष्म अथवा मेरे-जैसा दूसरा कोई क्षत्रिय नहीं उत्पन्न हुआ था। तेजस्वी क्षत्रिय तो पीछे उत्पन्न हुए हैं। आप तो घास-फूसमें ही प्रज्वलित हुए हैं (तिनकोंके समान दुर्बल क्षत्रियोंपर ही अपना तेज प्रकट किया है)॥

यस्ते युद्धमयं दर्पं कामं च व्यपनाशयेत्।
सोऽहं जातो महाबाहो भीष्मः परपुरंजयः।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः ॥ ६४ ॥

'महाबाहो! जो आपकी युद्धविषयक कामना तथा अभिमानको नष्ट कर सके, वह शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला यह भीष्म तो अब उत्पन्न हुआ है। राम! मैं युद्धमें आपका सारा घमंड चूर-चूर कर दूँगा, इसमें संशय नहीं है'॥

*भीष्म उवाच*

ततो मामब्रवीद् रामः प्रहसन्निव भारत।
दिष्ट्या भीष्म मया सार्धं योद्धुमिच्छसि संगरे ॥ ६५ ॥

**भीष्मजी कहते हैं**—भरतनन्दन! तब परशुरामजीने मुझसे हँसते हुए-से कहा—'भीष्म! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम रणक्षेत्रमें मेरे साथ युद्ध करना चाहते हो ॥ ६५ ॥

अयं गच्छामि कौरव्य कुरुक्षेत्रं त्वया सह।
भाषितं ते करिष्यामि तत्रागच्छ परंतप ॥ ६६ ॥
तत्र त्वां निहतं माता मया शरशताचितम्।
जाह्नवी पश्यतां भीष्म गृध्रकङ्कबलाशनम् ॥ ६७ ॥

'कुरुनन्दन! यह देखो, मैं तुम्हारे साथ युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें चलता हूँ। परंतप! वहीं आओ। मैं तुम्हारा कथन पूरा करूँगा। वहाँ तुम्हारी माता गङ्गा तुम्हें मेरे हाथसे मरकर सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त और कौओं, कङ्कों तथा गीधोंका भोजन बना हुआ देखेगी ॥ ६६-६७ ॥

कृपणं त्वामभिप्रेक्ष्य सिद्धचारणसेविता।
मया विनिहतं देवी रोदतामद्य पार्थिव ॥ ६८ ॥

'राजन्! तुम दीन हो। आज तुम्हें मेरे हाथसे मारा गया देख सिद्ध-चारणसेविता गङ्गादेवी रुदन करें ॥ ६८ ॥

अतदर्हा महाभागा भगीरथसुतानघा।
या त्वामजीजनन्मन्दं युद्धकामुकमातुरम् ॥ ६९ ॥

'यद्यपि वे महाभागा भगीरथपुत्री पापहीना गङ्गा यह दुःख देखनेके योग्य नहीं हैं, तथापि जिन्होंने तुम-जैसे युद्धकामी, आतुर एवं मूर्ख पुत्रको जन्म दिया है, उन्हें यह कष्ट भोगना ही पड़ेगा ॥ ६९ ॥

एहि गच्छ मया भीष्म युद्धकामुक दुर्मद।
गृहाण सर्वं कौरव्य रथादि भरतर्षभ ॥ ७० ॥

'युद्धकी इच्छा रखनेवाले मदोन्मत्त भीष्म! आओ, मेरे साथ चलो। भरतश्रेष्ठ कुरुनन्दन! रथ आदि सारी सामग्री साथ ले लो' ॥ ७० ॥

इति ब्रुवाणं तमहं रामं परपुरंजयम्।
प्रणम्य शिरसा राममेवमस्त्वित्यथाब्रुवम् ॥ ७१ ॥

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले परशुरामजीको इस प्रकार कहते देख मैंने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और 'एवमस्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की ॥ ७१ ॥

एवमुक्त्वा ययौ रामः कुरुक्षेत्रं युयुत्सया।
प्रविश्य नगरं चाहं सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ ७२ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ऐसा कहकर परशुरामजी युद्धकी इच्छासे कुरुक्षेत्रमें गये और मैंने नगरमें प्रवेश करके सत्यवतीसे यह सारा समाचार निवेदन किया ॥ ७२ ॥

**ततः कृतस्वस्त्ययनो मात्रा च प्रतिनन्दितः ।**
**द्विजातीन् वाच्य पुण्याहं स्वस्ति चैव महाद्युते ॥ ७३ ॥**
**रथमास्थाय रुचिरं राजतं पाण्डुरैर्हयैः ।**
**सूपस्करं स्वधिष्ठानं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ ७४ ॥**
**उपपन्नं महाशस्त्रैः सर्वोपकरणान्वितम् ।**
**तत्कुलीनेन वीरेण हयशास्त्रविदा रणे ॥ ७५ ॥**
**युक्तं सूतेन शिष्टेन बहुशो दृष्टकर्मणा ।**

महातेजस्वी नरेश ! उस समय स्वस्तिवाचन कराकर माता सत्यवतीने मेरा अभिनन्दन किया और मैं ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करा उनसे कल्याणकारी आशीर्वाद ले सुन्दर रजतमय रथपर आरूढ़ हुआ । उस रथमें श्वेत रंगके घोड़े जुते हुए थे । उसमें सब प्रकारकी आवश्यक सामग्री सुन्दर ढंगसे रक्खी गयी थी । उसकी बैठक बहुत सुन्दर थी । रथके ऊपर व्याघ्रचर्मका आवरण लगाया गया था । वह रथ बड़े-बड़े शस्त्रों तथा समस्त उपकरणोंसे सम्पन्न था । युद्धमें जिसका कार्य अनेक बार देख लिया गया था, ऐसे सुशिक्षित, कुलीन, वीर तथा अश्वशास्त्रके पण्डित सारथिद्वारा उस रथका संचालन और नियन्त्रण होता था ॥ ७३—७५½ ॥

**दंशितः पाण्डुरेणाहं कवचेन वपुष्मता ॥ ७६ ॥**
**पाण्डुरं कार्मुकं गृह्य प्रायां भरतसत्तम ।**

भरतश्रेष्ठ ! मैंने अपने शरीरपर श्वेतवर्णका कवच धारण करके श्वेत धनुष हाथमें लेकर यात्रा की ॥ ७६½ ॥

**पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥ ७७ ॥**
**पाण्डुरैश्चापि व्यजनैर्वीज्यमानो नराधिप ।**
**शुक्लवासाः सितोष्णीषः सर्वशुक्लविभूषणः ॥ ७८ ॥**

नरेश्वर ! उस समय मेरे मस्तकपर श्वेत छत्र तना हुआ था और मेरे दोनों ओर सफेद रंगके चँवर डुलाये जाते थे । मेरे वस्त्र, मेरी पगड़ी और मेरे समस्त आभूषण श्वेत वर्णके ही थे ॥ ७७-७८ ॥

**स्तूयमानो जयाशीर्भिर्निष्क्रम्य गजसाह्वयात् ।**
**कुरुक्षेत्रं रणक्षेत्रमुपायां भरतर्षभ ॥ ७९ ॥**

विजयसूचक आशीर्वादोंके साथ मेरी स्तुति की जा रही थी । भरतभूषण ! उस अवस्थामें मैं हस्तिनापुरसे निकलकर कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें आया ॥ ७९ ॥

**ते हयाश्चोदितास्तेन सूतेन परमाहवे ।**
**अवहन् मां भृशं राजन् मनोमारुतरंहसः ॥ ८० ॥**

राजन् ! मेरे घोड़े मन और वायुके समान वेगशाली थे। सारथिके हाँकनेपर उन्होंने बात-की-बातमें मुझे उस महान् युद्धके स्थानपर पहुँचा दिया ॥ ८० ॥

**गत्वाहं तत् कुरुक्षेत्रं स च रामः प्रतापवान् ।**
**युद्धाय सहसा राजन् पराक्रान्तौ परस्परम् ॥ ८१ ॥**

राजन् ! मैं तथा प्रतापी परशुरामजी दोनों कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर युद्धके लिये सहसा एक-दूसरेको पराक्रम दिखानेके लिये उद्यत हो गये ॥ ८१ ॥

**ततः संदर्शनेऽतिष्ठं रामस्यातितपस्विनः ।**
**प्रगृह्य शङ्खप्रवरं ततः प्राधममुत्तमम् ॥ ८२ ॥**

तदनन्तर मैं अत्यन्त तपस्वी परशुरामजीकी दृष्टिके सामने खड़ा हुआ और अपने श्रेष्ठ शङ्खको हाथमें लेकर उसे जोर-जोरसे बजाने लगा ॥ ८२ ॥

**ततस्तत्र द्विजा राजंस्तापसाश्च वनौकसः ।**
**अपश्यन्त रणं दिव्यं देवाः सेन्द्रगणास्तदा ॥ ८३ ॥**

राजन् ! उस समय वहाँ बहुत-से ब्राह्मण, वनवासी तपस्वी तथा इन्द्रसहित देवगण उस दिव्य युद्धको देखने लगे ॥

**ततो दिव्यानि माल्यानि प्रादुरासंस्ततस्ततः ।**
**वादित्राणि च दिव्यानि मेघवृन्दानि चैव ह ॥ ८४ ॥**

तदनन्तर वहाँ इधर-उधरसे दिव्य मालाएँ प्रकट होने लगीं और दिव्य वाद्य बज उठे । साथ ही सब ओर मेघोंकी घटाएँ छा गयीं ॥ ८४ ॥

**ततस्ते तापसाः सर्वे भार्गवस्यानुयायिनः ।**
**प्रेक्षकाः समपद्यन्त परिवार्य रणाजिरम् ॥ ८५ ॥**

तदनन्तर परशुरामजीके साथ आये हुए वे सब तपस्वी उस संग्रामभूमिको सब ओरसे घेरकर दर्शक बन गये ॥ ८५ ॥

**ततो मामब्रवीद् देवी सर्वभूतहितैषिणी ।**
**माता स्वरूपिणी राजन् किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ८६ ॥**

राजन् ! उस समय समस्त प्राणियोंका हित चाहनेवाली मेरी माता गङ्गादेवी स्वरूपतः प्रकट होकर बोलीं—'बेटा ! यह तू क्या करना चाहता है ? ॥ ८६ ॥

**गत्वाहं जामदग्न्यं तु प्रयाचिष्ये कुरूद्वह ।**
**भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति पुनः पुनः ॥ ८७ ॥**

'कुरुश्रेष्ठ ! मैं स्वयं जाकर जमदग्निनन्दन परशुरामजीसे बारंबार याचना करूँगी कि आप अपने शिष्य भीष्मके साथ युद्ध न कीजिये ॥ ८७ ॥

**मा मैवं पुत्र निर्बन्धं कुरु विप्रेण पार्थिव ।**
**जामदग्न्येन समरे योद्धुमित्येव भर्त्सयत् ॥ ८८ ॥**

'बेटा ! तू ऐसा आग्रह न कर । राजन् ! विप्रवर जमदग्निनन्दन परशुरामके साथ समरभूमिमें युद्ध करनेका हठ अच्छा नहीं है ।' ऐसा कहकर वे डाँट बताने लगीं ॥

**किन्न वै क्षत्रियहणो हरतुल्यपराक्रमः ।**
**विदितः पुत्र रामस्ते यतस्त्वं योद्धुमिच्छसि ॥ ८९ ॥**

अन्तमें वे फिर बोलीं—'बेटा ! क्षत्रियहन्ता परशुराम महादेवजीके समान पराक्रमी हैं । क्या तू उन्हें नहीं जानता, जो उनके साथ युद्ध करना चाहता है ?' ॥ ८९ ॥

**ततोऽहमब्रुवं देवीमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।**
**सर्वं तद् भरतश्रेष्ठ यथावृत्तं स्वयंवरे ॥ ९० ॥**

तब मैंने हाथ जोड़कर गङ्गादेवीको प्रणाम किया और

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्वयंवरमें जैसी घटना घटित हुई थी, वह सब वृत्तान्त उनसे आद्योपान्त कह सुनाया ॥ ९० ॥

**यथा च रामो राजेन्द्र मया पूर्वं प्रचोदितः।**
**काशिराजसुतायाश्च यथा कर्म पुरातनम्‌ ॥ ९१ ॥**

राजेन्द्र ! मैंने परशुरामजीसे पहले जो-जो बातें कही थीं तथा काशिराजकी कन्याकी जो पुरानी करतूतें थीं, उन सबको बता दिया॥ ९१ ॥

**ततः सा राममभ्येत्य जननी मे महानदी।**
**मदर्थं तमृषिं वीक्ष्य क्षमयामास भार्गवम्‌ ॥ ९२ ॥**

तत्पश्चात्‌ मेरी जन्मदायिनी माता गङ्गाने भृगुनन्दन परशुरामजीके पास जाकर मेरे लिये उनसे क्षमा माँगी ॥ ९२ ॥

**भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति वचोऽब्रवीत्‌।**
**स च तामाह याचन्तीं भीष्ममेव निवर्तय।**
**न च मे कुरुते काममित्यहं तमुपागमम्‌ ॥ ९३ ॥**

साथ ही यह भी कहा कि भीष्म आपका शिष्य है; अतः उसके साथ आप युद्ध न कीजिये। तब याचना करनेवाली मेरी मातासे परशुरामजीने कहा—'तुम पहले भीष्मको ही युद्धसे निवृत्त करो। वह मेरे इच्छानुसार कार्य नहीं कर रहा है; इसीलिये मैंने उसपर चढ़ाई की है' ॥ ९३ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**ततो गङ्गा सुतस्नेहाद्‌ भीष्मं पुनरुपागमत्‌।**
**न चास्याश्चाकरोद्‌ वाक्यं क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ९४ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तब गङ्गादेवी पुत्रस्नेहवश पुनः भीष्मके पास आयीं। उस समय भीष्मके नेत्रोंमें क्रोध व्याप्त हो रहा था; अतः उन्होंने भी माताका कहना नहीं माना ॥ ९४ ॥

**अथादृश्यत धर्मात्मा भृगुश्रेष्ठो महातपाः।**
**आह्वयामास च तदा युद्धाय द्विजसत्तमः ॥ ९५ ॥**

इतनेमें ही भृगुकुलतिलक ब्राह्मणशिरोमणि महातपस्वी धर्मात्मा परशुरामजी दिखायी दिये। उन्होंने सामने आकर युद्धके लिये भीष्मको ललकारा ॥ ९५ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि परशुरामभीष्मयोः कुरुक्षेत्रावतरणे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम और भीष्मका कुरुक्षेत्रमें युद्धके लिये अवतरणविषयक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७८ ॥

# एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## संकल्पनिर्मित रथपर आरूढ़ परशुरामजीके साथ भीष्मका युद्ध प्रारम्भ करना

*भीष्म उवाच*

**तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम्‌।**
**भूमिष्ठं नोत्सहे योद्धुं भवन्तं रथमास्थितः ॥ १ ॥**

**भीष्मजी कहते हैं**—राजन्‌ ! तब मैं युद्धके लिये खड़े हुए परशुरामजीसे मुसकराता हुआ-सा बोला—'ब्रह्मन्‌ ! मैं रथपर बैठा हूँ और आप भूमिपर खड़े हैं। ऐसी दशामें मैं आपके साथ युद्ध नहीं कर सकता ॥ १ ॥

**आरोह स्यन्दनं वीर कवचं च महाभुज।**
**बधान समरे राम यदि योद्धुं मयेच्छसि ॥ २ ॥**

'महाबाहो ! वीरवर राम ! यदि आप समरभूमिमें मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं तो रथपर आरूढ़ होइये और कवच भी बाँध लीजिये' ॥ २ ॥

**ततो मामब्रवीद्‌ रामः स्मयमानो रणाजिरे।**
**रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत्‌ ॥ ३ ॥**
**सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः।**
**सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन ॥ ४ ॥**

तब परशुरामजी समराङ्गणमें किंचित्‌ मुसकराते हुए मुझसे बोले—'कुरुनन्दन भीष्म ! मेरे लिये तो पृथ्वी ही रथ है, चारों वेद ही उत्तम अश्वोंके समान मेरे वाहन हैं, वायुदेव ही सारथि हैं और वेदमाताएँ ( गायत्री, सावित्री और सरस्वती ) ही कवच हैं। इन सबसे आवृत एवं सुरक्षित होकर मैं रणक्षेत्रमें युद्ध करूँगा' ॥ ३-४ ॥

**एवं ब्रुवाणो गान्धारे रामो मां सत्यविक्रमः।**
**शरव्रातेन महता सर्वतः प्रत्यवारयत्‌ ॥ ५ ॥**

गान्धारीनन्दन ! ऐसा कहते हुए सत्यपराक्रमी परशुरामजीने मुझे सब ओरसे अपने बाणोंके महान्‌ समुदाय द्वारा आवृत कर लिया ॥ ५ ॥

**ततोऽपश्यं जामदग्न्यं रथमध्ये व्यवस्थितम्‌।**
**सर्वायुधवरे श्रीमत्यद्भुतोपमदर्शने ॥ ६ ॥**

उस समय मैंने देखा, जमदग्निनन्दन परशुराम सम्पूर्ण श्रेष्ठ आयुधोंसे सुशोभित, तेजस्वी एवं अद्भुत दिखायी देनेवाले रथमें बैठे हैं ॥ ६ ॥

**मनसा विहिते पुण्ये विस्तीर्णे नगरोपमे।**
**दिव्याश्वयुजि संनद्धे काञ्चनेन विभूषिते ॥ ७ ॥**

उसका विस्तार एक नगरके समान था। उस पुण्यमय रथका निर्माण उन्होंने अपने मानसिक संकल्पसे किया था। उसमें दिव्य अश्व जुते हुए थे। वह स्वर्णभूषित रथ सब प्रकारसे सुसज्जित था ॥ ७ ॥

**कवचेन महाबाहो सोमार्ककृतलक्षणः।**
**धनुर्धरो बद्धतूणो बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्‌ ॥ ८ ॥**

महाबाहो ! परशुरामजीने एक सुन्दर कवच धारण कर रक्खा था, जिसमें चन्द्रमा और सूर्यके चिह्न बने हुए थे। उन्होंने हाथमें धनुष लेकर पीठपर तरकस बाँध रक्खा था और अंगुलियोंकी रक्षाके लिये गोहके चर्मके बने हुए दस्ताने पहन रक्खे थे ॥ ८ ॥

**सारथ्यं कृतवांस्तत्र युयुत्सोरकृतव्रणः।**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सखा वेदविदत्यन्तं दयितो भार्गवस्य ह ॥ ९ ॥

उस समय युद्धके इच्छुक परशुरामजीके प्रिय सखा वेदवेत्ता अकृतव्रणने उनके सारथिका कार्य सम्पन्न किया ॥

आह्वयानः स मां युद्धे मनो हर्षयतीव मे।
पुनः पुनरभिक्रोशन्नभियाहीति भार्गवः ॥ १० ॥

भृगुनन्दन राम 'आओ, आओ' कहकर बार-बार मुझे पुकारते और युद्धके लिये मेरा आह्वान करते हुए मेरे मनको हर्ष और उत्साह-सा प्रदान कर रहे थे ॥ १० ॥

तमादित्यमिवोद्यन्तमनाधृष्यं महाबलम्।
क्षत्रियान्तकरं राममेकमेकः समासदम् ॥ ११ ॥

उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, अजेय, महाबली और क्षत्रियविनाशक परशुराम अकेले ही युद्धके लिये खड़े थे। अतः मैं भी अकेला ही उनका सामना करनेके लिये गया॥

ततोऽहं बाणपातेषु त्रिषु वाहान् निगृह्य वै।
अवतीर्य धनुर्न्यस्य पदातिर्ऋषिसत्तमम् ॥ १२ ॥
अभ्यागच्छं तदा राममर्चिष्यन् द्विजसत्तमम्।
अभिवाद्य चैनं विधिवदब्रुवं वाक्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥

जब वे तीन बार मेरे ऊपर बाणोंका प्रहार कर चुके, तब मैं घोड़ोंको रोककर और धनुष रखकर रथसे उतर गया और उन ब्राह्मणशिरोमणि मुनिप्रवर परशुरामजीका समादर करनेके लिये पैदल ही उनके पास गया। जाकर विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम करनेके पश्चात् यह उत्तम वचन बोला—॥ १२-१३ ॥

योत्स्ये त्वया रणे राम सदृशेनाधिकेन वा।
गुरुणा धर्मशीलेन जयमाशास्व मे विभो ॥ १४ ॥

'भगवन् परशुराम ! आप मेरे समान अथवा मुझसे भी अधिक शक्तिशाली हैं। मेरे धर्मात्मा गुरु हैं। मैं इस रण-क्षेत्रमें आपके साथ युद्ध करूँगा; अतः आप मुझे विजयके लिये आशीर्वाद दें' ॥ १४ ॥

*राम उवाच*

एवमेतत् कुरुश्रेष्ठ कर्तव्यं भूतिमिच्छता।
धर्मो ह्येष महाबाहो विशिष्टैः सह युध्यताम् ॥ १५ ॥

परशुरामजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ ! अपनी उन्नतिके चाहनेवाले प्रत्येक योद्धाको ऐसा ही करना चाहिये। महाबाहो ! अपनेसे विशिष्ट गुरुजनोंके साथ युद्ध करनेवाले राजाओंका यही धर्म है ॥ १५ ॥

शपेयं त्वां न चेदेवमागच्छेथा विशाम्पते।
युध्यस्व त्वं रणे यत्तो धैर्यमालम्ब्य कौरव ॥ १६ ॥

प्रजानाथ ! यदि तुम इस प्रकार मेरे समीप नहीं आते तो मैं तुम्हें शाप दे देता। कुरुनन्दन ! तुम धैर्य धारण करके इस रणक्षेत्रमें प्रयत्नपूर्वक युद्ध करो ॥ १६ ॥

न तु ते जयमाशासे त्वां विजेतुमहं स्थितः।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण प्रीतोऽस्मि चरितेन ते ॥ १७ ॥

मैं तो तुम्हें विजयसूचक आशीर्वाद नहीं दे सकता; क्योंकि इस समय मैं तुम्हें पराजित करनेके लिये खड़ा हूँ। जाओ, धर्म-पूर्वक युद्ध करो। तुम्हारे इस शिष्टाचारसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥

ततोऽहं तं नमस्कृत्य रथमारुह्य सत्वरः।
प्राध्मापयं रणे शङ्खं पुनर्हेमपरिष्कृतम् ॥ १८ ॥

तब मैं उन्हें नमस्कार करके शीघ्र ही रथपर जा बैठा और उस युद्धभूमिमें मैंने पुनः अपने सुवर्णजटित शङ्खको बजाया॥

ततो युद्धं समभवन्मम तस्य च भारत।
दिवसान् सुबहून् राजन् परस्परजिगीषया ॥ १९ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! तदनन्तर एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे मेरा तथा परशुरामजीका युद्ध बहुत दिनोंतक चलता रहा॥

स मे तस्मिन् रणे पूर्वं प्राहरत् कङ्कपत्रिभिः।
षष्ट्या शतैश्च नवभिः शराणां नतपर्वणाम् ॥ २० ॥

उस रणभूमिमें उन्होंने ही पहले मेरे ऊपर गीधकी पाँखोंसे सुशोभित तथा मुड़े हुए पर्ववाले नौ सौ साठ बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ २० ॥

चत्वारस्तेन मे वाहाः सूतश्चैव विशाम्पते।
प्रतिरुद्धास्तथैवाहं समरे दंशितः स्थितः ॥ २१ ॥

राजन् ! उन्होंने मेरे चारों घोड़ों तथा सारथिको भी अवरुद्ध कर दिया तो भी मैं पूर्ववत् कवच धारण किये उस समरभूमिमें डटा रहा ॥ २१ ॥

नमस्कृत्य च देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् देवताओं और विशेषतः ब्राह्मणोंको नमस्कार करके मैं रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीसे मुसकराता हुआ-सा बोला—॥

आचार्यता मानिता मे निर्मर्यादे ह्यपि त्वयि।
भूयश्च शृणु मे ब्रह्मन् सम्पदं धर्मसंग्रहे ॥ २३ ॥

'ब्रह्मन् ! यद्यपि आप अपनी मर्यादा छोड़ बैठे हैं तो भी मैंने सदा आपके आचार्यत्वका सम्मान किया है। धर्मसंग्रह-के विषयमें मेरा जो दृढ़ विचार है, उसे आप पुनः सुन लीजिये ॥

ये ते वेदाः शरीरस्था ब्राह्मण्यं यच्च ते महत्।
तपश्च ते महत् तप्तं न तेभ्यः प्रहराम्यहम् ॥ २४ ॥

'विप्रवर ! आपके शरीरमें जो वेद हैं, जो आपका महान् ब्राह्मणत्व है तथा आपने जो बड़ी भारी तपस्या की है, उन सबके ऊपर मैं बाणोंका प्रहार नहीं करता हूँ ॥२४॥

प्रहरे क्षत्रधर्मस्य यं राम त्वं समाश्रितः।
ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् ॥ २५ ॥

'राम ! आपने जिस क्षत्रियधर्मका आश्रय लिया है, मैं उसीपर प्रहार करूँगा; क्योंकि ब्राह्मण हथियार उठाते ही क्षत्रियभावको प्राप्त कर लेता है ॥ २५ ॥

पश्य मे धनुषो वीर्यं पश्य बाह्वोर्बलं मम।
एष ते कार्मुकं वीर छिनद्मि निशितेषुणा ॥ २६ ॥

'अब आप मेरे धनुषकी शक्ति और मेरी भुजाओंका बल देखिये। वीर ! मैं अपने बाणसे आपके धनुषको अभी काट देता हूँ' ॥ २६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तस्याहं निशितं भल्लं चिक्षेप भरतर्षभ।
तेनास्य धनुषः कोटिं छित्त्वा भूमावपातयम् ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर मैंने उनके ऊपर तेज धारवाले एक भल्ल नामक बाणका प्रहार किया और उसके द्वारा उनके धनुषकी कोटि ( अग्रभाग ) को काटकर पृथ्वी-पर गिरा दिया ॥ २७ ॥

तथैव च पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम्।
चिक्षेप कङ्कपत्राणां जामदग्न्यरथं प्रति ॥ २८ ॥

इसी प्रकार परशुरामजीके रथकी ओर मैंने गीधकी पाँख और झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण चलाये ॥ २८ ॥

काये विषक्तास्तु तदा वायुना समुदीरिताः।
चेलुः क्षरन्तो रुधिरं नागा इव च ते शराः ॥ २९ ॥

वे बाण वायुद्वारा उड़ाये हुए सर्पोंकी भाँति परशुरामजी-के शरीरमें धँसकर खून बहाते हुए चल दिये ॥ २९ ॥

क्षतजोक्षितसर्वाङ्गः क्षरन् स रुधिरं रणे।
बभौ रामस्तदा राजन् मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ॥ ३० ॥

राजन् ! उस समय उनके सारे अङ्ग लहू-लुहान हो गये। जैसे मेरु पर्वत वर्षाकालमें गेरु आदि धातुओंसे मिश्रित जलकी धार बहाता है, उसी प्रकार उस रण-भूमिमें अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए परशुराम-जी शोभा पाने लगे ॥ ३० ॥

हेमन्तान्तेऽशोक इव रक्तस्तबकमण्डितः।
बभौ रामस्तथा राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ ३१ ॥

राजन् ! जैसे वसन्त ऋतुमें लाल फूलोंके गुच्छोंसे अलंकृत अशोक और खिला हुआ पलाश सुशोभित होता है, परशु-रामजीकी भी वैसी ही शोभा हुई ॥ ३१ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय रामः क्रोधसमन्वितः।
हेमपुङ्खान् सुनिशितान्शरांस्तान् हि ववर्ष सः॥ ३२ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए परशुरामजीने दूसरा धनुष लेकर सोनेकी पाँखोंसे सुशोभित अत्यन्त तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ की ॥ ३२ ॥

ते समासाद्य मां रौद्रा बहुधा मर्मभेदिनः।
अकम्पयन् महावेगाः सर्पानलविषोपमाः ॥ ३३ ॥

वे नाना प्रकारके भयंकर बाण मुझपर चोट करके मेरे मर्मस्थानोंका भेदन करने लगे। उनका वेग महान् था। वे सर्प, अग्नि और विषके समान जान पड़ते थे। उन्होंने मुझे कम्पित कर दिया ॥ ३३ ॥

तमहं समवष्टभ्य पुनरात्मानमाहवे।
शतसंख्यैः शरैः क्रुद्धस्तदा राममवाकिरम् ॥ ३४ ॥

तब मैंने पुनः अपने आपको स्थिर करके कुपित हो उस युद्धमें परशुरामजीपर सैकड़ों बाण बरसाये ॥ ३४ ॥

स तैरग्न्यर्कसंकाशैः शरैराशीविषोपमैः।
शितैरभ्यर्दितो रामो मन्दचेता इवाभवत् ॥ ३५ ॥

वे बाण अग्नि, सूर्य तथा विषधर सर्पोंके समान भयंकर एवं तीक्ष्ण थे। उनसे पीड़ित होकर परशुरामजी अचेत-से हो गये ॥ ३५ ॥

ततोऽहं कृपयाऽऽविष्टो विष्टभ्यात्मानमात्मना।
धिग्धिगित्यब्रुवं युद्धं क्षत्रधर्मं च भारत ॥ ३६ ॥

भारत ! तब मैं दयासे द्रवित हो स्वयं ही अपने आपमें धैर्य लाकर युद्ध और क्षत्रियधर्मको धिक्कार देने लगा।

असकृच्चाब्रुवं राजन् शोकवेगपरिप्लुतः।
अहो बत कृतं पापं मयेदं क्षत्रधर्मणा ॥ ३७ ॥
गुरुर्द्विजातिर्धर्मात्मा यदेवं पीडितः शरैः।

राजन् ! उस समय शोकके वेगसे व्याकुल हो मैं बार-बार इस प्रकार कहने लगा—'अहो ! मुझ क्षत्रियने यह बड़ा भारी पाप कर डाला, जो कि धर्मात्मा एवं ब्राह्मण गुरुको इस प्रकार बाणोंसे पीड़ित किया' ॥ ३७½ ॥

ततो न प्राहरं भूयो जामदग्न्याय भारत ॥ ३८ ॥
अथावताप्य पृथिवीं पूषा दिवससंक्षये।
जगामास्तं सहस्रांशुस्ततो युद्धमुपारमत् ॥ ३९ ॥

भारत ! उसके बादसे मैंने परशुरामजीपर फिर प्रहार नहीं किया। इधर सहस्र किरणोंवाले भगवान् सूर्य इस पृथ्वीको तपाकर दिनका अन्त होनेपर अस्त हो गये; इसलिये वह युद्ध बंद हो गया ॥ ३८-३९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम और भीष्मका युद्धविषयक एक सौ उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७९ ॥

# अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## भीष्म और परशुरामका घोर युद्ध

भीष्म उवाच

आत्मनस्तु ततः सूतो हयानां च विशाम्पते।
मम चापनयामास शल्यान् कुशलसम्मतः ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अपने कार्यमें कुशल एवं सम्मानित सारथिने अपने, घोड़ोंके तथा मेरे भी शरीरमें चुभे हुए बाणोंको निकाला ॥ १ ॥

स्नातापवृत्तैस्तुरगैर्लब्धतोयैरविह्वलैः।
प्रभाते चोदिते सूर्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

घोड़े टहलाये गये और लोट-पोट कर लेनेपर नहलाये गये; फिर उन्हें पानी पिलाया गया, इस प्रकार जब वे स्वस्थ और शान्त हुए, तब प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर फिर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**दृष्ट्वा मां तूर्णमायान्तं दंशितं स्यन्दने स्थितम् ।**
**अकरोद् रथमत्यर्थं रामः सज्जं प्रतापवान् ॥ ३ ॥**

मुझे रथपर बैठकर कवच धारण किये शीघ्रतापूर्वक आते देख प्रतापी परशुरामजीने अपने रथको अत्यन्त सुसज्जित किया ॥ ३ ॥

**ततोऽहं राममायान्तं दृष्ट्वा समरकाङ्क्षिणम् ।**
**धनुः श्रेष्ठं समुत्सृज्य सहसावतरं रथात् ॥ ४ ॥**

तदनन्तर युद्धकी इच्छावाले परशुरामजीको आते देख मैं अपना श्रेष्ठ धनुष छोड़कर सहसा रथसे उतर पड़ा ॥ ४ ॥

**अभिवाद्य तथैवाहं रथमारुह्य भारत ।**
**युयुत्सुर्जामदग्न्यस्य प्रमुखे वीतभीः स्थितः ॥ ५ ॥**

भारत ! पूर्ववत् गुरुको प्रणाम करके अपने रथपर आरूढ़ हो युद्धकी इच्छासे परशुरामजीके सामने मैं निर्भय होकर डट गया ॥

**ततोऽहं शरवर्षेण महता समवाकिरम् ।**
**स च मां शरवर्षेण वर्षन्तं समवाकिरत् ॥ ६ ॥**

तदनन्तर मैंने उनपर बाणोंकी भारी वर्षा की । फिर उन्होंने भी बाणोंकी वर्षा करनेवाले मुझ भीष्मपर बहुत-से बाण बरसाये ॥ ६ ॥

**संक्रुद्धो जामदग्न्यस्तु पुनरेव सुतेजितान् ।**
**सम्प्रैषीन्मे शरान् घोरान् दीप्तास्यानुरगानिव ॥ ७ ॥**

तत्पश्चात् जमदग्निकुमारने पुनः अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझपर प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंकी भाँति तेज किये हुए भयानक बाण चलाये ॥ ७ ॥

**ततोऽहं निशितैर्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ।**
**अच्छिदं सहसा राजन्नन्तरिक्षे पुनः पुनः ॥ ८ ॥**

राजन् ! तब मैंने सहसा तीखी धारवाले भल्लनामक बाणोंसे आकाशमें ही उन सबके सैकड़ों और हजारों टुकड़े कर दिये । यह क्रिया बारंबार चलती रही ॥ ८ ॥

**ततस्त्वस्त्राणि दिव्यानि जामदग्न्यः प्रतापवान् ।**
**मयि प्रयोजयामास तान्यहं प्रत्यषेधयम् ॥ ९ ॥**
**अस्त्रैरेव महाबाहो चिकीर्षन्नधिकां क्रियाम् ।**

इसके पश्चात् प्रतापी परशुरामजीने मेरे ऊपर दिव्यास्त्रोंका प्रयोग आरम्भ किया; परंतु महाबाहो ! मैंने उनसे भी अधिक पराक्रम प्रकट करनेकी इच्छा रखकर उन सब अस्त्रोंका दिव्यास्त्रोंद्वारा ही निवारण कर दिया ॥ ९½ ॥

**ततो दिवि महान् नादः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥ १० ॥**
**ततोऽहमस्त्रं वायव्यं जामदग्न्ये प्रयुक्तवान् ।**
**प्रत्याजघ्ने च तद् रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥ ११ ॥**

उस समय आकाशमें चारों ओर बड़ा कोलाहल होने लगा । इसी समय मैंने जमदग्निकुमारपर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया । भारत ! परशुरामजीने गुह्यकास्त्रद्वारा मेरे उस अस्त्रको शान्त कर दिया ॥ १०-११ ॥

**ततोऽहमस्त्रमाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान् ।**
**वारुणेनैव तद् रामो वारयामास मे विभुः ॥ १२ ॥**

तत्पश्चात् मैंने मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया; किंतु भगवान् परशुरामने वारुणास्त्र चलाकर उसका निवारण कर दिया ॥ १२ ॥

**एवमस्त्राणि दिव्यानि रामस्याहमवारयम् ।**
**रामश्च मम तेजस्वी दिव्यास्त्रविदरिंदमः ॥ १३ ॥**

इस प्रकार मैं परशुरामजीके दिव्यास्त्रोंका निवारण करता और शत्रुओंका दमन करनेवाले दिव्यास्त्रवेत्ता तेजस्वी परशुराम भी मेरे अस्त्रोंका निवारण कर देते थे ॥ १३ ॥

**ततो मां सव्यतो राजन् रामः कुर्वन् द्विजोत्तमः ।**
**उरस्यविध्यत् संक्रुद्धो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १४ ॥**

राजन् ! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए प्रतापी विप्रवर परशुरामने मुझे बायें लेकर मेरे वक्षःस्थलको बाणद्वारा बींध दिया ॥

**ततोऽहं भरतश्रेष्ठ संन्यषीदं रथोत्तमे ।**
**ततो मां कश्मलाविष्टं सूतस्तूर्णमुदावहत् ॥ १५ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! उससे घायल होकर मैं उस श्रेष्ठ रथपर बैठ गया, उस समय मुझे मूर्च्छित अवस्थामें देखकर सारथि शीघ्र ही अन्यत्र हटा ले गया ॥ १५ ॥

**ग्लायन्तं भरतश्रेष्ठ रामबाणप्रपीडितम् ।**
**ततो मामपयातं वै भृशं विद्धमचेतसम् ॥ १६ ॥**
**रामस्यानुचरा हृष्टाः सर्वे दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ।**
**अकृतव्रणप्रभृतयः काशिकन्या च भारत ॥ १७ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! परशुरामजीके बाणसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण मुझे बड़ी व्याकुलता हो रही थी । मैं अत्यन्त घायल और अचेत होकर रणभूमिसे दूर हट गया था । भारत ! इस अवस्थामें मुझे देखकर परशुरामजीके अकृतव्रण आदि सेवक तथा काशिराजकी कन्या अम्बा ये सब-के-सब अत्यन्त प्रसन्न हो कोलाहल करने लगे ॥ १६-१७ ॥

**ततस्तु लब्धसंज्ञोऽहं ज्ञात्वा सूतमथाब्रुवम् ।**
**याहि सूत यतो रामः सज्जोऽहं गतवेदनः ॥ १८ ॥**

इतनेहीमें मुझे चेत हो गया और सब कुछ जानकर मैंने सारथिसे कहा—'सूत ! जहाँ परशुरामजी हैं, वहीं चलो । मेरी पीड़ा दूर हो गयी है और अब मैं युद्धके लिये सुसज्जित हूँ' ॥

**ततो मामवहत् सूतो हयैः परमशोभितैः ।**
**नृत्यद्भिरिव कौरव्य मारुतप्रतिमैर्गतौ ॥ १९ ॥**

कुरुनन्दन ! तब सारथिने अत्यन्त शोभाशाली अश्वोंद्वारा, जो वायुके समान वेगसे चलनेके कारण नृत्य करते-से जान पड़ते थे, मुझे युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ १९ ॥

**ततोऽहं राममासाद्य बाणवर्षैश्च कौरव ।**
**अवाकिरं सुसंरब्धः संरब्धं च जिगीषया ॥ २० ॥**

कौरव ! तब मैंने क्रोधमें भरे हुए परशुरामजीके पास पहुँचकर उन्हें जीतनेकी इच्छासे स्वयं भी कुपित होकर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २० ॥

**तानापतत एवासौ रामो बाणानजिह्मगान् ।**
**बाणैरेवाच्छिनत् तूर्णमेकैकं त्रिभिराहवे ॥ २१ ॥**



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, V

किंतु परशुरामजीने सीधे लक्ष्यकी ओर जानेवाले उन बाणोंके आते ही एक-एकको तीन-तीन बाणोंसे तुरंत काट दिया॥

**ततस्ते सूदिताः सर्वे मम बाणाः सुसंशिताः।**
**रामबाणैर्द्विधा छिन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः॥ २२॥**

इस प्रकार मेरे चलाये हुए वे सब सैकड़ों और हजारों तीखे बाण परशुरामजीके सायकोंसे कटकर दो-दो टूक हो नष्ट हो गये॥ २२॥

**ततः पुनः शरं दीप्तं सुप्रभं कालसम्मितम्।**
**असृजं जामदग्न्याय रामायाहं जिघांसया॥ २३॥**

तब मैंने पुनः जमदग्निनन्दन परशुरामकी ओर उन्हें मार डालनेकी इच्छासे एक 'कालाग्निके समान प्रज्वलित तथा तेजस्वी बाण छोड़ा॥ २३॥

**तेन त्वभिहतो गाढं बाणवेगवशं गतः।**
**मुमोह समरे रामो भूमौ च निपपात ह॥ २४॥**

उसकी गहरी चोट खाकर परशुरामजी उस बाणके वेगके अधीन हो समरभूमिमें मूर्च्छित हो गये और धरतीपर गिर पड़े॥ २४॥

**ततो हाहाकृतं सर्वं रामे भूतलमाश्रिते।**
**जगद् भारत संविग्नं यथार्कपतने भवेत्॥ २५॥**

परशुरामके पृथ्वीपर गिरते ही मानो आकाशसे सूर्य टूटकर गिरे हों, ऐसा समझकर सारा जगत् भयभीत हो हाहाकार करने लगा॥ २५॥

**तत एनं समुद्विग्नाः सर्वे एवाभिदुद्रुवुः।**
**तपोधनास्ते सहसा काश्या च कुरुनन्दन॥ २६॥**
**तत एनं परिष्वज्य शनैराश्वासयंस्तदा।**
**पाणिभिर्जलशीतैश्च जयाशीर्भिश्च कौरव॥ २७॥**

कुरुनन्दन! उस समय वे तपोधन और काशिराजकी कन्या सब-के-सब अत्यन्त उद्विग्न हो सहसा उनके पास दौड़े गये और उन्हें हृदयसे लगा हाथ फेरकर तथा शीतल जल छिड़ककर विजयसूचक आशीर्वाद देते हुए सान्त्वना देने लगे॥ २६-२७॥

**ततः स विह्वलं वाक्यं राम उत्थाय चाब्रवीत्।**
**तिष्ठ भीष्म हतोऽसीति बाणं संधाय कार्मुके॥ २८॥**

तदनन्तर कुछ स्वस्थ होनेपर परशुरामजी उठ गये और धनुषपर बाण चढ़ाकर विह्वल स्वरमें बोले—'भीष्म! खड़े रहो, अब तुम मारे गये'॥ २८॥

**स मुक्तो न्यपतत् तूर्णं सव्ये पार्श्वे महाहवे।**
**येनाहं भृशमुद्विग्नो व्याघूर्णित इव द्रुमः॥ २९॥**

उस महान् युद्धमें उनके धनुषसे छूटा हुआ वह बाण तुरंत मेरी बायीं पसलीपर पड़ा, जिससे मैं अत्यन्त उद्विग्न होकर वृक्षकी भाँति झूमने लगा॥ २९॥

**हत्वा हयांस्ततो रामः शीघ्रास्त्रेण महाहवे।**
**अवाकिरन्मां विस्रब्धो बाणैस्तैर्लोमवाहिभिः॥ ३०॥**

फिर तो परशुरामजी उस महासमरमें शीघ्र छोड़े हुए अस्त्रद्वारा मेरे घोड़ोंको मारकर निर्भय हो मेरे ऊपर पाँखवाले उड़नेवाले बाणोंसे वर्षा करने लगे॥ ३०॥

**ततोऽहमपि शीघ्रास्त्रं समरप्रतिवारणम्।**
**अवासृजं महाबाहो तेऽन्तराधिष्ठिताः शराः॥ ३१॥**
**रामस्य मम चैवाशु व्योमावृत्य समन्ततः।**

महाबाहो! तत्पश्चात् मैंने भी शीघ्रतापूर्वक ऐसे अस्त्रोंका प्रयोग आरम्भ किया, जो युद्धभूमिमें विपक्षीकी गतिको रोक देनेवाले थे। मेरे तथा परशुरामजीके बाण आकाशमें सब ओर फैलकर मध्यभागमें ही ठहर गये॥ ३१½॥

**न स्म सूर्यः प्रतपति शरजालसमावृतः॥ ३२॥**
**मातरिश्वा ततस्तस्मिन् मेघरुद्ध इवाभवत्।**

उस समय बाणोंके समूहसे आच्छादित होनेके कारण सूर्य नहीं तपता था और वायुकी गति इस प्रकार कुण्ठित हो गयी थी, मानो मेघोंसे अवरुद्ध हो गयी हो॥ ३२½॥

**ततो वायोः प्रकम्पाच्च सूर्यस्य च गभस्तिभिः॥ ३३॥**
**अभिघातप्रभावाच्च पावकः समजायत।**

उस समय वायुके कम्पन और सूर्यकी किरणोंसे समस्त बाण परस्पर टकराने लगे। उनकी रगड़से वहाँ आग प्रकट हो गयी॥ ३३½॥

**ते शराः स्वसमुत्थेन प्रदीप्ताश्चित्रभानुना॥ ३४॥**
**भूमौ सर्वे तदा राजन् भस्मभूताः प्रपेदिरे।**

राजन्! वे सभी बाण अपने ही संघर्षसे उत्पन्न हुई अग्निसे जलकर भस्म हो गये और भूमिपर गिर पड़े॥

**तदा शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च॥ ३५॥**
**अयुतान्यथ खर्वाणि निखर्वाणि च कौरव।**
**रामः शराणां संक्रुद्धो मयि तूर्णं न्यपातयत्॥ ३६॥**

कौरवनरेश! उस समय परशुरामजीने अत्यन्त कुद्ध हो कर मेरे ऊपर तुरंत ही दस हजार, लाख, दस लाख, अर्बुद, खर्व और निखर्व बाणोंका प्रहार किया॥ ३५-३६॥

**ततोऽहं तानपि रणे शरैराशीविषोपमैः।**
**संछिद्य भूमौ नृपते पातयेयं नगानिव॥ ३७॥**

नरेश्वर! तब मैंने रणभूमिमें विषधर सर्पके समान भयंकर सायकोंद्वारा उन सब बाणोंको वृक्षोंकी भाँति भूमिपर काट गिराया॥ ३७॥

**एवं तदभवद् युद्धं तदा भरतसत्तम।**
**संध्याकाले व्यतीते तु व्यपायात् स च मे गुरुः॥ ३८॥**

भरतभूषण! इस प्रकार वह युद्ध चलता रहा। संध्याकाल बीतनेपर मेरे गुरु रणभूमिसे हट गये॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुरामभीष्मयुद्धविषयक एक सौ असीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८०॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## भीष्म और परशुरामका युद्ध

भीष्म उवाच

**समागतस्य रामेण पुनरेवातिदारुणम् ।**
**अन्येद्युस्तुमुलं युद्धं तदा भरतसत्तम ॥ १ ॥**

भीष्मजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! दूसरे दिन परशुरामजी-के साथ भेंट होनेपर पुनः अत्यन्त भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥

**ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।**
**अयोजयत स धर्मात्मा दिवसे दिवसे विभुः ॥ २ ॥**

फिर तो दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता, शूरवीर एवं धर्मात्मा भगवान् परशुरामजी प्रतिदिन अनेक प्रकारके अलौकिक अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे ॥ २ ॥

**तान्यहं तत्प्रतीघातैरस्त्रैरस्त्राणि भारत ।**
**व्यधमं तुमुले युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ ३ ॥**

भारत ! उस तुमुल युद्धमें अपने दुस्त्यज प्राणोंकी परवा न करके मैंने उनके सभी अस्त्रोंका विघातक अस्त्रोंद्वारा संहार कर डाला ॥ ३ ॥

**अस्त्रैरस्त्रेषु बहुधा हतेष्वेव च भारत ।**
**अक्रुध्यत महातेजास्त्यक्तप्राणः स संयुगे ॥ ४ ॥**

भरतनन्दन ! इस प्रकार बार-बार मेरे अस्त्रोंद्वारा अपने अस्त्रोंके विनष्ट होनेपर महातेजस्वी परशुरामजी उस युद्धमें प्राणोंका मोह छोड़कर अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ४ ॥

**ततः शक्तिं प्राहिणोद् घोररूपा-**
**मस्त्रे रुद्धे जामदग्न्यो महात्मा ।**
**कालोत्सृष्टां प्रज्वलितामिवोल्कां**
**संदीप्ताग्रां तेजसा व्याप्य लोकम् ॥ ५ ॥**

इस प्रकार अपने अस्त्रोंका अवरोध होनेपर जमदग्नि-नन्दन महात्मा परशुरामने कालकी छोड़ी हुई प्रज्वलित उल्का-के समान एक भयंकर शक्ति छोड़ी; जिसका अग्रभाग उद्दीप्त हो रहा था । वह शक्ति अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकको व्याप्त किये हुए थी ॥ ५ ॥

**ततोऽहं तामिषुभिर्दीप्यमानां**
**समायान्तीमन्तकालार्कदीप्ताम् ।**
**छित्त्वा त्रिधा पातयामास भूमौ**
**ततो ववौ पवनः पुण्यगन्धिः ॥ ६ ॥**

तब मैंने प्रलयकालके सूर्यकी भाँति प्रज्वलित होनेवाली उस देदीप्यमान शक्तिको अपनी ओर आती देख अनेक बाणोंद्वारा उसके तीन टुकड़े करके उसे भूमिपर गिरा दिया । फिर तो पवित्र सुगन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायु चलने लगी ॥ ६ ॥

**तस्यां छिन्नायां क्रोधदीप्तोऽथ रामः**
**शक्तीर्घोराः प्राहिणोद् द्वादशान्याः ।**
**तासां रूपं भारत नोत शक्यं**
**तेजस्वित्वाल्लाघवाच्चैव वक्तुम् ॥ ७ ॥**

उस शक्तिके कट जानेपर परशुरामजी क्रोधसे जल उठे तथा उन्होंने दूसरी-दूसरी भयंकर बारह शक्तियाँ और छोड़ीं । भारत ! वे इतनी तेजस्विनी तथा शीघ्रगामिनी थीं कि उनके स्वरूपका वर्णन करना असम्भव है ॥ ७ ॥

**किं त्वेवाहं विह्वलः सम्प्रदृश्य**
**दिग्भ्यः सर्वास्ता महोल्का इवाग्नेः ।**
**नानारूपास्तेजसोग्रेण दीप्ता**
**यथाऽऽदित्या द्वादश लोकसंक्षये ॥ ८ ॥**

प्रलयकालके बारह सूर्योंके समान भयंकर तेजसे प्रज्वलित अनेक रूपवाली तथा अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओंके समान धधकती हुई उन शक्तियोंको सब ओरसे आती देख मैं अत्यन्त विह्वल हो गया ॥ ८ ॥

**ततो जालं बाणमयं विवृत्तं**
**संदृश्य भित्त्वा शरजालेन राजन् ।**
**द्वादशेषून् प्राहिणवं रणेऽहं**
**ततः शक्तीरव्यधमं घोररूपाः ॥ ९ ॥**

राजन् ! तत्पश्चात् वहाँ फैले हुए बाणमय जालको देख-कर मैंने अपने बाणसमूहोंसे उसे छिन्न-भिन्न कर डाला और उस रणभूमिमें बारह सायकोंका प्रयोग किया, जिनसे उन भयंकर शक्तियोंको भी व्यर्थ कर दिया ॥ ९ ॥

**ततो राजञ्जामदग्न्यो महात्मा**
**शक्तीर्घोरा व्याक्षिपद्धेमदण्डाः ।**
**विचित्रिताः काञ्चनपट्टनद्धा**
**यथा महोल्का ज्वलितास्तथा ताः ॥ १० ॥**

राजन् ! तत्पश्चात् महात्मा जमदग्निनन्दन परशुरामने स्वर्णमय दण्डसे विभूषित और भी बहुत-सी भयानक शक्तियाँ चलायीं, जो विचित्र दिखायी देती थीं । उनके ऊपर सोनेके पत्र जड़े हुए थे और वे जलती हुई बड़ी-बड़ी उल्काओंके समान प्रतीत होती थीं ॥ १० ॥

**ताश्चाप्युग्राश्चर्मणा वारयित्वा**
**खड्गेनाजौ पातयित्वा नरेन्द्र ।**
**बाणैर्दिव्यैर्जामदग्न्यस्य संख्ये**
**दिव्यानश्वानभ्यवर्षं ससूतान् ॥ ११ ॥**

नरेन्द्र ! उन भयंकर शक्तियोंको भी मैंने ढालसे रोककर तलवारसे रणभूमिमें काट गिराया । तत्पश्चात् परशुरामजीके दिव्य घोड़ों तथा सारथिपर मैंने दिव्य बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ११ ॥

**निर्मुक्तानां पन्नगानां सरूपा**
**दृष्ट्वा शक्तीर्हेमचित्रा निकृत्ताः ।**
**प्रादुश्चक्रे दिव्यमस्त्रं महात्मा**
**क्रोधाविष्टो हैहयेशप्रमाथी ॥ १२ ॥**

केंचुलिसे छूटकर निकले हुए सर्पोंके समान आकृतिवाली

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उन्हें सुवर्णजटित विचित्र शक्तियोंको कटी हुई देख हैहय-राजका विनाश करनेवाले महात्मा परशुरामजीने कुपित होकर पुनः अपना दिव्य अस्त्र प्रकट किया ॥ १२ ॥

**ततः श्रेण्यः शलभानामिवोग्राः**
**समापेतुर्विशिखानां प्रदीप्ताः ।**
**समाचिनोच्चापि भृशं शरीरं**
**हयान् सूतं सरथं चैव मह्यम् ॥ १३ ॥**

फिर तो टिड्डियोंकी पंक्तियोंके समान प्रज्वलित एवं भयंकर बाणोंके समूह प्रकट होने लगे । इस प्रकार उन्होंने मेरे शरीर, रथ, सारथि और घोड़ोंको सर्वथा आच्छादित कर दिया ॥ १३ ॥

**रथः शरैर्मे निचितः सर्वतोऽभूत्**
**तथा वाहाः सारथिश्चैव राजन् ।**
**युगं रथेषां च तथैव चक्रे**
**तथैवाक्षः शरकृत्तोऽथ भग्नः ॥ १४ ॥**

राजन् ! मेरा रथ चारों ओरसे उनके बाणोंद्वारा व्याप्त हो रहा था । घोड़ों और सारथिकी भी यही दशा थी । युग तथा ईषादण्डको भी उन्होंने उसी प्रकार बाणविद्ध कर रक्खा था और रथका धुरा उनके बाणोंसे कटकर टूक-टूक हो गया था ॥

**ततस्तस्मिन् बाणवर्षे व्यतीते**
**शरौघेण प्रत्यवर्षं गुरुं तम् ।**
**स विक्षतो मार्गणैर्ब्रह्मराशि-**
**र्देहादसक्तं मुमुचे भूरि रक्तम् ॥ १५ ॥**

जब उनकी बाण-वर्षा समाप्त हुई, तब मैंने भी बदलेमें गुरुदेवपर बाणसमूहोंकी बौछार आरम्भ कर दी । वे ब्रह्मराशि महात्मा मेरे बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अपने शरीरसे अधिकाधिक रक्तकी धारा बहाने लगे ॥ १५ ॥

**यथा रामो बाणजालाभितप्त-**
**स्तथैवाहं सुभृशं गाढविद्धः ।**
**ततो युद्धं व्यरमच्चापराह्णे**
**भानावस्तं प्रति याते महीध्रम् ॥ १६ ॥**

जिस प्रकार परशुरामजी मेरे सायकसमूहोंसे संतप्त थे, उसी प्रकार मैं भी उनके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो रहा था । तदनन्तर सायंकालमें जब सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये, वह युद्ध बंद हो गया ॥ १६ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८१ ॥

# द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## भीष्म और परशुरामका युद्ध

*भीष्म उवाच*

**ततः प्रभाते राजेन्द्र सूर्ये विमलतां गते ।**
**भार्गवस्य मया सार्धं पुनर्युद्धमवर्तत ॥ १ ॥**

भीष्मजी कहते हैं—राजेन्द्र ! तदनन्तर प्रातःकाल जब सूर्यदेव उदित होकर प्रकाशमें आ गये, उस समय मेरे साथ परशुरामजीका युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ ॥ १ ॥

**ततोऽभ्रान्ते रथे तिष्ठन् रामः प्रहरतां वरः ।**
**ववर्ष शरजालानि मयि मेघ इवाचले ॥ २ ॥**

तत्पश्चात् योद्धाओंमें श्रेष्ठ परशुरामजी स्थिर रथपर खड़े हो जैसे मेघ पर्वतपर जलकी बौछार करता है, उसी प्रकार मेरे ऊपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

**ततः सूतो मम सुहृच्छरवर्षेण तादितः ।**
**अपयातो रथोपस्थान्मनो मम विषादयन् ॥ ३ ॥**

उस समय मेरा प्रिय सुहृद् सारथि बाणवर्षासे पीड़ित हो मेरे मनको विषादमें डालता हुआ रथकी बैठकसे नीचे गिर गया ॥

**ततः सूतो ममात्यर्थं कश्मलं प्राविशन्महत् ।**
**पृथिव्यां च शराघातान्निपपात मुमोह च ॥ ४ ॥**

मेरे सारथिको अत्यन्त मोह छा गया था । वह बाणोंके आघातसे पृथ्वीपर गिरा और अचेत हो गया ॥ ४ ॥

**ततः सूतोऽजहात् प्राणान् रामबाणप्रपीडितः ।**
**मुहूर्तादिव राजेन्द्र मां च भीराविशत् तदा ॥ ५ ॥**

राजेन्द्र ! परशुरामजीके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण दो ही घड़ीमें सूतने प्राण त्याग दिये । उस समय मेरे मनमें बड़ा भय समा गया ॥ ५ ॥

**ततः सूते हते तस्मिन् क्षिपतस्तस्य मे शरान् ।**
**प्रमत्तमनसो रामः प्राहिणोन्मृत्युसम्मितम् ॥ ६ ॥**

उस सारथिके मारे जानेपर मैं असावधान मनसे परशुरामजीके बाणोंको काट रहा था ! इतनेहीमें परशुरामजीने मुझपर मृत्युके समान भयंकर बाण छोड़ा ॥ ६ ॥

**ततः सूतव्यसनिनं विप्लुतं मां स भार्गवः ।**
**शरेणाभ्यहनद् गाढं विकृष्य बलवद्धनुः ॥ ७ ॥**

उस समय मैं सारथिकी मृत्युके कारण व्याकुल था तो भी भृगुनन्दन परशुरामने अपने सुदृढ़ धनुषको जोर-जोरसे खींचकर मुझपर बाणसे गहरा आघात किया ॥ ७ ॥

**स मे भुजान्तरे राजन् निपत्य रुधिराशनः ।**
**मयैव सह राजेन्द्र जगाम वसुधातलम् ॥ ८ ॥**

राजेन्द्र ! वह रक्त पीनेवाला बाण मेरी दोनों भुजाओंके बीच ( वक्षःस्थलमें ) चोट पहुँचाकर मुझे साथ लिये-दिये पृथ्वीपर जा गिरा ॥ ८ ॥

**मत्वा तु निहतं रामस्ततो मां भरतर्षभ ।**
**मेघवद् विननादोच्चैर्जहृषे च पुनः पुनः ॥ ९ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! उस समय मुझे मारा गया जानकर परशु-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रामजी मेघके समान गम्भीर स्वरसे गर्जना करने लगे । उनके शरीरमें बार-बार हर्षजनित रोमाञ्च होने लगा ॥ ९ ॥

**तथा तु पतिते राजन् मयि रामो मुदा युतः ।**
**उदक्रोशन्महानादं सह तैरनुयायिभिः ॥ १० ॥**

राजन् ! इस प्रकार मेरे धराशायी होनेपर परशुरामजी-को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने अपने अनुयायियोंके साथ महान् कोलाहल मचाया ॥ १० ॥

**मम तत्राभवन् ये तु कुरवः पार्श्वतः स्थिताः ।**
**आगता अपि युद्धं तज्जनास्तत्र दिदृक्षवः ।**
**आर्तिं परमिकां जग्मुस्ते तदा पतिते मयि ॥ ११ ॥**

वहाँ मेरे पार्श्वभागमें जो कुरुवंशी क्षत्रियगण खड़े थे तथा जो लोग वहाँ युद्ध देखनेकी इच्छासे आये थे, उन सबको मेरे गिर जानेपर बड़ा दुःख हुआ ॥ ११ ॥

**ततोऽपश्यं पतितो राजसिंह**
**द्विजानष्टौ सूर्यहुताशनाभान् ।**
**ते मां समन्तात् परिवार्य तस्थुः**
**स्वबाहुभिः परिधार्याजिमध्ये ॥ १२ ॥**

राजसिंह ! वहाँ गिरते समय मैंने देखा कि सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी आठ ब्राह्मण आये और संग्रामभूमिमें मुझे सब ओरसे घेरकर अपनी भुजाओंपर ही मेरे शरीरको धारण करके खड़े हो गये ॥ १२ ॥

**रक्ष्यमाणश्च तैर्विप्रैर्नाहं भूमिमुपास्पृशम् ।**
**अन्तरिक्षे धृतो ह्यस्मि तैर्विप्रैर्बान्धवैरिव ॥ १३ ॥**

उन ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होनेके कारण मुझे धरतीका स्पर्श नहीं करना पड़ा । मेरे सगे भाई-बन्धुओंकी भाँति उन ब्राह्मणोंने मुझे आकाशमें ही रोक लिया था ॥ १३ ॥

**श्वसन्निवान्तरिक्षे च जलबिन्दुभिरुक्षितः ।**
**ततस्ते ब्राह्मणा राजन्नब्रुवन् परिगृह्य माम् ॥ १४ ॥**

राजन् ! आकाशमें मैं साँस लेता-सा ठहर गया था । उस समय ब्राह्मणोंने मुझपर जलकी बूँदें छिड़क दीं । फिर वे मुझे पकड़कर बोले ॥ १४ ॥

**मा भैरिति समं सर्वे स्वस्ति तेऽस्त्विति चासकृत् ।**
**ततस्तेषामहं वाग्भिस्तर्पितः सहसोत्थितः ।**
**मातरं सरितां श्रेष्ठामपश्यं रथमास्थिताम् ॥ १५ ॥**

उन सबने एक साथ ही बार-बार कहा—'तुम्हारा कल्याण हो । तुम भयभीत न हो ।' उनके वचनामृतोंसे तृप्त होकर मैं सहसा उठकर खड़ा हो गया और देखा, मेरे रथपर सारथिके स्थानमें सरिताओंमें श्रेष्ठ माता गङ्गा बैठी हुई हैं ।१५।

**हयाश्च मे संगृहीतास्तयासन्**
**महानद्या संयति कौरवेन्द्र ।**
**पादौ जनन्याः प्रतिगृह्य चाहं**
**तथा पितॄणां रथमभ्यरोहम् ॥ १६ ॥**

कौरवराज ! उस युद्धमें महानदी माता गङ्गाने मेरे घोड़ोंकी बागडोर पकड़ रक्खी थी । तब मैं माताके चरणोंका स्पर्श करके और पितरोंके उद्देश्यसे भी मस्तक नवाकर उस रथपर जा बैठा ॥ १६ ॥

**ररक्ष सा मां सरथं हयांश्चोपस्कराणि च ।**
**तामहं प्राञ्जलिर्भूत्वा पुनरेव व्यसर्जयम् ॥ १७ ॥**

माताने मेरे रथ, घोड़ों तथा अन्यान्य उपकरणोंकी रक्षा की । तब मैंने हाथ जोड़कर पुनः माताको विदा कर दिया ॥

**ततोऽहं स्वयमुद्यम्य हयांस्तान् वातरंहसः ।**
**अयुध्यं जामदग्न्येन निवृत्तेऽहनि भारत ॥ १८ ॥**

भारत ! तदनन्तर स्वयं ही उन वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको काबूमें करके मैं जमदग्निनन्दन परशुरामजीके साथ युद्ध करने लगा । उस समय दिन प्रायः समाप्त हो चला था ॥

**ततोऽहं भरतश्रेष्ठ वेगवन्तं महाबलम् ।**
**अमुञ्चं समरे बाणं रामाय हृदयच्छिदम् ॥ १९ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! उस समरभूमिमें मैंने परशुरामजीकी ओर एक प्रबल एवं वेगवान् बाण चलाया, जो हृदयको विदीर्ण कर देनेवाला था ॥ १९ ॥

**ततो जगाम वसुधां मम बाणप्रपीडितः ।**
**जानुभ्यां धनुरुत्सृज्य रामो मोहवशं गतः ॥ २० ॥**

मेरे उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित हो परशुरामजीने मूर्छा-के वशीभूत होकर धनुष छोड़ धरतीपर घुटने टेक दिये।२०।

**ततस्तस्मिन् निपतिते रामे भूरिसहस्रदे ।**
**आवव्रुर्जलदा व्योम क्षरन्तो रुधिरं बहु ॥ २१ ॥**

अनेक सहस्र ब्राह्मणोंको बहुत दान करनेवाले परशुराम-जीके धराशायी होनेपर अधिकाधिक रक्तकी वर्षा करते हुए बादलोंने आकाशको ढक लिया ॥ २१ ॥

**उल्काश्च शतशः पेतुः सनिर्घाताः सकम्पनाः ।**
**अर्कं च सहसा दीप्तं स्वर्भानुरभिसंवृणोत् ॥ २२ ॥**

बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान सैकड़ों उल्कापात होने लगे । भूकम्प आ गया । अपनी किरणोंसे उद्भासित होने-वाले सूर्यदेवको राहुने सब ओरसे सहसा घेर लिया ॥ २२ ॥

**ववुश्च वाताः परुषाश्चलिता च वसुन्धरा ।**
**गृध्रा बलाश्च कङ्काश्च परिपेतुर्मुदा युताः ॥ २३ ॥**

वायु तीव्र वेगसे बहने लगी, धरती डोलने लगी, गीध, कौवे और कङ्क प्रसन्नतापूर्वक सब ओर उड़ने लगे ॥२३॥

**दीप्तायां दिशि गोमायुर्दारुणं मुहुरुन्नदत् ।**
**अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्भृशनिःस्वनाः ॥ २४ ॥**

दिशाओंमें दाह-सा होने लगा, गीदड़ बार-बार भयंकर बोली बोलने लगा, दुन्दुभियाँ बिना बजाये ही जोर-जोरसे बजने लगीं ॥ २४ ॥

**एतदौत्पातिकं सर्वं घोरमासीद् भयंकरम् ।**
**विसंज्ञकल्पे धरणीं गते रामे महात्मनि ॥ २५ ॥**

इस प्रकार महात्मा परशुरामके मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरते ही ये समस्त उत्पातसूचक अत्यन्त भयंकर अपशकुन होने लगे ॥ २५ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ततो वै सहसोत्थाय रामो मामभ्यवर्तत।
पुनर्युद्धाय कौरव्य विह्वलः क्रोधमूर्छितः ॥ २६ ॥

कुरुनन्दन ! इसी समय परशुरामजी सहसा उठकर क्रोधसे मूर्छित एवं विह्वल हो पुनः युद्धके लिये मेरे समीप आये॥

आददानो महाबाहुः कार्मुकं तालसंनिभम्।
ततो मय्याददानं तं राममेव न्यवारयन् ॥ २७ ॥
महर्षयः कृपायुक्ताः क्रोधाविष्टोऽथ भार्गवः।
स मेऽहरदमेयात्मा शरं कालानलोपमम् ॥ २८ ॥

परशुराम ताड़के समान विशाल धनुष लिये हुए थे। जब वे मेरे लिये बाण उठाने लगे, तब दयालु महर्षियोंने उन्हें रोक दिया। वह बाण कालाग्निके समान भयंकर था। अमेयस्वरूप भार्गवने कुपित होनेपर भी मुनियोंके कहनेसे उस बाणका उपसंहार कर लिया ॥ २७-२८ ॥

ततो रविर्मन्दमरीचिमण्डलो
जगामास्तं पांसुपुञ्जावगूढः।
निशा व्यगाहत् सुखशीतमारुता
ततो युद्धं प्रत्यवहारयावः ॥ २९ ॥

तदनन्तर मन्द किरणोंके पुञ्जसे प्रकाशित सूर्यदेव युद्धभूमिकी उड़ती हुई धूलोंसे आच्छादित हो अस्ताचलको चले गये। रात्रि आ गयी और सुखद शीतल वायु चलने लगी। उस समय हम दोनोंने युद्ध समाप्त कर दिया ॥ २९ ॥

एवं राजन्नवहारो बभूव
ततः पुनर्विमलेऽभूत् सुघोरम्।
कल्यं कल्यं विंशतिं वै दिनानि
तथैव चान्यानि दिनानि त्रीणि ॥ ३० ॥

राजन् ! इस प्रकार प्रतिदिन संध्याके समय युद्ध बंद हो जाता और प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर पुनः अत्यन्त भयंकर संग्राम छिड़ जाता था। इस प्रकार हम दोनोंके युद्ध करते-करते तेईस दिन बीत गये ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम-भीष्मयुद्धविषयक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१८२॥

# त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## भीष्मको अष्टवसुओंसे प्रस्वापनास्त्रकी प्राप्ति

*भीष्म उवाच*

ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रणम्य शिरसा तदा।
ब्राह्मणानां पितॄणां च देवतानां च सर्वशः ॥ १ ॥
नक्तंचराणां भूतानां राजन्यानां विशाम्पते।
शयनं प्राप्य रहिते मनसा समचिन्तयम् ॥ २ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजेन्द्र ! तदनन्तर मैं रातके समय एकान्तमें शय्यापर जाकर ब्राह्मणों, पितरों, देवताओं, निशाचरों, भूतों तथा राजर्षिगणोंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेके पश्चात् मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगा १-२

जामदग्न्येन मे युद्धमिदं परमदारुणम्।
अहानि च बहून्यद्य वर्तते सुमहात्ययम् ॥ ३ ॥

आज बहुत दिन हो गये, जमदग्निनन्दन परशुरामजीके साथ यह मेरा अत्यन्त भयंकर और महान् अनिष्टकारक युद्ध चल रहा है ॥ ३ ॥

न च रामं महावीर्यं शक्नोमि रणमूर्धनि।
विजेतुं समरे विप्रं जामदग्न्यं महाबलम् ॥ ४ ॥

परंतु मैं महाबली, महापराक्रमी विप्रवर परशुरामजीको समरभूमिमें युद्धके मुहानेपर किसी तरह जीत नहीं सकता ॥४॥

यदि शक्यो मया जेतुं जामदग्न्यः प्रतापवान्।
दैवतानि प्रसन्नानि दर्शयन्तु निशां मम ॥ ५ ॥

यदि प्रतापी जमदग्निकुमारको जीतना मेरे लिये सम्भव हो तो प्रसन्न हुए देवगण रात्रिमें मुझे दर्शन दें ॥ ५ ॥

ततो निशि च राजेन्द्र प्रसुप्तः शरविक्षतः।
दक्षिणेनेह पार्श्वेन प्रभातसमये तदा ॥ ६ ॥
ततोऽहं विप्रमुख्यैस्तैर्यैरस्मि पतितो रथात्।
उत्थापितो धृतश्चैव मा भैरिति च सान्त्वितः ॥ ७ ॥
त एव मां महाराज स्वप्नदर्शनमेत्य वै।
परिवार्याब्रुवन् वाक्यं तन्निबोध कुरूद्वह ॥ ८ ॥

राजेन्द्र ! ऐसी प्रार्थना करके बाणोंसे क्षत-विक्षत हुआ मैं रात्रिके अन्तमें प्रभातके समय दाहिनी करवटसे सो गया। महाराज ! कुरुश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् जिन ब्राह्मणशिरोमणियोंने रथसे गिरनेपर मुझे थाम लिया और उठाया था तथा 'डरो मत' ऐसा कहकर सान्त्वना दी थी, उन्हीं लोगोंने मुझे सपनेमें दर्शन दे मेरे चारों ओर खड़े होकर जो बात कही थी, उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ६-८ ॥

उत्तिष्ठ मा भैर्गाङ्गेय न भयं तेऽस्ति किंचन।
रक्षामहे त्वां कौरव्य स्वशरीरं हि नो भवान् ॥ ९ ॥

'गङ्गानन्दन ! उठो। भयभीत न होओ। तुम्हें कोई भय नहीं है। कुरुनन्दन ! हम तुम्हारी रक्षा करते हैं, क्योंकि तुम हमारे ही स्वरूप हो ॥ ९ ॥

न त्वां रामो रणे जेता जामदग्न्यः कथंचन।
त्वमेव समरे रामं विजेता भरतर्षभ ॥ १० ॥

'जमदग्निकुमार परशुराम तुम्हें किसी प्रकार युद्धमें जीत नहीं सकेंगे। भरतभूषण ! तुम्हीं रणक्षेत्रमें परशुरामपर विजय पाओगे ॥ १० ॥

इदमस्त्रं सुदयितं प्रत्यभिज्ञास्यते भवान्।
विदितं हि तवाप्येतत् पूर्वस्मिन् देहधारणे ॥ ११ ॥
प्राजापत्यं विश्वकृतं प्रस्वापं नाम भारत।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

न हीदं वेद रामोऽपि पृथिव्यां वा पुमान् क्वचित् ॥ १२ ॥

'भारत ! यह प्रस्वाप नामक अस्त्र है, जिसके देवता प्रजापति हैं। विश्वकर्माने इसका आविष्कार किया है। यह तुम्हें भी परम प्रिय है। इसकी प्रयोगविधि तुम्हें स्वतः ज्ञात हो जायगी; क्योंकि पूर्व शरीरमें तुम्हें भी इसका पूर्ण ज्ञान था। परशुरामजी भी इस अस्त्रको नहीं जानते हैं। इस पृथ्वीपर कहीं किसी भी पुरुषको इसका ज्ञान नहीं है ११-१२

तत् स्मरस्व महाबाहो भृशं संयोजयस्व च।
उपस्थास्यति राजेन्द्र स्वयमेव तवानघ ॥ १३ ॥

'महाबाहो ! इस अस्त्रका स्मरण करो और विशेषरूपसे इसीका प्रयोग करो। निष्पाप राजेन्द्र ! यह अस्त्र स्वयं ही तुम्हारी सेवामें उपस्थित हो जायगा ॥ १३ ॥

येन सर्वान् महावीर्यान् प्रशासिष्यसि कौरव।
न च रामः क्षयं गन्ता तेनास्त्रेण नराधिप ॥ १४ ॥

'कुरुनन्दन ! उसके प्रभावसे तुम सम्पूर्ण महापराक्रमी नरेशोंपर शासन करोगे। राजन् ! उस अस्त्रसे परशुरामका नाश नहीं होगा ॥ १४ ॥

एनसा न तु संयोगं प्राप्स्यसे जातु मानद।
स्वप्स्यते जामदग्न्योऽसौ त्वद्बाणबलपीडितः ॥ १५ ॥

'इसलिये मानद ! तुम्हें कभी इसके द्वारा पापसे संयोग नहीं होगा। तुम्हारे अस्त्रके प्रभावसे पीड़ित होकर जमदग्निकुमार परशुराम चुपचाप सो जायँगे ॥ १५ ॥

ततो जित्वा त्वमेवैनं पुनरुत्थापयिष्यसि।
अस्त्रेण दयितेनाजौ भीष्म सम्बोधनेन वै ॥ १६ ॥

'भीष्म ! तदनन्तर अपने उस प्रिय अस्त्रके द्वारा युद्धमें विजयी होकर तुम्हीं उन्हें सम्बोधनास्त्रद्वारा पुनः जगाकर उठाओगे ॥ १६ ॥

एवं कुरुष्व कौरव्य प्रभाते रथमास्थितः।
प्रसुप्तं वा मृतं वेति तुल्यं मन्यामहे वयम् ॥ १७ ॥

'कुरुनन्दन ! प्रातःकाल रथपर बैठकर तुम ऐसा ही करो; क्योंकि हमलोग सोये अथवा मरे हुएको समान ही समझते हैं ॥

न च रामेण मर्तव्यं कदाचिदपि पार्थिव।
ततः समुत्पन्नमिदं प्रस्वापं युज्यतामिति ॥ १८ ॥

'राजन् ! परशुरामकी कभी मृत्यु नहीं हो सकती; अतः इस प्राप्त हुए प्रस्वाप नामक अस्त्रका प्रयोग करो' ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वान्तर्हिता राजन् सर्व एव द्विजोत्तमाः।
अष्टौ सदृशरूपास्ते सर्वे भास्वरमूर्तयः ॥ १९ ॥

राजन् ! ऐसा कहकर वे वसुस्वरूप सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण अदृश्य हो गये। वे आठों समान रूपवाले थे। उन सबके शरीर तेजोमय प्रतीत होते थे ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मप्रस्वापनास्त्रलाभे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें भीष्मको प्रस्वापनास्त्रकी प्राप्तिविषयक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ १८३

# चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## भीष्म तथा परशुरामजीका एक दूसरेपर शक्ति और ब्रह्मास्त्रका प्रयोग

*भीष्म उवाच*

ततो रात्रौ व्यतीतायां प्रतिबुद्धोऽस्मि भारत।
ततः संचिन्त्य वै स्वप्नमवापं हर्षमुत्तमम् ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—भारत ! तदनन्तर रात बीतनेपर जब मेरी नींद खुली, तब उस स्वप्नकी बातको सोचकर मुझे बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १ ॥

ततः समभवद् युद्धं मम तस्य च भारत।
तुमुलं सर्वभूतानां लोमहर्षणमद्भुतम् ॥ २ ॥

भारत ! तदनन्तर मेरा और परशुरामजीका भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो समस्त प्राणियोंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला और अद्भुत था ॥ २ ॥

ततो बाणमयं वर्षं ववर्ष मयि भार्गवः।
न्यवारयमहं तच्च शरजालेन भारत ॥ ३ ॥

उस समय भृगुनन्दन परशुरामजीने मुझपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। भारत ! तब मैंने अपने सायकसमूहोंसे उस बाणवर्षाको रोक दिया ॥ ३ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पुनरेव महातपाः।
ह्यस्तनेन च कोपेन शक्तिं वै प्राहिणोन्मयि ॥ ४ ॥

तब महातपस्वी परशुराम पुनः मुझपर अत्यन्त कुपित हो गये। पहले दिनका भी कोप था ही। उससे प्रेरित होकर उन्होंने मेरे ऊपर शक्ति चलायी ॥ ४ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शां यमदण्डसमप्रभाम्।
ज्वलन्तीमग्निवत् संख्ये लेलिहानां समन्ततः ॥ ५ ॥

उसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान भयंकर था। उसकी प्रभा यमदण्डके समान थी और उस संग्राममें अग्निके समान प्रज्वलित हुई वह शक्ति मानो सब ओरसे रक्त चाट रही थी ॥

ततो भरतशार्दूल धिष्ण्यमाकाशगं यथा।
स मामभ्यवधीत् तूर्णं जत्रुदेशे कुरूद्वह ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कुरुकुलरत्न ! फिर आकाशवर्ती नक्षत्रके समान प्रकाशित होनेवाली उस शक्तिने तुरंत आकर मेरे गलेकी हँसलीपर आघात किया ॥ ६ ॥

अथास्रमस्रवद् घोरं गिरेर्गैरिकधातुवत्।
रामेण सुमहाबाहो क्षतस्य क्षतजेक्षण ॥ ७ ॥

लाल नेत्रोंवाले महाबाहु दुर्योधन ! परशुरामजीके द्वारा किये हुए उस गहरे आघातसे भयंकर रक्तकी धारा बह चली। मानो पर्वतसे गैरिक धातुमिश्रित जलका झरना झर रहा हो ॥ ७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ततोऽहं जामदग्न्याय भृशं क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप मृत्युसंकाशं बाणं सर्पविषोपमम् ॥ ८ ॥

तब मैंने भी अत्यन्त कुपित हो सर्पविषके समान भयंकर मृत्युतुल्य बाण लेकर परशुरामजीके ऊपर चलाया ॥ ८ ॥

स तेनाभिहतो वीरो ललाटे द्विजसत्तमः।
अशोभत महाराज सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ९ ॥

उस बाणने विप्रवर वीर परशुरामजीके ललाटमें चोट पहुँचायी। महाराज! उसके कारण वे शिखरयुक्त पर्वतके समान शोभा पाने लगे ॥ ९ ॥

स संरब्धः समावृत्य शरं कालान्तकोपमम्।
संदधे बलवत् कृष्य घोरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ १० ॥

तब उन्होंने भी रोषमें आकर काल और यमके समान भयंकर शत्रुनाशक बाणको हाथमें ले धनुषको बलपूर्वक खींचकर उसके ऊपर रक्खा ॥ १० ॥

स वक्षसि पपातोग्रः शरो व्याल इव श्वसन्।
महीं राजंस्ततश्चाहमगमं रुधिराविलः ॥ ११ ॥

राजन्! उनका चलाया हुआ वह भयंकर बाण फुफकारते हुए सर्पके समान सनसनाता हुआ मेरी छातीपर आकर लगा। उससे लहूलुहान होकर मैं पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सम्प्राप्य तु पुनः संज्ञां जामदग्न्याय धीमते।
प्राहिण्वं विमलां शक्तिं ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ १२ ॥

पुनः चेतमें आनेपर मैंने बुद्धिमान् परशुरामजीके ऊपर प्रज्वलित वज्रके समान एक उज्ज्वल शक्ति चलायी ॥ १२ ॥

सा तस्य द्विजमुख्यस्य निपपात भुजान्तरे।
विह्वलश्चाभवद् राजन् वेपथुश्चैनमाविशत् ॥ १३ ॥

वह शक्ति उन ब्राह्मणशिरोमणिकी दोनों भुजाओंके ठीक बीचमें जाकर लगी। राजन्! इससे वे विह्वल हो गये और उनके शरीरमें कँपकँपी आ गयी ॥ १३ ॥

तत एनं परिष्वज्य सखा विप्रो महातपाः।
अकृतव्रणः शुभैर्वाक्यैराश्वासयदनेकधा ॥ १४ ॥

तब उनके महातपस्वी मित्र अकृतव्रणने उन्हें हृदयसे लगाकर सुन्दर वचनोंद्वारा अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया ॥

समाश्वस्तस्ततो रामः क्रोधामर्षसमन्वितः।
प्रादुश्चक्रे तदा ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतः ॥ १५ ॥

तदनन्तर महाव्रती परशुरामजी धैर्ययुक्त हो क्रोध और अमर्षमें भर गये और उन्होंने परम उत्तम ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ॥ १५ ॥

ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवास्त्रमुत्तमम्।
मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिव दर्शयत् ॥ १६ ॥

तब उस अस्त्रका निवारण करनेके लिये मैंने भी उत्तम ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। मेरा वह अस्त्र प्रलयकालका-सा दृश्य उपस्थित करता हुआ प्रज्वलित हो उठा ॥ १६ ॥

तयोर्ब्रह्मास्त्रयोरासीदन्तरा वै समागमः।
असम्प्राप्यैव रामं च मां च भारतसत्तम ॥ १७ ॥

भरतवंशशिरोमणे! वे दोनों ब्रह्मास्त्र मेरे तथा परशुरामजीके पास न पहुँचकर बीचमें ही एक दूसरेसे भिड़ गये ॥

ततो व्योम्नि प्रादुरभूत् तेज एव हि केवलम्।
भूतानि चैव सर्वाणि जग्मुरार्तिं विशाम्पते ॥ १८ ॥

प्रजानाथ! फिर तो आकाशमें केवल आगकी ही ज्वाला प्रकट होने लगी। इससे समस्त प्राणियोंको बड़ी पीड़ा हुई ॥

ऋषयश्च सगन्धर्वा देवताश्चैव भारत।
संतापं परमं जग्मुरस्त्रतेजोऽभिपीडिताः ॥ १९ ॥

भारत! उन ब्रह्मास्त्रोंके तेजसे पीड़ित होकर ऋषि, गन्धर्व तथा देवता भी अत्यन्त संतप्त हो उठे ॥ १९ ॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा।
संतप्तानि च भूतानि विषादं जग्मुरुत्तमम् ॥ २० ॥

फिर तो पर्वत, वन और वृक्षोंसहित सारी पृथ्वी डोलने लगी। भूतलके समस्त प्राणी संतप्त हो अत्यन्त विषाद करने लगे ॥

प्रजज्वाल नभो राजन् धूमायन्ते दिशो दश।
न स्थातुमन्तरिक्षे च शेकुराकाशगास्तदा ॥ २१ ॥

राजन्! उस समय आकाश जल रहा था। सम्पूर्ण दिशाओंमें धूम व्याप्त हो रहा था। आकाशचारी प्राणी भी आकाशमें ठहर न सके ॥ २१ ॥

ततो हाहाकृते लोके सदेवासुरराक्षसे।
इदमन्तरमित्येवं मोक्तुकामोऽस्मि भारत ॥ २२ ॥
प्रस्वापमस्त्रं त्वरितो वचनाद् ब्रह्मवादिनाम्।
विचित्रं च तदस्त्रं मे मनसि प्रत्यभात् तदा ॥ २३ ॥

तदनन्तर देवता, असुर तथा राक्षसोंसहित सम्पूर्ण जगत्में हाहाकार मच गया। भारत! 'यही उपयुक्त अवसर है', ऐसा मानकर मैंने तुरंत ही प्रस्वापनास्त्रको छोड़नेका विचार किया। फिर तो उन ब्रह्मवादी वसुओंके कथनानुसार उस विचित्र अस्त्रका मेरे मनमें स्मरण हो आया ॥ २२-२३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि परस्परब्रह्मास्त्रप्रयोगे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परस्पर ब्रह्मास्त्रप्रयोगविषयक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८४ ॥

## पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

### देवताओंके मना करनेसे भीष्मका प्रस्वापनास्त्रको प्रयोगमें न लाना तथा पितर, देवता और गङ्गाके आग्रहसे भीष्म और परशुरामके युद्धकी समाप्ति

*भीष्म उवाच*

ततो हलहलाशब्दो दिवि राजन् महानभूत्।
प्रस्वापं भीष्म मा स्राक्षीरिति कौरवनन्दन ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! कौरवनन्दन! तदनन्तर
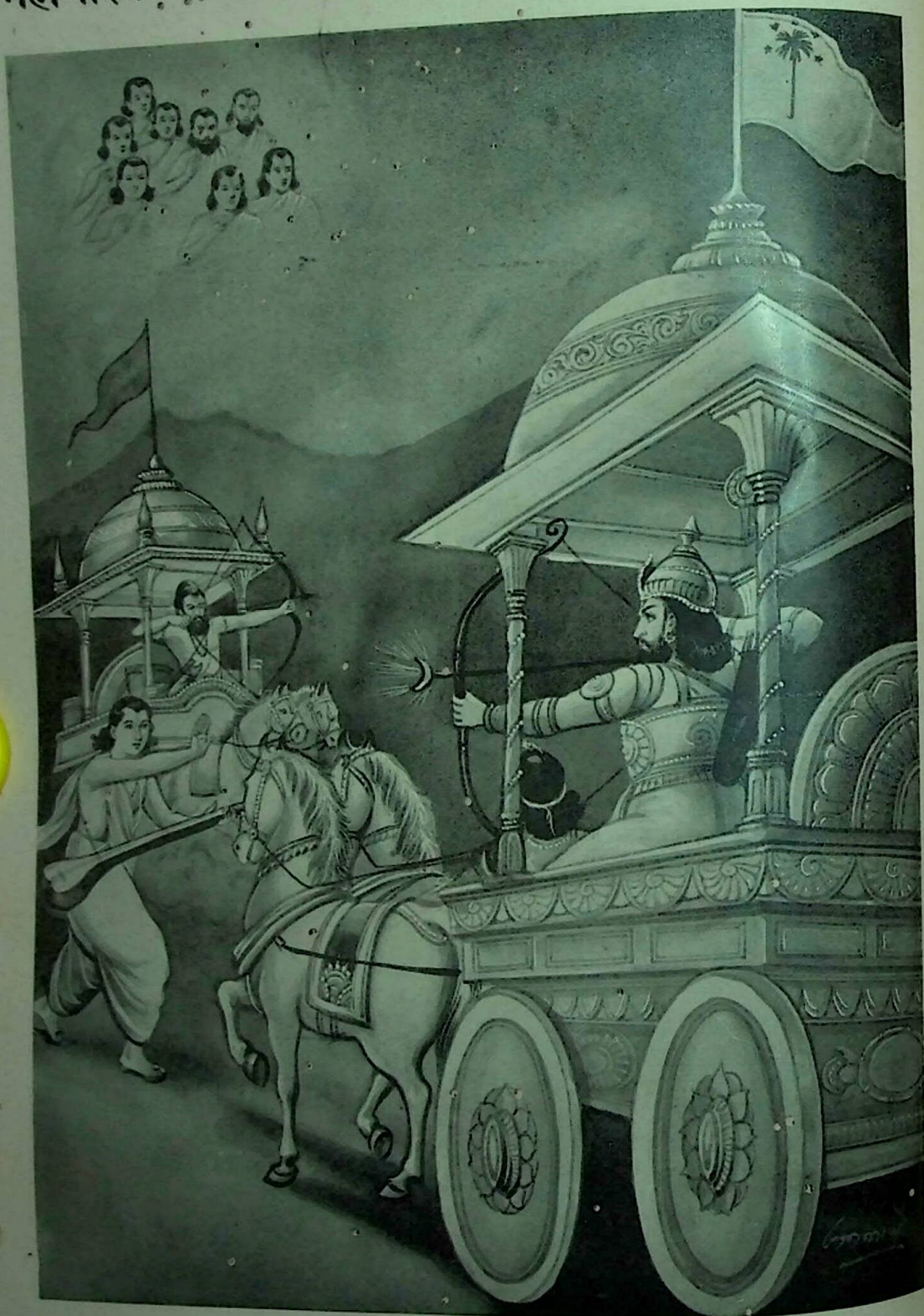
भीष्म और परशुरामके युद्धमें नारदजीद्वारा बीच-बचाव

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भीष्म ! प्रस्वापनास्त्रका प्रयोग न करो' इस प्रकार आकाशमें महान् कोलाहल मच गया ॥ १ ॥

**अयुञ्जमेव चैवाहं तदस्त्रं भृगुनन्दने ।**
**प्रस्वापं मां प्रयुञ्जानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥**

तथापि मैंने भृगुनन्दन परशुरामजीको लक्ष्य करके उस अस्त्रको धनुषपर चढ़ा ही लिया । मुझे प्रस्वापनास्त्रका प्रयोग करते देख नारदजीने इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

**एते वियति कौरव्य दिवि देवगणाः स्थिताः ।**
**ते त्वां निवारयन्त्यद्य प्रस्वापं मा प्रयोजय ॥ ३ ॥**

'कुरुनन्दन ! ये आकाशमें स्वर्गलोकके देवता खड़े हैं। वे सबके सब इस समय तुम्हें मना कर रहे हैं, तुम प्रस्वापनास्त्रका प्रयोग न करो ॥ ३ ॥

**रामस्तपस्वी ब्रह्मण्यो ब्राह्मणश्च गुरुश्च ते ।**
**तस्यावमानं कौरव्य मा स्म कार्षीः कथंचन ॥ ४ ॥**

'परशुरामजी तपस्वी, ब्राह्मणभक्त, ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण और तुम्हारे गुरु हैं । कुरुकुलरत्न ! तुम किसी तरह भी उनका अपमान न करो' ॥ ४ ॥

**ततोऽपश्यं दिविष्ठान् वै तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।**
**ते मां स्मयन्तो राजेन्द्र शनकैरिदमब्रुवन् ॥ ५ ॥**

राजेन्द्र ! तत्पश्चात् मैंने आकाशमें खड़े हुए उन आठों ब्रह्मवादी वसुओंको देखा । वे मुसकराते हुए मुझसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

**यथाऽऽह भरतश्रेष्ठ नारदस्तत् तथा कुरु ।**
**एतद्धि परमं श्रेयो लोकानां भरतर्षभ ॥ ६ ॥**

'भरतश्रेष्ठ ! नारदजी जैसा कहते हैं, वैसा करो । भरतकुलतिलक ! यही सम्पूर्ण जगत्के लिये परम कल्याणकारी होगा'॥

**ततश्च प्रतिसंहृत्य तदस्त्रं स्वापनं महत् ।**
**ब्रह्मास्त्रं दीपयांचक्रे तस्मिन् युधि यथाविधि ॥ ७ ॥**

तब मैंने उस महान् प्रस्वापनास्त्रको धनुषसे उतार लिया और उस युद्धमें विधिपूर्वक ब्रह्मास्त्रको ही प्रकाशित किया॥

**ततो रामो हृषितो राजसिंह**
**दृष्ट्वा तदस्त्रं विनिवर्तितं वै ।**
**जितोऽस्मि भीष्मेण सुमन्दबुद्धि-**
**रित्येव वाक्यं सहसा व्यमुञ्चत् ॥ ८ ॥**

राजसिंह ! मैंने प्रस्वापनास्त्रको उतार लिया है—यह देखकर परशुरामजी बड़े प्रसन्न हुए । उनके मुखसे सहसा यह वाक्य निकल पड़ा कि 'मुझ मन्दबुद्धिको भीष्मने जीत लिया' ॥

**ततोऽपश्यत् पितरं जामदग्न्यः**
**पितुस्तथा पितरं चास्य मान्यम् ।**
**ते तत्र चैनं परिवार्य तस्थु-**
**रूचुश्चैनं सान्त्वपूर्वं तदानीम् ॥ ९ ॥**

इसके बाद जमदग्निकुमार परशुरामने अपने पिता जमदग्निको तथा उनके भी माननीय पिता ऋचीक मुनिको देखा । वे सब पितर उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये और उस समय उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले ॥ ९ ॥

*पितर ऊचुः*

**मा स्मैवं साहसं तात पुनः कार्षीः कथंचन ।**
**भीष्मेण संयुगं गन्तुं क्षत्रियेण विशेषतः ॥ १० ॥**

पितरोंने कहा—तात ! फिर कभी किसी प्रकार भी ऐसा साहस न करना । भीष्म और विशेषतः क्षत्रियके साथ युद्धभूमिमें उतरना अब तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥ १० ॥

**क्षत्रियस्य तु धर्मोऽयं यद् युद्धं भृगुनन्दन ।**
**स्वाध्यायो व्रतचर्याथ ब्राह्मणानां परं धनम् ॥ ११ ॥**

भृगुनन्दन ! क्षत्रियका तो युद्ध करना धर्म ही है; किंतु ब्राह्मणोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय तथा उत्तम व्रतोंका पालन ही परम धर्म है ॥ ११ ॥

**इदं निमित्ते कस्मिंश्चिदस्माभिः प्रागुदाहृतम् ।**
**शस्त्रधारणमत्युग्रं तच्चाकार्यं कृतं त्वया ॥ १२ ॥**

यह बात पहले भी किसी अवसरपर हमने तुमसे कही थी । शस्त्र उठाना अत्यन्त भयंकर कर्म है; अतः तुमने यह न करने योग्य कार्य ही किया है ॥ १२ ॥

**वत्स पर्याप्तमेतावद् भीष्मेण सह संयुगे ।**
**विमर्दस्ते महाबाहो व्यपयाहि रणादितः ॥ १३ ॥**

महाबाहो ! वत्स ! भीष्मके साथ युद्धमें उतरकर जो तुमने इतना विध्वंसात्मक कार्य किया है, यही बहुत हो गया । अब तुम इस संग्रामसे हट जाओ ॥ १३ ॥

**पर्याप्तमेतद् भद्रं ते तव कार्मुकधारणम् ।**
**विसर्जयैतद् दुर्धर्ष तपस्तप्यस्व भार्गव ॥ १४ ॥**
**एष भीष्मः शान्तनवो देवैः सर्वैर्निवारितः ।**
**निवर्तस्व रणादस्मादिति चैव प्रसादितः ॥ १५ ॥**
**रामेण सह मा योत्सीर्गुरुणेति पुनः पुनः ।**
**न हि रामो रणे जेतुं त्वया न्याय्यः कुरूद्वह ॥ १६ ॥**
**मानं कुरुष्व गाङ्गेय ब्राह्मणस्य रणाजिरे ।**

भृगुनन्दन ! तुम्हारा कल्याण हो । दुर्धर्ष वीर ! तुमने जो धनुष उठा लिया, यही पर्याप्त है । अब इसे त्याग दो और तपस्या करो । देखो, इन सम्पूर्ण देवताओंने शान्तनुनन्दन भीष्मको भी रोक दिया है । वे उन्हें प्रसन्न करके यह बात कह रहे हैं कि 'तुम युद्धसे निवृत्त हो जाओ । परशुराम तुम्हारे गुरु हैं । तुम उनके साथ बार-बार युद्ध न करो । कुरुश्रेष्ठ ! परशुरामको युद्धमें जीतना तुम्हारे लिये कदापि न्यायसंगत नहीं है । गङ्गानन्दन ! तुम इस समराङ्गणमें अपने ब्राह्मणगुरुका सम्मान करो' ॥ १४–१६½ ॥

**वयं तु गुरवस्तुभ्यं तस्मात् त्वां वारयामहे ॥ १७ ॥**
**भीष्मो वसूनामन्यतमो दिष्ट्या जीवसि पुत्रक ।**

बेटा परशुराम ! हम तो तुम्हारे गुरुजन—आदरणीय पितर हैं । इसलिये तुम्हें रोक रहे हैं । पुत्र ! भीष्म वसुओंमेंसे एक वसु हैं । तुम अपना सौभाग्य ही समझो कि उनके साथ युद्ध करके अबतक जीवित हो ॥ १७½ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गाङ्गेयः शान्तनोः पुत्रो वसुरेष महायशाः ॥ १८ ॥
कथं शक्यस्त्वया जेतुं निवर्तस्वेह भार्गव ।

भृगुनन्दन ! गङ्गा और शान्तनुके ये महायशस्वी पुत्र भीष्म साक्षात् वसु ही हैं । इन्हें तुम कैसे जीत सकते हो ? अतः यहाँ युद्धसे निवृत्त हो जाओ ॥ १८½ ॥

अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठः पुरंदरसुतो बली ॥ १९ ॥
नरः प्रजापतिर्वीरः पूर्वदेवः सनातनः ।
सव्यसाचीति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ।
भीष्ममृत्युर्यथाकालं विहितो वै स्वयम्भुवा ॥ २० ॥

प्राचीन सनातन देवता और प्रजापालक वीरवर भगवान् नर इन्द्रपुत्र महाबली पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनके रूपमें प्रकट होंगे तथा पराक्रमसम्पन्न होकर तीनों लोकोंमें सव्यसाचीके नामसे विख्यात होंगे । स्वयम्भू ब्रह्माजीने उन्हींको यथासमय भीष्मकी मृत्युमें कारण बनाया है ॥ १९-२० ॥

*भीष्म उवाच*

एवमुक्तः स पितृभिः पितॄन् रामोऽब्रवीदिदम् ।
नाहं युधि निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ॥ २१ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! पितरोंके ऐसा कहनेपर परशुरामजीने उनसे इस प्रकार कहा—'मैं युद्धमें पीठ नहीं दिखाऊँगा । यह मेरा चिरकालसे धारण किया हुआ व्रत है ॥

न निवर्तितपूर्वश्च कदाचिद् रणमूर्धनि ।
निवर्त्यतामापगेयः कामं युद्धात् पितामहाः ॥ २२ ॥
न त्वहं विनिवर्तिष्ये युद्धादस्मात् कथंचन ।

'आजसे पहले भी मैं कभी किसी युद्धसे पीछे नहीं हटा हूँ । अतः पितामहो ! आपलोग अपनी इच्छाके अनुसार पहले गङ्गानन्दन भीष्मको ही युद्धसे निवृत्त कीजिये । मैं किसी प्रकार पहले स्वयं ही इस युद्धसे पीछे नहीं हटूँगा' २२½

ततस्ते मुनयो राजन्नृचीकप्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥
नारदेनैव सहिताः समागम्येदमब्रुवन् ।
निवर्तस्व रणात् तात मानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ २४ ॥

राजन् ! तब वे ऋचीक आदि मुनि नारदजीके साथ मेरे पास आये और इस प्रकार बोले—'तात ! तुम्हीं युद्धसे निवृत्त हो जाओ और द्विजश्रेष्ठ परशुरामजीका मान रक्खो' ॥ २३-२४ ॥

इत्यवोचमहं तांश्च क्षत्रधर्मव्यपेक्षया ।
मम व्रतमिदं लोके नाहं युद्धात् कदाचन ॥ २५ ॥
विमुखो विनिवर्तेयं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः ।
नाहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नार्थकारणात् ॥ २६ ॥
त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः ।

तब मैंने क्षत्रियधर्मको लक्ष्य करके उनसे कहा—'महर्षियो ! संसारमें मेरा यह व्रत प्रसिद्ध है कि मैं पीठपर बाणोंकी चोट खाता हुआ कदापि युद्धसे निवृत्त नहीं हो सकता । मेरा यह निश्चित विचार है कि मैं लोभसे, कायरता या दीनतासे, भयसे अथवा किसी स्वार्थके कारण भी क्षत्रियोंके सनातन धर्मका त्याग नहीं कर सकता' ॥ २५-२६½ ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप ॥ २७ ॥
भागीरथी च मे माता रणमध्यं प्रपेदिरे ।
तथैवात्तशरो धन्वी तथैव दृढनिश्चयः ।
स्थिरोऽहमाहवे योद्धुं ततस्ते राममब्रुवन् ॥ २८ ॥
समेत्य सहिता भूयः समरे भृगुनन्दनम् ।

इतना कहकर मैं पूर्ववत् धनुष-बाण लिये दृढ़ निश्चयके साथ समरभूमिमें युद्ध करनेके लिये डटा रहा । राजन् ! तब वे नारद आदि सम्पूर्ण ऋषि और मेरी माता गङ्गा सब लोग उस रणक्षेत्रमें एकत्र हुए और पुनः एक साथ मिलकर उस समराङ्गणमें भृगुनन्दन परशुरामजीके पास जाकर इस प्रकार बोले—॥ २७-२८½ ॥

नावनीतं हि हृदयं विप्राणां शाम्य भार्गव ॥ २९ ॥
राम राम निवर्तस्व युद्धादस्माद् द्विजोत्तम ।
अवध्यो वै त्वया भीष्मस्त्वं च भीष्मस्य भार्गव ॥ ३० ॥

'भृगुनन्दन ! ब्राह्मणोंका हृदय नवनीतके समान कोमल होता है; अतः शान्त हो जाओ । विप्रवर परशुराम ! इस युद्धसे निवृत्त हो जाओ । भार्गव ! तुम्हारे लिये भीष्म और भीष्मके लिये तुम अवध्य हो' ॥ २९-३० ॥

एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे प्रतिरुध्य रणाजिरम् ।
न्यासयांचक्रिरे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दनम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार कहते हुए उन सब लोगोंने रणस्थलीको घेर लिया और पितरोंने भृगुनन्दन परशुरामसे अस्त्र-शस्त्र रखवा दिया ॥ ३१ ॥

ततोऽहं पुनरेवाथ तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।
अद्राक्षं दीप्यमानान् वै ग्रहानष्टाविवोदितान् ॥ ३२ ॥

इसी समय मैंने पुनः उन आठों ब्रह्मवादी वसुओंको आकाशमें उदित हुए आठ ग्रहोंकी भाँति प्रकाशित होते देखा ॥

ते मां सप्रणयं वाक्यमब्रुवन् समरे स्थितम् ।
प्रैहि रामं महाबाहो गुरुं लोकहितं कुरु ॥ ३३ ॥

उन्होंने समरभूमिमें डटे हुए मुझसे प्रेमपूर्वक कहा—'महाबाहो ! तुम अपने गुरु परशुरामजीके पास जाओ और जगत्का कल्याण करो' ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वा निवर्तितं रामं सुहृद्वाक्येन तेन वै ।
लोकानां च हितं कुर्वन्नहमप्याददे वचः ॥ ३४ ॥

अपने सुहृदोंके कहनेसे परशुरामजीको युद्धसे निवृत्त हुआ देख मैंने भी लोककी भलाई करनेके लिये उन महर्षियोंकी बात मान ली ॥ ३४ ॥

ततोऽहं राममासाद्य ववन्दे भृशविक्षतः ।
रामश्चाभ्युत्स्मयन् प्रेम्णा मामुवाच महातपाः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर मैंने परशुरामजीके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । उस समय मेरा शरीर बहुत घायल हो गया था । महातपस्वी परशुराम मुझे देखकर मुसकराये और प्रेमपूर्वक इस प्रकार बोले—॥ ३५ ॥

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रियः पृथिवीचरः ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया ॥ ३६ ॥

'भीष्म ! इस जगत्में भूतलपर विचरनेवाला कोई भी क्षत्रिय तुम्हारे समान नहीं है । जाओ, इस युद्धमें तुमने मुझे बहुत संतुष्ट किया है' ॥ ३६ ॥

मम चैव समक्षं तां कन्यामाहूय भार्गवः ।
उक्तवान् दीनया वाचा मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥ ३७ ॥

फिर मेरे सामने ही उन्होंने उस कन्याको बुलाकर उन सब महात्माओंके बीच दीनतापूर्ण वाणीमें उससे कहा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि युद्धनिवृत्तौ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें युद्धनिवृत्तिविषयक एक सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८५ ॥

# षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## अम्बाकी कठोर तपस्या

*राम उवाच*

प्रत्यक्षमेतल्लोकानां सर्वेषामेव भाविनि ।
यथाशक्त्या मया युद्धं कृतं वै पौरुषं परम् ॥ १ ॥

**परशुराम बोले**—भाविनि ! यह सब लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है कि मैंने ( तेरे लिये ) पूरी शक्ति लगाकर युद्ध किया और महान् पुरुषार्थ दिखाया है ॥ १ ॥

न चैवमपि शक्नोमि भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।
विशेषयितुमत्यर्थमुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ २ ॥

परंतु इस प्रकार उत्तमोत्तम अस्त्र प्रकट करके भी मैं शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मसे अपनी अधिक विशिष्टता नहीं दिखा सका ॥ २ ॥

एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे किमन्यद् वा करोमि ते ॥ ३ ॥

मेरी अधिक-से-अधिक शक्ति, अधिक-से-अधिक बल इतना ही है । भद्रे ! अब तेरी जहाँ इच्छा हो, चली जा, अथवा बता, तेरा दूसरा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ? ॥ ३ ॥

भीष्ममेव प्रपद्यस्व न तेऽन्या विद्यते गतिः ।
निर्जितो ह्यस्मि भीष्मेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ॥ ४ ॥

अब तू भीष्मकी ही शरण ले । तेरे लिये दूसरी कोई गति नहीं है; क्योंकि महान् अस्त्रोंका प्रयोग करके भीष्मने मुझे जीत लिया है ॥ ४ ॥

एवमुक्त्वा ततो रामो विनिःश्वस्य महामनाः ।
तूष्णीमासीत् ततः कन्या प्रोवाच भृगुनन्दनम् ॥ ५ ॥

ऐसा कहकर महामना परशुराम लंबी साँस खींचते हुए मौन हो गये । तब राजकन्या अम्बाने उन भृगुनन्दनसे कहा— ॥ ५ ॥

भगवन्नेवमेवैतद् यथाऽऽह भगवांस्तथा ।
अजेयो युधि भीष्मोऽयमपि देवैरुदारधीः ॥ ६ ॥

'भगवन् ! आपका कहना ठीक है । वास्तवमें ये उदारबुद्धि भीष्म युद्धमें देवताओंके लिये भी अजेय हैं ॥ ६ ॥

यथाशक्ति यथोत्साहं मम कार्यं कृतं त्वया ।
अनिवार्यं रणे वीर्यमस्त्राणि विविधानि च ॥ ७ ॥

'आपने अपनी पूरी शक्ति लगाकर पूर्ण उत्साहके साथ मेरा कार्य किया है । युद्धमें ऐसा पराक्रम दिखाया है, जिसे भीष्मके सिवा दूसरा कोई रोक नहीं सकता था । इसी प्रकार आपने नाना प्रकारके दिव्यास्त्र भी प्रकट किये हैं ॥ ७ ॥

न चैव शक्यते युद्धे विशेषयितुमन्ततः ।
न चाहमेनं यास्यामि पुनर्भीष्मं कथंचन ॥ ८ ॥

'परंतु अन्ततोगत्वा आप युद्धमें उनकी अपेक्षा अपनी विशेष्यता स्थापित न कर सके । मैं भी अब किसी प्रकार पुनः भीष्मके पास नहीं जाऊँगी ॥ ८ ॥

गमिष्यामि तु तत्राहं यत्र भीष्मं तपोधन ।
समरे पातयिष्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ॥ ९ ॥

'भृगुश्रेष्ठ तपोधन ! अब मैं वहीं जाऊँगी, जहाँ ऐसा बन सकूँ कि समरभूमिमें स्वयं ही भीष्मको मार गिराऊँ' ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोषव्याकुललोचना ।
तापस्ये धृतसंकल्पा सा मे चिन्तयती वधम् ॥ १० ॥

ऐसा कहकर रोषभरे नेत्रोंवाली वह राजकन्या मेरे वधके उपायका चिन्तन करती हुई तपस्याके लिये दृढ़ संकल्प लेकर वहाँसे चली गयी ॥ १० ॥

ततो महेन्द्रं सह तैर्मुनिभिर्भृगुसत्तमः ।
यथाऽऽगतं तथा सोऽगान्मामुपामन्त्र्य भारत ॥ ११ ॥

भारत ! तदनन्तर भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी उन महर्षियोंके साथ मुझसे विदा ले जैसे आये थे, वैसे ही महेन्द्र पर्वतपर चले गये ॥ ११ ॥

ततो रथं समारुह्य स्तूयमानो द्विजातिभिः ।
प्रविश्य नगरं मात्रे सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ १२ ॥
यथावृत्तं महाराज सा च मां प्रत्यनन्दत ।
पुरुषांश्चादिशं प्राज्ञान् कन्यावृत्तान्तकर्मणि ॥ १३ ॥

महाराज ! तत्पश्चात् मैंने भी ब्राह्मणके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए रथपर आरुढ़ हो हस्तिनापुरमें आकर माता सत्यवतीसे सब समाचार यथार्थरूपसे निवेदन किया । माताने भी मेरा अभिनन्दन किया । इसके बाद मैंने कुछ बुद्धिमान् पुरुषोंको उस कन्याके वृत्तान्तका पता लगानेके कार्यमें नियुक्त कर दिया ॥ १२-१३ ॥

दिवसे दिवसे ह्यस्या गतिजल्पितचेष्टितम् ।
प्रत्याहरंश्च मे युक्ताः स्थिताः प्रियहिते सदा ॥ १४ ॥

मेरे लगाये हुए गुप्तचर सदा मेरे प्रिय एवं हितमें संलग्न रहनेवाले थे । वे प्रतिदिन उस कन्याकी गतिविधि, बोलचाल और चेष्टाका समाचार मेरे पास पहुँचाया करते थे ॥ १४ ॥

यदैव हि वनं प्रायात् सा कन्या तपसे धृता ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तदैवं व्यथितो दीनो गतचेता इवाभवम् ॥ १५ ॥

जिस दिन वह कन्या तपस्याका निश्चय करके वनमें गयी, उसी दिन मैं व्यथित, दीन और अचेत-सा हो गया ॥

न हि मां क्षत्रियः कश्चिद् वीर्येण व्यजयद् युधि ।
ऋते ब्रह्मविदस्तात तपसा संशितव्रतात् ॥ १६ ॥

तात ! जो तपस्याके द्वारा कठोर व्रतका पालन करनेवाले हैं, उन ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण परशुरामजीको छोड़कर कोई भी क्षत्रिय अबतक युद्धमें मुझे पराजित नहीं कर सका है ॥ १६ ॥

अपि चैतन्मया राजन् नारदेऽपि निवेदितम् ।
व्यासे चैव तथा कार्यं तौ चोभौ मामवोचताम् ॥ १७ ॥
न विषादस्त्वया कार्यो भीष्म काशिसुतां प्रति ।
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ॥ १८ ॥

राजन् ! मैंने यह वृत्तान्त देवर्षि नारद और महर्षि व्याससे भी निवेदन किया था । उस समय उन दोनोंने मुझसे कहा— 'भीष्म ! तुम्हें काशिराजकी कन्याके विषयमें तनिक भी विषाद नहीं करना चाहिये । दैवके विधानको पुरुषार्थके द्वारा कौन टाल सकता है ?' ॥ १७-१८ ॥

सा कन्या तु महाराज प्रविश्याश्रममण्डलम् ।
यमुनातीरमाश्रित्य तपस्तेपेऽतिमानुषम् ॥ १९ ॥

महाराज ! फिर उस कन्याने आश्रममण्डलमें पहुँचकर यमुनाके तटका आश्रय ले ऐसी कठोर तपस्या की, जो मानवीय शक्तिसे परे है ॥ १९ ॥

निराहारा कृशा रुक्षा जटिला मलपङ्किनी ।
षण्मासान् वायुभक्षा च स्थाणुभूता तपोधना ॥ २० ॥

उसने भोजन छोड़ दिया, वह दुबली तथा रुक्ष हो गयी । सिरपर केशोंकी जटा बन गयी । शरीरमें मैल और कीचड़ जम गयी । वह तपोधना कन्या छः महीनोंतक केवल वायु पीकर ठूँठे काठकी भाँति निश्चल भावसे खड़ी रही २०

यमुनाजलमाश्रित्य संवत्सरमथापरम् ।
उदवासं निराहारा पारयामास भाविनी ॥ २१ ॥

फिर एक वर्षतक यमुनाजीके जलमें घुसकर बिना कुछ खाये-पीये वह भाविनी राजकन्या जलमें ही रहकर तपस्या करती रही ॥ २१ ॥

शीर्णपर्णेन चैकेन पारयामास सा परम् ।
संवत्सरं तीव्रकोपा पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठिता ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् तीव्र क्रोधसे युक्त हुई अम्बाने पैरके अँगूठेके अग्रभागपर खड़ी हो अपने-आप झड़कर गिरा हुआ केवल एक सूखा पत्ता खाकर एक वर्ष व्यतीत किया ॥ २२ ॥

एवं द्वादश वर्षाणि तापयामास रोदसी ।
निवर्त्यमानापि च सा ज्ञातिभिर्नैव शक्यते ॥ २३ ॥

इस प्रकार बारह वर्षोंतक कठोर तपस्यामें संलग्न हो उसने पृथ्वी और आकाशको संतप्त कर दिया । उसके जातिवालोंने आकर उसे उस कठोर व्रतसे निवृत्त करनेकी चेष्टा की; परंतु उन्हें सफलता न मिल सकी ॥ २३ ॥

ततोऽगमद् वत्सभूमिं सिद्धचारणसेविताम् ।
आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥
तत्र पुण्येषु तीर्थेषु साऽऽप्लुताङ्गी दिवानिशम् ।
व्यचरत् काशिकन्या सा यथाकामविचारिणी ॥ २५ ॥

तदनन्तर वह सिद्धों और चारणोंद्वारा सेवित वत्स देशकी भूमिमें गयी और वहाँ पुण्यशील तपस्वी महात्माओंके आश्रमोंमें विचरने लगी । काशिराजकी वह कन्या दिन-रात वहाँके पुण्य तीर्थोंमें स्नान करती और अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र विचरती रहती थी ॥ २४-२५ ॥

नन्दाश्रमे महाराज तथोलूकाश्रमे शुभे ।
च्यवनस्याश्रमे चैव ब्रह्मणः स्थान एव च ॥ २६ ॥
प्रयागे देवयजने देवारण्येषु चैव ह ।
भोगवत्यां महाराज कौशिकस्याश्रमे तथा ॥ २७ ॥
माण्डव्यस्याश्रमे राजन् दिलीपस्याश्रमे तथा ।
रामह्रदे च कौरव्य पैलगर्गस्य चाश्रमे ॥ २८ ॥
एतेषु तीर्थेषु तदा काशिकन्या विशाम्पते ।
आप्लावयत गात्राणि व्रतमास्थाय दुष्करम् ॥ २९ ॥

महाराज ! शुभकारक नन्दाश्रम, उलूकाश्रम, च्यवनाश्रम, ब्रह्मस्थान, देवताओंके यज्ञस्थान प्रयाग, देवारण्य, भोगवती, कौशिकाश्रम, माण्डव्याश्रम, दिलीपाश्रम, रामह्रद और पैलगर्गाश्रम—क्रमशः इन सभी तीर्थोंमें उन दिनों काशिराजकी कन्याने कठोर व्रतका आश्रय ले स्नान किया ॥ २६-२९ ॥

तामब्रवीच्च कौरव्य मम माता जले स्थिता ।
किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे तथ्यमेव वदस्व मे ॥ ३० ॥

कुरुनन्दन ! उस समय मेरी माता गङ्गाने जलमें प्रकट होकर अम्बासे कहा—'भद्रे ! तू किसलिये शरीरको इतना क्लेश देती है । मुझे ठीक-ठीक बता' ॥ ३० ॥

सैनामथाब्रवीद् राजन् कृताञ्जलिरनिन्दिता ।
भीष्मेण समरे रामो निर्जितश्चारुलोचने ॥ ३१ ॥
कोऽन्यस्तमुत्सहेज्जेतुमुद्यतेषुं महीपतिः ।
साहं भीष्मविनाशाय तपस्तप्स्ये सुदारुणम् ॥ ३२ ॥

राजन् ! तब साध्वी अम्बाने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे कहा—'चारुलोचने ! भीष्मने युद्धमें परशुरामजीको परास्त कर दिया; फिर दूसरा कौन ऐसा राजा है, जो धनुष-बाण लेकर खड़े हुए भीष्मको युद्धमें परास्त कर सके ? अतः मैं भीष्मके विनाशके लिये अत्यन्त कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥ ३१-३२ ॥

विचरामि महीं देवि यथा हन्यामहं नृपम् ।
एतद् व्रतफलं देवि परमस्मिन् यथा हि मे ॥ ३३ ॥

'देवि ! मैं इस भूतलपर विभिन्न तीर्थोंमें इसीलिये विचर रही हूँ कि योग्य बनकर मैं स्वयं ही भीष्मको मार सकूँ । भगवति ! इस जगत्‌में मेरे व्रत और तपस्याका यही सर्वोत्तम फल है, जैसा मैंने आपको बताया है' ॥ ३३ ॥

ततोऽब्रवीत् सागरगा जिह्मं चरसि भाविनि ।
नैष कामोऽनवद्याङ्गि शक्यः प्राप्तुं त्वयाबले ॥ ३४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तब सागरगामिनी गङ्गानदीने उससे कहा—'भाविनि ! तू कुटिल आचरण कर रही है । सुन्दर अङ्गोंवाली अबले ! तेरा यह मनोरथ कभी पूर्ण नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

**यदि भीष्मविनाशाय काश्ये चरसि वै व्रतम् ।**
**व्रतस्था च शरीरं त्वं यदि नाम विमोक्ष्यसि ॥ ३५ ॥**
**नदी भविष्यसि शुभे कुटिला वार्षिकोदका ।**
**दुस्तीर्था न तु विज्ञेया वार्षिकी नाष्टमासिकी ॥ ३६ ॥**

'काशिराजकन्ये ! यदि भीष्मके विनाशके लिये तू प्रयत्न कर रही है और व्रतमें स्थित रहकर ही यदि तू अपना शरीर छोड़ेगी तो शुभे ! तुझे टेढ़ी-मेढ़ी नदी होना पड़ेगा । केवल बरसातमें ही तेरे भीतर जल दिखायी देगा । तेरे भीतर तीर्थ या स्नानकी सुविधा बड़ी कठिनाईसे होगी । तू केवल बरसात-की नदी समझी जायगी । शेष आठ महीनोंमें तेरा पता नहीं लगेगा ॥ ३५-३६ ॥

**भीमग्राहवती घोरा सर्वभूतभयङ्करी ।**
**एवमुक्त्वा ततो राजन् काशिकन्यां न्यवर्तत ॥ ३७ ॥**
**माता मम महाभागा स्मयमानेव भाविनी ।**
**कदाचिदष्टमे मासि कदाचिद् दशमे तथा ।**
**न प्राश्नीतोदकमपि पुनः सा वरवर्णिनी ॥ ३८ ॥**

'बरसातमें भी भयंकर ग्राहोंसे भरी रहनेके कारण तू समस्त प्राणियोंके लिये अत्यन्त भयंकर और घोरस्वरूपा बनी रहेगी ।' राजन् ! काशिराजकी कन्यासे ऐसा कहकर मेरी परम सौभाग्यशालिनी माता गङ्गा देवी मुसकराती हुई लौट गयीं । तदनन्तर वह सुन्दरी कन्या पुनः कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हो कभी आठवें और कभी दसवें महीने तक जल भी नहीं पीती थी ॥ ३७-३८ ॥

**सा वत्सभूमिं कौरव्य तीर्थलोभात् ततस्ततः ।**
**पतिता परिधावन्ती पुनः काशिपतेः सुता ॥ ३९ ॥**

कुरुनन्दन ! काशिराजकी वह कन्या तीर्थसेवनके लोभसे वत्सदेशकी भूमिपर इधर-उधर दौड़ती फिरती थी ॥ ३९ ॥

**सा नदी वत्सभूम्यां तु प्रथिताम्बेति भारत ।**
**वार्षिकी ग्राहबहुला दुस्तीर्था कुटिला तथा ॥ ४० ॥**

भारत ! कुछ कालके पश्चात् वह वत्सदेशकी भूमिमें अम्बा नामसे प्रसिद्ध नदी हुई, जो केवल बरसातमें जलसे भरी रहती थी । उसमें बहुत-से ग्राह निवास करते थे । उसके भीतर उतरना और स्नान आदि तीर्थकृत्योंका सम्पादन बहुत ही कठिन था । वह नदी टेढ़ी-मेढ़ी होकर बहती थी ॥ ४० ॥

**सा कन्या तपसा तेन देहार्धेन व्यजायत ।**
**नदी च राजन् वत्सेषु कन्या चैवाभवत् तदा ॥ ४१ ॥**

राजन् ! राजकन्या अम्बा उस तपस्याके प्रभावसे आधे शरीरसे तो अम्बा नामकी नदी हो गयी और आधे अङ्गसे वत्सदेशमें ही एक कन्या होकर प्रकट हुई ॥ ४१ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बातपस्यायां षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें अम्बाकी तपस्याविषयक एक सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८६ ॥

## सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

### अम्बाका द्वितीय जन्ममें पुनः तप करना और महादेवजीसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति तथा उसका चिताकी आगमें प्रवेश

*भीष्म उवाच*

**ततस्ते तापसाः सर्वे तपसे धृतनिश्चयाम् ।**
**दृष्ट्वा न्यवर्तयंस्तात किं कार्यमिति चाब्रुवन् ॥ १ ॥**

भीष्मजी कहते हैं—तात ! उस जन्ममें भी उसे तपस्या करनेका ही दृढ़ निश्चय लिये देख सब तपस्वी महात्माओंने उसे रोका और पूछा—'तुझे क्या करना है ?' ॥ १ ॥

**तानुवाच ततः कन्या तपोवृद्धानृषींस्तदा ।**
**निराकृतास्मि भीष्मेण भ्रंशिता पतिधर्मतः ॥ २ ॥**

तब उस कन्याने उन तपोवृद्ध महर्षियोंसे कहा—'भीष्मने मुझे ठुकराया है और मुझे पतिकी प्राप्ति एवं उसकी सेवारूप धर्मसे वञ्चित कर दिया है ॥ २ ॥

**वधार्थं तस्य दीक्षा मे न लोकार्थं तपोधनाः ।**
**निहत्य भीष्मं गच्छेयं शान्तिमित्येव निश्चयः ॥ ३ ॥**

'तपोधनो ! मेरी यह तपकी दीक्षा पुण्यलोकोंकी प्राप्तिके लिये नहीं, भीष्मका वध करनेके लिये है । मेरा यह निश्चय है कि भीष्मको मार देनेपर मेरे हृदयको शान्ति मिल जायगी ।३।

**यत्कृते दुःखवसतिमिमां प्राप्तास्मि शाश्वतीम् ।**
**पतिलोकाद् विहीना च नैव स्त्री न पुमानिह ॥ ४ ॥**
**नाहत्वा युधि गाङ्गेयं निवर्तिष्ये तपोधनाः ।**
**एष मे हृदि संकल्पो यदिदं कथितं मया ॥ ५ ॥**

'जिसके कारण मैं सदाके लिये इस दुःखमयी परिस्थितिमें पड़ गयी हूँ और पतिलोकसे वञ्चित होकर इस जगत्में न तो स्त्री रह गयी हूँ न पुरुष ही । उस गङ्गापुत्र भीष्मको युद्धमें मारे बिना तपस्यासे निवृत्त नहीं होऊँगी । तपोधनो ! यही मेरे हृदयका संकल्प है, जिसे मैंने स्पष्ट बता दिया ।४-५।

**स्त्रीभावे परिनिर्विण्णा पुंस्त्वार्थे कृतनिश्चया ।**
**भीष्मे प्रतिचिकीर्षामि नास्मि वार्येति वै पुनः ॥ ६ ॥**

'मुझे स्त्रीके स्वरूपसे विरक्ति हो गयी है, अतः पुरुष-शरीरकी प्राप्तिके लिये दृढ़ निश्चय लेकर तपस्यामें प्रवृत्त हुई हूँ । भीष्मसे अवश्य बदला लेना चाहती हूँ, अतः आपलोग मुझे रोकें नहीं' ॥ ६ ॥

**तां देवो दर्शयामास शूलपाणिरुमापतिः ।**
**मध्ये तेषां महर्षीणां स्वेन रूपेण तापसीम् ॥ ७ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तब शूलपाणि उमावल्लभ भगवान् शिवने उन महर्षियोंके बीचमें अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट होकर उस तपस्विनीको दर्शन दिया ॥ ७ ॥

**छन्दमाना वरेणाथ सा वव्रे मत्पराजयम्।**
**हनिष्यसीति तां देवः प्रत्युवाच मनस्विनीम् ॥ ८ ॥**

फिर इच्छानुसार वर माँगनेका आदेश देनेपर उसने मेरी पराजयका वर माँगा। तब महादेवजीने उस मनस्विनीसे कहा—'तू अवश्य भीष्मका वध करेगी' ॥ ८ ॥

**ततः सा पुनरेवाथ कन्या रुद्रमुवाच ह।**
**उपपद्येत कथं देव स्त्रिया युधि जयो मम ॥ ९ ॥**

यह सुनकर उस कन्याने भगवान् रुद्रसे पुनः पूछा—'देव! मैं तो स्त्री हूँ। मुझे युद्धमें विजय कैसे प्राप्त हो सकती है?॥९॥

**स्त्रीभावेन च मे गाढं मनः शान्तमुमापते।**
**प्रतिश्रुतश्च भूतेश त्वया भीष्मपराजयः ॥ १० ॥**

'उमापते! भूतनाथ! स्त्रीरूप होनेके कारण मेरा मन बहुत निस्तेज है। इधर आपने मेरे द्वारा भीष्मके पराजित होनेका वरदान दिया है ॥ १० ॥

**यथा स सत्यो भवति तथा कुरु वृषध्वज।**
**यथा हन्यां समागम्य भीष्मं शान्तनवं युधि ॥ ११ ॥**

'वृषध्वज! आपका वह वरदान जिस प्रकार सत्य हो, वैसा कीजिये; जिससे मैं युद्धमें शान्तनुपुत्र भीष्मका सामना करके उन्हें मार सकूँ' ॥ ११ ॥

**तामुवाच महादेवः कन्यां किल वृषध्वजः।**
**न मे वागनृतं प्राह सत्यं भद्रे भविष्यति ॥ १२ ॥**

तब वृषभध्वज महादेवजीने उस कन्यासे कहा—'भद्रे! मेरी वाणीने कभी झूठ नहीं कहा है; अतः मेरी बात सत्य होकर रहेगी ॥ १२ ॥

**हनिष्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे।**
**स्मरिष्यसि च तत् सर्वं देहमन्यं गता सती ॥ १३ ॥**

'तू रणक्षेत्रमें भीष्मको अवश्य मारेगी और इसके लिये आवश्यकतानुसार पुरुषत्व भी प्राप्त कर लेगी। दूसरे शरीरमें जानेपर तुझे इन सब बातोंका स्मरण भी बना रहेगा ॥१३॥

**द्रुपदस्य कुले जाता भविष्यसि महारथः।**
**शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च भविष्यसि सुसम्मतः ॥ १४ ॥**

'तू द्रुपदके कुलमें उत्पन्न हो महारथी वीर होगी। तुझे शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेकी कलामें निपुणता प्राप्त होगी। साथ ही तू विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाली सम्मानित योद्धा होगी॥

**यथोक्तमेव कल्याणि सर्वमेतद् भविष्यति।**
**भविष्यसि पुमान् पश्चात् कस्माच्चित्कालपर्ययात्॥१५॥**

'कल्याणि! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा। तू पहले तो कन्यारूपमें ही उत्पन्न होगी; फिर कुछ कालके पश्चात् पुरुष हो जायगी' ॥ १५ ॥

**एवमुक्त्वा महादेवः कपर्दी वृषभध्वजः।**
**पश्यतामेव विप्राणां तत्रैवान्तरधीयत ॥ १६ ॥**

ऐसा कहकर जटाजूटधारी वृषभध्वज महादेवजी उन सब ब्राह्मणोंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १६ ॥

**ततः सा पश्यतां तेषां महर्षीणामनिन्दिता।**
**समाहृत्य वनात् तस्मात् काष्ठानि वरवर्णिनी ॥ १७ ॥**
**चितां कृत्वा सुमहतीं प्रदाय च हुताशनम्।**
**प्रदीप्तेऽग्नौ महाराज रोषदीप्तेन चेतसा ॥ १८ ॥**
**उक्त्वा भीष्मवधायेति प्रविवेश हुताशनम्।**
**ज्येष्ठा काशिसुता राजन् यमुनामभितो नदीम् ॥ १९ ॥**

तदनन्तर उन महर्षियोंके देखते-देखते उस साध्वी एवं सुन्दरी कन्याने उस वनसे बहुत-सी लकड़ियोंका संग्रह किया और एक विशाल चिता बनाकर उसमें आग लगा दी। महाराज! जब आग प्रज्वलित हो गयी, तब वह क्रोधसे जलते हुए हृदयसे भीष्मके वधका संकल्प बोलकर उस आगमें प्रवेश कर गयी। राजन्! इस प्रकार काशिराजकी वह ज्येष्ठ पुत्री अम्बा दूसरे जन्ममें यमुनानदीके किनारे चिताकी आगमें जलकर भस्म हो गयी ॥ १७—१९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बाहुताशनप्रवेशे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें अम्बाका अग्निमें प्रवेशविषयक एक सौ सत्तासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८७ ॥

# अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

## अम्बाका राजा द्रुपदके यहाँ कन्याके रूपमें जन्म, राजा तथा रानीका उसे पुत्ररूपमें प्रसिद्ध करके उसका नाम शिखण्डी रखना

*दुर्योधन उवाच*

**कथं शिखण्डी गाङ्गेय कन्या भूत्वा पुरा तदा।**
**पुरुषोऽभूद् युधिश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥**

दुर्योधनने पूछा—समरश्रेष्ठ गङ्गानन्दन पितामह! शिखण्डी पहले कन्यारूपमें उत्पन्न होकर फिर पुरुष कैसे हो गया? यह मुझे बताइये ॥ १ ॥

*भीष्म उवाच*

**भार्या तु तस्य राजेन्द्र द्रुपदस्य महीपतेः।**
**महिषी दयिता ह्यासीदपुत्रा च विशाम्पते ॥ २ ॥**

भीष्मने कहा—प्रजापालक राजेन्द्र! राजा द्रुपदकी प्यारी पटरानीके कोई पुत्र नहीं था ॥ २ ॥

**एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदो वै महीपतिः।**
**अपत्यार्थे महाराज तोषयामास शङ्करम् ॥ ३ ॥**

महाराज! इसी समय भूपाल द्रुपदने संतानकी प्राप्तिके लिये भगवान शंकरको संतुष्ट किया ॥ ३ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अस्मद्वधार्थं निश्चित्य तपो घोरं समास्थितः।
सुते कन्यां महादेव पुत्रो मे स्यादिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥
भगवन् पुत्रमिच्छामि भीष्मं प्रतिचिकीर्षया।
इत्युक्तो देवदेवेन स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति ॥ ५ ॥
निवर्तस्व महीपाल नैतज्जात्वन्यथा भवेत्।

हमलोगोंके वधके लिये पुत्र पानेका निश्चित संकल्प लेकर उन्होंने यह कहते हुए घोर तपस्या की थी कि 'महादेव! मुझे कन्या नहीं, पुत्र प्राप्त हो। भगवन्! मैं भीष्मसे बदला लेनेके लिये पुत्र चाहता हूँ।' यह सुनकर देवाधिदेव महादेवजीने कहा—'भूपाल! तुम्हें पहले कन्या प्राप्त होगी, फिर वही पुरुष हो जायगी। अब तुम लौटो। मैंने जो कहा है वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता' ॥ ४-५½ ॥

स तु गत्वा च नगरं भार्यामिदमुवाच ह ॥ ६ ॥
कृतो यत्नो महादेवस्तपसाऽऽराधितो मया।
कन्या भूत्वा पुमान् भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना॥७॥
पुनः पुनर्याच्यमानो दिष्टमित्यब्रवीच्छिवः।
न तदन्यच्च भविता भवितव्यं हि तत् तथा ॥ ८ ॥

तब राजा द्रुपद नगरको लौट गये और अपनी पत्नीसे इस प्रकार बोले - 'देवि! मैंने बड़ा प्रयत्न किया। तपस्याके द्वारा महादेवजीकी आराधना की। तब भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा—पहले तुम्हें पुत्री होगी; फिर वही पुत्रके रूपमें परिणत हो जायगी। मैंने बार-बार केवल पुत्रके लिये याचना की; परंतु भगवान् शिवने इसे दैवका विधान बताया है और कहा—'यह बदल नहीं सकता। जो कहा गया है, वही होगा' ॥ ६-८ ॥

ततः सा नियता भूत्वा ऋतुकाले मनस्विनी।
पत्नी द्रुपदराजस्य द्रुपदं प्रविवेश ह ॥ ९ ॥
लेभे गर्भं यथाकालं विधिदृष्टेन कर्मणा।
पार्षतस्य महीपाल यथा मां नारदोऽब्रवीत् ॥ १० ॥
ततो दधार सा देवी गर्भं राजीवलोचना।

तदनन्तर द्रुपदराजकी मनस्विनी पत्नीने नियमपूर्वक रहकर द्रुपदके साथ संयोग किया। शास्त्रीय विधिसे गर्भाधान-संस्कार होनेपर यथासमय उसने गर्भ धारण किया। राजन्! जैसा कि मुझसे नारदजीने कहा था। द्रुपदकी कमल-नयनी रानीने इसी प्रकार गर्भ धारण किया ॥९-१०½॥

तां स राजा प्रियां भार्यां द्रुपदः कुरुनन्दन ॥ ११ ॥
पुत्रस्नेहान्महाबाहुः सुखं पर्यचरत् तदा।
सर्वानभिप्रायकृतान् भार्यालभत कौरव ॥ १२ ॥

कुरुनन्दन! महाबाहु द्रुपदने भावी पुत्रके प्रति स्नेह होनेके कारण अपनी प्यारी पत्नीको बड़े सुखसे रक्खा। उसका आदर-सत्कार किया। कुरुकुलरत्न! रानीको जिन-जिन वस्तुओंकी इच्छा हुई, वे सब उनके सामने प्रस्तुत की गयीं ॥ ११–१२ ॥

अपुत्रस्य सतो राज्ञो द्रुपदस्य महीपतेः।
यथाकालं तु सा देवी महिषी द्रुपदस्य ह ॥ १३ ॥
कन्यां प्रवररूपां तु प्राजायत नराधिप।

नरेश्वर! पुत्रहीन राजा द्रुपदकी उस महारानीने समय आनेपर एक परम सुन्दरी कन्याको जन्म दिया ॥१३½॥

अपुत्रस्य तु राज्ञः सा द्रुपदस्य मनस्विनी ॥ १४ ॥
ख्यापयामास राजेन्द्र पुत्रो ह्येष ममेति वै।

राजेन्द्र! तब पुत्रहीन राजा द्रुपदकी मनस्विनी रानीने यह घोषणा करा दी कि यह मेरा पुत्र है ॥ १४½ ॥

ततः स राजा द्रुपदः प्रच्छन्नाया नराधिप ॥ १५ ॥
पुत्रवत् पुत्रकार्याणि सर्वाणि समकारयत्।
रक्षणं चैव मन्त्रस्य महिषी द्रुपदस्य सा ॥ १६ ॥
चकार सर्वयत्नेन ब्रुवाणा पुत्र इत्युत।
न च तां वेद नगरे कश्चिदन्यत्र पार्षतात् ॥ १७ ॥

नरेन्द्र! इसके बाद राजा द्रुपदने छिपाकर रक्खी हुई उस कन्याके सभी संस्कार पुत्रके ही समान कराये। द्रुपदकी रानीने सब प्रकारका प्रयत्न करके इस रहस्यको गुप्त रखनेकी व्यवस्था की। वह उस कन्याको पुत्र कहकर ही पुकारती थी। सारे नगरमें केवल द्रुपदको छोड़कर दूसरा कोई नहीं जानता था कि वह कन्या है ॥ १५–१७ ॥

श्रद्दधानो हि तद्वाक्यं देवस्याच्युततेजसः।
छादयामास तां कन्यां पुमानिति च सोऽब्रवीत्॥ १८ ॥

जिनका तेज कभी क्षीण नहीं होता, उन महादेवजीके वचनोंपर श्रद्धा रखनेके कारण राजा द्रुपदने उसके कन्या-भावको छिपाया और पुत्र होनेकी घोषणा कर दी ॥१८॥

जातकर्माणि सर्वाणि कारयामास पार्थिवः।
पुंवद्विधानयुक्तानि शिखण्डीति च तां विदुः ॥ १९ ॥

राजाने बालकके सम्पूर्ण जातकर्म पुत्रोचित विधानसे ही करवाये, लोग उसे 'शिखण्डी' के नामसे जानते थे ॥१९॥

अहमेकस्तु चारेण वचनान्नारदस्य च।
ज्ञातवान् देववाक्येन अम्बायास्तपसा तथा ॥ २० ॥

केवल मैं गुप्तचरके दिये हुए समाचारसे, नारदजीके कथनसे, महादेवजीके वरदान-वाक्यसे तथा अम्बाकी तपस्यासे शिखण्डीके कन्या होनेका वृत्तान्त जान गया था ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्ड्युत्पत्तौ अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें शिखण्डीकी उत्पत्तिविषयक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

## शिखण्डीका विवाह तथा उसके स्त्री होनेका समाचार पाकर उसके श्वशुर दशार्णराजका महान् कोप

*भीष्म उवाच*

**चकार यत्नं द्रुपदः सुतायाः सर्वकर्मसु।**
**ततो लेख्यादिषु तथा शिल्पेषु च परंतप ॥ १ ॥**

भीष्म कहते हैं—तदनन्तर द्रुपदने अपनी पुत्रीको लेखनशिक्षा और शिल्पशिक्षा आदि सभी कार्योंकी योग्यता प्राप्त करानेके लिये विशेष प्रयत्न किया ॥ १ ॥

**इष्वस्त्रे चैव राजेन्द्र द्रोणशिष्यो बभूव ह।**
**तस्य माता महाराज राजानं वरवर्णिनी ॥ २ ॥**
**चोदयामास भार्यार्थं कन्यायाः पुत्रवत् तदा।**
**ततस्तां पार्षतो दृष्ट्वा कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम्।**
**स्त्रियं मत्वा ततश्चिन्तां प्रपेदे सह भार्यया ॥ ३ ॥**

राजेन्द्र! धनुर्विद्याके लिये शिखण्डी द्रोणाचार्यका शिष्य हुआ। महाराज! शिखण्डीकी सुन्दरी माताने राजा द्रुपदको प्रेरित किया कि वे उसके पुत्रके लिये बहू ला दें। वह अपनी कन्याका पुत्रके समान ब्याह करना चाहती थी। द्रुपदने देखा, मेरी बेटी जवान हो गयी तो भी अबतक स्त्री ही बनी हुई है (वरदानके अनुसार पुरुष नहीं हो सकी), इससे पत्नीसहित उनके मनमें बड़ी चिन्ता हुई ॥ २-३ ॥

*द्रुपद उवाच*

**कन्या ममेयं सम्प्राप्ता यौवनं शोकवर्धिनी।**
**मया प्रच्छादिता चेयं वचनाच्छूलपाणिनः ॥ ४ ॥**

द्रुपद बोले—देवि! मेरी यह कन्या युवावस्थाको प्राप्त होकर मेरा शोक बढ़ा रही है। मैंने भगवान् शंकरके कथनपर विश्वास करके अबतक इसके कन्याभावको छिपा रक्खा था ॥ ४ ॥

*भार्योवाच*

**न तन्मिथ्या महाराज भविष्यति कथंचन।**
**त्रैलोक्यकर्ता कस्माद्धि वृथा वक्तुमिहार्हति ॥ ५ ॥**
**यदि ते रोचते राजन् वक्ष्यामि शृणु मे वचः।**
**श्रुत्वेदानीं प्रपद्येथाः स्वां मतिं पृषतात्मज ॥ ६ ॥**

रानीने कहा—महाराज! भगवान् शिवका दिया हुआ वर किसी तरह मिथ्या नहीं होगा। भला, तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले भगवान् झूठी बात कैसे कह सकते हैं? राजन्! यदि आपको अच्छा लगे तो कहूँ। मेरी बात सुनिये। पृषतनन्दन! इसे सुनकर अपनी बुद्धिके अनुसार ग्रहण करें ॥ ५-६ ॥

**क्रियतामस्य यत्नेन विधिवद् दारसंग्रहः।**
**भविता तद्वचः सत्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ७ ॥**

मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि भगवान्‌का वचन सत्य होगा। अतः आप प्रयत्नपूर्वक शास्त्रीय विधिके अनुसार इसका कन्याके साथ विवाह कर दें ॥ ७ ॥

**ततस्तौ निश्चयं कृत्वा तस्मिन् कार्येऽथ दम्पती।**
**वरयांचक्रतुः कन्यां दशार्णाधिपतेः सुताम् ॥ ८ ॥**

इस प्रकार विवाहका निश्चय करके दोनों पति-पत्नीने दशार्णराजकी पुत्रीका अपने पुत्रके लिये वरण किया ॥ ८ ॥

**ततो राजा द्रुपदो राजसिंहः**
**सर्वान् राज्ञः कुलतः संनिशाम्य।**
**दाशार्णकस्य नृपतेस्तनूजां**
**शिखण्डिने वरयामास दारान् ॥ ९ ॥**

तदनन्तर राजाओंमें श्रेष्ठ द्रुपदने समस्त राजाओंके कुल आदिका परिचय सुनकर दशार्णराजकी ही पुत्रीका शिखण्डीके लिये वरण किया ॥ ९ ॥

**हिरण्यवर्मेति नृपो योऽसौ दाशार्णकः स्मृतः।**
**स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखण्डिने ॥ १० ॥**

दशार्णदेशके राजाका नाम हिरण्यवर्मा था। भूपाल हिरण्यवर्माने शिखण्डीको अपनी कन्या दे दी ॥ १० ॥

**स च राजा दशार्णेषु महानासीत् सुदुर्जयः।**
**हिरण्यवर्मा दुर्धर्षो महासेनो महामनाः ॥ ११ ॥**

दशार्णदेशका वह राजा हिरण्यवर्मा महान् दुर्जय और दुर्धर्ष वीर था। उसके पास विशाल सेना थी। साथ ही उसका हृदय भी विशाल था ॥ ११ ॥

**कृते विवाहे तु तदा सा कन्या राजसत्तम।**
**यौवनं समनुप्राप्ता सा च कन्या शिखण्डिनी ॥ १२ ॥**
**कृतदारः शिखण्डी च काम्पिल्यं पुनरागमत्।**
**ततः सा वेद तां कन्यां कञ्चित् कालं स्त्रियं किल ॥ १३ ॥**

नृपश्रेष्ठ! हिरण्यवर्माकी पुत्री भी युवावस्थाको प्राप्त थी। इधर द्रुपदकी कन्या शिखण्डिनी भी पूर्ण युवती हो गयी थी। विवाहकार्य सम्पन्न हो जानेपर पत्नीसहित शिखण्डी पुनः काम्पिल्य नगरमें आया। दशार्णराजकी कन्याने कुछ दिनोंमें यह समझ लिया कि शिखण्डी तो स्त्री है ॥ १२-१३ ॥

**हिरण्यवर्मणः कन्या ज्ञात्वा तां तु शिखण्डिनीम्।**
**धात्रीणां च सखीनां च व्रीडमाना न्यवेदयत्।**
**कन्यां पञ्चालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम् ॥ १४ ॥**

हिरण्यवर्माकी पुत्रीने शिखण्डीके यथार्थ स्वरूपको जानकर अपनी धाय तथा सखियोंसे लजाते-लजाते यह बात कह दी कि पाञ्चालराजके पुत्र शिखण्डी वास्तवमें पुरुष नहीं, स्त्री हैं ॥ १४ ॥

**ततस्ता राजशार्दूल धात्र्यो दाशार्णिकास्तदा।**
**जग्मुरार्तिं परां प्रेष्याः प्रेषयामासुरेव च ॥ १५ ॥**

नृपश्रेष्ठ! यह सुनकर दशार्णदेशकी धायोंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने यह समाचार सूचित करनेके लिये बहुत-सी दासियोंको दशार्णराजके यहाँ भेजा ॥ १५ ॥

**ततो दशार्णाधिपतेः प्रेष्याः सर्वा न्यवेदयन्।**
**विप्रलम्भं यथावृत्तं स च चुकोप पार्थिवः ॥ १६ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वे सब दासियाँ दशार्णराजसे सब बातें ठीक-ठीक बताती हुई बोलीं कि 'राजा द्रुपदने बहुत बड़ा धोखा दिया है।' यह सुनकर दशार्णराज अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ १६ ॥

**शिखण्ड्यपि महाराज पुंवद् राजकुले तदा।**
**विजहार मुदा युक्तः स्त्रीत्वं नैवातिरोचयन् ॥ १७ ॥**

महाराज ! शिखण्डी भी उस राजपरिवारमें पुरुषकी ही भाँति आनन्दपूर्वक घूमता-फिरता था। उसे अपना स्त्रीत्व अच्छा नहीं लगता था ॥ १७ ॥

**ततः कतिपयाहस्य तच्छ्रुत्वा भरतर्षभ।**
**हिरण्यवर्मा राजेन्द्र रोषादार्तिं जगाम ह ॥ १८ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! राजेन्द्र ! तदनन्तर कुछ दिनोंमें उसके स्त्री होनेका समाचार सुनकर हिरण्यवर्मा क्रोधसे पीड़ित हो गया ॥

**ततो दाशार्णको राजा तीव्रकोपसमन्वितः।**
**दूतं प्रस्थापयामास द्रुपदस्य निवेशनम् ॥ १९ ॥**

तदनन्तर दशार्णराजने दुःसह क्रोधसे युक्त हो राजा द्रुपदके दरबारमें दूत भेजा ॥ १९ ॥

**ततो द्रुपदमासाद्य दूतः काञ्चनवर्मणः।**
**एक एकान्तमुत्सार्य रहो वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥**

हिरण्यवर्माका वह दूत द्रुपदके पास पहुँचकर अकेला एकान्तमें सबको हटाकर केवल राजासे इस प्रकार बोला—॥

**दाशार्णराजो राजंस्त्वामिदं वचनमब्रवीत्।**
**अभिषङ्गात् प्रकुपितो विप्रलब्धस्त्वयानघ ॥ २१ ॥**

'निष्पाप नरेश ! आपने दशार्णराजको धोखा दिया है। आपके द्वारा किये गये अपमानसे उनका क्रोध बहुत बढ़ गया है। उन्होंने आपसे कहनेके लिये यह संदेश भेजा है ॥

**अवमन्यसे मां नृपते नूनं दुर्मन्त्रितं तव।**
**यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे मोहाद् याचितवानसि ॥ २२ ॥**
**तस्याद्य विप्रलम्भस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते।**
**एष त्वां सजनामात्यमुद्धरामि स्थिरो भव ॥ २३ ॥**

'नरेश्वर ! तुमने जो मेरा अपमान किया है, वह निश्चय ही तुम्हारे खोटे विचारका परिचय है। तुमने मोहवश अपनी पुत्रीके लिये मेरी पुत्रीका वरण किया था। दुर्मते ! उस ठगी और वञ्चनाका फल अब तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा, धीरज रक्खो। मैं अभी सेवकों और मन्त्रियोंसहित तुम्हें जड़मूलसहित उखाड़ फेंकता हूँ' ॥ २२-२३ ॥

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि हिरण्यवर्मदूतागमने एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें हिरण्यवर्माके दूतका आगमनविषयक एक सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ १८९

# नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

## हिरण्यवर्माके आक्रमणके भयसे घबराये हुए द्रुपदका अपनी महारानीसे संकटनिवारणका उपाय पूछना

*भीष्म उवाच*

**एवमुक्तस्य दूतेन द्रुपदस्य तदा नृप।**
**चोरस्येव गृहीतस्य न प्रावर्तत भारती ॥ १ ॥**

**भीष्मजी कहते हैं**—राजन् ! दूतके ऐसा कहनेपर पकड़े गये चोरकी भाँति राजा द्रुपदके मुखसे सहसा कोई बात नहीं निकली ॥ १ ॥

**स यत्नमकरोत् तीव्रं सम्बन्धिन्यनुमानने।**
**दूतैर्मधुरसम्भाषैर्नैतदस्तीति संदिशन् ॥ २ ॥**

उन्होंने मधुरभाषी दूतोंके द्वारा यह संदेश देकर कि 'ऐसी बात नहीं है ( आपको धोखा नहीं दिया गया है )' अपने सम्बन्धीको मनानेका दुष्कर प्रयत्न किया ॥ २ ॥

**स राजा भूय एवाथ ज्ञात्वा तत्त्वमथागमत्।**
**कन्येति पाञ्चालसुतां त्वरमाणो विनिर्ययौ ॥ ३ ॥**

राजा हिरण्यवर्माने जब पुनः पता लगाया तो पाञ्चालराजकी पुत्री शिखण्डिनी कन्या ही है, यह बात ठीक जान पड़ी। इससे रुष्ट होकर उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ द्रुपदपर आक्रमण करनेका निश्चय किया ॥ ३ ॥

**ततः सम्प्रेषयामास मित्राणाममितौजसाम्।**
**दुहितुर्विप्रलम्भं तं धात्रीणां वचनात् तदा ॥ ४ ॥**

तदनन्तर राजाने धायोंके कथनानुसार अपनी कन्याको द्रुपदके द्वारा धोखा दिये जानेका समाचार अमिततेजस्वी मित्र राजाओंके पास भेजा ॥ ४ ॥

**ततः समुदयं कृत्वा बलानां राजसत्तमः।**
**अभियाने मतिं चक्रे द्रुपदं प्रति भारत ॥ ५ ॥**

भारत ! इसके बाद नृपश्रेष्ठ हिरण्यवर्माने सैन्य-संग्रह करके राजा द्रुपदके ऊपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥ ५ ॥

**ततः सम्मन्त्रयामास मन्त्रिभिः स महीपतिः।**
**हिरण्यवर्मा राजेन्द्र पाञ्चाल्यं पार्थिवं प्रति ॥ ६ ॥**

राजेन्द्र ! फिर राजा हिरण्यवर्माने अपने मन्त्रियोंके साथ बैठकर परामर्श किया कि मुझे पाञ्चालनरेशके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ॥ ६ ॥

**तत्र वै निश्चितं तेषामभूद् राज्ञां महात्मनाम्।**
**तथ्यं भवति चेदेतत् कन्या राजन् शिखण्डिनी ॥ ७ ॥**
**बद्ध्वा पञ्चालराजानमानयिष्यामहे गृहम्।**
**अन्यं राजानमाधाय पञ्चालेषु नरेश्वरम् ॥ ८ ॥**
**घातयिष्याम नृपतिं पाञ्चालं सशिखण्डिनम् ॥ ९ ॥**

वहाँ महामना मित्र राजाओंका यह निश्चय घोषित हुआ कि राजन् ! यदि यह सत्य सिद्ध हुआ कि शिखण्डी वास्तवमें पुत्र नहीं, कन्या है, तब हमलोग पाञ्चालराजको कैद करके अपने घर ले आयेंगे और पाञ्चालदेशके राज्यपर दूसरे किसी राजाको बिठाकर शिखण्डीसहित द्रुपदको मरवा डालेंगे ॥ ७—९ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तत् तथाभूतमाज्ञाय पुनर्दूतान्नराधिपः ।
प्रस्थापयत् पार्षताय निहन्मीति स्थिरो भव ॥ १० ॥

फिर दूतके मुखसे उस समाचारको यथार्थ जानकर राजा हिरण्यवर्माने द्रुपदके पास दूत भेजा। स्थिर रहो (सावधान हो जाओ); मैं कुछ ही दिनोंमें तुम्हारा संहार कर डालूँगा ॥ १० ॥

भीष्म उवाच

स हि प्रकृत्या वै भीतः किल्बिषी च नराधिपः ।
भयं तीव्रमनुप्राप्तो द्रुपदः पृथिवीपतिः ॥ ११ ॥

भीष्म कहते हैं—राजा द्रुपद उन दिनों स्वभावसे ही भीरु थे। फिर उनके द्वारा अपराध भी बन गया था। अतः उन्होंने बड़े भारी भयका अनुभव किया ॥ ११ ॥

विसृज्य दूतान् दाशार्णे द्रुपदः शोकमूर्छितः ।
समेत्य भार्यां रहिते वाक्यमाह नराधिपः ॥ १२ ॥

राजा द्रुपदने दशार्णनरेशके पास दूतोंको भेजकर शोकसे अधीर हो एकान्त स्थानमें अपनी पत्नीसे मिलकर इस विषयमें बातचीत करनेकी इच्छा की ॥ १२ ॥

भयेन महताऽऽविष्टो हृदि शोकेन चाहतः ।
पाञ्चालराजो दयितां मातरं वै शिखण्डिनः ॥ १३ ॥

पाञ्चालराजके हृदयमें बड़ा भारी भय समा गया था। वे शोकसे पीड़ित थे। अतः उन्होंने अपनी प्यारी पत्नी शिखण्डीकी मातासे इस प्रकार कहा— ॥ १३ ॥

अभियास्यति मां कोपात् सम्बन्धी सुमहाबलः ।
हिरण्यवर्मा नृपतिः कर्षमाणो वरूथिनीम् ॥ १४ ॥

'देवि! मेरे महाबली सम्बन्धी हिरण्यवर्मा क्रोधवश अपनी विशाल सेना लाकर मेरे ऊपर आक्रमण करेंगे ॥ १४ ॥

किमिदानीं करिष्यावो मूढौ कन्यामिमां प्रति ।
शिखण्डी किल पुत्रस्ते कन्येति परिशङ्कितः ॥ १५ ॥

'इस समय हम दोनों क्या करें? इस कन्याके प्रश्नको लेकर हमलोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं। सम्बन्धीके मनमें यह शंका दृढ़मूल हो गयी है कि तुम्हारा पुत्र शिखण्डी वास्तवमें कन्या है ॥ १५ ॥

इति संचिन्त्य यत्नेन समित्रः सबलानुगः ।
वञ्चितोऽस्मीति मन्वानो मां किलोद्धर्तुमिच्छति ॥ १६ ॥
किमत्र तथ्यं सुश्रोणि मिथ्या किं ब्रूहि शोभने ।
श्रुत्वा त्वत्तः शुभं वाक्यं संविधास्याम्यहं तथा ॥ १७ ॥

'यह सोचकर वे ऐसा मानने लगे हैं कि मेरे साथ धोखा किया गया है और इसलिये वे अपने मित्रों, सैनिकों तथा सेवकोंसहित आकर मुझे यत्नपूर्वक उखाड़ फेंकना चाहते हैं। सुश्रोणि! यहाँ क्या सच है और क्या झूठ? शोभने! इस बातको तुम्हीं बताओ। तुम्हारे मुखसे निकले हुए शुभ वचनको सुनकर मैं वैसा ही करूँगा ॥ १६-१७ ॥

अहं हि संशयं प्राप्तो बाला चेयं शिखण्डिनी ।
त्वं च राज्ञि महत् कृच्छ्रं सम्प्राप्ता वरवर्णिनि ॥ १८ ॥

'रानी! मेरा जीवन संशयमें पड़ गया है। यह शिखण्डिनी भी बालिका ही है। सुन्दरि! तुम भी महान् संकटमें फँस गयी हो ॥ १८ ॥

सा त्वं सर्वविमोक्षाय तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ।
तथा विदध्यां सुश्रोणि कृत्यमाशु शुचिस्मिते ॥ १९ ॥

'सुश्रोणि! मैं पूछ रहा हूँ। सबको संकटसे छुड़ानेके लिये कोई यथार्थ उपाय बताओ। शुचिस्मिते! मैं उस उपायको शीघ्र ही काममें लाऊँगा ॥ १९ ॥

शिखण्डिनि च मा भैस्त्वं विधास्ये तत्र तत्त्वतः ।
कृपयाहं वरारोहे वञ्चितः पुत्रधर्मतः ॥ २० ॥

'सुन्दर अङ्गोंवाली महारानी! तुम शिखण्डीके विषयमें भय मत करो। मैं दया करके वही कार्य करूँगा, जो वस्तुतः हितकारक होगा, मैं स्वयं पुत्रधर्मसे वञ्चित हो गया हूँ ॥

मया दाशार्णको राजा वञ्चितः स महीपतिः ।
तदाचक्ष्व महाभागे विधास्ये तत्र यद्धितम् ॥ २१ ॥

'और मैंने दशार्णनरेश महाराज हिरण्यवर्माको भी वञ्चित किया है। अतः महाभागे! इस अवसरपर तुम्हारी दृष्टिमें जो हितकारक कार्य हो, उसे बताओ। मैं उसका अनुष्ठान करूँगा' ॥ २१ ॥

जानता हि नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै ।
प्रकाशं चोदिता देवी प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ २२ ॥

यद्यपि राजा द्रुपद सब कुछ जानते थे तो भी दूसरे लोगोंमें अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये महारानीसे स्पष्ट शब्दोंमें पूछा। उनके प्रश्न करनेपर रानीने राजाको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि द्रुपदप्रश्ने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें द्रुपदप्रश्नविषयक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९० ॥

# एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

## द्रुपदपत्नीका उत्तर, द्रुपदके द्वारा नगररक्षाकी व्यवस्था और देवाराधन तथा शिखण्डिनीका वनमें जाकर स्थूणाकर्ण नामक यक्षसे अपने दुःखनिवारणके लिये प्रार्थना करना

भीष्म उवाच

ततः शिखण्डिनो माता यथातत्त्वं नराधिप ।
आचचक्षे महाबाहो भर्त्रे कन्यां शिखण्डिनीम् ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—महाबाहु नरेश्वर! तब शिखण्डीकी माताने अपने पतिसे यथार्थ रहस्य बताते हुए कहा— 'यह पुत्र शिखण्डी नहीं, शिखण्डिनी नामवाली कन्या है' ॥ १ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अपुत्रया मया राजन् सपत्नीनां भयादिदम्।
कन्या शिखण्डिनी जाता पुरुषो वै निवेदिता ॥ २ ॥

'राजन्! पुत्ररहित होनेके कारण मैंने अपनी सौतोंके भयसे इस कन्या शिखण्डिनीके जन्म लेनेपर भी इसे पुत्र ही बताया ॥ २ ॥

त्वया चैव नरश्रेष्ठ तन्मे प्रीत्यानुमोदितम्।
पुत्रकर्म कृतं चैव कन्यायाः पार्थिवर्षभ ॥ ३ ॥

'नरश्रेष्ठ! आपने भी प्रेमवश मेरे इस कथनका अनुमोदन किया और महाराज! कन्या होनेपर भी आपने इसका पुत्रोचित संस्कार किया ॥ ३ ॥

भार्या चोढा त्वया राजन् दशार्णाधिपतेः सुता।
मया च प्रत्यभिहितं देववाक्यार्थदर्शनात्।
कन्या भूत्वा पुमान् भावीत्येवं चैतदुपेक्षितम् ॥ ४ ॥

'राजन्! मेरे ही कथनपर विश्वास करके आप दशार्णराजकी पुत्रीको इसकी पत्नी बनानेके लिये ब्याह लाये। महादेवजीके वरदानवाक्यपर दृष्टि रखनेके कारण मैंने इसके विषयमें पुत्र होनेकी घोषणा की थी। महादेवजीने कहा था कि पहले कन्या होगी, फिर वही पुत्र हो जायगा। इसीलिये इस वर्तमान संकटकी उपेक्षा की गयी' ॥ ४ ॥

एतच्छ्रुत्वा द्रुपदो यज्ञसेनः
सर्वं तत्त्वं मन्त्रविद्भ्यो निवेद्य।
मन्त्रं राजा मन्त्रयामास राजन्
यथायुक्तं रक्षणे वै प्रजानाम् ॥ ५ ॥

यह सुनकर यज्ञसेन द्रुपदने मन्त्रियोंको सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। राजन्! तत्पश्चात् प्रजाकी रक्षाके लिये जैसी व्यवस्था उचित है, उसके लिये उन्होंने पुनः मन्त्रियोंके साथ गुप्त मन्त्रणा की ॥ ५ ॥

सम्बन्धकं चैव समर्थ्य तस्मिन्
दाशार्णके वै नृपतौ नरेन्द्र।
स्वयं कृत्वा विप्रलम्भं यथाव-
न्मन्त्रैकाग्रो निश्चयं वै जगाम ॥ ६ ॥

नरेन्द्र! यद्यपि राजा द्रुपदने स्वयं ही वञ्चना की थी, तथापि दशार्णराजके साथ सम्बन्ध और प्रेम बनाये रखनेकी इच्छा करके एकाग्रचित्तसे मन्त्रणा करते हुए वे एक निश्चयपर पहुँच गये ॥ ६ ॥

स्वभावगुप्तं नगरमापत्काले तु भारत।
गोपयामास राजेन्द्र सर्वतः समलंकृतम् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन राजेन्द्र! यद्यपि वह नगर स्वभावसे ही सुरक्षित था, तथापि उस विपत्तिके समय उसको सब प्रकारसे सजा करके उन्होंने उसकी रक्षाके लिये विशेष व्यवस्था की ॥

आर्तिं च परमां राजा जगाम सह भार्यया।
दशार्णपतिना सार्धं विरोधे भरतर्षभ ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ! दशार्णराजके साथ विरोधकी भावना होनेपर रानीसहित राजा द्रुपदको बड़ा कष्ट हुआ ॥ ८ ॥

कथं सम्बन्धिना सार्धं न मे स्याद् विग्रहो महान्।
इति संचिन्त्य मनसा दैवतामर्चयत् तदा ॥ ९ ॥

अपने सम्बन्धीके साथ मेरा महान् युद्ध कैसे टल जाय—यह मन-ही-मन विचार करके उन्होंने देवताकी अर्चना आरम्भ कर दी ॥ ९ ॥

तं तु दृष्ट्वा तदा राजन् देवी देवपरं तदा।
अर्चां प्रयुञ्जानमथो भार्या वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

राजन्! राजा द्रुपदको देवाराधनमें तत्पर देख महारानीने पूजा चढ़ाते हुए नरेशसे इस प्रकार कहा—॥ १० ॥

देवानां प्रतिपत्तिश्च सत्या साधुमता सदा।
किमु दुःखार्णवं प्राप्य तस्मादर्चयतां गुरून् ॥ ११ ॥
दैवतानि च सर्वाणि पूज्यन्तां भूरिदक्षिणम्।
अग्नयश्चापि हूयन्तां दाशार्णप्रतिषेधने ॥ १२ ॥

'देवताओंकी आराधना साधु पुरुषोंके लिये सदा ही सत्य (उत्तम) है। फिर जो दुःखके समुद्रमें डूबा हुआ हो, उसके लिये तो कहना ही क्या है। अतः आप गुरुजनों और सम्पूर्ण देवताओंका पूजन करें, ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा दें और दशार्णराजके लौट जानेके लिये अग्नियोंमें होम करें ॥ ११-१२ ॥

अयुद्धेन निवृत्तिं च मनसा चिन्तय प्रभो।
देवतानां प्रसादेन सर्वमेतद् भविष्यति ॥ १३ ॥

'प्रभो! मन-ही-मन यह चिन्तन कीजिये कि दशार्णराज बिना युद्ध किये ही लौट जायँ। देवताओंके कृपाप्रसादसे यह सब कुछ सिद्ध हो जायगा ॥ १३ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रितं सार्धं त्वया पृथुललोचन।
पुरस्यास्याविनाशाय यच्च राजंस्तथा कुरु ॥ १४ ॥

'विशाललोचन नरेश! आपने इस नगरकी रक्षाके लिये मन्त्रियोंके साथ जैसा विचार किया है वैसा कीजिये ॥ १४ ॥

दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिद्ध्यति पार्थिव।
परस्परविरोधाद्धि सिद्धिरस्ति न चैतयोः ॥ १५ ॥

'भूपाल! पुरुषार्थसे संयुक्त होनेपर ही दैव विशेषरूपसे सिद्धिको प्राप्त होता है। दैव और पुरुषार्थमें परस्पर विरोध होनेपर इन दोनोंकी ही सिद्धि नहीं होती ॥ १५ ॥

तस्माद् विधाय नगरे विधानं सचिवैः सह।
अर्चयस्व यथाकामं दैवतानि विशाम्पते ॥ १६ ॥

'राजन्! अतः आप मन्त्रियोंके साथ नगरकी रक्षाके लिये आवश्यक व्यवस्था करके इच्छानुसार देवताओंकी अर्चना कीजिये' ॥ १६ ॥

एवं संभाषमाणौ तु दृष्ट्वा शोकपरायणौ।
शिखण्डिनी तदा कन्या व्रीडितेव तपस्विनी ॥ १७ ॥
ततः सा चिन्तयामास मत्कृते दुःखितावुभौ।
इमाविति ततश्चक्रे मतिं प्राणविनाशने ॥ १८ ॥

इन दोनोंको इस प्रकार शोकमग्न होकर बातचीत करते देख उनकी तपस्विनी पुत्री शिखण्डिनी लज्जित-सी होकर इस

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

प्रकार चिन्ता करने लगी—'ये मेरे माता और पिता दोनों मेरे ही कारण दुखी हो रहे हैं।' ऐसा सोचकर उसने प्राण त्याग देनेका विचार किया ॥ १७-१८ ॥

**एवं सा निश्चयं कृत्वा भृशं शोकपरायणा।**
**निर्जगाम गृहं त्यक्त्वा गहनं निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥**

इस प्रकार जीवनका अन्त कर देनेका निश्चय करके वह अत्यन्त शोकमग्न हो घर छोड़कर निर्जन एवं गहन वनमें चली गयी ॥ १९ ॥

**यक्षेणर्द्धिमता राजन् स्थूणाकर्णेन पालितम्।**
**तद्भयादेव च जनो विसर्जयति तद् वनम् ॥ २० ॥**

राजन्! वह वन समृद्धिशाली यक्ष स्थूणाकर्णके द्वारा सुरक्षित था। इसीके भयसे साधारण लोगोंने उस वनमें आना-जाना छोड़ दिया था ॥ २० ॥

**तत्र च स्थूणभवनं सुधामृत्तिकलेपनम्।**
**लाजोल्लापिकधूमाढ्यमुच्चप्राकारतोरणम् ॥ २१ ॥**

उसके भीतर स्थूणाकर्णका विशाल भवन था, जो चूना और मिट्टीसे लीपा गया था। उसके परकोटे और फाटक बहुत ऊँचे थे। उसमें खसकी जड़के धूमकी सुगन्ध फैली हुई थी ॥ २१ ॥

**तत् प्रविश्य शिखण्डी सा द्रुपदस्यात्मजा नृप।**
**अनश्नाना बहुतिथं शरीरमुदशोषयत् ॥ २२ ॥**

उस भवनमें प्रवेश करके द्रुपदपुत्री शिखण्डिनी बहुत दिनोंतक उपवास करके शरीरको सुखाती रही ॥ २२ ॥

**दर्शयामास तां यक्षः स्थूणो मार्दवसंयुतः।**
**किमर्थोऽयं तवारम्भः करिष्ये ब्रूहि मा चिरम् ॥ २३ ॥**

स्थूणाकर्ण यक्षने उसे इस अवस्थामें देखा। देखकर उसके हृदयमें कोमल भावका उदय हुआ। फिर उसने पूछा—'भद्रे! तुम्हारा यह उपवास-व्रत किसलिये है? अपना प्रयोजन शीघ्र बताओ। मैं उसे पूर्ण करूँगा' ॥ २३ ॥

**अशक्यमिति सा यक्षं पुनः पुनरुवाच ह।**
**करिष्यामीति वै क्षिप्रं प्रत्युवाचाथ गुह्यकः ॥ २४ ॥**

यह सुनकर उसने यक्षसे बार-बार कहा—'यह तुम्हारे लिये असम्भव है।' तब यक्षने बार-बार उत्तर दिया—'मैं तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण कर दूँगा ॥ २४ ॥

**धनेश्वरस्यानुचरो वरदोऽस्मि नृपात्मजे।**
**अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि यत् ते विवक्षितम् ॥ २५ ॥**

'राजकुमारी! मैं कुबेरका सेवक हूँ। मुझमें वर देनेकी शक्ति है, तुम्हारी जो भी इच्छा हो बताओ। मैं तुम्हें अदेय वस्तु भी दे दूँगा' ॥ २५ ॥

**ततः शिखण्डी तत् सर्वमखिलेन न्यवेदयत्।**
**तस्मै यक्षप्रधानाय स्थूणाकर्णाय भारत ॥ २६ ॥**

भरतनन्दन! तब शिखण्डिनीने उस यक्षप्रवर स्थूणाकर्णसे अपना सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताया ॥ २६ ॥

*शिखण्डिन्युवाच*

**अपुत्रो मे पिता यक्ष न चिरान्नाशमेष्यति।**
**अभियास्यति सक्रोधो दशार्णाधिपतिर्हि तम् ॥ २७ ॥**

**शिखण्डिनी बोली**—यक्ष! मेरे पुत्रहीन पिता अब शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे; क्योंकि दशार्णराज कुपित होकर उनपर आक्रमण करेंगे ॥ २७ ॥

**महाबलो महोत्साहः सहेमकवचो नृपः।**
**तस्माद् रक्षस्व मां यक्ष मातरं पितरं च मे ॥ २८ ॥**

वे सुवर्णमय कवचसे युक्त नरेश महाबली और महान् उत्साही हैं—यक्ष! तुम मेरे माता-पिताकी और मेरी भी उनसे रक्षा करो ॥ २८ ॥

**प्रतिज्ञातो हि भवता दुःखप्रतिशमो मम।**
**भवेयं पुरुषो यक्ष त्वत्प्रसादादनिन्दितः ॥ २९ ॥**
**यावदेव स राजा वै नोपयाति पुरं मम।**
**तावदेव महायक्ष प्रसादं कुरु गुह्यक ॥ ३० ॥**

गुह्यक! महायक्ष! तुमने मेरे दुःखनिवारणके लिये प्रतिज्ञा की है। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारी कृपासे एक श्रेष्ठ पुरुष हो जाऊँ। जबतक राजा हिरण्यवर्मा हमारे नगरपर आक्रमण नहीं कर रहे हैं, तभीतक मुझपर कृपा करो ॥ २९-३० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि स्थूणाकर्णसमागमे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें स्थूणाकर्णके साथ शिखण्डिनीकी भेंटविषयक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९१ ॥

# द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

## शिखण्डीको पुरुषत्वकी प्राप्ति, द्रुपद और हिरण्यवर्माकी प्रसन्नता, स्थूणाकर्णको कुबेरका शाप तथा भीष्मका शिखण्डीको न मारनेका निश्चय

*भीष्म उवाच*

**शिखण्डिवाक्यं श्रुत्वाथ स यक्षो भरतर्षभ।**
**प्रोवाच मनसा चिन्त्य दैवेनोपनिपीडितः ॥ १ ॥**
**भवितव्यं तथा तद्धि मम दुःखाय कौरव।**
**भद्रे कामं करिष्यामि समयं तु निबोध मे ॥ २ ॥**
**(स्वं ते पुंस्त्वं प्रदास्यामि स्त्रीत्वं धारयितास्मि ते।)**
**किंचित् कालान्तरे दास्ये पुँल्लिङ्गं स्वमिदं तव।**
**आगन्तव्यं त्वया काले सत्यं चैव वदस्व मे ॥ ३ ॥**

**भीष्म कहते हैं**—भरतश्रेष्ठ कौरव! शिखण्डिनीकी यह बात सुनकर दैवपीड़ित यक्षने मन-ही-मन कुछ सोचकर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कहा—'भद्रे ! तुम जैसा कहती हो वैसा हो तो जायगा; परंतु वह मेरे दुःखका कारण होगा, तथापि मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा । इस विषयमें जो मेरी शर्त है, उसे सुनो। मैं तुम्हें अपना पुरुषत्व दूँगा और तुम्हारा स्त्रीत्व स्वयं धारण करूँगा; किंतु कुछ ही कालके लिये अपना यह पुरुषत्व तुम्हें दूँगा । उस निश्चित समयके भीतर ही तुम्हें मेरा पुरुषत्व लौटानेके लिये यहाँ आ जाना चाहिये । इसके लिये मुझे सच्चा वचन दो ॥ १—३ ॥'

**प्रभुः संकल्पसिद्धोऽस्मि कामचारी विहङ्गमः।**
**मत्प्रसादात् पुरं चैव त्राहि बन्धूंश्च केवलम् ॥ ४ ॥**

'मैं सिद्धसंकल्प, सामर्थ्यशाली, इच्छानुसार सर्वत्र विचरनेवाला तथा आकाशमें भी चलनेकी शक्ति रखनेवाला हूँ । तुम मेरी कृपासे केवल अपने नगर और बन्धु बान्धवोंकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

**स्त्रीलिङ्गं धारयिष्यामि तदेवं पार्थिवात्मजे।**
**सत्यं मे प्रतिजानीहि करिष्यामि प्रियं तव ॥ ५ ॥**

'राजकुमारी ! इस प्रकार मैं तुम्हारा स्त्रीत्व धारण करूँगा, कार्य पूर्ण हो जानेपर तुम मेरा पुरुषत्व लौटा देनेकी मुझसे सच्ची प्रतिज्ञा करो; तब मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा' ॥ ५ ॥

*शिखण्डिन्युवाच*

**प्रतिदास्यामि भगवन् पुँल्लिङ्गं तव सुव्रत।**
**किंचित्कालान्तरं स्त्रीत्वं धारयस्व निशाचर ॥ ६ ॥**

**शिखण्डिनी बोली**—भगवन् ! तुम्हारा यह पुरुषत्व मैं समयपर लौटा दूँगा । निशाचर ! तुम कुछ ही समयके लिये मेरा स्त्रीत्व धारण कर लो ॥ ६ ॥

**प्रतियाते दशार्णे तु पार्थिवे हेमवर्मणि।**
**कन्यैव हि भविष्यामि पुरुषस्त्वं भविष्यसि ॥ ७ ॥**

दशार्णदेशके स्वामी राजा हिरण्यवर्माके लौट जानेपर मैं फिर कन्या ही हो जाऊँगी और तुम पूर्ववत् पुरुष हो जाओगे ॥

*भीष्म उवाच*

**इत्युक्त्वा समयं तत्र चक्राते तावुभौ नृप।**
**अन्योऽन्यस्याभिसंदेहे तौ संक्रामयतां ततः ॥ ८ ॥**
**स्त्रीलिङ्गं धारयामास स्थूणायक्षोऽथ भारत।**
**यक्षरूपं च तद् दीप्तं शिखण्डी प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥**

**भीष्मजी कहते हैं**—नरेश्वर ! इस प्रकार बात करके उन्होंने परस्पर प्रतिज्ञा कर ली तथा उन दोनोंने एक दूसरेके शरीरमें अपने-अपने पुरुषत्व और स्त्रीत्वका संक्रमण करा दिया। भारत ! स्थूणाकर्ण यक्षने उस शिखण्डिनीके स्त्रीत्वको धारण कर लिया और शिखण्डिनीने यक्षका प्रकाशमान पुरुषत्व प्राप्त कर लिया ॥ ८-९ ॥

**ततः शिखण्डी पाञ्चाल्यः पुंस्त्वमासाद्य पार्थिव।**
**विवेश नगरं हृष्टः पितरं च समासदत् ॥ १० ॥**

राजन् ! इस प्रकार पुरुषत्व पाकर पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी बड़े हर्षके साथ नगरमें आया और अपने पितासे मिला॥

**यथावृत्तं तु तत् सर्वमाचख्यौ द्रुपदस्य तत्।**
**द्रुपदस्तस्य तच्छ्रुत्वा हर्षमाहारयत् परम् ॥ ११ ॥**

उसने जैसे जो वृत्तान्त हुआ था, वह सब राजा द्रुपदसे कह सुनाया । उसकी यह बात सुनकर राजा द्रुपदको अपार हर्ष हुआ ॥ ११ ॥

**सभार्यस्तच्च सस्मार महेश्वरवचस्तदा।**
**ततः सम्प्रेषयामास दशार्णाधिपतेर्नृपः ॥ १२ ॥**
**पुरुषोऽयं मम सुतः श्रद्धत्तां मे भवानिति।**

पत्नीसहित राजाको भगवान् महेश्वरके दिये हुए वरका स्मरण हो आया । तदनन्तर राजा द्रुपदने दशार्णराजके पास दूत भेजा और यह कहलाया कि मेरा पुत्र पुरुष है । आप मेरी इस बातपर विश्वास करें ॥ १२½ ॥

**अथ दाशार्णको राजा सहसाभ्यागमत् तदा ॥ १३ ॥**
**पञ्चालराजं द्रुपदं दुःखशोकसमन्वितः।**

इधर दुःख और शोकमें डूबे हुए दशार्णराजने सहसा पाञ्चालराज द्रुपदपर आक्रमण किया ॥ १३½ ॥

**ततः काम्पिल्यमासाद्य दशार्णाधिपतिस्ततः ॥ १४ ॥**
**प्रेषयामास सत्कृत्य दूतं ब्रह्मविदां वरम्।**

काम्पिल्य नगरके निकट पहुँचकर दशार्णराजने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक दूत बनाकर भेजा ॥ १४½ ॥

**ब्रूहि मद्वचनाद् दूत पाञ्चाल्यं तं नृपाधमम् ॥ १५ ॥**
**यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे वृतवानसि दुर्मते।**
**फलं तस्यावलेपस्य द्रक्ष्यस्यद्य न संशयः ॥ १६ ॥**

और कहा—'दूत ! मेरे कथनानुसार राजाओंमें अधम उस पाञ्चालनरेशसे कहिये। दुर्मते ! तुमने जो अपनी कन्याके लिये मेरी कन्याका वरण किया था, उस घमंडका फल तुम्हें आज देखना पड़ेगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ १५-१६ ॥

**एवमुक्तश्च तेनासौ ब्राह्मणो राजसत्तम।**
**दूतः प्रयातो नगरं दाशार्णनृपचोदितः ॥ १७ ॥**

नृपश्रेष्ठ ! दशार्णराजका यह संदेश पाकर और उन्हींकी प्रेरणासे दूत बनकर वे ब्राह्मणदेवता काम्पिल्य नगरमें आये॥

**तत आसादयामास पुरोधा द्रुपदं पुरे।**
**तस्मै पाञ्चालको राजा गामर्घ्यं च सुसत्कृतम् ॥ १८ ॥**
**प्रापयामास राजेन्द्र सह तेन शिखण्डिना।**
**तां पूजां नाभ्यनन्दत् स वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १९ ॥**

नगरमें आकर वे पुरोहित ब्राह्मण महाराज द्रुपदसे मिले। पाञ्चालराजने सत्कारपूर्वक उन्हें अर्घ्य तथा गौ अर्पण की । उनके साथ राजकुमार शिखण्डी भी थे । राजेन्द्र ! पुरोहितने वह पूजा ग्रहण नहीं की और इस प्रकार कहा—॥ १८-१९ ॥

**यदुक्तं तेन वीरेण राज्ञा काञ्चनवर्मणा।**
**यत् तेऽहमधमाचार दुहित्रास्म्यभिवञ्चितः ॥ २० ॥**
**तस्य पापस्य करणात् फलं प्राप्नुहि दुर्मते।**
**देहि युद्धं नरपते ममाद्य रणमूर्धनि ॥ २१ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उद्धरिष्यामि ते सद्यः सामात्यसुतबान्धवम् ।

'राजन्! वीरवर राजा हिरण्यवर्माने जो संदेश दिया है, उसे सुनिये। पापाचारी दुर्बुद्धि नरेश! तुम्हारी पुत्रीके द्वारा मैं ठगा गया हूँ। वह पाप तुमने ही किया है; अतः उसका फल भोगो। नरेश्वर! युद्धके मैदानमें आकर मुझे युद्धका अवसर दो। मैं मन्त्री, पुत्र और बान्धवोंसहित तुम्हारे समस्त कुलको उखाड़ फेंकूँगा' ॥ २०-२१½ ॥

तदुपालम्भसंयुक्तं श्रावितः किल पार्थिवः ॥ २२ ॥
दशार्णपतिना चोक्तो मन्त्रिमध्ये पुरोधसा ।

इस प्रकार पुरोहितने मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए राजा द्रुपदसे दशार्णराजका कहा हुआ उपालम्भयुक्त संदेश सुनाया ॥ २२½ ॥

अभवद् भरतश्रेष्ठ द्रुपदः प्रणयानतः ॥ २३ ॥
यदाह मां भवान् ब्रह्मन् सम्बन्धिवचनाद् वचः ।
अस्योत्तरं प्रतिवचो दूतो राज्ञे वदिष्यति ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब राजा द्रुपद प्रेमसे विनीत हो गये और इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! आपने मेरे सम्बन्धीके कथनानुसार जो बात मुझे सुनायी है, इसका उत्तर मेरा दूत स्वयं जाकर राजाको देगा' ॥ २३-२४ ॥

ततः सम्प्रेषयामास द्रुपदोऽपि महात्मने ।
हिरण्यवर्मणे दूतं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर द्रुपदने भी महामना हिरण्यवर्माके पास वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणको दूत बनाकर भेजा ॥ २५ ॥

तमागम्य तु राजानं दशार्णाधिपतिं तदा ।
तद् वाक्यमाददे राजन् यदुक्तं द्रुपदेन ह ॥ २६ ॥

राजन्! उन्होंने दशार्णनरेशके पास आकर द्रुपदने जो कुछ कहा था, वह सब दुहरा दिया ॥ २६ ॥

आगमः क्रियतां व्यक्तः कुमारोऽयं सुतो मम ।
मिथ्यैतदुक्तं केनापि तदश्रद्धेयमित्युत ॥ २७ ॥

'राजन्! आप आकर स्पष्टरूपसे परीक्षा कर लें। मेरा यह कुमार पुत्र है (कन्या नहीं)। आपसे किसीने झूठे ही उसके कन्या होनेकी बात कह दी है, जो विश्वास करनेके योग्य नहीं है' ॥ २७ ॥

ततः स राजा द्रुपदस्य श्रुत्वा
विमर्षयुक्तो युवतीर्वरिष्ठाः ।
सम्प्रेषयामास सुचारुरूपाः
शिखण्डिनं स्त्री पुमान् वेति वेत्तुम् ॥ २८ ॥

राजा द्रुपदका यह उत्तर सुनकर हिरण्यवर्माने कुछ विचार किया और अत्यन्त मनोहर रूपशाली कुछ श्रेष्ठ युवतियोंको यह जाननेके लिये भेजा कि शिखण्डी स्त्री है या पुरुष ॥

ताः प्रेषितास्तत्त्वभावं विदित्वा
प्रीत्या राज्ञे तच्छशंसुर्हि सर्वम् ।
शिखण्डिनं पुरुषं कौरवेन्द्र
दाशार्णराजाय महानुभावम् ॥ २९ ॥

कौरवराज! उन भेजी हुई युवतियोंने वास्तविक बात जानकर राजा हिरण्यवर्माको बड़ी प्रसन्नताके साथ सब कुछ बता दिया। उन्होंने दशार्णराजको यह विश्वास दिला दिया कि शिखण्डी महान् प्रभावशाली पुरुष है ॥ २९ ॥

ततः कृत्वा तु राजा स आगमं प्रीतिमानथ ।
सम्बन्धिना समागम्य हृष्टो वासमुवास ह ॥ ३० ॥

इस प्रकार परीक्षा करके राजा हिरण्यवर्मा बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने सम्बन्धीसे मिलकर बड़े हर्ष और उल्लासके साथ वहाँ निवास किया ॥ ३० ॥

शिखण्डिने च मुदितः प्रादाद् वित्तं जनेश्वरः ।
हस्तिनोऽश्वांश्च गाश्चैव दास्योऽथ बहुलास्तथा ॥ ३१ ॥

राजाने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने जामाता शिखण्डीको भी बहुत धन, हाथी, घोड़े, गाय, बैल और दासियाँ दीं ॥

पूजितश्च प्रतिययौ निर्भर्त्स्य तनयां किल ।
विनीतकिल्बिषे प्रीते हेमवर्मणि पार्थिवे ।
प्रतियाते दशार्णे तु हृष्टरूपा शिखण्डिनी ॥ ३२ ॥

इतना ही नहीं, उन्होंने झूठी खबर भेजनेके कारण अपनी पुत्रीको भी झिड़कियाँ दीं। फिर वे राजा द्रुपदसे सम्मानित होकर लौट गये। मनोमालिन्य दूर करके दशार्णराज हिरण्यवर्माके प्रसन्नतापूर्वक लौट जानेपर शिखण्डिनीको भी बड़ा हर्ष हुआ ॥ ३२ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य कुबेरो नरवाहनः ।
लोकयात्रां प्रकुर्वाणः स्थूणस्यागान्निवेशनम् ॥ ३३ ॥

उधर कुछ कालके पश्चात् नरवाहन कुबेर लोकमें भ्रमण करते हुए स्थूणाकर्णके घरपर आये ॥ ३३ ॥

स तद्गृहस्योपरि वर्तमान
आलोकयामास धनाधिगोप्ता ।
स्थूणस्य यक्षस्य विवेश वेश्म
स्वलंकृतं माल्यगुणैर्विचित्रैः ॥ ३४ ॥
लाज्यैश्च गन्धैश्च तथा वितानै-
रभ्यर्चितं धूपनधूपितं च ।
ध्वजैः पताकाभिरलंकृतं च
भक्ष्यान्नपेयामिषदन्तहोमम् ॥ ३५ ॥

उसके घरके ऊपर आकाशमें स्थित हो धनाध्यक्ष कुबेरने उसका अच्छी तरह अवलोकन किया। स्थूणाकर्ण यक्षका वह भवन विचित्र हारोंसे सजाया गया था। खशकी और अन्य पदार्थोंकी सुगन्धसे भी अर्चित तथा चँदोवोंसे सुशोभित था। उसमें सब ओर धूपकी सुगन्ध फैली हुई थी। अनेकानेक ध्वज और पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। वहाँ भक्ष्य, भोज्य, पेय आदि सभी वस्तुएँ, जिनका दन्त और जिह्वा द्वारा उदराग्निमें हवन किया जाता है, प्रस्तुत थीं। तत्पश्चात् कुबेरने उस भवनमें प्रवेश किया ॥ ३४-३५ ॥

तत् स्थानं तस्य दृष्ट्वा तु सर्वतः समलंकृतम् ।
मणिरत्नसुवर्णानां मालाभिः परिपूरितम् ॥ ३६ ॥
नानाकुसुमगन्धाढ्यं सिक्तसम्मृष्टशोभितम् ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

[अ]थाब्रवीद् यक्षपतिस्तान् यक्षाननुगांस्तदा ॥ ३७ ॥
[अ]लंकृतमिदं वेश्म स्थूणस्यामितविक्रमाः ।
[न]ोपसर्पति मां चैव कस्मादद्य स मन्दधीः ॥ ३८ ॥

कुबेरने उसके निवासस्थानको सब ओरसे सुसज्जित, [म]णि, रत्न तथा सुवर्णकी मालाओंसे परिपूर्ण, भाँति-भाँतिके [फ]ूलोंकी सुगन्धसे व्याप्त तथा झाड़-बुहार और धो-पोंछ देने[के] कारण शोभासम्पन्न देखकर यक्षराजने स्थूणाकर्णके [से]वकोंसे पूछा—'अमित पराक्रमी यक्षो ! स्थूणाकर्णका यह [भ]वन तो सब प्रकारसे सजाया हुआ दिखायी देता है (इससे [प]ता है कि वह घरमें ही है ); तथापि वह मूर्ख मेरे पास [आ]ता क्यों नहीं है ? ॥ ३६-३८ ॥

[य]स्माज्जानन् स मन्दात्मा मामसौ नोपसर्पति ।
[त]स्मात् तस्मै महादण्डो धार्यः स्यादिति मे मतिः ॥ ३९ ॥

'वह मन्दबुद्धि यक्ष मुझे आया हुआ जानकर भी मेरे [नि]कट नहीं आ रहा है; इसलिये उसे महान् दण्ड देना [चा]हिये, ऐसा मेरा विचार है' ॥ ३९ ॥

*यक्षा ऊचुः*

द्रुपदस्य सुता राजन् राज्ञो जाता शिखण्डिनी ।
[त]स्या निमित्ते कस्मिंश्चित् प्रादात् पुरुषलक्षणम् ॥ ४० ॥
[अ]ग्रहील्लक्षणं स्त्रीणां स्त्रीभूतो तिष्ठते गृहे ।
[न]ोपसर्पति तेनासौ सव्रीडः स्त्रीसरूपवान् ॥ ४१ ॥

**यक्षोंने कहा**—राजन् ! राजा द्रुपदके यहाँ एक शिखण्डिनी [ना]मकी कन्या उत्पन्न हुई है । उसीको किसी विशेष कारण[व]श इन्होंने अपना पुरुषत्व दे दिया है और उसका स्त्रीत्व [स्व]यं ग्रहण कर लिया है । तबसे वे स्त्रीरूप होकर घरमें ही [र]हते हैं । स्त्रीरूपमें होनेके कारण ही वे लज्जावश आपके पास [न]हीं आ रहे हैं ॥ ४०-४१ ॥

[ए]तस्मात् कारणाद् राजन् स्थूणो न त्वाद्य सर्पति ।
[श्रु]त्वा कुरु यथान्यायं विमानमिह तिष्ठताम् ॥ ४२ ॥

महाराज ! इसी कारणसे स्थूणाकर्ण आज आपके सामने [न]हीं उपस्थित हो रहे हैं । यह सुनकर आप जैसा उचित [स]मझें, करें । आज आपका विमान यहीं रहना चाहिये ॥४२॥

[आ]नीयतां स्थूण इति ततो यक्षाधिपोऽब्रवीत् ।
[क]र्तास्मि निग्रहं तस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

तब यक्षराजने कहा—'स्थूणाकर्णको यहाँ बुला ले आओ। मैं [उ]से दण्ड दूँगा ।' यह बात उन्होंने बार-बार दुहरायी ॥४३॥

सोऽभ्यगच्छत यक्षेन्द्रमाहूतः पृथिवीपते ।
स्त्रीसरूपो महाराज तस्थौ व्रीडासमन्वितः ॥ ४४ ॥

राजन् ! इस प्रकार बुलानेपर वह यक्ष कुबेरकी सेवामें [ग]या। महाराज ! वह स्त्रीस्वरूप धारण करनेके कारण [ल]ज्जामें डूबा हुआ उनके सामने खड़ा हो गया ॥ ४४ ॥

[तं] शशापाथ संक्रुद्धो धनदः कुरुनन्दन ।
[ए]वमेव भवत्वद्य स्त्रीत्वं पापस्य गुह्यकाः ॥ ४५ ॥

कुरुनन्दन ! उसे इस रूपमें देखकर कुबेर अत्यन्त [कु]पित हो उठे और शाप देते हुए बोले—'गुह्यको ! इस पापी स्थूणाकर्णका यह स्त्रीत्व अब ऐसा ही बना रहे' ॥ ४५ ॥

ततोऽब्रवीद् यक्षपतिर्महात्मा
यस्माददास्त्ववमन्येह यक्षान् ।
शिखण्डिने लक्षणं पापबुद्धे
स्त्रीलक्षणं चाग्रहीः पापकर्मन् ॥ ४६ ॥
अप्रवृत्तं सुदुर्बुद्धे यस्मादेतत् त्वया कृतम् ।
तस्मादद्य प्रभृत्येव स्त्री त्वं सा पुरुषस्तथा ॥ ४७ ॥

तदनन्तर महात्मा यक्षराजने उस यक्षसे कहा—'पापबुद्धि और पापाचारी यक्ष ! तूने यक्षोंका तिरस्कार करके यहाँ शिखण्डीको अपना पुरुषत्व दे दिया और उसका स्त्रीत्व ग्रहण कर लिया है । दुर्बुद्धे ! तूने जो यह अव्यावहारिक कार्य कर डाला है, इसके कारण आजसे तू स्त्री ही बना रहे और शिखण्डी पुरुषरूपमें ही रह जाय' ॥ ४६-४७ ॥

ततः प्रसादयामासुर्यक्षा वैश्रवणं किल ।
स्थूणस्यार्थे कुरुष्वान्तं शापस्येति पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

तब यक्षोंने अनुनय-विनय करके स्थूणाकर्णके लिये कुबेरको प्रसन्न किया और बारंबार आग्रहपूर्वक कहा—'भगवन् ! इस शापका अन्त कर दीजिये' ॥ ४८ ॥

ततो महात्मा यक्षेन्द्रः प्रत्युवाचानुगामिनः ।
सर्वान् यक्षगणांस्तात शापस्यान्तचिकीर्षया ॥ ४९ ॥

तात ! तब महात्मा यक्षराजने स्थूणाकर्णका अनुगमन करनेवाले उन समस्त यक्षोंसे उस शापका अन्त कर देनेकी इच्छासे इस प्रकार कहा—॥ ४९ ॥

शिखण्डिनि हते यक्षाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यते ।
स्थूणो यक्षो निरुद्वेगो भवत्विति महामनाः ॥ ५० ॥
इत्युक्त्वा भगवान् देवो यक्षराजः सुपूजितः ।
प्रययौ सहितः सर्वैर्निमेषान्तरचारिभिः ॥ ५१ ॥

'यक्षो ! शिखण्डीके मारे जानेपर यह स्थूणाकर्ण यक्ष अपना पूर्वरूप फिर प्राप्त कर लेगा । अतः अब इसे निर्भय हो जाना चाहिये ।' ऐसा कहकर महामना भगवान् यक्षराज कुबेर उन यक्षोंद्वारा अत्यन्त पूजित हो निमेषमात्रमें ही अभीष्ट स्थानपर पहुँच जानेवाले अपने समस्त सेवकोंके साथ वहाँसे चले गये ॥ ५०-५१ ॥

स्थूणस्तु शापं सम्प्राप्य तत्रैव न्यवसत् तदा ।
समये चागमत् तूर्णं शिखण्डी तं क्षपाचरम् ॥ ५२ ॥

उस समय कुबेरका शाप पाकर स्थूणाकर्ण वहीं रहने लगा । शिखण्डी पूर्वनिश्चित समयपर उस निशाचर स्थूणाकर्णके पास तुरंत आ गया ॥ ५२ ॥

सोऽभिगम्याब्रवीद् वाक्यं प्राप्तोऽस्मि भगवन्निति ।
तमब्रवीत् ततः स्थूणः प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

उसके निकट जाकर शिखण्डीने कहा—'भगवन् ! मैं आपकी सेवामें उपस्थित हूँ ।' तब स्थूणाकर्णने उससे बारंबार कहा—'मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, बहुत प्रसन्न हूँ' ॥ ५३ ॥

आर्जवेनागतं दृष्ट्वा राजपुत्रं शिखण्डिनम् ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**सर्वमेव यथावृत्तमाचचक्षे शिखण्डिने ॥ ५४ ॥**

राजकुमार शिखण्डीको सरलतापूर्वक आया हुआ देख उससे यक्षने अपना सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक कह सुनाया ।५४।

*यक्ष उवाच*

**शप्तो वैश्रवणेनाहं त्वत्कृते पार्थिवात्मज ।**
**गच्छेदानीं यथाकामं चर लोकान् यथासुखम् ॥ ५५ ॥**

यक्षने कहा—राजकुमार ! तुम्हारे लिये ही यक्षराजने मुझे शाप दे दिया है; अतः अब जाओ, इच्छानुसार सारे जगत्में सुखपूर्वक विचरो ॥ ५५ ॥

**दिष्टमेतत् पुरा मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ।**
**गमनं तव चेतो हि पौलस्त्यस्य च दर्शनम् ॥ ५६ ॥**

मैं इसे अपना पुरातन प्रारब्ध ही मानता हूँ, जो कि तुम्हारा यहाँसे जाना और उसी समय यक्षराज कुबेरका यहाँ आकर दर्शन देना हुआ। अब इसे टाला नहीं जा सकता ।५६।

*भीष्म उवाच*

**एवमुक्तः शिखण्डी तु स्थूणयक्षेण भारत ।**
**प्रत्याजगाम नगरं हर्षेण महता वृतः ॥ ५७ ॥**

भीष्म कहते हैं—भरतनन्दन ! स्थूणाकर्ण यक्षके ऐसा कहनेपर शिखण्डी बड़े हर्षके साथ अपने नगरको लौट आया ॥

**पूजयामास विविधैर्गन्धमाल्यैर्महाधनैः ।**
**द्विजातीन् देवताश्चैव चैत्यानथ चतुष्पथान् ॥ ५८ ॥**
**द्रुपदः सह पुत्रेण सिद्धार्थेन शिखण्डिना ।**
**मुदं च परमां लेभे पाञ्चाल्यः सह बान्धवैः ॥ ५९ ॥**

पूर्ण मनोरथ होकर लौटे हुए अपने पुत्र शिखण्डीके साथ पाञ्चालराज द्रुपदने गन्ध-माल्य आदि नाना प्रकारके बहुमूल्य उपचारोंद्वारा देवताओं, ब्राह्मणों, चैत्य ( पीपल आदि धार्मिक ) वृक्षों तथा चौराहोंका पूजन किया तथा बन्धु-बान्धवों-सहित उन्हें महान् हर्ष प्राप्त हुआ ॥ ५८-५९ ॥

**शिष्यार्थं प्रददौ चाथ द्रोणाय कुरुपुङ्गव ।**
**शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥ ६० ॥**

महाराज ! कुरुश्रेष्ठ ! द्रुपदने अपने पुत्र शिखण्डीको जो पहले कन्यारूपमें उत्पन्न हुआ था, द्रोणाचार्यकी सेवामें धनुर्वेदकी शिक्षाके लिये सौंप दिया ॥ ६० ॥

**प्रतिपेदे चतुष्पादं धनुर्वेदं नृपात्मजः ।**
**शिखण्डी सह युष्माभिर्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ६१ ॥**

इस प्रकार द्रुपदपुत्र शिखण्डी तथा धृष्टद्युम्नने तुम सब भाइयोंके साथ ही ग्रहण, धारण, प्रयोग और प्रतीकार—इन चार पादोंसे युक्त धनुर्वेदका अध्ययन किया ॥ ६१ ॥

**मम त्वेतच्चरास्तात यथावत् प्रत्यवेदयन् ।**
**जडान्धबधिराकारा ये मुक्ता द्रुपदे मया ॥ ६२ ॥**

मैंने द्रुपदके नगरमें कुछ गुप्तचर नियुक्त कर दिये थे, जो गूँगे, अंधे और बहरे बनकर वहाँ रहते थे। वे ही यह सब समाचार मुझे ठीक-ठीक बताया करते थे ॥ ६२ ॥

**एवमेष महाराज स्त्रीपुमान् द्रुपदात्मजः ।**
**स सम्भूतः कुरुश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥ ६३ ॥**

महाराज ! कुरुश्रेष्ठ ! इस प्रकार यह रथियोंमें उत्तम द्रुपदकुमार शिखण्डी पहले स्त्रीरूपमें उत्पन्न होकर पीछे पुरुष हुआ था ॥ ६३ ॥

**ज्येष्ठा काशिपतेः कन्या अम्बानामेति विश्रुता ।**
**द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥ ६४ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! काशिराजकी ज्येष्ठ कन्या, जो अम्बा नामसे विख्यात थी, वही द्रुपदके कुलमें शिखण्डीके रूपमें उत्पन्न हुई है ॥ ६४ ॥

**नाहमेनं धनुष्पाणिं युयुत्सुं समुपस्थितम् ।**
**मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाप्युत ॥ ६५ ॥**

जब यह हाथमें धनुष लेकर युद्ध करनेकी इच्छासे मेरे सामने उपस्थित होगा, उस समय मुहूर्तभर भी न तो इसकी ओर देखूँगा और न इसपर प्रहार ही करूँगा ॥ ६५ ॥

**व्रतमेतन्मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम् ।**
**स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चैव स्त्रीनाम्नि स्त्रीसरूपिणि ॥ ६६ ॥**
**न मुञ्चेयमहं बाणमिति कौरवनन्दन ।**

कौरवनन्दन ! इस भूमण्डलमें भी मेरा यह व्रत प्रसिद्ध है कि जो स्त्री हो, जो पहले स्त्री रहकर पुरुष हुआ हो, जिसका नाम स्त्रीके समान हो तथा जिसका रूप एवं वेष-भूषा स्त्रियोंके समान हो, इन सबपर मैं बाण नहीं छोड़ सकता ।६६।

**न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखण्डिनम् ॥ ६७ ॥**
**एतत् तत्त्वमहं वेद जन्म तात शिखण्डिनः ।**
**ततो नैनं हनिष्यामि समरेष्वाततायिनम् ॥ ६८ ॥**

तात ! इसी कारणसे मैं शिखण्डीको नहीं मार सकता। शिखण्डीके जन्मका वास्तविक वृत्तान्त मैं जानता हूँ । अतः समरभूमिमें वह आततायी होकर आवे तो भी मैं इसे नहीं मारूँगा ॥ ६७-६८ ॥

**यदि भीष्मः स्त्रियं हन्यात् सन्तः कुर्युर्विगर्हणम् ।**
**नैनं तस्माद्धनिष्यामि दृष्ट्वापि समरे स्थितम् ॥ ६९ ॥**

यदि भीष्म स्त्रीका वध करे तो साधु पुरुष इसकी निन्दा करेंगे, अतः शिखण्डीको समरभूमिमें खड़ा देखकर भी मैं इसे नहीं मारूँगा ॥ ६९ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यो राजा दुर्योधनस्तदा ।**
**मुहूर्तमिव स ध्यात्वा भीष्मे युक्तममन्यत ॥ ७० ॥**

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यह सब सुनकर कुरुवंशी राजा दुर्योधनने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर भीष्मके लिये शिखण्डीका वध न करना उचित ही मान लिया ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्डिपुंस्त्वप्राप्तौ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें शिखण्डीको पुरुषत्वकी प्राप्तिविषयक एक सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९२ ॥

( दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७०½ श्लोक हैं )

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

## दुर्योधनके पूछनेपर भीष्म आदिके द्वारा अपनी-अपनी शक्तिका वर्णन

*संजय उवाच*

**प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव।**
**मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ॥ १ ॥**

**संजय कहते हैं**—राजन्! जब रात बीती और प्रभात हुआ, उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने सारी सेनाके बीचमें पुनः पितामह भीष्मसे पूछा—॥ १ ॥

**पाण्डवेयस्य गाङ्गेय यदेतत् सैन्यमुद्यतम्।**
**प्रभूतनरनागाश्वं महारथसमाकुलम् ॥ २ ॥**
**भीमार्जुनप्रभृतिभिर्महेष्वासैर्महाबलैः।**
**लोकपालसमैर्गुप्तं धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥ ३ ॥**
**अप्रधृष्यमनावार्यमुद्धूतमिव सागरम्।**
**सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ॥ ४ ॥**

'गङ्गानन्दन ! यह जो पाण्डवोंकी सेना युद्धके लिये उद्यत है। इसमें बहुत-से पैदल, हाथीसवार और घुड़सवार भरे हुए हैं। यह सेना बड़े-बड़े महारथियों एवं उनके विशाल रथोंसे व्याप्त है। लोकपालोंके समान महापराक्रमी एवं महाधनुर्धर भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न आदि वीर इस सेनाकी रक्षा करते हैं। यह उछलती हुई तरङ्गोंसे युक्त समुद्रकी भाँति दुर्धर्ष प्रतीत होती है। इसे आगे बढ़नेसे रोकना असम्भव है तथा बड़े-बड़े देवता भी इस महान् युद्धमें इस सैन्य-समुद्रको क्षुब्ध नहीं कर सकते ॥ २-४ ॥

**केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते।**
**आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वा सुमहाबलः ॥ ५ ॥**
**कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः।**
**दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ॥ ६ ॥**

'महातेजस्वी गङ्गानन्दन ! आप कितने समयमें इस सारी सेनाका विध्वंस कर सकते हैं ? महाधनुर्धर द्रोणाचार्य, अत्यन्त बलशाली कृपाचार्य, युद्धकी स्पृहा रखनेवाले कर्ण अथवा द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामा कितने समयमें शत्रुसेनाका संहार कर सकते हैं; क्योंकि मेरी सेनामें आप ही सब लोग दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता हैं ॥ ५-६ ॥

**एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे।**
**हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम ॥ ७ ॥**

'महाबाहो ! मैं यह जानना चाहता हूँ, इसके लिये मेरे हृदयमें सदा अत्यन्त कौतूहल बना रहता है। आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें' ॥ ७ ॥

*भीष्म उवाच*

**अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत् पृथिवीपते।**
**बलाबलममित्राणां तेषां यदिह पृच्छसि ॥ ८ ॥**

**भीष्मजीने कहा**—कुरुश्रेष्ठ ! पृथ्वीपते ! तुम जो यहाँ शत्रुओंके बलाबलके विषयमें पूछ रहे हो, यह तुम्हारे योग्य ही है ॥ ८ ॥

**शृणु राजन् मम रणे या शक्तिः परमा भवेत्।**
**शस्त्रवीर्यं रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ॥ ९ ॥**

राजन् ! महाबाहो ! युद्धमें जो मेरी सबसे अधिक शक्ति है, मेरे अस्त्र-शस्त्रोंका, तथा दोनों भुजाओंका जितना बल है, वह सब बताता हूँ, सुनो ॥ ९ ॥

**आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः।**
**मायायुद्धेन मायावी इत्येतद् धर्मनिश्चयः ॥ १० ॥**

साधारण लोगोंके साथ सरलभावसे ही युद्ध करना चाहिये। जो लोग मायावी हैं, उनका सामना मायायुद्धसे ही करना चाहिये। यही धर्मशास्त्रोंका निश्चय है ॥ १० ॥

**हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम्।**
**दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्रागाह्निकं मम ॥ ११ ॥**

महाभाग ! मैं प्रतिदिन पाण्डवोंकी सेनाको पहले अपने दैनिक भागमें विभक्त करके उसका वध करूँगा ॥ ११ ॥

**योधानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते।**
**सहस्रं रथिनामेकमेष भागो मतो मम ॥ १२ ॥**

महाद्युते ! दस-दस हजार योद्धाओंका तथा एक हजार रथियोंका समूह मेरी एक भाग मानना चाहिये ॥ १२ ॥

**अनेनाहं विधानेन संनद्धः सततोत्थितः।**
**क्षपयेयं महत् सैन्यं कालेनानेन भारत ॥ १३ ॥**

भारत ! इस विधानसे मैं सदा उद्यत और संनद्ध होकर उस विशाल सेनाको इतने ही समयमें नष्ट कर सकता हूँ ॥

**मुञ्चेयं यदि वास्त्राणि महान्ति समरे स्थितः।**
**शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ॥ १४ ॥**

भारत ! यदि मैं युद्धमें स्थित होकर लाखों वीरोंका संहार करनेवाले अपने महान् अस्त्रोंका प्रयोग करने लगूँ तो एक मासमे पाण्डवोंकी सारी सेनाको नष्ट कर सकता हूँ।१४।

*संजय उवाच*

**श्रुत्वा भीष्मस्य तद् वाक्यं राजा दुर्योधनस्ततः।**
**पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमाङ्गिरसां वरम् ॥ १५ ॥**
**आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्।**
**निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥ १६ ॥**

**संजय बोले**—राजेन्द्र ! भीष्मका यह वचन सुनकर राजा दुर्योधनने आङ्गिरस ब्राह्मणोंमें सबसे श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे पूछा—'आचार्य ! आप कितने समयमें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सैनिकोंका संहार कर सकते हैं ?' यह प्रश्न सुनकर द्रोणाचार्य हँसते हुए-से बोले—॥ १५-१६ ॥

**स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः।**
**शस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १७ ॥**

'महाबाहो ! अब तो मैं बूढ़ा हो गया, मेरी प्राणशक्ति और चेष्टा कम हो गयी, तो भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी अग्निसे पाण्डवोंकी विशाल वाहिनीको भस्म कर दूँगा ॥ १७ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम।
एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥ १८ ॥

'जैसे शान्तनुनन्दन भीष्म एक मासमें पाण्डव-सेनाका विनाश कर सकते हैं, उसी प्रकार और उतने ही समयमें मैं भी कर सकता हूँ, ऐसा मेरा विश्वास है। यही मेरी सबसे बड़ी शक्ति है और यही मेरा अधिक-से-अधिक बल है'॥१८॥

द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम् ॥ १९ ॥

कृपाचार्यने दो महीनोंमें पाण्डव-सेनाके संहारकी बात कही; परंतु अश्वत्थामाने दस ही दिनोंमें शत्रुसेनाके संहारकी प्रतिज्ञा कर ली ॥ १९ ॥

कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित्।
तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगासुतः ॥ २० ॥
जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह।
न हि यावद् रणे पार्थं बाणशङ्खधनुर्धरम् ॥ २१ ॥
वासुदेवसमायुक्तं रथेनायान्तमाहवे।
समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे।
शक्यमेवं च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः ॥ २२ ॥

बड़े-बड़े अस्त्रोंके ज्ञाता कर्णने पाँच ही दिनोंमें पाण्डव-सेनाको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की। सूतपुत्रका यह कथन सुनकर गङ्गानन्दन भीष्मजी ठहाका मारकर हँस पड़े और यह वचन बोले—'राधापुत्र ! जबतक युद्धभूमिमें शंख, बाण और धनुष धारण करनेवाले श्रीकृष्णसहित अर्जुनको तुम एक ही रथसे आते हुए नहीं देखते और जबतक उनके साथ तुम्हारी मुठभेड़ नहीं होती, तभीतक ऐसा अभिमान प्रकट करते हो, तुम इच्छानुसार और भी ऐसी बहुत-सी बहकी-बहकी बातें कह सकते हो' ॥ २०—२२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मादिशक्तिकथने त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें भीष्म आदिके द्वारा अपनी शक्तिका वर्णनविषयक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९३ ॥

## चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

### अर्जुनके द्वारा अपनी, अपने सहायकोंकी तथा युधिष्ठिरकी भी शक्तिका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान् भ्रातॄनुपह्वरे।
आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! कौरव-सेनामें जो बातचीत हुई थी, उसका समाचार पाकर कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको एकान्तमें बुलाकर इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम।
ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम् ॥ २ ॥
दुर्योधनः किलापृच्छदापगेयं महाव्रतम्।
केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले—धृतराष्ट्रकी सेनामें जो मेरे गुप्तचर नियुक्त हैं, उन्होंने मुझे यह समाचार दिया है कि इसी विगत रात्रिमें दुर्योधनने महान् व्रतधारी गङ्गानन्दन भीष्मसे यह प्रश्न किया था कि प्रभो ! आप पाण्डवोंकी सेनाका कितने समयमें संहार कर सकते हैं ॥ २-३ ॥

मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः।
तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रतिजज्ञिवान् ॥ ४ ॥
गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम्।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥ ५ ॥

भीष्मजीने धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधनको यह उत्तर दिया कि मैं एक महीनेमें पाण्डव-सेनाका विनाश कर सकता हूँ। द्रोणाचार्यने भी उतने ही समयमें वैसा करनेकी प्रतिज्ञा की। कृपाचार्यने दो महीनेका समय बताया। यह बात हमारे सुननेमें आयी है तथा महान् अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामाने दस ही दिनोंमें पाण्डव-सेनाके संहारकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४-५ ॥

तथा दिव्यास्त्रवित् कर्णः सम्पृष्टः कुरुसंसदि।
पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं ससैन्यं प्रतिजज्ञिवान् ॥ ६ ॥

दिव्यास्त्रवेत्ता कर्णसे जब कौरव-सभामें पूछा गया, तब उसने पाँच ही दिनोंमें हमारी सेनाको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर ली॥

तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः।
कालेन कियता शत्रून् क्षपयेरिति फाल्गुन ॥ ७ ॥

अतः अर्जुन ! मैं भी तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ। फाल्गुन ! तुम कितने समयमें शत्रुओंको नष्ट कर सकते हो ?॥

एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनंजयः।
वासुदेवं समीक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥

राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर निद्राविजयी अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखकर यह बात कही—॥८॥

सर्वे एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः।
असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः ॥ ९ ॥

'महाराज ! निःसंदेह ये सभी महामना योद्धा अस्त्रविद्याके विद्वान् तथा विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले हैं। अतः उतने दिनोंमें शत्रुसेनाको मार सकते हैं, इसमें संशय नहीं है॥

अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम्।
हन्यामेकरथेनैव वासुदेवसहायवान् ॥ १० ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सामरानपि लोकांस्त्रीन् सर्वान् स्थावरजङ्गमान्।
भूतं भव्यं भविष्यं च निमेषादिति मे मतिः ॥ ११ ॥

'परंतु इससे आपके मनमें संताप नहीं होना चाहिये। आपका मनस्ताप तो दूर ही हो जाना चाहिये। मैं जो सत्य बात कहने जा रहा हूँ, उसपर ध्यान दीजिये। मैं भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे युक्त हुआ एकमात्र रथको लेकर ही देवताओंसहित तीनों लोकों, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों तथा भूत, वर्तमान और भविष्यको भी पलक मारते-मारते नष्ट कर सकता हूँ। ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १०-११ ॥

यत् तद् घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम।
कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्तते ॥ १२ ॥

'भगवान् पशुपतिने किरातवेषमें द्वन्द्वयुद्ध करते समय मुझे जो अपना भयंकर महास्त्र प्रदान किया था, वह मेरे पास मौजूद है ॥

यद् युगान्ते पशुपतिः सर्वभूतानि संहरन्।
प्रयुङ्क्ते पुरुषव्याघ्र तदिदं मयि वर्तते ॥ १३ ॥

'पुरुषसिंह! प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंका संहार करते समय भगवान् पशुपति जिस अस्त्रका प्रयोग करते हैं, वही यह मेरे पास विद्यमान है ॥ १३ ॥

तन्न जानाति गाङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः।
न च द्रोणसुतो राजन् कुत एव तु सूतजः ॥ १४ ॥

'राजन्! इसे न तो गङ्गानन्दन भीष्म जानते हैं, न द्रोणाचार्य जानते हैं, न कृपाचार्य जानते हैं और न द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको ही इसका पता है; फिर सूतपुत्र कर्ण तो इसे जान ही कैसे सकता है? ॥ १४ ॥

न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम्।
आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान् ॥ १५ ॥

'परंतु युद्धमें साधारण जनोंको दिव्यास्त्रोंद्वारा मारना कदापि उचित नहीं है; अतः हमलोग सरलतापूर्ण युद्धके द्वारा ही शत्रुओंको जीतेंगे ॥ १५ ॥

तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तत्र पार्थिव।
सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः ॥ १६ ॥

'राजन्! ये सभी पुरुषसिंह जो हमारे सहायक हैं, दिव्यास्त्रोंका ज्ञान रखते हैं और सभी युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले हैं ॥ १६ ॥

वेदान्तावभृथस्नाताः सर्वे एतेऽपराजिताः।
निहन्युः समरे सेनां देवानामपि पाण्डव ॥ १७ ॥

'इन सबने वेदाध्ययन समाप्त करके यज्ञान्त-स्नान किया है। ये सभी कभी पराजित न होनेवाले वीर हैं। पाण्डुनन्दन! ये लोग समरभूमिमें देवताओंकी सेनाको भी नष्ट कर सकते हैं ॥

शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १८ ॥
विराटद्रुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि।

'शिखण्डी, सात्यकि, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, भीमसेन, दोनों भाई नकुल-सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा तथा राजा विराट और द्रुपद भी युद्धमें भीष्म और द्रोणाचार्यकी समानता करनेवाले हैं ॥ १८½ ॥

शङ्खश्चैव महाबाहुर्हैडिम्बश्च महाबलः ॥ १९ ॥
पुत्रोऽस्याञ्जनपर्वा तु महाबलपराक्रमः।
शैनेयश्च महाबाहुः सहायो रणकोविदः ॥ २० ॥

'महाबाहु शङ्ख, महाबली घटोत्कच, महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न घटोत्कच-पुत्र अञ्जनपर्वा तथा संग्राम-कुशल महाबाहु सात्यकि—ये सभी आपके सहायक हैं ॥ १९-२० ॥

अभिमन्युश्च बलवान् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः।
स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादनेऽपि च ॥ २१ ॥

'बलवान् अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँचों पुत्र तो आपके साथ हैं ही। आप स्वयं भी तीनों लोकोंका संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ २१ ॥

क्रोधाद् यं पुरुषं पश्येस्तथा शक्रसमद्युते।
स क्षिप्रं न भवेद् व्यक्तमिति त्वां वेद्मि कौरव ॥ २२ ॥

'इन्द्रके समान तेजस्वी कुरुनन्दन! आप क्रोधपूर्वक जिस पुरुषको देख लें वह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। आपके इस प्रभावको मैं जानता हूँ' ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९४ ॥

## पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

### कौरवसेनाका रणके लिये प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण चोदिताः।
दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान् प्रति ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर निर्मल प्रभातकालमें धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे प्रेरित हो सब राजा पाण्डवोंसे युद्ध करनेके लिये चले ॥ १ ॥

आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः।
गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्ति वाच्य हुताग्नयः ॥ २ ॥

चलनेके पहले उन सबने स्नान करके शुद्ध हो श्वेत वस्त्र धारण किये, पुष्पोंकी मालाएँ पहनीं, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया, अग्निमें आहुतियाँ दीं, फिर ध्वजा फहराते हुए हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर रणभूमिकी ओर प्रस्थित हुए ॥ २ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सर्वे ब्रह्मविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः।
सर्वे वर्मभृतश्चैव सर्वे चाहवलक्षणाः ॥ ३ ॥

वे सभी वेदवेत्ता, शूरवीर तथा उत्तम विधिसे व्रतका पालन करनेवाले थे। सभी कवचधारी तथा युद्धके चिह्नोंसे सुशोभित थे ॥ ३ ॥

आहवेषु परॉंल्लोकान् जिगीषन्तो महाबलाः।
एकाग्रमनसः सर्वे श्रद्दधानाः परस्परम् ॥ ४ ॥

वे महाबली वीर युद्धमें पराक्रम दिखाकर उत्तम लोकोंपर विजय पाना चाहते थे। उन सबका चित्त एकाग्र था और वे सभी एक दूसरेपर विश्वास करते थे ॥ ४ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केकया बाह्लिकैः सह।
प्रययुः सर्व एवैते भारद्वाजपुरोगमाः ॥ ५ ॥

अवन्तीदेशके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, बाह्लीकदेशीय सैनिकोंके साथ केकयराजकुमार—ये सब द्रोणाचार्यको आगे करके चले ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा शान्तनवः सैन्धवोऽथ जयद्रथः।
दाक्षिणात्याः प्रतीच्याश्च पर्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ ६ ॥
गान्धारराजः शकुनिः प्राच्योदीच्याश्च सर्वशः।
शकाः किराता यवनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ७ ॥
स्वैः स्वैरनीकैः सहिताः परिवार्य महारथम्।
एते महारथाः सर्वे द्वितीये निर्ययुर्बले ॥ ८ ॥

अश्वत्थामा, भीष्म, सिन्धुराज जयद्रथ, दाक्षिणात्य नरेश, पाश्चात्त्य भूपाल और पर्वतीय भूपाल, गान्धारराज शकुनि तथा पूर्व और उत्तर दिशाके नरेश, शक, किरात, यवन, शिबि और वसाति भूपालगण—ये सभी महारथीलोग अपनी-अपनी सेनाओंके साथ महारथी (भीष्म) को सब ओरसे घेरकर दूसरे सैन्य-दलके रूपमें सुसज्जित होकर निकले ॥ ६–८ ॥

कृतवर्मा सहानीकस्त्रिगर्तश्च महारथः।
दुर्योधनश्च नृपतिर्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ९ ॥
शलो भूरिश्रवाः शल्यः कौसल्योऽथ बृहद्रथः।
एते पश्चादनुगता धार्तराष्ट्रपुरोगमाः ॥ १० ॥

सेनासहित कृतवर्मा, महारथी त्रिगर्त, भाइयोंसे घिरा हुआ महाराज दुर्योधन, शल, भूरिश्रवा, शल्य तथा कोसलराज बृहद्रथ—ये दुर्योधनको आगे करके उसके पीछे-पीछे (तृतीय सैन्यदलमें) चले ॥ ९-१० ॥

ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्रके वे महाबली पुत्र रणक्षेत्रमें जाकर कवच आदिसे सुसज्जित हो कुरुक्षेत्रके पश्चिम भागमें यथोचितरूपसे खड़े हुए ॥

दुर्योधनस्तु शिबिरं कारयामास भारत।
यथैव हास्तिनपुरं द्वितीयं समलंकृतम् ॥ १२ ॥
न विशेषं विजानन्ति पुरस्य शिबिरस्य वा।
कुशला अपि राजेन्द्र नरा नगरवासिनः ॥ १३ ॥

भारत! दुर्योधनने पहलेसे ही ऐसा निवासस्थान बनवा रक्खा था, जो दूसरे हस्तिनापुरकी भाँति सजा हुआ था। राजेन्द्र! नगरमें निवास करनेवाले चतुर मनुष्य भी उस शिविर तथा हस्तिनापुर नामक नगरमें क्या अन्तर है, यह नहीं समझ पाते थे ॥ १२-१३ ॥

तादृशान्येव दुर्गाणि राज्ञामपि महीपतिः।
कारयामास कौरव्यः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥

अन्य राजाओंके लिये भी कुरुवंशी भूपालने वैसे ही सैकड़ों तथा सहस्रों दुर्ग बनवाये थे ॥ १४ ॥

पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम्।
सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशञ्छतसंघशः ॥ १५ ॥

समराङ्गणके लिये पाँच योजनका घेरा छोड़कर सैनिकोंके ठहरनेके लिये सौ-सौकी संख्यामें कितनी ही श्रेणीबद्ध छावनियाँ डाली गयी थीं ॥ १५ ॥

तत्र ते पृथिवीपाला यथोत्साहं यथाबलम्।
विविशुः शिबिराण्यत्र द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥ १६ ॥

उन्हीं बहुमूल्य आवश्यक सामग्रियोंसे सम्पन्न हजारों छावनियोंमें वे भूपाल अपने बल और उत्साहके अनुरूप युद्धके लिये उद्यत होकर रहते थे ॥ १६ ॥

तेषां दुर्योधनो राजा ससैन्यानां महात्मनाम्।
व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥ १७ ॥
सनागाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः।
ये चान्येऽनुगतास्तत्र सूतमागधबन्दिनः ॥ १८ ॥

राजा दुर्योधन सवारियों और सैनिकोंसहित उन महामना नरेशोंको परम उत्तम भक्ष्य-भोज्य पदार्थ देता था। हाथियों, अश्वों, पैदल मनुष्यों, शिल्प-जीवियों, अन्य अनुगामियों तथा सूत, मागध और बंदीजनोंको भी राजाकी ओरसे भोजन प्राप्त होता था ॥ १७-१८ ॥

वणिजो गणिकाश्चारा ये चैव प्रेक्षका जनाः।
सर्वांस्तान् कौरवो राजा विधिवत् प्रत्यवैक्षत ॥ १९ ॥

वहाँ जो धणिक्, गणिकाएँ, गुप्तचर तथा दर्शक मनुष्य आते थे, उन सबकी कुरुराज दुर्योधन विधिपूर्वक देखभाल करता था ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि कौरवसैन्यनिर्याणे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें कौरव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थानविषयक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९५ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

## पाण्डवसेनाका युद्धके लिये प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
धृष्टद्युम्नमुखान् वीरांश्चोदयामास भारत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी प्रकार कुन्तीनन्दन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न आदि वीरोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

चेदिकाशिकरूषाणां नेतारं दृढविक्रमम्।
सेनापतिममित्रघ्नं धृष्टकेतुमथादिशत् ॥ २ ॥

चेदि, काशि और करूषदेशोंके अधिनायक दृढ़ पराक्रमी शत्रुनाशक सेनापति धृष्टकेतुको भी प्रस्थान करनेका आदेश दिया।

विराटं द्रुपदं चैव युयुधानं शिखण्डिनम्।
पाञ्चाल्यौ च महेष्वासौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३ ॥

विराट, द्रुपद, सात्यकि, शिखण्डी, महाधनुर्धर पाञ्चाल-वीर युधामन्यु और उत्तमौजाको भी राजाका आदेश प्राप्त हुआ॥

ते शूराश्चित्रवर्माणस्तप्तकुण्डलधारिणः।
आज्यावसिक्ता ज्वलिता धिष्ण्येष्विव हुताशनाः॥ ४ ॥
अशोभन्त महेष्वासा ग्रहाः प्रज्वलिता इव।

वे महाधनुर्धर शूरवीर विचित्र कवच और तपाये हुए सोनेके कुण्डल धारण किये वेदीपर घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुए अग्निदेवके समान तथा आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ग्रहोंकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ४½ ॥

अथ सैन्यं यथायोगं पूजयित्वा नरर्षभः ॥ ५ ॥
दिदेश तान्यनीकानि प्रयाणाय महीपतिः।
तेषां युधिष्ठिरो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ॥ ६ ॥
व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम्।
सगजाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ॥ ७ ॥

तदनन्तर योग्यतानुसार सम्पूर्ण सेनाका समादर करके नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने उन सैनिकोंको प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी और सेना तथा सवारियोंसहित उन महामना नरेशोंको उत्तमोत्तम खाने-पीनेकी वस्तुएँ देनेकी आज्ञा दी। उनके साथ जो भी हाथी, घोड़े, मनुष्य और शिल्पजीवी पुरुष थे, उन सबके लिये भोजन प्रस्तुत करनेका आदेश दिया ॥५–७॥

अभिमन्युं बृहन्तं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः।
धृष्टद्युम्नमुखानेतान् प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः ॥ ८ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नको आगे करके अभिमन्यु, बृहन्त तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र—इन सबको प्रथम सेनादलके साथ भेजा ॥ ८ ॥

भीमं च युयुधानं च पाण्डवं च धनंजयम्।
द्वितीयं प्रेषयामास बलस्कन्धं युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

भीमसेन, सात्यकि तथा पाण्डुनन्दन अर्जुनको युधिष्ठिरने द्वितीय सैन्यसमूहका नेता बनाकर भेजा ॥ ९ ॥

भाण्डं समारोपयतां चरतां सम्प्रधावताम्।
हृष्टानां तत्र योधानां शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥ १० ॥

वहाँ हर्षमें भरे हुए कुछ योद्धा सवारियोंपर युद्धकी सामग्री चढ़ाते, कुछ इधर-उधर जाते और कुछ लोग कार्यवश दौड़-धूप करते थे। उन सबका कोलाहल मानो स्वर्गलोकको छूने लगा ॥ १० ॥

स्वयमेव ततः पश्चाद् विराटद्रुपदान्वितः।
अथापरैर्महीपालैः सह प्रायान्महीपतिः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् राजा विराट और द्रुपदको साथ ले अन्यान्य भूपालोंसहित स्वयं राजा युधिष्ठिर चले ॥ ११ ॥

भीमधन्वायनी सेना धृष्टद्युम्नेन पालिता।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत ॥ १२ ॥

भयंकर धनुर्धरोंसे भरी हुई और धृष्टद्युम्नके द्वारा सुरक्षित हो कहीं ठहरती और कहीं आगे बढ़ती हुई वह पाण्डवसेना कहीं निश्चल और कहीं प्रवाहशील जलसे भरी गङ्गाके समान दिखायी देती थी ॥ १२ ॥

ततः पुनरनीकानि न्ययोजयत बुद्धिमान्।
मोहयन् धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां बुद्धिनिश्चयम् ॥ १३ ॥

थोड़ी दूर जाकर बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रके पुत्रोंके बौद्धिक निश्चयमें भ्रम उत्पन्न करनेके लिये अपनी सेनाका दुबारा संगठन किया ॥ १३ ॥

द्रौपदेयान् महेष्वासानभिमन्युं च पाण्डवः।
नकुलं सहदेवं च सर्वांश्चैव प्रभद्रकान् ॥ १४ ॥
दश चाश्वसहस्राणि द्विसहस्राणि दन्तिनाम्।
अयुतं च पदातीनां रथाः पञ्चशतं तथा ॥ १५ ॥
भीमसेनस्य दुर्धर्षं प्रथमं प्रादिशद् बलम्।

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने द्रौपदीके महाधनुर्धर पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, समस्त प्रभद्रक वीर, दस हजार घुड़सवार, दो हजार हाथीसवार, दस हजार पैदल तथा पाँच सौ रथी—इनके प्रथम दुर्धर्ष दलको भीमसेनकी अध्यक्षतामें दे दिया ॥

मध्यमे च विराटं च जयत्सेनं च पाण्डवः ॥ १६ ॥
महारथौ च पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
वीर्यवन्तौ महात्मानौ गदाकार्मुकधारिणौ ॥ १७ ॥
अन्वयातां तदा मध्ये वासुदेवधनंजयौ।

बीचके दलमें राजाने विराट, जयत्सेन तथा पाञ्चाल-देशीय महारथी युधामन्यु और उत्तमौजाको रक्खा। हाथोंमें गदा और धनुष धारण किये ये दोनों वीर (युधामन्यु-उत्तमौजा) बड़े पराक्रमी और मनस्वी थे। उस समय इन सबके मध्यभागमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन सेनाके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥ १६-१७½ ॥

बभूवुरतिसंरब्धाः कृतप्रहरणा नराः ॥ १८ ॥
तेषां विंशतिसाहस्रा हयाः शूरैरधिष्ठिताः।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दश नागसहस्राणि रथवंशाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥

उस समय जो योद्धा पहले कभी युद्ध कर चुके थे, वे आवेशमें भरे हुए थे। उनमें बीस हजार घोड़े ऐसे थे जिनकी पीठपर शौर्यसम्पन्न वीर बैठे हुए थे। इन घुड़सवारोंके साथ पाँच हजार गजारोही तथा बहुत-से रथी भी थे ॥ १८-१९ ॥

पदातयश्च ये शूराः कार्मुकासिगदाधराः।
सहस्रशोऽन्वयुः पश्चादग्रतश्च सहस्रशः ॥ २० ॥

धनुष, बाण, खड्ग और गदा धारण करनेवाले जो पैदल सैनिक थे, वे सहस्रोंकी संख्यामें सेनाके आगे और पीछे चलते थे ॥

युधिष्ठिरो यत्र सैन्ये स्वयमेवं बलार्णवे।
तत्र ते पृथिवीपाला भूयिष्ठं पर्यवस्थिताः ॥ २१ ॥

जिस सैन्य-समुद्रमें स्वयं राजा युधिष्ठिर थे, उसमें बहुत-से भूमिपाल उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते थे ॥ २१ ॥

तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च।
तथा रथसहस्राणि पदातीनां च भारत ॥ २२ ॥

भारत! उसमें एक हजार हाथीसवार, दस हजार घुड़सवार, एक हजार रथी और कई सहस्र पैदल सैनिक थे ॥

चेकितानः स्वसैन्येन महता पार्थिवर्षभ।
धृष्टकेतुश्च चेदीनां प्रणेता पार्थिवो ययौ ॥ २३ ॥

नृपश्रेष्ठ! अपनी विशाल सेनाके साथ चेकितान तथा चेदिराज धृष्टकेतु भी उन्हींके साथ जा रहे थे ॥ २३ ॥

सात्यकिश्च महेष्वासो वृष्णीनां प्रवरो रथः।
वृतः शतसहस्रेण रथानां प्रणुदन् बली ॥ २४ ॥

वृष्णिवंशके प्रमुख महारथी महान् धनुर्धर बलवान् सात्यकि एक लाख रथियोंसे घिरकर गर्जना करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ २४ ॥

क्षत्रदेवब्रह्मदेवौ रथस्थौ पुरुषर्षभौ।
जघनं पालयन्तौ च पृष्ठतोऽनुप्रजग्मतुः ॥ २५ ॥

क्षत्रदेव और ब्रह्मदेव ये दोनों पुरुषरत्न रथपर बैठकर सेनाके पिछले भागकी रक्षा करते हुए पीछे-पीछे जा रहे थे ॥

शकटापणवेशाश्च यानं युग्यं च सर्वशः।
तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ॥
फल्गु सर्वं कलत्रं च यत्किञ्चित् कृशदुर्बलम् ॥ २६ ॥
कोशसंचयवाहांश्च कोष्ठागारं तथैव च।
गजानीकेन संगृह्य शनैः प्रायाद् युधिष्ठिरः ॥ २७ ॥

इनके सिवा और भी बहुत-से छकड़े, दूकानें, वेशभूषाके सामान, सवारियाँ, सामान ढोनेकी गाड़ी, एक सहस्र हाथी, अनेक अयुत घोड़े, अन्य छोटी-मोटी वस्तुएँ, स्त्रियाँ, कृश और दुर्बल मनुष्य, कोश-संग्रह और उनके ढोनेवाले लोग तथा कोष्ठागार आदि सब कुछ संग्रह करके राजा युधिष्ठिर धीरे-धीरे गजसेनाके साथ यात्रा कर रहे थे ॥ २६-२७ ॥

तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः।
श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य वा विभुः ॥ २८ ॥
रथा विंशतिसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः।
हयानां दश कोट्यश्च महतां किंकिणीकिनाम् ॥ २९ ॥
गजा विंशतिसाहस्रा ईषादन्ताः प्रहारिणः।
कुलीना भिन्नकरटा मेघा इव विसर्पिणः ॥ ३० ॥

उनके पीछे सुचित्तके पुत्र रणदुर्मद सत्यधृति, श्रेणिमान्, वसुदान तथा काशिराजके सामर्थ्यशाली पुत्र जा रहे थे। इन सबका अनुगमन करनेवाले बीस हजार रथी, घुँघुरुओंसे सुशोभित दस करोड़ घोड़े, ईषादण्डके समान दाँतवाले, प्रहारकुशल, अच्छी जातिमें उत्पन्न, मदस्रावी और मेघोंकी घटाके समान चलनेवाले बीस हजार हाथी थे ॥ २८—३० ॥

षष्टिर्नागसहस्राणि दशान्यानि च भारत।
युधिष्ठिरस्य यान्यासन् युधि सेना महात्मनः ॥ ३१ ॥
क्षरन्त इव जीमूताः प्रभिन्नकरटामुखाः।
राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२ ॥

भारत! इनके सिवा, युद्धमें महात्मा युधिष्ठिरके पास निजी तौरपर सत्तर हजार हाथी और थे, जो जल बरसानेवाले बादलोंकी भाँति अपने गण्डस्थलसे मदकी धारा बहाते थे। वे सबके सब जङ्गम पर्वतोंकी भाँति राजा युधिष्ठिरका अनुसरण कर रहे थे ॥ ३१-३२ ॥

एवं तस्य बलं भीमं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः।
यदाश्रित्याथ युयुधे धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् कुन्तीपुत्रके पास भयंकर एवं विशाल सेना थी, जिसका आश्रय लेकर वे धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे लोहा ले रहे थे ॥ ३३ ॥

ततोऽन्ये शतशः पश्चात् सहस्रायुतशो नराः।
नर्दन्तः प्रययुस्तेषामनीकानि सहस्रशः ॥ ३४ ॥

इन सबके अतिरिक्त पीछे-पीछे लाखों पैदल मनुष्य तथा उनकी सहस्रों सेनाएँ गर्जना करती हुई आगे बढ़ रही थीं ॥

तत्र भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च।
न्यवादयन्त संहृष्टाः सहस्रायुतशो नराः ॥ ३५ ॥

उस समय उस रणक्षेत्रमें लाखों मनुष्य हर्ष और उत्साहमें भरकर हजारों भेरियों तथा शङ्खोंकी ध्वनि कर रहे थे ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि पाण्डवसेनानिर्याणे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें पाण्डवसेनानिर्याणविषयक एक सौ छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९६ ॥

## उद्योगपर्व सम्पूर्णम्

| | अनुष्टुप् छन्द | ( अन्य बड़े छन्द ) | बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर | कुल योग |
|---|---|---|---|---|
| उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक | ५९७८॥ | ( ७८४।- ) | १०७८।≡ | ७०५६॥≡ |
| दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक | ६८॥ | ( ५॥ ) | ७॥- | ७६- |
| | | | | ७१३३ |

उद्योगपर्वकी सम्पूर्ण श्लोक-संख्या

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

# श्रीमहाभारतम्

## भीष्मपर्व

### ( जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व )

### प्रथमोऽध्यायः

#### कुरुक्षेत्रमें उभय पक्षके सैनिकोंकी स्थिति तथा युद्धके नियमोंका निर्माण

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।**
**देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥**

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, ( उनके नित्य सखा ) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, ( उनकी लीला प्रकट करनेवाली ) भगवती सरस्वती और ( उन लीलाओंका संकलन करनेवाले ) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय ( महाभारत ) का पाठ करना चाहिये ॥

*जनमेजय उवाच*

**कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः।**
**पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः॥ १॥**

जनमेजयने पूछा—मुने! कौरव, पाण्डव और सोमकवीरों तथा नाना देशोंसे आये हुए अन्य महामना नरेशोंने वहाँ किस प्रकार युद्ध किया? ॥ १॥

*वैशम्पायन उवाच*

**यथा युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः।**
**कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु त्वं पृथिवीपते॥ २॥**

वैशम्पायनजीने कहा—पृथ्वीपते! वीर कौरव, पाण्डव और सोमकोंने तपोभूमि कुरुक्षेत्रमें जिस प्रकार युद्ध किया था, उसे बताता हूँ; सुनो ॥ २॥

**तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः।**
**कौरवाः समवर्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः॥ ३॥**

सोमकोंसहित पाण्डव तथा कौरव दोनों महाबली थे। वे एक दूसरेको जीतनेकी आशासे कुरुक्षेत्रमें उतरकर आमने-सामने डटे हुए थे ॥ ३॥

**वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः।**
**आशंसन्तो जयं युद्धे बलेनाभिमुखा रणे॥ ४॥**

वे सबके सब वेदाध्ययनसे सम्पन्न और युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे और संग्राममें विजयकी आशा रखकर रणभूमिमें बलपूर्वक एक दूसरेके सम्मुख खड़े थे ॥ ४॥

**अभियाय च दुर्धर्षां धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्।**
**प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागे न्यविशन्त ससैनिकाः॥ ५॥**

पाण्डवोंके योद्धालोग अपने-अपने सैनिकोंके सहित धृतराष्ट्र-पुत्रकी दुर्धर्ष सेनाके सम्मुख जाकर पश्चिमभागमें पूर्वाभिमुख होकर ठहर गये थे ॥ ५॥

**समन्तपञ्चकाद् बाह्यं शिबिराणि सहस्रशः।**
**कारयामास विधिवत् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ६॥**

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने समन्तपञ्चक क्षेत्रसे बाहर यथायोग्य सहस्रों शिविर बनवाये थे ॥ ६॥

**शून्या च पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता।**
**निरश्वपुरुषेवासीद् रथकुञ्जरवर्जिता॥ ७॥**

समस्त पृथ्वीके सभी प्रदेश नवयुवकोंसे सूने हो रहे थे। उनमें केवल बालक और वृद्ध ही शेष रह गये थे। सारी वसुधा घोड़े, हाथी, रथ और तरुण पुरुषोंसे हीन-सी हो रही थी ॥

**यावत्तपति सूर्यो हि जम्बूद्वीपस्य मण्डलम्।**
**तावदेव समायातं बलं पार्थिवसत्तम॥ ८॥**

नृपश्रेष्ठ! सूर्यदेव जम्बूद्वीपके जितने भूमण्डलको अपनी किरणोंसे तपाते हैं, उतनी दूरकी सेनाएँ वहाँ युद्धके लिये आ गयी थीं ॥ ८॥

**एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम्।**
**पर्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान् वनानि च॥ ९॥**

वहाँ सभी वर्णके लोग एक ही स्थानपर एकत्र थे। युद्धभूमिका घेरा कई योजन लम्बा था। उन सब लोगोंने वहाँके अनेक प्रदेशों, नदियों, पर्वतों और वनोंको सब ओरसे घेर लिया था ॥ ९॥

**तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ।**
**दिदेश सवाहनानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम्॥ १०॥**

नरश्रेष्ठ! राजा युधिष्ठिरने सेना और सवारियोंसहित

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उन सबके लिये उत्तमोत्तम भोजन प्रस्तुत करनेका आदेश दे दिया था ॥ १० ॥

**शय्याश्च विविधास्तात तेषां रात्रौ युधिष्ठिरः।**
**एवंवेदी वेदितव्यः पाण्डवेयोऽयमित्युत ॥ ११ ॥**
**अभिज्ञानानि सर्वेषां संज्ञाश्चाभरणानि च।**
**योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते ॥ १२ ॥**

तात ! रातके समय युधिष्ठिरने उन सबके सोनेके लिये नाना प्रकारकी शय्याओंका भी प्रबन्ध कर दिया था। युद्धकाल उपस्थित होनेपर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने सभी सैनिकोंके पहचानके लिये उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकारके संकेत और आभूषण दे दिये थे, जिससे यह जान पड़े कि यह पाण्डव-पक्षका सैनिक है ॥ ११-१२ ॥

**दृष्ट्वा ध्वजाग्रं पार्थस्य धार्तराष्ट्रो महामनाः।**
**सह सर्वैर्महीपालैः प्रत्यव्यूहत पाण्डवम् ॥ १३ ॥**

कुन्तीपुत्र अर्जुनके ध्वजका अग्रभाग देखकर महामना दुर्योधनने समस्त भूपालोंके साथ पाण्डवसेनाके विरुद्ध अपनी सेनाकी व्यूहरचना की ॥ १३ ॥

**पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।**
**मध्ये नागसहस्रस्य भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १४ ॥**

उसके मस्तकपर श्वेत छत्र तना हुआ था। वह एक हजार हाथियोंके बीचमें अपने भाइयोंसे घिरा हुआ शोभा पाता था ॥ १४ ॥

**दृष्ट्वा दुर्योधनं हृष्टाः पञ्चाला युद्धनन्दिनः।**
**दध्मुः प्रीता महाशङ्खान् भेर्यश्च मधुरस्वनाः ॥ १५ ॥**

दुर्योधनको देखकर युद्धका अभिनन्दन करनेवाले पाञ्चाल सैनिक बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नतापूर्वक बड़े-बड़े शङ्खों तथा मधुर ध्वनि करनेवाली भेरियोंको बजाने लगे ॥

**ततः प्रहृष्टां तां सेनामभिवीक्ष्याथ पाण्डवाः।**
**बभूवुर्हृष्टमनसो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥**

तदनन्तर अपनी सेनाको हर्ष और उल्लासमें भरी हुई देख समस्त पाण्डवोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ तथा पराक्रमी वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण भी संतुष्ट हुए ॥ १६ ॥

**ततो हर्षं समागम्य वासुदेवधनंजयौ।**
**दध्मतुः पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ शङ्खौ रथे स्थितौ ॥ १७ ॥**

उस समय एक ही रथपर बैठे हुए पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन आनन्दमग्न होकर अपने दिव्य शंखोंको बजाने लगे ॥ १७ ॥

**पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं देवदत्तस्य चोभयोः।**
**श्रुत्वा तु निनदं योधाः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ १८ ॥**

पाञ्चजन्य और देवदत्त दोनों शङ्खोंकी ध्वनि सुनकर शत्रुपक्षके बहुत-से सैनिक भयके मारे मल-मूत्र करने लगे ॥

**यथा सिंहस्य नदतः स्वनं श्रुत्वेतरे मृगाः।**
**त्रसेयुर्निनदं श्रुत्वा तथासीदत तद्बलम् ॥ १९ ॥**

जैसे गर्जते हुए सिंहकी आवाज सुनकर दूसरे वन्य पशु भयभीत हो जाते हैं, उसी प्रकार उन दोनोंका शङ्खनाद सुनकर कौरवसेनाका उत्साह शिथिल पड़ गया—वह खिन्न-सी हो गयी ॥ १९ ॥

**उदतिष्ठद् रजो भौमं न प्राज्ञायत किंचन।**
**अस्तङ्गत इवादित्ये सैन्येन सहसाऽऽवृते ॥ २० ॥**

धरतीसे धूल उड़कर आकाशमें छा गयी। कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। सेनाकी गर्दसे सहसा आच्छादित हो जानेके कारण सूर्य अस्त हो गये-से जान पड़ते थे ॥ २० ॥

**ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांसशोणितवृष्टिमान्।**
**दिक्षु सर्वाणि सैन्यानि तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१ ॥**

उस समय वहाँ मेघ सब दिशाओंमें समस्त सैनिकोंपर मांस और रक्तकी वर्षा करने लगे। वह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ २१ ॥

**वायुस्ततः प्रादुरभून्नीचैः शर्कररकर्षणः।**
**विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥**

तदनन्तर वहाँ नीचेसे बालू तथा कंकड़ खींचकर सब ओर बिखेरनेवाली बवंडरकी-सी वायु उठी, जिसने सैकड़ों-हजारों सैनिकोंको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

**उभे सैन्ये च राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम्।**
**कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥ २३ ॥**

राजेन्द्र ! कुरुक्षेत्रमें युद्धके लिये अत्यन्त हर्षोल्लासमें भरी हुई दोनों पक्षकी सेनाएँ दो विक्षुब्ध महासागरोंके समान एक दूसरेके सम्मुख खड़ी थीं ॥ २३ ॥

**तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु संगमः।**
**युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥ २४ ॥**

दोनों सेनाओंका वह अद्भुत समागम प्रलयकाल आनेपर परस्पर मिलनेवाले दो समुद्रोंके समान जान पड़ता था ॥ २४ ॥

**शून्याऽऽसीत् पृथिवी सर्वा वृद्धबालावशेषिता।**
**निरश्वपुरुषेवासीद् रथकुञ्जरवर्जिता ॥ २५ ॥**
**तेन सेनासमूहेन समानीतेन कौरवैः।**

कौरवोंद्वारा संग्रह करके वहाँ लाये हुए उस सैन्यसमूहद्वारा सारी पृथ्वी नवयुवकोंसे सूनी-सी हो रही थी। सर्वत्र केवल बालक और बूढ़े ही शेष रह गये थे। सारी वसुधा घोड़े, हाथी, रथ और तरुण पुरुषोंसे हीन-सी हो गयी थी ॥

**ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः ॥ २६ ॥**
**धर्मान् संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ।**

भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् कौरव, पाण्डव तथा सोमकोंने परस्पर मिलकर युद्धके सम्बन्धमें कुछ नियम बनाये। युद्धधर्मकी मर्यादा स्थापित की ॥ २६½ ॥

**निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात् प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ २७ ॥**
**यथापरं यथायोगं न च स्यात् कस्यचित् पुनः।**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

वे नियम इस प्रकार हैं—चालू युद्धके बंद होनेपर संध्या-कालमें हम सब लोगोंमें परस्पर प्रेम बना रहे। उस समय पुनः किसीका किसीके साथ शत्रुतापूर्ण अयोग्य बर्ताव नहीं होना चाहिये ॥ २७½ ॥

**वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम्।**
**निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन ॥ २८ ॥**
**रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः।**
**अश्वेनाश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥ २९ ॥**

जो वाग्युद्धमें प्रवृत्त हों उनके साथ वाणीद्वारा ही युद्ध किया जाय। जो सेनासे बाहर निकल गये हों उनका वध कदापि न किया जाय। भारत ! रथीको रथीसे ही युद्ध करना चाहिये, इसी प्रकार हाथीसवारके साथ हाथीसवार, घुड़सवारके साथ घुड़सवार तथा पैदलके साथ पैदल ही युद्ध करे ॥ २८-२९ ॥

**यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम्।**
**समाभाष्य प्रहर्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥ ३० ॥**

जिसमें जैसी योग्यता, इच्छा, उत्साह तथा बल हो उसके अनुसार ही विपक्षीको बताकर उसे सावधान करके ही उसके ऊपर प्रहार किया जाय। जो विश्वास करके असावधान हो रहा हो अथवा जो युद्धसे घबराया हुआ हो, उसपर प्रहार करना उचित नहीं है ॥ ३० ॥

**एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा।**
**क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन ॥ ३१ ॥**

जो एकके साथ युद्धमें लगा हो, शरणमें आया हो, पीठ दिखाकर भागा हो और जिसके अस्त्र-शस्त्र और कवच कट गये हों; ऐसे मनुष्यको कदापि न मारा जाय ॥ ३१ ॥

**न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु।**
**न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्तव्यं कथंचन ॥ ३२ ॥**

घोड़ोंकी सेवाके लिये नियुक्त हुए सूतों, बोझ ढोनेवालों, शस्त्र पहुँचानेवालों तथा भेरी और शङ्ख बजानेवालोंपर कोई किसी प्रकार भी प्रहार न करे ॥ ३२ ॥

**एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः।**
**विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः परस्परम् ॥ ३३ ॥**

इस प्रकार नियम बनाकर कौरव, पाण्डव तथा सोमक एक दूसरेकी ओर देखते हुए बड़े आश्चर्यचकित हुए ॥ ३३ ॥

**निविश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः।**
**हृष्टरूपाः सुमनसो बभूवुः सहसैनिकाः ॥ ३४ ॥**

तदनन्तर वे महामना पुरुषरत्न अपने-अपने स्थानपर स्थित हो सैनिकोंसहित प्रसन्नचित्त होकर हर्ष एवं उत्साहसे भर गये ॥ ३४ ॥

**इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि सैन्यशिक्षणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें सैन्यशिक्षणविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

# द्वितीयोऽध्यायः

## वेदव्यासजीके द्वारा संजयको दिव्य दृष्टिका दान तथा भयसूचक उत्पातोंका वर्णन

*वैशम्पायन उवाच*

**ततः पूर्वापरे सैन्ये समीक्ष्य भगवानृषिः।**
**सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥**
**भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः।**
**प्रत्यक्षदर्शी भगवान् भूतभव्यभविष्यवित् ॥ २ ॥**
**वैचित्रवीर्यं राजानं स रहस्यब्रवीदिदम्।**
**शोचन्तमार्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा ॥ ३ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! तदनन्तर पूर्व और पश्चिम दिशामें आमने-सामने खड़ी हुई दोनों ओर-की सेनाओंको देखकर भूत, भविष्य और वर्तमानका ज्ञान रखनेवाले, सम्पूर्ण वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, भरतवंशियोंके पितामह सत्यवतीनन्दन महर्षि भगवान् व्यास, जो होनेवाले भयंकर संग्रामके भावी परिणामको प्रत्यक्ष देख रहे थे, विचित्रवीर्य-नन्दन राजा धृतराष्ट्रके पास आये। वे उस समय अपने पुत्रोंके अन्यायका चिन्तन करते हुए शोकमग्न एवं आर्त हो रहे थे। व्यासजीने उनसे एकान्तमें कहा ॥ १-३ ॥

*व्यास उवाच*

**राजन् परीतकालास्ते पुत्राश्चान्ये च पार्थिवाः।**
**ते हिंसन्तीव संग्रामे समासाद्येतरेतरम् ॥ ४ ॥**

**व्यासजी बोले**—राजन् ! तुम्हारे पुत्रों तथा अन्य राजाओंका मृत्युकाल आ पहुँचा है। वे संग्राममें एक दूसरेसे भिड़कर मरने-मारनेको तैयार खड़े हैं ॥ ४ ॥

**तेषु कालपरीतेषु विनश्यत्स्वेव भारत।**
**कालपर्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ५ ॥**

भारत ! वे कालके अधीन होकर जब नष्ट होने लगें, तब इसे कालका चक्कर समझकर मनमें शोक न करना ॥ ५ ॥

**यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेतान् विशाम्पते।**
**चक्षुर्ददानि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय ॥ ६ ॥**

राजन् ! यदि संग्रामभूमिमें इन सबकी अवस्था तुम देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करूँ। वत्स ! फिर तुम ( यहाँ बैठे-बैठे ही ) वहाँ होनेवाले युद्धका सारा दृश्य अपनी आँखों देखो ॥ ६ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धृतराष्ट्र उवाच

न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम।
युद्धमेतत् त्वशेषेण शृणुयां तव तेजसा ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—ब्रह्मर्षिप्रवर ! मुझे अपने कुटुम्बीजनों-का वध देखना अच्छा नहीं लगता; परंतु आपके प्रभावसे इस युद्धका सारा वृत्तान्त सुन सकूँ, ऐसी कृपा आप अवश्य कीजिये ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन् नेच्छति द्रष्टुं संग्रामं श्रोतुमिच्छति।
वराणामीश्वरो व्यासः संजयाय वरं ददौ ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! व्यासजीने देखा, धृतराष्ट्र युद्धका दृश्य देखना तो नहीं चाहता; परंतु उसका पूरा समाचार सुनना चाहता है। तब वर देनेमें समर्थ उन महर्षिने संजयको वर देते हुए कहा—॥ ८ ॥

एष ते संजयो राजन् युद्धमेतद् वदिष्यति।
एतस्य सर्वसंग्रामे न परोक्षं भविष्यति ॥ ९ ॥

'राजन् ! यह संजय आपको इस युद्धका सब समाचार बताया करेगा। सम्पूर्ण संग्रामभूमिमें कोई ऐसी बात नहीं होगी, जो इसके प्रत्यक्ष न हो ॥ ९ ॥

चक्षुषा संजयो राजन् दिव्येनैव समन्वितः।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति ॥ १० ॥

'राजन् ! संजय दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न होकर सर्वज्ञ हो जायगा और तुम्हें युद्धकी बात बतायेगा ॥ १० ॥

प्रकाशं वाप्रकाशं वा दिवा वा यदि वा निशि।
मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति संजयः ॥ ११ ॥

'कोई भी बात प्रकट हो या अप्रकट, दिनमें हो या रात-में अथवा वह मनमें ही क्यों न सोची गयी हो, संजय सब कुछ जान लेगा ॥ ११ ॥

नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः।
गावल्गणिरयं जीवन् युद्धादस्माद् विमोक्ष्यते ॥ १२ ॥

'इसे कोई हथियार नहीं काट सकता। इसे परिश्रम या थकावटकी बाधा भी नहीं होगी। गवल्गणका पुत्र यह संजय इस युद्धसे जीवित बच जायगा ॥ १२ ॥

अहं तु कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः ॥ १३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! मैं इन समस्त कौरवों और पाण्डवोंकी कीर्ति-का तीनों लोकोंमें विस्तार करूँगा। तुम शोक न करो ॥ १३ ॥

दिष्टमेतन्नरव्याघ्र नाभिशोचितुमर्हसि।
न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १४ ॥

'नरश्रेष्ठ ! यह दैवका विधान है। इसे कोई मेट नहीं सकता। अतः इसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जहाँ धर्म है, उसी पक्षकी विजय होगी' ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् कुरूणां प्रपितामहः।
पुनरेव महाभागो धृतराष्ट्रमुवाच ह ॥ १५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर कुरु-कुलके पितामह महाभाग भगवान् व्यास पुनः धृतराष्ट्रसे बोले—॥

इह युद्धे महाराज भविष्यति महान् क्षयः।
तथेह च निमित्तानि भयदान्युपलक्षये ॥ १६ ॥

'महाराज ! इस युद्धमें महान् नर-संहार होगा; क्योंकि मुझे इस समय ऐसे ही भयदायक अपशकुन दिखायी देते हैं॥

श्येना गृध्राश्च काकाश्च कङ्काश्च सहिता बकैः।
सम्पतन्ति नगाग्रेषु समवायांश्च कुर्वते ॥ १७ ॥

'बाज, गीध, कौवे, कङ्क और बगुले वृक्षोंके अग्रभाग-पर आकर बैठते तथा अपना समूह एकत्र करते हैं ॥ १७॥

अभ्यग्रं च प्रपश्यन्ति युद्धमानन्दिनो द्विजाः।
क्रव्यादा भक्षयिष्यन्ति मांसानि गजवाजिनाम् ॥ १८ ॥
निर्दयं चाभिवाशन्तो भैरवा भयवेदिनः।
कङ्काः प्रयान्ति मध्येन दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १९ ॥

'ये पक्षी अत्यन्त आनन्दित होकर युद्धस्थलको बहुत निकटसे आकर देखते हैं। इससे सूचित होता है कि मांस-भक्षी पशु-पक्षी आदि प्राणी हाथियों और घोड़ोंके मांस खायँगे। भयकी सूचना देनेवाले कङ्क पक्षी कठोर स्वरमें बोलते हुए सेनाके बीचसे होकर दक्षिण दिशाकी ओर जाते हैं॥

उभे पूर्वापरे संध्ये नित्यं पश्यामि भारत।
उदयास्तमने सूर्यं कबन्धैः परिवारितम् ॥ २० ॥

'भारत ! मैं प्रातः और सायं दोनों संध्याओंके समय उदय और अस्तकी वेलामें सूर्यदेवको प्रतिदिन कबन्धोंसे घिरा हुआ देखता हूँ ॥ २० ॥

श्वेतलोहितपर्यन्ताः कृष्णग्रीवाः सविद्युतः।
त्रिवर्णाः परिघाः संधौ भानुमन्तमवारयन् ॥ २१ ॥

'संध्याके समय सूर्यदेवको तिरंगे घेरोंने सब ओरसे घेर रक्खा था। उनमें श्वेत और लाल रंगके घेरे दोनों किनारों-पर थे और मध्यमें काले रंगका घेरा दिखायी देता था। इन घेरोंके साथ बिजलियाँ भी चमक रही थीं ॥ २१ ॥

ज्वलितार्केन्दुनक्षत्रं निर्विशेषदिनक्षपम्।
अहोरात्रं मया दृष्टं तद् भयाय भविष्यति ॥ २२ ॥

'मुझे दिन और रातका समय ऐसा दिखायी दिया है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा और तारे जलते-से जान पड़ते थे। दिन और रातमें कोई विशेष अन्तर नहीं दिखायी देता था। यह लक्षण भय लानेवाला होगा ॥ २२ ॥

अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णेनभस्तले ॥ २३ ॥

'कार्तिककी पूर्णिमाको कमलके समान नीलवर्णके आकाश-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

संजयको दिव्यदृष्टि

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi
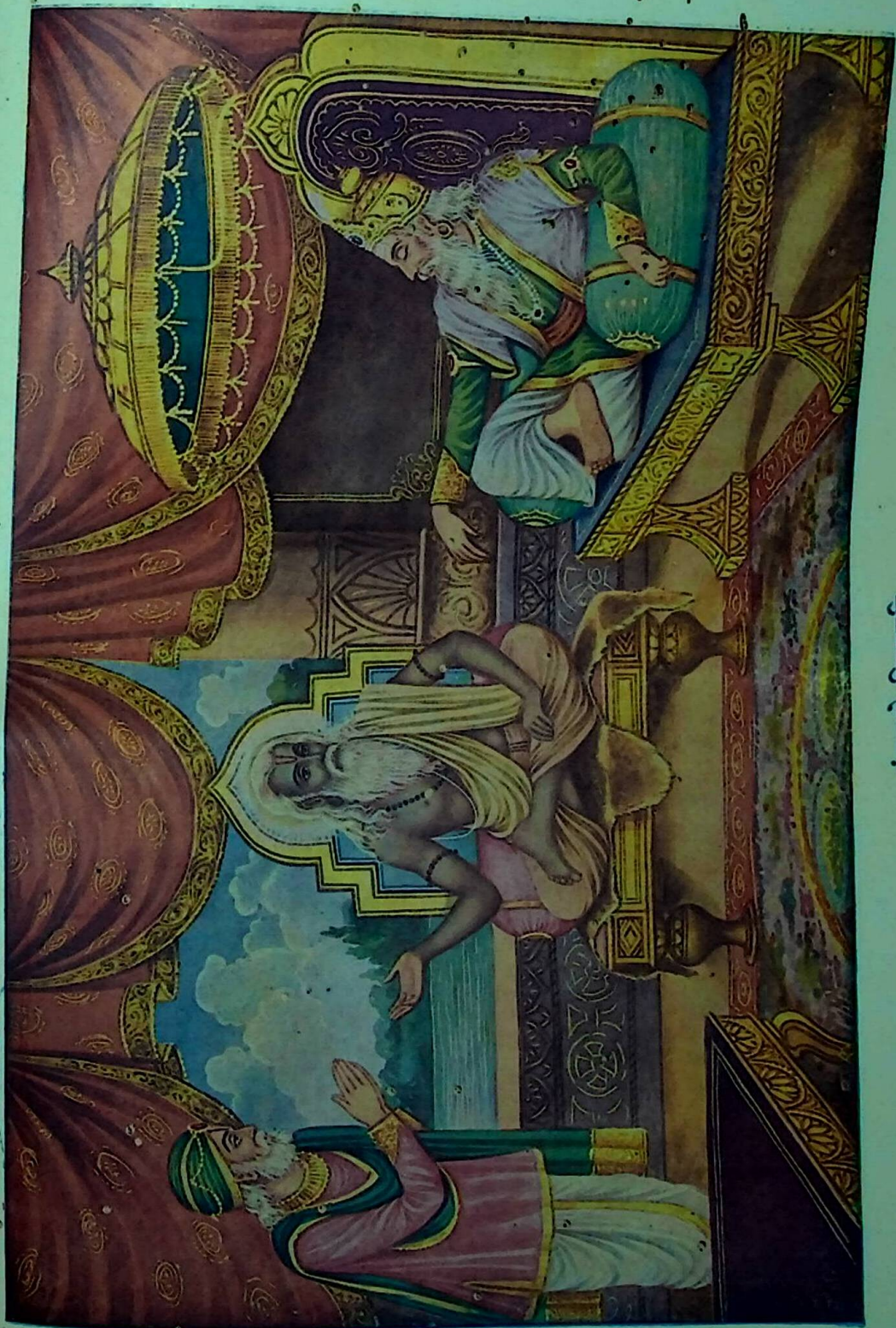
में चन्द्रमा प्रभाहीन होनेके कारण दृष्टिगोचर नहीं हो पाता था तथा उसकी कान्ति भी अग्निके समान प्रतीत होती थी ॥

स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमावृत्य पार्थिवाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥ २४ ॥

'इसका फल यह है कि परिघके समान मोटी बाहुओंवाले बहुत-से शूरवीर नरेश तथा राजकुमार मारे जाकर पृथ्वीको आच्छादित करके रणभूमिमें शयन करेंगे ॥ २४ ॥

अन्तरिक्षे वराहस्य वृषदंशस्य चोभयोः ।
प्रणादं युद्ध्यतो रात्रौ रौद्रं नित्यं प्रलक्षये ॥ २५ ॥

'सूअर और बिलाव दोनों आकाशमें उछल-उछलकर रातमें लड़ते और भयानक गर्जना करते हैं । यह बात मुझे प्रतिदिन दिखायी देती है ॥ २५ ॥

देवताप्रतिमाश्चैव कम्पन्ति च हसन्ति च ।
वमन्ति रुधिरं चास्यैः खिद्यन्ति प्रपतन्ति च ॥ २६ ॥

'देवताओंकी मूर्तियाँ काँपती, हँसती, मुँहसे खून उगलती, खिन्न होती और गिर पड़ती हैं ॥ २६ ॥

अनाहता दुन्दुभयः प्रणदन्ति विशाम्पते ।
अयुक्ताश्च प्रवर्तन्ते क्षत्रियाणां महारथाः ॥ २७ ॥

'राजन् ! दुन्दुभियाँ बिना बजाये बज उठती हैं और क्षत्रियोंके बड़े-बड़े रथ बिना जोते ही चल पड़ते हैं ॥ २७ ॥

कोकिलाः शतपत्राश्च चाषा भासाः शुकास्तथा ।
सारसाश्च मयूराश्च वाचो मुञ्चन्ति दारुणाः ॥ २८ ॥

'कोयल, शतपत्र, नीलकण्ठ, भास ( चील्ह ), शुक, सारस तथा मयूर भयंकर बोली बोलते हैं ॥ २८ ॥

गृहीतशस्त्राः क्रोशन्ति चर्मिणो वाजिपृष्ठगाः ।
अरुणोदये प्रदृश्यन्ते शतशः शलभव्रजाः ॥ २९ ॥

'घोड़ेकी पीठपर बैठे हुए सवार हाथोंमें ढाल-तलवार लिये चीत्कार कर रहे हैं । अरुणोदयके समय टिड्डियोंके सैकड़ों दल सब ओर फैले दिखायी देते हैं ॥ २९ ॥

उभे संध्ये प्रकाशेते दिशां दाहसमन्विते ।
पर्जन्यः पांसुवर्षी च मांसवर्षी च भारत ॥ ३० ॥

'दोनों संध्याएँ दिग्दाहसे युक्त दिखायी देती हैं । भारत ! बादल धूल और मांसकी वर्षा करता है ॥ ३० ॥

या चैषा विश्रुता राजंस्त्रैलोक्ये साधुसम्मता ।
अरुन्धती तयाप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः ॥ ३१ ॥

'राजन् ! जो अरुन्धती तीनों लोकोंमें पतिव्रताओंकी मुकुटमणिके रूपमें प्रसिद्ध हैं, उन्होंने वसिष्ठको अपने पीछे कर दिया है ॥ ३१ ॥

रोहिणीं पीडयन्नेष स्थितो राजञ्शनैश्चरः ।
व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद् भयम् ॥ ३२ ॥

'महाराज ! यह शनैश्चर नामक ग्रह रोहिणीको पीड़ा देता हुआ खड़ा है । चन्द्रमाका चिह्न मिट-सा गया है । इससे सूचित होता है कि भविष्यमें महान् भय प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥

अनभ्रे च महाघोरः स्तनितः श्रूयते स्वनः ।
वाहनानां च रुदतां निपतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ३३ ॥

'बिना बादलके ही आकाशमें अत्यन्त भयंकर गर्जना सुनायी देती है । रोते हुए वाहनोंकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें गिर रही हैं' ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि श्रीवेदव्यासदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें श्रीवेदव्यासदर्शनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

# तृतीयोऽध्यायः

## व्यासजीके द्वारा अमङ्गलसूचक उत्पातों तथा विजयसूचक लक्षणोंका वर्णन

*व्यास उवाच*

खरा गोषु प्रजायन्ते रमन्ते मातृभिः सुताः ।
अनार्तवं पुष्पफलं दर्शयन्ति वनद्रुमाः ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा—राजन् ! गायोंके गर्भसे गदहे पैदा होते हैं, पुत्र माताओंके साथ रमण करते हैं । वनके वृक्ष बिना ऋतुके फूल और फल प्रकट करते हैं ॥ १ ॥

गर्भिण्योऽजातपुत्राश्च जनयन्ति विभीषणान् ।
क्रव्यादाः पक्षिभिश्चापि सहाश्नन्ति परस्परम् ॥ २ ॥

गर्भवती स्त्रियाँ पुत्रको जन्म न देकर अपने गर्भसे भयंकर जीवोंको पैदा करती हैं । मांसभक्षी पशु भी पक्षियोंके साथ परस्पर मिलकर एक ही जगह आहार ग्रहण करते हैं ॥

त्रिविषाणाश्चतुर्नेत्राः पञ्चपादा द्विमेहनाः ।
द्विशीर्षाश्च द्विपुच्छाश्च दंष्ट्रिणः पशवोऽशिवाः ॥ ३ ॥
जायन्ते विवृतास्याश्च व्याहरन्तोऽशिवा गिरः ।

तीन सींग, चार नेत्र, पाँच पैर, दो मूत्रेन्द्रिय, दो मस्तक, दो पूँछ और अनेक दाढ़ोंवाले अमङ्गलमय पशु जन्म लेते तथा मुँह फैलाकर अमङ्गलसूचक वाणी बोलते हैं ॥ ३½ ॥

त्रिपदाः शिखिनस्तार्क्ष्याश्चतुर्दंष्ट्रा विषाणिनः ॥ ४ ॥
तथैवान्याश्च दृश्यन्ते स्त्रियो वै ब्रह्मवादिनाम् ।
वैनतेयान् मयूरांश्च जनयन्ति पुरे तव ॥ ५ ॥

गरुड पक्षीके मस्तकपर शिखा और सींग हैं । उनके तीन पैर तथा चार दाढ़ें दिखायी देती हैं । इसी प्रकार अन्य जीव भी देखे जाते हैं । वेदवादी ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ तुम्हारे नगरमें गरुड और मोर पैदा करती हैं ॥ ४-५ ॥

गोवत्सं वडवा सूते श्वा सृगालं महीपते ।
कुक्कुरान् करभाश्चैव शुकाश्चाशुभवादिनः ॥ ६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भूपाल ! घोड़ी गायके बछड़ेको जन्म देती है, कुतिया-के पेटसे सियार पैदा होता है, हाथी कुत्तोंको जन्म देते हैं और होते भी अशुभसूचक बोली बोलने लगे हैं ॥ ६ ॥

**स्त्रियः काश्चित्प्रजायन्ते चतस्रः पञ्च कन्यकाः ।**
**जातमात्राश्च नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥ ७ ॥**

कुछ स्त्रियाँ एक ही साथ चार-चार या पाँच-पाँच कन्याएँ पैदा करती हैं। वे कन्याएँ पैदा होते ही नाचती, गाती तथा हँसती हैं ॥ ७ ॥

**पृथग्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च ।**
**नृत्यन्ति परिगायन्ति वेदयन्तो महद् भयम् ॥ ८ ॥**

समस्त नीच जातियोंके घरोंमें उत्पन्न हुए काने, कुबड़े आदि बालक भी महान् भयकी सूचना देते हुए जोर-जोरसे हँसते, गाते और नाचते हैं ॥ ८ ॥

**प्रतिमाश्चालिखन्त्येताः सशस्त्राः कालचोदिताः ।**
**अन्योन्यमभिधावन्ति शिशवो दण्डपाणयः ॥ ९ ॥**

ये सब कालसे प्रेरित हो हाथोंमें हथियार लिये मूर्तियाँ लिखते और बनाते हैं। छोटे-छोटे बच्चे हाथमें डंडा लिये एक दूसरेपर धावा करते हैं ॥ ९ ॥

**अन्योन्यमभिमृद्नन्ति नगराणि युयुत्सवः ।**
**पद्मोत्पलानि वृक्षेषु जायन्ते कुमुदानि च ॥ १० ॥**

और कृत्रिम नगर बनाकर परस्पर युद्धकी इच्छा रखते हुए उन नगरोंको रौंदकर मिट्टीमें मिला देते हैं। पद्म, उत्पल और कुमुद आदि जलीय पुष्प वृक्षोंपर पैदा होते हैं ॥ १० ॥

**विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा रजो नाप्युपशाम्यति ।**
**अभीक्ष्णं कम्पते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥ ११ ॥**

चारों ओर भयंकर आँधी चल रही है, धूलका उड़ना शान्त नहीं हो रहा है, धरती बारंबार काँप रही है तथा राहु सूर्यके निकट जा रहा है ॥ ११ ॥

**श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ।**
**अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥ १२ ॥**

केतु चित्राका अतिक्रमण करके स्वातीपर स्थित हो रहा है।* उसकी विशेषरूपसे कुरुवंशके विनाशपर ही दृष्टि है ॥ १२ ॥

**धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति ।**
**सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥ १३ ॥**

अत्यन्त भयंकर धूमकेतु पुष्य नक्षत्रपर आक्रमण करके वहीं स्थित हो रहा है। यह महान् उपग्रह दोनों सेनाओंका घोर अमङ्गल करेगा ॥ १३ ॥

**मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः ।**
**भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४ ॥**

मङ्गल वक्र होकर मघा नक्षत्रपर स्थित है, बृहस्पति श्रवण नक्षत्रपर विराजमान है तथा सूर्यपुत्र शनि पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रपर पहुँचकर उसे पीड़ा दे रहा है ॥ १४ ॥

**शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ।**
**उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्षते ॥ १५ ॥**

शुक्र पूर्वा भाद्रपदापर आरूढ़ हो प्रकाशित हो रहा है और सब ओर घूम-फिरकर परिघ नामक उपग्रहके साथ उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्रपर दृष्टि लगाये हुए है ॥ १५ ॥

**श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः ।**
**ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६ ॥**

केतु नामक उपग्रह धूमयुक्त अग्निके समान प्रज्वलित हो इन्द्रदेवतासम्बन्धी तेजस्वी ज्येष्ठा नक्षत्रपर जाकर स्थित है ॥

**ध्रुवं प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्तते ।**
**रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ ।**
**चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥ १७ ॥**

चित्रा और स्वातीके बीचमें स्थित हुआ क्रूर ग्रह राहु सदा वक्री होकर रोहिणी तथा चन्द्रमा और सूर्यको पीड़ा पहुँचाता है तथा अत्यन्त प्रज्वलित होकर ध्रुवकी बायीं ओर जा रहा है, जो घोर अनिष्टका सूचक है ॥ १७ ॥

**वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः ।**
**ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥ १८ ॥**

अग्निके समान कान्तिमान् मङ्गल ग्रह ( जिसकी स्थिति मघा नक्षत्रमें बतायी गयी है ) बारंबार वक्र होकर ब्रह्मराशि ( बृहस्पतिसे युक्त नक्षत्र ) श्रवणको पूर्णरूपसे आवृत करके स्थित है ॥ १८ ॥

**सर्वसस्यपरिच्छन्ना पृथिवी सस्यमालिनी ।**
**पञ्चशीर्षा यवाश्चापि शतशीर्षाश्च शालयः ॥ १९ ॥**

( इसका प्रभाव खेतीपर अनुकूल पड़ा है ) पृथ्वी सब प्रकारके अनाजके पौधोंसे आच्छादित है, शस्यकी मालाओंसे अलंकृत है, जौमें पाँच-पाँच और जड़हन धानमें सौ-सौ बालियाँ लग रही हैं ॥ १९ ॥

**प्रधानाः सर्वलोकस्य यास्वायत्तमिदं जगत् ।**
**ता गावः प्रस्नुता वत्सैः शोणितं प्रक्षरन्त्युत ॥ २० ॥**

जो सम्पूर्ण जगत्में माताके समान प्रधान मानी जाती हैं, यह समस्त संसार जिनके अधीन है, वे गौएँ बछड़ोंसे पिन्हा जानेके बाद अपने थनोंसे खून बहाती हैं ॥ २० ॥

**निश्चेरुरर्चिषश्चापात् खड्गाश्च ज्वलिता भृशम् ।**
**व्यक्तं पश्यन्ति शस्त्राणि संग्रामं समुपस्थितम् ॥ २१ ॥**

योद्धाओंके धनुषसे आगकी लपटें निकलने लगी हैं, खड्ग अत्यन्त प्रज्वलित हो उठे हैं मानो सम्पूर्ण शस्त्र स्पष्ट-

---

* राहु और केतु सदा एक-दूसरेसे सातवीं राशिपर स्थित होते हैं, किंतु उस समय दोनों एक राशिपर आ गये थे; अतः महान् अनिष्टके सूचक थे। सूर्य तुलापर थे, उनके निकट राहुके आनेका वर्णन पहले आ चुका है; फिर केतुके वहाँ पहुँचनेसे महान् दुर्योग बन गया है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रूपसे यह देख रहे हैं कि संग्राम उपस्थित हो गया है ।२१।

**अग्निवर्णा यथा भासः शस्त्राणामुदकस्य च ।**
**कवचानां ध्वजानां च भविष्यति महाक्षयः ॥ २२ ॥**

शस्त्रोंकी, जलकी, कवचोंकी और ध्वजाओंकी कान्तियाँ अग्निके समान लाल हो गयी हैं; अतः निश्चय ही महान् जन-संहार होगा ॥ २२ ॥

**पृथिवी शोणितावर्ता ध्वजोडुपसमाकुला ।**
**कुरूणां वैशसे राजन् पाण्डवैः सह भारत ॥ २३ ॥**

राजन् ! भरतनन्दन ! जब पाण्डवोंके साथ कौरवोंका हिंसात्मक संग्राम आरम्भ हो जायगा, उस समय धरतीपर रक्तकी नदियाँ बह चलेंगी, उनमें शोणितमयी भँवरें उठेंगी तथा रथकी ध्वजाएँ उन नदियोंके ऊपर छोटी-छोटी डोंगियोंके समान सब ओर व्याप्त दिखायी देंगी ॥ २३ ॥

**दिक्षु प्रज्वलितास्याश्च व्याहरन्ति मृगद्विजाः ।**
**अत्याहितं दर्शयन्तो वेदयन्ति महद् भयम् ॥ २४ ॥**

चारों दिशाओंमें पशु और पक्षी प्राणान्तकारी अनर्थका दर्शन कराते हुए भयंकर बोली बोल रहे हैं । उनके मुख प्रज्वलित दिखायी देते हैं और वे अपने शब्दोंसे किसी महान् भयकी सूचना दे रहे हैं ॥ २४ ॥

**एकपक्षाक्षिचरणः शकुनिः खचरो निशि ।**
**रौद्रं वदति संरब्धः शोणितं छर्दयन्निव ॥ २५ ॥**

रातमें एक आँख, एक पाँख और एक पैरका पक्षी आकाशमें विचरता है और कुपित होकर भयंकर बोली बोलता है । उसकी बोली ऐसी जान पड़ती है, मानो कोई रक्त वमन कर रहा हो ॥ २५ ॥

**शस्त्राणि चैव राजेन्द्र प्रज्वलन्तीव सम्प्रति ।**
**सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्यते प्रभा ॥ २६ ॥**

राजेन्द्र ! सभी शस्त्र इस समय जलते-से प्रतीत होते हैं। उदार सप्तर्षियोंकी प्रभा फीकी पड़ती जाती है ॥ २६ ॥

**संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ ।**
**विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ॥ २७ ॥**

वर्षपर्यन्त एक राशिपर रहनेवाले दो प्रकाशमान ग्रह बृहस्पति और शनैश्चर तिर्यग्वेधके द्वारा विशाखा नक्षत्रके समीप आ गये हैं ॥ २७ ॥

**चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम् ।**
**अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥ २८ ॥**

( इस पक्षमें तो तिथियोंका क्षय होनेके कारण ) एक ही दिन त्रयोदशी तिथिको बिना पर्वके ही राहुने चन्द्रमा और सूर्य दोनोंको ग्रस लिया है । अतः ग्रहणावस्थाको प्राप्त हुए वे दोनों ग्रह प्रजाका संहार चाहते हैं ॥ २८ ॥

**अशोभिता दिशः सर्वाः पांसुवर्षैः समन्ततः ।**
**उत्पातमेघा रौद्राश्च रात्रौ वर्षन्ति शोणितम् ॥ २९ ॥**

चारों ओर धूलकी वर्षा होनेसे सम्पूर्ण दिशाएँ शोभाहीन हो गयी हैं । उत्पातसूचक भयंकर मेघ रातमें रक्तकी वर्षा करते हैं ॥ २९ ॥

**कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते ।**
**अभीक्ष्णवाता वायन्ते, धूमकेतुमवस्थिताः ॥ ३० ॥**

राजन् ! अपने तीक्ष्ण ( क्रूरतापूर्ण ) कर्मोंके द्वारा उपलक्षित होनेवाला राहु ( चित्रा और स्वातीके बीचमें रहकर सर्वतोभद्रचक्रगतवेधके अनुसार )' कृत्तिका नक्षत्रको पीड़ा दे रहा है । बारंबार धूमकेतुका आश्रय लेकर प्रचण्ड आँधी उठती रहती है ॥ ३० ॥

**विषमं जनयन्त्येत आक्रन्दजननं महत् ।**
**त्रिषु सर्वेषु नक्षत्रनक्षत्रेषु विशाम्पते ।**
**गृध्रः सम्पतते शीर्षे जनयन् भयमुत्तमम् ॥ ३१ ॥**

वह महान् युद्ध एवं विषम परिस्थिति पैदा करनेवाली है । राजन् ! ( अश्विनी आदि नक्षत्रोंको तीन भागोंमें बाँटनेपर जो नौ-नौ नक्षत्रोंके तीन समुदाय होते हैं, वे क्रमशः अश्वपति, गजपति तथा नरपतिके छत्र कहलाते हैं; ये ही पापग्रहसे आक्रान्त होनेपर क्षत्रियोंका विनाश सूचित करनेके कारण 'नक्षत्र-नक्षत्र' कहे गये हैं ) इन तीनों अथवा सम्पूर्ण नक्षत्र-नक्षत्रोंमें शीर्षस्थानपर यदि पापग्रहसे वेध हो तो वह ग्रह महान् भय उत्पन्न करनेवाला होता है; इस समय ऐसा ही कुयोग आया है ॥ ३१ ॥

**चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् ।**
**इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् ।**
**चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥ ३२ ॥**

एक तिथिका क्षय होनेपर चौदहवें दिन, तिथिक्षय न होनेपर पंद्रहवें दिन और एक तिथिकी वृद्धि होनेपर सोलहवें दिन अमावास्याका होना तो पहले देखा गया है; परंतु इस पक्षमें जो तेरहवें दिन यह अमावास्या आ गयी है, ऐसा पहले भी कभी हुआ है, इसका स्मरण मुझे नहीं है । इस एक ही महीनेमें तेरह दिनोंके भीतर चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण दोनों लग गये ॥ ३२ ॥

**अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः ।**
**मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम् ।**
**शोणितैर्वक्त्रसम्पूर्णा अतृप्तास्तत्र राक्षसाः ॥ ३३ ॥**

इस प्रकार अप्रसिद्ध पर्वमें ग्रहण लगनेके कारण ये सूर्य और चन्द्रमा प्रजाका विनाश करनेवाले होंगे । कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको बड़े जोरसे मांसकी वर्षा हुई थी । उस समय राक्षसोंका मुँह रक्तसे भरा हुआ था । वे खून पीते अघाते नहीं थे ॥ ३३ ॥

**प्रतिस्रोतो महानद्यः सरितः शोणितोदकाः ।**
**फेनायमानाः कूपाश्च कूर्दन्ति वृषभा इव ॥ ३४ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बड़ी-बड़ी नदियोंके जल रक्तके समान लाल हो गये हैं और उनकी धारा उलटे स्रोतकी ओर बहने लगी है। कुँओंसे फेन ऊपरको उठ रहे हैं, मानो वृषभ उछल रहे हों। ३४।

**पतन्त्युल्का सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः।**
**अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ ॥ ३५ ॥**

बिजलीकी कड़कड़के साथ इन्द्रकी अशनिके समान प्रकाशित होनेवाली उल्काएँ गिर रही हैं। आजकी रात बीतनेपर सवेरेसे ही तुमलोगोंको अपने अन्यायका फल मिलने लगेगा ॥ ३५ ॥

**विनिःसृत्य महोल्काभिस्तिमिरं सर्वतोदिशम्।**
**अन्योन्यमुपतिष्ठद्भिस्तत्र चोक्तं महर्षिभिः ॥ ३६ ॥**

सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार व्याप्त होनेके कारण बड़ी-बड़ी मशालें जलाकर घरसे निकले हुए महर्षियोंने एक दूसरेके पास उपस्थित हो इन उत्पातोंके सम्बन्धमें अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है ॥ ३६ ॥

**भूमिपालसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम्।**
**कैलासमन्दराभ्यां तु तथा हिमवता विभो ॥ ३७ ॥**
**सहस्रशो महाशब्दं शिखराणि पतन्ति च।**

जान पड़ता है, यह भूमि सहस्रों भूमिपालोंका रक्तपान करेगी। प्रभो ! कैलास, मन्दराचल तथा हिमालयसे सहस्रों प्रकारके अत्यन्त भयानक शब्द प्रकट होते हैं और उनके शिखर भी टूट-टूटकर गिर रहे हैं ॥ ३७½ ॥

**महाभूता भूमिकम्पे चत्वारः सागराः पृथक्।**
**वेलामुद्वर्तयन्तीव क्षोभयन्तो वसुंधराम् ॥ ३८ ॥**

भूकम्प होनेके कारण पृथक्-पृथक् चारों सागर वृद्धिको प्राप्त होकर वसुधामें क्षोभ उत्पन्न करते हुए अपनी सीमाको लाँघते हुए-से जान पड़ते हैं ॥ ३८ ॥

**वृक्षानुन्मथ्य वान्त्युग्रा वाताः शर्करकर्षिणः।**
**आभग्नाः सुमहावातैरशनीभिः समाहताः ॥ ३९ ॥**
**वृक्षाः पतन्ति चैत्याश्च ग्रामेषु नगरेषु च।**

बालू और कंकड़ खींचकर बरसानेवाले भयानक बवंडर उठकर वृक्षोंको उखाड़े डालते हैं। गाँवों तथा नगरोंमें वृक्ष और चैत्यवृक्ष प्रचण्ड आँधियों तथा बिजलीके आघातोंसे टूटकर गिर रहे हैं ॥ ३९½ ॥

**नीललोहितपीतश्च भवत्यग्निर्हुतो द्विजैः ॥ ४० ॥**
**वामार्चिर्दुष्टगन्धश्च मुञ्चन् वै दारुणं स्वनम्।**
**स्पर्शा गन्धा रसाश्चैव विपरीता महीपते ॥ ४१ ॥**

ब्राह्मणलोगोंके आहुति देनेपर प्रज्वलित हुई अग्नि काले, लाल और पीले रंगकी दिखायी देती है। उसकी लपटें वामावर्त होकर उठ रही हैं। उससे दुर्गन्ध निकलती है और वह भयानक शब्द प्रकट करती रहती है। राजन् ! स्पर्श, गन्ध तथा रस—इन सबकी स्थिति विपरीत हो गयी है ॥

**धूमं ध्वजाः प्रमुञ्चन्ति कम्पमाना मुहुर्मुहुः।**
**मुञ्चन्त्यङ्गारवर्षं च भेर्यश्च पटहास्तथा ॥ ४२ ॥**

ध्वज बारंबार कम्पित होकर धूआँ छोड़ते हैं। ढोल, नगाड़े अङ्गारोंकी वर्षा करते हैं ॥ ४२ ॥

**शिखराणां समृद्धानामुपरिष्टात् समन्ततः।**
**वायसाश्च रुवन्त्युग्रं वामं मण्डलमाश्रिताः ॥ ४३ ॥**

फल-फूलसे सम्पन्न वृक्षोंकी शिखाओंपर बायीं ओरसे घूम-घूमकर सब ओर कौए बैठते हैं और भयंकर काँव-काँवका कोलाहल करते हैं ॥ ४३ ॥

**पक्वापक्वेति सुभृशं वावाश्यन्ते वयांसि च।**
**निलीयन्ते ध्वजाग्रेषु क्षयाय पृथिवीक्षिताम् ॥ ४४ ॥**

बहुत-से पक्षी 'पक्वा पक्वा' इस शब्दका बारंबार जोर-जोरसे उच्चारण करते और ध्वजाओंके अग्रभागमें छिपते हैं। यह लक्षण राजाओंके विनाशका सूचक है ॥ ४४ ॥

**ध्यायन्तः प्रकिरन्तश्च व्याला वेपथुसंयुताः।**
**दीनास्तुरङ्गमाः सर्वे वारणाः सलिलाश्रयाः ॥ ४५ ॥**

दुष्ट हाथी काँपते और चिन्ता करते हुए भयके मारे मल-मूत्र त्याग कर रहे हैं, घोड़े अत्यन्त दीन हो रहे हैं और सम्पूर्ण गजराज पसीने-पसीने हो रहे हैं ॥ ४५ ॥

**एतच्छ्रुत्वा भवानत्र प्राप्तकालं व्यवस्यताम्।**
**यथा लोकः समुच्छेदं नायं गच्छेत भारत ॥ ४६ ॥**

भारत ! यह सुनकर ( और उसके परिणामपर विचार करके ) तुम इस अवसरके अनुरूप ऐसा कोई उपाय करो, जिससे यह संसार विनाशसे बच जाय ॥ ४६ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**पितुर्वचो निशम्यैतद् धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम्।**
**दिष्टमेतत् पुरा मन्ये भविष्यति नरक्षयः ॥ ४७ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! अपने पिता व्यासजीका यह वचन सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—'भगवन् ! मैं तो इसे पूर्वनिश्चित दैवका विधान मानता हूँ; अतः यह जनसंहार होगा ही ॥ ४७ ॥

**राजानः क्षत्रधर्मेण यदि वध्यन्ति संयुगे।**
**वीरलोकं समासाद्य सुखं प्राप्स्यन्ति केवलम् ॥ ४८ ॥**

'यदि राजालोग क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्धमें मारे जायँगे तो वीरलोकको प्राप्त होकर केवल सुखके भागी होंगे ॥

**इह कीर्तिं परे लोके दीर्घकालं महत् सुखम्।**
**प्राप्स्यन्ति पुरुषव्याघ्राः प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ ४९ ॥**

'वे पुरुषसिंह नरेश महायुद्धमें प्राणोंका परित्याग करके इहलोकमें कीर्ति तथा परलोकमें दीर्घकालतक महान् सुख प्राप्त करेंगे' ॥ ४९ ॥

*वैशम्पायन उवाच*

**एवमुक्तो मुनिस्तत्त्वं कवीन्द्रो राजसत्तम।**
**धृतराष्ट्रेण पुत्रेण ध्यानमन्वगमत् परम् ॥ ५० ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ ! अपने पुत्र

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धृतराष्ट्रके इस प्रकार यथार्थ बात कहनेपर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महर्षि व्यास कुछ देरतक बड़े सोच-विचारमें पड़े रहे ॥ ५० ॥

**स मुहूर्तं तथा ध्यात्वा पुनरेवाब्रवीद् वचः।**
**असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्षिपते जगत् ॥ ५१ ॥**
**सृजते च पुनर्लोकान् नेह विद्यति शाश्वतम्।**

दो घड़ीतक चिन्तन करनेके बाद वे पुनः इस प्रकार बोले—'राजेन्द्र ! इसमें संशय नहीं है कि काल ही इस जगत्‌का संहार करता है और वही पुनः इन सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करता है। यहाँ कोई वस्तु सदा रहनेवाली नहीं है ॥५१½॥

**ज्ञातीनां वै कुरूणां च सम्बन्धिसुहृदां तथा ॥५२॥**
**धर्म्यं देशय पन्थानं समर्थो ह्यसि वारणे।**
**क्षुद्रं ज्ञातिवधं प्राहुर्मा कुरुष्व ममाप्रियम् ॥ ५३ ॥**

'राजन् ! तुम अपने जाति-भाई, कौरवों, सगे-सम्बन्धियों तथा हितैषी-सुहृदोंको धर्मानुकूल मार्गका उपदेश करो; क्योंकि तुम उन सबको रोकनेमें समर्थ हो। जाति-वधको अत्यन्त नीच कर्म बताया गया है। वह मुझे अत्यन्त अप्रिय है। तुम यह अप्रिय कार्य न करो ॥ ५२-५३ ॥

**कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते।**
**न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथंचन ॥ ५४ ॥**

'महाराज ! यह काल तुम्हारे पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ है। वेदमें हिंसाकी प्रशंसा नहीं की गयी है। हिंसासे किसी प्रकार हित नहीं हो सकता ॥ ५४ ॥

**हन्यात् स एनं यो हन्यात् कुलधर्मं स्विकां तनुम्।**
**कालेनोत्पथगन्तासि शक्ये सति यथाऽऽपदि ॥ ५५॥**

'कुल-धर्म अपने शरीरके ही समान है। जो इस कुल-धर्मका नाश करता है, उसे वह धर्म ही नष्ट कर देता है। जबतक धर्मका पालन सम्भव है ( जबतक तुमपर कोई आपत्ति नहीं आयी है ), तबतक तुम कालसे प्रेरित होकर ही धर्मकी अवहेलना करके कुमार्गपर चल रहे हो, जैसा कि बहुधा लोग किसी आपत्तिमें पड़नेपर ही करते हैं ॥ ५५ ॥

**कुलस्यास्य विनाशाय तथैव च महीक्षिताम्।**
**अनर्थो राज्यरूपेण तव जातो विशाम्पते ॥ ५६ ॥**

'राजन् ! तुम्हारे कुलका तथा अन्य बहुत-से राजाओंका विनाश करनेके लिये यह तुम्हारे राज्यके रूपमें अनर्थ ही प्राप्त हुआ है ॥ ५६ ॥

**लुप्तधर्मा परेणासि धर्मं दर्शय वै सुतान्।**
**किं ते राज्येन दुर्धर्ष येन प्राप्तोऽसि किल्बिषम् ॥ ५७ ॥**

'तुम्हारा धर्म अत्यन्त लुप्त हो गया है। अपने पुत्रोंको धर्मका मार्ग दिखाओ। दुर्धर्ष वीर ! तुम्हें राज्य लेकर क्या करना है, जिसके लिये अपने ऊपर पापका बोझ लाद रहे हो ?॥

**यशो धर्मं च कीर्तिं च पालयन् स्वर्गमाप्स्यसि।**
**लभन्तां पाण्डवा राज्यं शमं गच्छन्तु कौरवाः ॥५८॥**

'तुम मेरी बात माननेपर यश, धर्म और कीर्तिका पालन करते हुए स्वर्ग प्राप्त कर लोगे। पाण्डवोंको उनके राज्य प्राप्त हों और समस्त कौरव आपसमें संधि करके शान्त हो जायँ' ५८

**एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।**
**आक्षिप्य वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यं चैवाब्रवीत् पुनः॥५९॥**

विप्रवर व्यासजी जब इस प्रकार उपदेश दे रहे थे, उसी समय बोलनेमें चतुर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने बीचमें ही उनकी बात काटकर उनसे इस प्रकार कहा ॥ ५९ ॥

*धृतराष्ट्र उवाच*

**यथा भवान् वेत्ति तथैव वेत्ता**
**भावाभावौ विदितौ मे यथावौ।**
**स्वार्थे हि सम्मुह्यति तात लोको**
**मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि ॥ ६० ॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—तात ! जैसा आप जानते हैं, उसी प्रकार मैं भी इन बातोंको समझता हूँ। भाव और अभावका यथार्थ स्वरूप मुझे भी ज्ञात है, तथापि यह संसार अपने स्वार्थके लिये मोहमें पड़ा रहता है। मुझे भी संसारसे अभिन्न ही समझें॥

**प्रसादये त्वामतुलप्रभावं**
**त्वं नो गतिर्दर्शयिता च धीरः।**
**न चापि ते मद्वशगा महर्षे**
**न चाधर्मं कर्तुमर्हा हि मे मतिः ॥ ६१ ॥**

आपका प्रभाव अनुपम है। आप हमारे आश्रय, मार्ग-दर्शक तथा धीर पुरुष हैं। मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। महर्षे ! मेरी बुद्धि भी अधर्म करना नहीं चाहती; परंतु क्या करूँ ? मेरे पुत्र मेरे वशमें नहीं हैं ॥ ६१ ॥

**त्वं हि धर्मप्रवृत्तिश्च यशः कीर्तिश्च भारती।**
**कुरूणां पाण्डवानां च मान्यश्चापि पितामहः ॥ ६२ ॥**

आप ही हम भरतवंशियोंकी धर्म-प्रवृत्ति, यश तथा कीर्तिके हेतु हैं। आप कौरवों और पाण्डवों—दोनोंके माननीय पितामह हैं ॥ ६२ ॥

*व्यास उवाच*

**वैचित्रवीर्य नृपते यत् ते मनसि वर्तते।**
**अभिधत्स्व यथाकामं छेत्तास्मि तव संशयम् ॥ ६३ ॥**

**व्यासजी बोले**—विचित्रवीर्यकुमार ! नरेश्वर ! तुम्हारे मनमें जो संदेह है, उसे अपनी इच्छाके अनुसार प्रकट करो। मैं तुम्हारे संशयका निवारण करूँगा ॥ ६३ ॥

*धृतराष्ट्र उवाच*

**यानि लिङ्गानि संग्रामे भवन्ति विजयिष्यताम्।**
**तानि सर्वाणि भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६४ ॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—भगवन् ! युद्धमें निश्चितरूपसे विजय पानेवाले लोगोंको जो शुभ लक्षण दीख पड़ते हैं, उन सबको यथार्थरूपसे सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ ६४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

व्यास उवाच

**प्रसन्नभाः पावक ऊर्ध्वरश्मिः**
**प्रदक्षिणावर्तशिखो विधूमः ।**
**पुण्या गन्धाश्चाहुतीनां प्रवान्ति**
**जयस्यैतद् भाविनो रूपमाहुः ॥ ६५ ॥**

व्यासजीने कहा—अग्निकी प्रभा निर्मल हो, उसकी लपटें ऊपरकी ओर दक्षिणावर्त होकर उठें और धूआँ बिल्कुल न रहे; साथ ही अग्निमें जो आहुतियाँ डाली जायँ, उनकी पवित्र सुगन्ध वायुमें मिलकर सर्वत्र व्याप्त होती रहे—यह भावी विजयका स्वरूप ( लक्षण ) बताया गया है ॥ ६५ ॥

**गम्भीरघोषाश्च महास्वनाश्च**
**शङ्खा मृदङ्गाश्च नदन्ति यत्र ।**
**विशुद्धरश्मिस्तपनः शशी च**
**जयस्यैतद् भाविनो रूपमाहुः ॥ ६६ ॥**

जिस पक्षमें शङ्खों और मृदङ्गोंकी गम्भीर आवाज बड़े जोर-जोरसे हो रही हो तथा जिन्हें सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें विशुद्ध प्रतीत होती हों, उनके लिये यह भावी विजयका शुभ लक्षण बताया है ॥ ६६ ॥

**इष्टा वाचः प्रसृता वायसानां**
**सम्प्रस्थितानां च गमिष्यतां च ।**
**ये पृष्ठतस्ते त्वरयन्ति राजन्**
**ये चाग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥ ६७ ॥**

जिनके प्रस्थित होनेपर अथवा प्रस्थानके लिये उद्यत होनेपर कौवोंकी मीठी आवाज फैलती है, उनकी विजय सूचित होती है; राजन् ! जो कौवे पीछे बोलते हैं, वे मानो सिद्धिकी सूचना देते हुए शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़नेके लिये प्रेरित करते हैं और जो सामने बोलते हैं, वे मानो युद्धमें जानेसे रोकते हैं ॥ ६७ ॥

**कल्याणवाचः शकुना राजहंसाः**
**शुकाः क्रौञ्चाः शतपत्राश्च यत्र ।**
**प्रदक्षिणाश्चैव भवन्ति संख्ये**
**ध्रुवं जयस्तत्र वदन्ति विप्राः ॥ ६८ ॥**

जहाँ शुभ एवं कल्याणमयी बोली बोलनेवाले राजहंस, शुक, क्रौञ्च तथा शतपत्र ( मोर ) आदि पक्षी सैनिकोंकी प्रदक्षिणा करते हैं (दाहिने जाते हैं), उस पक्षकी युद्धमें निश्चित-रूपसे विजय होती है, यह ब्राह्मणोंका कथन है ॥ ६८ ॥

**अलङ्कारैः कवचैः केतुभिश्च**
**सुखप्रणादैर्हेषितैर्वा हयानाम् ।**
**भ्राजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया**
**येषां चमूस्ते विजयन्ति शत्रून् ॥ ६९ ॥**

अलङ्कार, कवच, ध्वजा-पताका, सुखपूर्वक किये जानेवाले सिंहनाद अथवा घोड़ोंके हिनहिनानेकी आवाजसे जिनकी सेना अत्यन्त शोभायमान होती है तथा शत्रुओंको जिनकी सेनाकी ओर देखना भी कठिन जान पड़ता है, वे अवश्य अपने विपक्षियोंपर विजय पाते हैं ॥ ६९ ॥

**हृष्टा वाचस्तथा सत्त्वं योधानां यत्र भारत ।**
**न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्ति रणोदधिम् ॥ ७० ॥**

भारत ! जिस पक्षके योद्धाओंकी बातें हर्ष और उत्साहसे परिपूर्ण होती हैं, मन प्रसन्न रहता है तथा जिनके कण्ठमें पड़ी हुई पुष्पमालाएँ कुम्हलाती नहीं हैं, वे युद्धरूपी महासागरसे पार हो जाते हैं ॥ ७० ॥

**इष्टा वाचः प्रविष्टस्य दक्षिणाः प्रविविक्षतः ।**
**पश्चात् संधारयन्त्यर्थमग्रे च प्रतिषेधिकाः ॥ ७१ ॥**

जिस पक्षके योद्धा शत्रुकी सेनामें प्रवेश करनेकी इच्छा करते समय अथवा उसमें प्रवेश कर लेनेपर अभीष्ट वचन ( मैं तुझे अभी मार भगाता हूँ इत्यादि शौर्यसूचक बातें) बोलते हैं और अपने रणकौशलका परिचय देते हैं, वे पीछे प्राप्त होनेवाली अपनी विजयको पहलेसे ही निश्चित कर लेते हैं । इसके विपरीत जिन्हें शत्रुसेनामें प्रवेश करते समय सामनेसे निषेधसूचक वचन सुननेको मिलते हैं, उनकी पराजय होती है॥

**शब्दरूपरसस्पर्शगन्धाश्चाविकृताः शुभाः ।**
**सदा हर्षश्च योधानां जयतामिह लक्षणम् ॥ ७२ ॥**

जिनके शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि निर्विकार एवं शुभ होते हैं तथा जिन योद्धाओंके हृदयमें सदा हर्ष और उत्साह बना रहता है, उनके विजयी होनेका यही शुभ लक्षण है ॥ ७२ ॥

**अनुगा वायवो वान्ति तथाभ्राणि वयांसि च ।**
**अनुप्लवन्ति मेघाश्च तथैवेन्द्रधनूंषि च ॥ ७३ ॥**
**एतानि जयमानानां लक्षणानि विशाम्पते ।**
**भवन्ति विपरीतानि मुमूर्षूणां जनाधिप ॥ ७४ ॥**

राजन् ! हवा जिनके अनुकूल बहती है, बादल और पक्षी भी जिनके अनुकूल होते हैं, मेघ जिनके पीछे-पीछे छत्र-छाया किये चलते हैं तथा इन्द्रधनुष भी जिन्हें अनुकूल दिशामें ही दृष्टिगोचर होते हैं, उन विजयी वीरोंके लिये ये विजयके शुभ लक्षण हैं । जनेश्वर ! मरणासन्न मनुष्योंको इसके विपरीत अशुभ लक्षण दिखायी देते हैं ॥ ७३-७४ ॥

**अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ।**
**हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते ॥ ७५ ॥**

सेना छोटी हो या बड़ी, उसमें सम्मिलित होनेवाले सैनिकोंका एकमात्र हर्ष ही निश्चितरूपसे विजयका लक्षण बताया जाता है ॥ ७५ ॥

**एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि ।**
**तां दीर्णामनुदीर्यन्ते योधाः शूरतरा अपि ॥ ७६ ॥**

यदि सेनाका एक सैनिक भी उत्साहहीन होकर पीछे हटे तो वह अपनी ही देखा-देखी अत्यन्त विशाल सेनाको

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भी भगा देता है ( उसके भागनेमें कारण बन जाता है )। उस सेनाके पलायन करनेपर बड़े-बड़े शूरवीर सैनिक भी भागनेको विवश होते हैं ॥ ७६ ॥

**दुर्निवर्त्या तदा चैव प्रभग्ना महती चमूः।**
**अपामिव महावेगास्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ ७७ ॥**

जब बड़ी भारी सेना भागने लगती है, तब डरकर भागे हुए मृगोंके झुंड तथा नीची भूमिकी ओर बहनेवाले जलके महान् वेगकी भाँति उसे पीछे लौटाना बहुत कठिन है॥७७॥

**नैव शक्या समाधातुं संनिपाते महाचमूः।**
**दीर्णामित्येव दीर्यन्ते सुविद्वांसोऽपि भारत ॥ ७८ ॥**

भरतनन्दन ! विशाल सेनामें जब भगदड़ मच जाती है, तब उसे समझा-बुझाकर रोकना कठिन हो जाता है। सेना भाग रही है, इतना सुनकर ही बड़े-बड़े युद्धविद्याके विद्वान् भी भागने लगते हैं ॥ ७८ ॥

**भीतान् भग्नांश्च सम्प्रेक्ष्य भयं भूयोऽभिवर्धते।**
**प्रभग्ना सहसा राजन् दिशो विद्रवते चमूः ॥ ७९ ॥**

राजन् ! भयभीत होकर भागते हुए सैनिकोंको देखकर अन्य योद्धाओंका भय बहुत अधिक बढ़ जाता है; फिर तो सहसा सारी सेना हतोत्साह होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगती है ॥ ७९ ॥

**नैव स्थापयितुं शक्या शूरैरपि महाचमूः।**
**सत्कृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः।**
**उपायपूर्वं मेधावी यतेत सततोत्थितः ॥ ८० ॥**

उस समय बहुत-से शूर-वीर भी उस विशाल वाहिनीको रोककर खड़ी नहीं रख सकते। इसलिये बुद्धिमान् राजाको चाहिये कि वह सतत सावधान रहकर कोई-न-कोई उपाय करके अपनी विशाल चतुरंगिणी सेनाको विशेष सत्कारपूर्वक स्थिर रखनेका यत्न करे ॥ ८० ॥

**उपायविजयं श्रेष्ठमाहुर्भेदेन मध्यमम्।**
**जघन्य एष विजयो यो युद्धेन विशाम्पते ॥ ८१ ॥**

राजन् ! साम-दानरूप उपायसे जो विजय प्राप्त होती है, उसे श्रेष्ठ बताया गया है। भेदनीतिके द्वारा शत्रुसेनामें फूट डालकर जो विजय प्राप्त की जाती है, वह मध्यम है तथा युद्धके द्वारा मार-काट मचाकर जो शत्रुको पराजित किया जाता है, वह सबसे निम्नश्रेणीकी विजय है ॥ ८१ ॥

**महादोषः संनिपातस्तस्याद्यः क्षय उच्यते।**
**परस्परज्ञाः संहृष्टा व्यवधूताः सुनिश्चिताः ॥ ८२ ॥**
**पञ्चाशदपि ये शूरा मृद्नन्ति महतीं चमूम्।**
**अपि वा पञ्च षट् सप्त विजयन्त्यनिवर्तिनः ॥ ८३ ॥**

युद्ध महान् दोषका भण्डार है। उन दोषोंमें सबसे प्रधान है जनसंहार। यदि एक दूसरेको जाननेवाले, हर्ष और उत्साहमें भरे रहनेवाले, कहीं भी आसक्त न होकर विजय-प्राप्तिका दृढ़ निश्चय रखनेवाले तथा शौर्यसम्पन्न पचास सैनिक भी हों तो वे बड़ी भारी सेनाको धूलमें मिला देते हैं। यदि पीछे पैर न हटानेवाले पाँच, छः और सात ही योद्धा हों तो वे भी निश्चितरूपसे विजयी होते हैं ॥ ८२-८३ ॥

**न वैनतेयो गरुडः प्रशंसति महाजनम्।**
**दृष्ट्वा सुपर्णोऽपचितिं महत्या अपि भारत ॥ ८४ ॥**

भारत ! सुन्दर पंखोंवाले विनतानन्दन गरुड़ विशाल सेनाका भी विनाश होता देखकर अधिक जनसमूहकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥ ८४ ॥

**न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः।**
**अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चात्र परायणम्।**
**जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥ ८५ ॥**

सदा अधिक सेना होनेसे ही विजय नहीं होती है। युद्धमें जीत प्रायः अनिश्चित होती है। उसमें दैव ही सबसे बड़ा सहारा है। जो संग्राममें विजयी होते हैं, वे ही कृतकार्य होते हैं ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि निमित्ताख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें अमङ्गलसूचक उत्पातों तथा विजयसूचक लक्षणोंका वर्णनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

---

# चतुर्थोऽध्यायः

## धृतराष्ट्रके पूछनेपर संजयके द्वारा भूमिके महत्त्वका वर्णन

*वैशम्पायन उवाच*

**एवमुक्त्वा ययौ व्यासो धृतराष्ट्राय धीमते।**
**धृतराष्ट्रोऽपि तच्छ्रुत्वा ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—जनमेजय ! बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर महर्षि व्यासजी चले गये। धृतराष्ट्र भी उनके पूर्वोक्त वचन सुनकर कुछ कालतक उनपर सोच-विचार करते रहे ॥ १ ॥

**स मुहूर्तमिव ध्यात्वा विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः।**
**संजयं संशितात्मानमपृच्छद् भरतर्षभ ॥ २ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! दो घड़ीतक सोचने-विचारनेके पश्चात् बारंबार लम्बी साँस खींचते हुए उन्होंने विशुद्ध हृदयवाले संजयसे पूछा—॥ २ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

संजयेमे महीपालाः शूरा युद्धाभिनन्दिनः।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्ति शस्त्रैरुच्चावचैरिह ॥ ३ ॥
पार्थिवाः पृथिवीहेतोः समभित्यज्य जीवितम्।
न च शाम्यन्ति निघ्नन्तो वर्धयन्ति यमक्षयम् ॥ ४ ॥
भौममैश्वर्यमिच्छन्तो न मृष्यन्ते परस्परम्।
मन्ये बहुगुणा भूमिस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५ ॥

'संजय ! पृथ्वीका पालन करनेवाले ये शूरवीर नरेश इस भूमिके लिये ही अपना जीवन निछावर करके युद्धका अभिनन्दन करते और छोटे-बड़े अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा एक दूसरेपर घातक प्रहार करते हैं। इस भूतलके ऐश्वर्यको स्वयं ही चाहते हुए वे एक दूसरेको सहन नहीं कर पाते हैं। परस्पर प्रहार करते हुए यमलोककी जनसंख्या बढ़ाते हैं, परंतु शान्त नहीं होते हैं। अतः मैं ऐसा मानता हूँ कि यह भूमि बहुसंख्यक गुणोंसे विभूषित है। इसलिये संजय ! तुम मुझसे इस भूमिके गुणोंका ही वर्णन करो ॥ ३–५ ॥

बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
कोट्यश्च लोकवीराणां समेताः कुरुजाङ्गले ॥ ६ ॥

'कुरुक्षेत्रमें इस जगत्के कई हजार, लाख, करोड़ और अरबों वीर एकत्र हुए हैं ॥ ६ ॥

देशानां च परीमाणं नगराणां च संजय।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यत एते समागताः ॥ ७ ॥

'संजय ! ये लोग जहाँ-जहाँसे आये हैं, उन देशों और नगरोंका यथार्थ परिमाण मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

दिव्यबुद्धिप्रदीपेन युक्तस्त्वं ज्ञानचक्षुषा।
प्रभावात् तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्यामिततेजसः ॥ ८ ॥

'क्योंकि तुम अमित तेजस्वी ब्रह्मर्षि व्यासजीके प्रभावसे दिव्य बुद्धिरूपी प्रदीपसे प्रकाशित ज्ञानदृष्टिसे सम्पन्न हो गये हो' ॥ ८ ॥

संजय उवाच

यथाप्रज्ञं महाप्राज्ञ भौमान् वक्ष्यामि ते गुणान्।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥

संजयने कहा—महाप्राज्ञ ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपसे इस भूमिके गुणोंका वर्णन करूँगा। भरतश्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है; आप शास्त्रदृष्टिसे इस विषयको देखिये और समझिये ॥ ९ ॥

द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च।
त्रसानां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः ॥ १० ॥

राजन् ! इस पृथ्वीपर दो तरहके प्राणी उपलब्ध हैं—स्थावर और जङ्गम। जङ्गम प्राणियोंकी उत्पत्तिके तीन स्थान हैं—अण्डज, स्वेदज और जरायुज ॥ १० ॥

त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजन् जरायुजाः।
जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ॥ ११ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण जङ्गम जीवोंमें जरायुज श्रेष्ठ माने गये हैं, जरायुजोंमें भी मनुष्य और पशु उत्तम हैं ॥ ११ ॥

नानारूपधरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश।
वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १२ ॥

वे नाना प्रकारकी आकृतिवाले होते हैं। राजन् ! उनके चौदह भेद हैं, जो वेदोंमें बताये गये हैं। भूपाल ! उन्हींमें यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है ॥ १२ ॥

ग्राम्याणां पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चारण्यवासिनाम्।
सर्वेषामेव भूतानामन्योन्येनोपजीवनम् ॥ १३ ॥

ग्रामवासी पशु और मनुष्योंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और वनवासी पशुओंमें सिंह श्रेष्ठ हैं। समस्त प्राणियोंका जीवन-निर्वाह एक दूसरेके सहयोगसे होता है ॥ १३ ॥

उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥ १४ ॥

स्थावरोंको उद्भिज्ज कहते हैं। उनकी पाँच ही जातियाँ हैं—वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार ( बाँस आदि )। ये सब तृणवर्गकी जातियाँ हैं ॥ १४ ॥

तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु।
चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्मता ॥ १५ ॥

ये स्थावर-जङ्गमरूप उन्नीस प्राणी हैं। इनके साथ पाँच महाभूतोंको गिन लेनेपर इनकी संख्या चौबीस हो जाती है। गायत्रीके भी चौबीस ही अक्षर होते हैं। इसलिये इन चौबीस भूतोंको भी लोकसम्मत गायत्री कहा गया है ॥ १५ ॥

य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥ १६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो लोकमें स्थित इस सर्वगुणसम्पन्न पुण्यमयी गायत्रीको यथार्थरूपसे जानता है, वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ १६ ॥

अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा ॥ १७ ॥
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्तारण्याः स्मृता नृप।

नरेश्वर! उपर्युक्त चौदह प्रकारके जरायुज प्राणियोंमें वनवासी पशु सात हैं और ग्रामवासी भी सात ही हैं। सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, गज, रीछ और वानर—ये सात वनवासी पशु माने गये हैं ॥

गौरजाविमनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ १८ ॥
एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः।
एते वै पशवो राजन् ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ १९ ॥

गाय, बकरी, भेड़, मनुष्य, घोड़े, खच्चर और गदहे—इन सात पशुओंको साधु पुरुषोंने ग्रामवासी बताया है। राजन् ! इस प्रकार ये ग्रामवासी और वनवासी मिलकर कुल चौदह पशु कहे गये हैं ॥ १८-१९ ॥

भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव परायणम् ॥ २०

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सब कुछ इस भूमिपर ही उत्पन्न होता है और भूमिमें ही विलीन होता है । भूमि ही सब प्राणियोंकी प्रतिष्ठा और भूमि ही सबका परम आश्रय है ॥ २० ॥

**यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।**
**तत्रातिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम् ॥ २१ ॥**

जिसके अधिकारमें भूमि है, उसीके अधिकारमें सम्पूर्ण चराचर जगत् है, इसीलिये भूमिके प्रति आसक्ति रखनेवाले राजालोग एक-दूसरेको मारते हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भूमिगुणवर्णनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

# पञ्चमोऽध्यायः

## पञ्चमहाभूतों तथा सुदर्शनद्वीपका संक्षिप्त वर्णन

*धृतराष्ट्र उवाच*

**नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि संजय ।**
**तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः ॥ १ ॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—संजय ! नदियों, पर्वतों तथा जनपदोंके और दूसरे भी जो पदार्थ इस भूतलपर आश्रित हैं, उन सबके नाम बताओ ॥ १ ॥

**प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्या मम सर्वतः ।**
**निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च संजय ॥ २ ॥**

प्रमाणवेत्ता संजय ! तुम सारी पृथ्वीका पूरा प्रमाण ( लम्बाई-चौड़ाईका माप ) मुझे बताओ । साथ ही यहाँके वनोंका भी वर्णन करो ॥ २ ॥

*संजय उवाच*

**पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात् ।**
**जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥**

**संजय बोले**—महाराज ! इस पृथ्वीपर रहनेवाली जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब-की-सब संक्षेपसे पञ्चमहाभूतस्वरूप हैं । इसीलिये मनीषी पुरुष उन सबको 'सम' कहते हैं॥

**भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।**
**गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥ ४ ॥**

आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि—ये पञ्च महाभूत हैं । आकाशसे लेकर भूमितक जो पञ्चमहाभूतोंका क्रम है, उसमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर सब भूतोंमें एक-एक गुण अधिक होते हैं । इन सब भूतोंमें भूमिकी प्रधानता है ॥ ४ ॥

**शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।**
**भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ ५ ॥**

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचोंको तत्त्ववेत्ता महर्षियोंने पृथ्वीका गुण बताया है ॥ ५ ॥

**चत्वारोऽप्सु गुणा राजन् गन्धस्तत्र न विद्यते ।**
**शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ।**
**शब्दःस्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु ॥ ६ ॥**

राजन् ! जलमें चार ही गुण हैं । उसमें गन्धका अभाव है । तेजके शब्द, स्पर्श तथा रूप—ये तीन गुण हैं । वायुके शब्द और स्पर्श दो ही गुण हैं और आकाशका एक मात्र शब्द ही गुण है ॥ ६ ॥

**एते पञ्च गुणा राजन् महाभूतेषु पञ्चसु ।**
**वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ॥ ७ ॥**

राजन् ! ये पाँच गुण सम्पूर्ण लोकोंके आश्रयभूत पञ्चमहाभूतोंमें रहते हैं । जिनमें समस्त प्राणी प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥

**अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा ॥ ८ ॥**

ये पाँचों गुण जब साम्यावस्थामें रहते हैं, तब एक-दूसरेसे संयुक्त नहीं होते हैं ॥ ८ ॥

**यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम् ।**
**तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा ॥ ९ ॥**

जब ये विषमभावको प्राप्त होते हैं, तब एक-दूसरेसे मिल जाते हैं । उस समय ही देहधारी प्राणी अपने शरीरोंसे संयुक्त होते हैं, अन्यथा नहीं ॥ ९ ॥

**आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः ।**
**सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥ १० ॥**

ये सब भूत क्रमसे नष्ट होते और क्रमसे ही उत्पन्न होते हैं ( पृथ्वी आदिके क्रमसे इनका लय होता है और आकाश आदिके क्रमसे इनका प्रादुर्भाव ) । ये सब अपरिमेय हैं । इनका रूप ईश्वरकृत है ॥ १० ॥

**तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः ।**
**तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ११ ॥**

भिन्न-भिन्न लोकोंमें पाञ्चभौतिक धातु दृष्टिगोचर होते हैं । मनुष्य तर्कके द्वारा उनके प्रमाणोंका प्रतिपादन करते हैं ॥

**अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।**
**प्रकृतिभ्यः परं यत् तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥**

परंतु जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हें तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये । जो प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यस्वरूप है ॥ १२ ॥

**सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन ।**
**परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ॥ १३ ॥**

कुरुनन्दन ! अब मैं सुदर्शन नामक द्वीपका वर्णन

१. एक समान ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

करूँगा। महाराज! वह द्वीप चक्रकी भाँति गोलाकार स्थित है ॥

नदीजलप्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः।
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४ ॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नधनधान्यवान्।
लवणेन समुद्रेण समन्तात् परिवारितः ॥ १५ ॥

वह नाना प्रकारकी नदियोंके जलसे आच्छादित, मेघके समान उच्चतम पर्वतोंसे सुशोभित, भाँति-भाँतिके नगरों, रमणीय जनपदों तथा फल-फूलसे भरे हुए वृक्षोंसे विभूषित है। यह द्वीप भाँति-भाँतिकी सम्पदाओं तथा धन-धान्यसे सम्पन्न है, उसे सब ओरसे लवणसमुद्रने घेर रक्खा है ॥

यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः।
एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥ १६ ॥

जैसे पुरुष दर्पणमें अपना मुँह देखता है, उसी प्रकार सुदर्शनद्वीप चन्द्रमण्डलमें दिखायी देता है ॥ १६ ॥

द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान्।
सर्वौषधिसमावायः सर्वतः परिवारितः ॥ १७ ॥

इसके दो अंशमें पिप्पल और दो अंशमें महान् शश दृष्टिगोचर होता है। इनके सब ओर सम्पूर्ण ओषधियोंका समुदाय फैला हुआ है ॥ १७ ॥

आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उच्यते।
ततोऽन्य उच्यते चायमेनं संक्षेपतः शृणु ॥ १८ ॥

इन सबको छोड़कर शेष स्थान जलमय समझना चाहिये। इससे भिन्न संक्षिप्त भूमिखण्ड बताया जाता है। उस खण्डका मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि सुदर्शनद्वीपवर्णने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें सुदर्शनद्वीपवर्णनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

## षष्ठोऽध्यायः

### सुदर्शनके वर्ष, पर्वत, मेरुगिरि, गङ्गानदी तथा शशाकृतिका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

उक्तो द्वीपस्य संक्षेपो विधिवद् बुद्धिमंस्त्वया।
तत्त्वज्ञश्चासि सर्वस्य विस्तरं ब्रूहि संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—बुद्धिमान् संजय! तुमने सुदर्शनद्वीपका विधिपूर्वक थोड़ेमें ही वर्णन कर दिया, परंतु तुम तो तत्त्वोंके ज्ञाता हो; अतः इस सम्पूर्ण द्वीपका विस्तारके साथ वर्णन करो ॥ १ ॥

यावान् भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ॥ २ ॥

चन्द्रमाके शश-चिह्नमें भूमिका जितना अवकाश दृष्टिगोचर होता है, उसका प्रमाण बताओ। तत्पश्चात् पिप्पल-स्थानका वर्णन करना ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं राज्ञा स पृष्टस्तु संजयो वाक्यमब्रवीत्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा धृतराष्ट्रके इस प्रकार पूछनेपर संजयने कहना आरम्भ किया ॥ २½ ॥

संजय उवाच

प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ३ ॥

संजय बोले—महाराज! पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाकी ओर फैले हुए ये छः वर्ष पर्वत हैं, जो दोनों ओर पूर्व तथा पश्चिम समुद्रमें घुसे हुए हैं ॥ ३ ॥

हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसंनिभः ॥ ४ ॥
सर्वधातुविचित्रश्च शृङ्गवान् नाम पर्वतः।
एते वै पर्वता राजन् सिद्धचारणसेविताः ॥ ५ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—हिमवान्, हेमकूट, पर्वतश्रेष्ठ निषध, वैदूर्यमणिमय नीलगिरि, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल श्वेतगिरि तथा सब धातुओंसे सम्पन्न होकर विचित्र शोभा धारण करनेवाला शृङ्गवान् पर्वत। राजन्! ये छः पर्वत सिद्धों तथा चारणोंके निवासस्थान हैं ॥ ४-५ ॥

एषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः।
तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत ॥ ६ ॥

भरतनन्दन! इनके बीचका विस्तार सहस्रों योजन है। वहाँ भिन्न-भिन्न वर्ष (खण्ड) हैं और उनमें बहुत-से पवित्र जनपद हैं ॥ ६ ॥

वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः।
इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥ ७ ॥

उनमें सब ओर नाना जातियोंके प्राणी निवास करते हैं, उनमेंसे यह भारतवर्ष है। इसके बाद हिमालयसे उत्तर हैमवतवर्ष है ॥ ७ ॥

हेमकूटात् परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ ८ ॥
प्रागायतो महाभाग माल्यवान् नाम पर्वतः।
ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥ ९ ॥

हेमकूट पर्वतसे आगे हरिवर्षकी स्थिति बतायी जाती है। महाभाग! नीलगिरिके दक्षिण और निषधपर्वतके उत्तर पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैला हुआ, माल्यवान् नामक पर्वत है। माल्यवान्से आगे गन्धमादन पर्वत है ॥ ८-९ ॥

परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥ १० ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इन दोनोंके बीचमें मण्डलाकार सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जो प्रातःकालके सूर्यके समान प्रकाशमान तथा धूमरहित अग्निके समान कान्तिमान् है ॥ १० ॥

**योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।**
**अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां महीपते ॥ ११ ॥**

उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । राजन् ! वह नीचे भी चौरासी हजार योजनतक पृथ्वीके भीतर घुसा हुआ है ॥

**ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् च लोकानावृत्य तिष्ठति ।**
**तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता विभो ॥ १२ ॥**

प्रभो ! मेरुपर्वत ऊपर-नीचे तथा अगल-बगल सम्पूर्ण लोकोंको आवृत करके खड़ा है । उसके पार्श्वभागमें ये चार द्वीप बसे हुए हैं ॥ १२ ॥

**भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत ।**
**उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ १३ ॥**

भारत ! उनके नाम ये हैं—भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप तथा उत्तरकुरु । उत्तरकुरु द्वीपमें पुण्यात्मा पुरुषोंका निवास है ॥

**विहगः सुमुखो यस्तु सुपर्णस्यात्मजः किल ।**
**स वै विचिन्तयामास सौवर्णान् वीक्ष्य वायसान् ॥ १४ ॥**
**मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम् ।**
**अविशेषकरो यस्मात् तस्मादेनं त्यजाम्यहम् ॥ १५ ॥**

एक समय पक्षिराज गरुड़के पुत्र सुमुखने मेरुपर्वतपर सुनहरे शरीरवाले कौवोंको देखकर सोचा कि यह सुमेरुपर्वत उत्तम, मध्यम तथा अधम पक्षियोंमें कुछ भी अन्तर नहीं रहने देता है । इसलिये मैं इसको त्याग दूँगा । ऐसा विचार करके वे वहाँसे अन्यत्र चले गये ॥ १४-१५ ॥

**तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः ।**
**चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥**

ज्योतिर्मय ग्रहोंमें सर्वश्रेष्ठ सूर्यदेव, नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा तथा वायुदेव भी प्रदक्षिणक्रमसे सदा मेरुगिरिकी परिक्रमा करते रहते हैं ॥ १६ ॥

**स पर्वतो महाराज दिव्यपुष्पफलान्वितः ।**
**भवनैरावृतः सर्वैर्जाम्बूनदपरिष्कृतैः ॥ १७ ॥**

महाराज ! वह पर्वत दिव्य पुष्पों और फलोंसे सम्पन्न है । वहाँके सभी भवन जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित हैं । उनसे घिरे हुए उस पर्वतकी बड़ी शोभा होती है ॥ १७ ॥

**तत्र देवगणा राजन् गन्धर्वासुरराक्षसाः ।**
**अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वदा ॥ १८ ॥**

राजन् ! उस पर्वतपर देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस तथा अप्सराएँ सदा क्रीड़ा करती रहती हैं ॥ १८ ॥

**तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चापि सुरेश्वरः ।**
**समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः ॥ १९ ॥**

वहाँ ब्रह्मा, रुद्र तथा देवराज इन्द्र एकत्र हो पर्याप्त दक्षिणावाले नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं ॥ १९ ॥

**तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हहा हुहूः ।**
**अभिगम्यामरश्रेष्ठांस्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥ २० ॥**

उस समय तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, हाहा और हूहू नामक गन्धर्व उन देवेश्वरोंके पास जाकर भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं ॥ २० ॥

**सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः ।**
**तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वणि पर्वणि ॥ २१ ॥**

राजन् ! आपका कल्याण हो । वहाँ महात्मा सप्तर्षिगण तथा प्रजापति कश्यप प्रत्येक पर्वपर सदा पधारते हैं ॥ २१ ॥

**तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते ।**
**इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः ॥ २२ ॥**

भूपाल ! उस मेरुपर्वतके ही शिखरपर दैत्योंके साथ शुक्राचार्य निवास करते हैं । ये सब रत्न तथा ये रत्नमय पर्वत शुक्राचार्यके ही अधिकारमें हैं ॥ २२ ॥

**तस्मात् कुबेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते ।**
**ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति ॥ २३ ॥**

भगवान् कुबेर उन्हींसे धनका चतुर्थ भाग प्राप्त करके उसका उपभोग करते हैं और उस धनका सोलहवाँ भाग मनुष्योंको देते हैं ॥ २३ ॥

**पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् ।**
**कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ॥ २४ ॥**

सुमेरु पर्वतके उत्तर भागमें समस्त ऋतुओंके फूलोंसे भरा हुआ दिव्य एवं रमणीय कर्णिकार ( कनेर वृक्षोंका ) वन है, जहाँ शिलाओंके समूह संचित हैं ॥ २४ ॥

**तत्र साक्षात् पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः ।**
**उमासहायो भगवान् रमते भूतभावनः ॥ २५ ॥**
**कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् ।**
**त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २६ ॥**

वहाँ दिव्य भूतोंसे घिरे हुए साक्षात् भूतभावन भगवान् पशुपति पैरोंतक लटकनेवाली कनेरके फूलोंकी दिव्य माला धारण किये भगवती उमाके साथ विहार करते हैं । वे अपने तीनों नेत्रोंद्वारा ऐसा प्रकाश फैलाते हैं, मानो तीन सूर्य उदित हुए हों ॥ २५-२६ ॥

**तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।**
**पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ॥ २७ ॥**

उग्र तपस्वी एवं उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले सत्यवादी सिद्ध पुरुष ही वहाँ उनका दर्शन करते हैं । दुराचारी लोगोंको भगवान् महेश्वरका दर्शन नहीं हो सकता ॥ २७ ॥

**तस्य शैलस्य शिखरात् क्षीरधारा नरेश्वर ।**
**विश्वरूपापरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ॥ २८ ॥**
**पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा ।**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**प्लवन्तीव प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ॥ २९ ॥**

नरेश्वर ! उस मेरुपर्वतके शिखरसे दुग्धके समान श्वेत-धारवाली, विश्वरूपा, अपरिमित शक्तिशालिनी, भयंकर वज्र-पातके समान शब्द करनेवाली, परम पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित, शुभस्वरूपा पुण्यमयी भागीरथी गङ्गा बड़े प्रबल-वेगसे सुन्दर चन्द्रकुण्डमें गिरती हैं ॥ २८-२९ ॥

**तया ह्युत्पादितः पुण्यः स ह्रदः सागरोपमः ।**
**तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि ॥ ३० ॥**
**शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव पिनाकधृक् ।**

वह पवित्र कुण्ड स्वयं गङ्गाजीने ही प्रकट किया है, जो अपनी अगाध जलराशिके कारण समुद्रके समान शोभा पाता है । जिन्हें अपने ऊपर धारण करना पर्वतोंके लिये भी कठिन था, उन्हीं गङ्गाको पिनाकधारी भगवान् शिव एक लाख वर्षोंतक अपने मस्तकपर ही धारण किये रहे ॥ ३०½ ॥

**मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो महीपते ॥ ३१ ॥**
**जम्बूखण्डस्तु तत्रैव सुमहान् नन्दनोपमः ।**
**आयुर्दश सहस्राणि वर्षाणां तत्र भारत ॥ ३२ ॥**

राजन् ! मेरुके पश्चिम भागमें केतुमाल द्वीप है, वहीं अत्यन्त विशाल जम्बूखण्ड नामक प्रदेश है, जो नन्दनवनके समान मनोहर जान पड़ता है । भारत ! वहाँके निवासियोंकी आयु दस हजार वर्षोंकी होती है ॥ ३१-३२ ॥

**सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।**
**अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ ३३ ॥**

वहाँके पुरुष सुवर्णके समान कान्तिमान् और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं । उन्हें कभी रोग और शोक नहीं होते । उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है ॥ ३३ ॥

**जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः ।**
**गन्धमादनशृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥ ३४ ॥**
**संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः ।**

वहाँ तपाये हुए सुवर्णके समान गौर कान्तिवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं । गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर गुह्यकोंके स्वामी कुबेर राक्षसोंके साथ रहते और अप्सराओंके समुदायोंके साथ आमोद-प्रमोद करते हैं ॥ ३४½ ॥

**गन्धमादनपादेषु परेष्वपरगण्डिकाः ॥ ३५ ॥**
**एकादश सहस्राणि वर्षाणां परमायुषः ।**

गन्धमादनके अन्यान्य पार्श्ववर्ती पर्वतोंपर दूसरी-दूसरी नदियाँ हैं; जहाँ निवास करनेवाले लोगोंकी आयु ग्यारह हजार वर्षोंकी होती है ॥ ३५½ ॥

**तत्र हृष्टा नरा राजंस्तेजोयुक्ता महाबलाः ।**
**स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ॥ ३६ ॥**

राजन् ! वहाँके पुरुष हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी और महाबली होते हैं तथा सभी स्त्रियाँ कमलके समान कान्तिमती और देखनेमें अत्यन्त मनोरम होती हैं ॥ ३६ ॥

**नीलात् परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम् ।**
**वर्षमैरावतं राजन् नानाजनपदावृतम् ॥ ३७ ॥**

नील पर्वतसे उत्तर श्वेतवर्ष और श्वेतवर्षसे उत्तर हिरण्यकवर्ष है । तत्पश्चात् शृङ्गवान् पर्वतसे आगे ऐरावत नामक वर्ष है । राजन् ! वह अनेकानेक जनपदोंसे भरा हुआ है ॥ ३७ ॥

**धनुःसंस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।**
**इलावृतं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ॥ ३८ ॥**

महाराज ! दक्षिण और उत्तरके क्रमशः भारत और ऐरावत नामक दो वर्ष धनुषकी दो कोटियोंके समान स्थित हैं और बीचमें पाँच वर्ष ( श्वेत, हिरण्यक, इलावृत, हरिवर्ष तथा हैमवत ) हैं । इन सबके बीचमें इलावृतवर्ष है ॥

**उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ।**
**आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ३९ ॥**

भारतसे आरम्भ करके ये सभी वर्ष आयुके प्रमाण, आरोग्य, धर्म, अर्थ और काम—इन सभी दृष्टियोंसे गुणोंमें उत्तरोत्तर बढ़ते गये हैं ॥ ३९ ॥

**समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत ।**
**एवमेषा महाराज पर्वतैः पृथिवी चिता ॥ ४० ॥**

भारत ! इन सब वर्षोंमें निवास करनेवाले प्राणी परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं । महाराज ! इस प्रकार यह सारी पृथ्वी पर्वतोंद्वारा स्थिर की गयी है ॥ ४० ॥

**हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः ।**
**यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकैः सह मोदते ॥ ४१ ॥**

राजन् ! विशाल पर्वत हेमकूट ही कैलास नामसे प्रसिद्ध है । जहाँ कुबेर गुह्यकोंके साथ सानन्द निवास करते हैं ॥

**अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।**
**हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥ ४२ ॥**

कैलाससे उत्तर मैनाक है और उससे भी उत्तर दिव्य तथा महान् मणिमय पर्वत हिरण्यशृङ्ग है ॥ ४२ ॥

**तस्य पार्श्वे महद् दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम् ।**
**रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥ ४३ ॥**
**द्रष्टुं भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः ।**

उसीके पास विशाल, दिव्य, उज्ज्वल तथा काञ्चनमयी वालुकासे सुशोभित रमणीय बिन्दुसरोवर है, जहाँ राजा भगीरथने भागीरथी गङ्गाका दर्शन करनेके लिये बहुत वर्षोंतक निवास किया था ॥ ४३½ ॥

**यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ॥ ४४ ॥**
**तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः ।**

वहाँ बहुत-से मणिमय यूप तथा सुवर्णमय चैत्य (महल) शोभा पाते हैं । वहीं यज्ञ करके महायशस्वी इन्द्रने सिद्धि प्राप्त की थी ॥ ४४½ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्रष्टा भूतपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः ॥ ४५ ॥
उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ।
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः ॥ ४६ ॥

उसी स्थानपर सब ओर सम्पूर्ण जगत्के लोग लोकस्रष्टा प्रचण्ड तेजस्वी सनातन भगवान् भूतनाथकी उपासना करते हैं। नर, नारायण, ब्रह्मा, मनु और पाँचवें भगवान् शिव वहाँ सदा स्थित रहते हैं ॥ ४५-४६ ॥

तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।
ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥

ब्रह्मलोकसे उतरकर त्रिपथगामिनी दिव्य नदी गङ्गा पहले उस बिन्दुसरोवरमें ही प्रतिष्ठित हुई थीं। वहींसे उनकी सात धाराएँ विभक्त हुई हैं ॥ ४७ ॥

वस्वोकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ।
जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ॥ ४८ ॥

उन धाराओंके नाम इस प्रकार हैं—वस्वोकसारा, नलिनी, पावनी सरस्वती, जम्बूनदी, सीता, गङ्गा और सिंधु ॥

अचिन्त्या दिव्यसंकाशा प्रभोरेषैव संविधिः ।
उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥ ४९ ॥

यह ( सात धाराओंका प्रादुर्भाव जगत्के उपकारके लिये ) भगवान्का ही अचिन्त्य एवं दिव्य सुन्दर विधान है। जहाँ लोग कल्पके अन्ततक यज्ञानुष्ठानके द्वारा परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥

दृश्यादृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती ।
एता दिव्याः सप्तगङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ५० ॥

इन सात धाराओंमें जो सरस्वती नामवाली धारा है, वह कहीं प्रत्यक्ष दिखायी देती है और कहीं अदृश्य हो जाती है। ये सात दिव्य गङ्गाएँ तीनों लोकोंमें विख्यात हैं ॥५०॥

रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः ।
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ॥ ५१ ॥

हिमालयपर राक्षस, हेमकूटपर गुह्यक तथा निषधपर्वतपर सर्प और नाग निवास करते हैं। गोकर्ण तो तपोवन है ॥

देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा ।
शृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसंचरः ॥ ५२ ॥

श्वेतपर्वत सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंका 'निवासस्थान' बताया जाता है। निषधगिरिपर गन्धर्व तथा नीलगिरिपर ब्रह्मर्षि निवास करते हैं। महाराज ! शृङ्गवान् पर्वत तो केवल देवताओंकी ही विहारस्थली है ॥ ५२ ॥

इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः ।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण प्राणी इन सात वर्षोंमें विभागपूर्वक स्थित हैं ॥ ५३ ॥

तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी ।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता ॥ ५४ ॥

उनकी अनेक प्रकारकी दैवी और मानुषी समृद्धि देखी जाती है। उसकी गणना असम्भव है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उस समृद्धिपर विश्वास करना चाहिये ॥

( स वै सुदर्शनद्वीपो दृश्यते शशवद् द्विधा । )
यां तु पृच्छसि मां राजन् दिव्यामेतां शशाकृतिम् ।
पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे ।
कर्णौ तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च ॥ ५५ ॥

इस प्रकार वह सुदर्शनद्वीप बताया गया है, जो दो भागोंमें विभक्त होकर चन्द्रमण्डलमें प्रतिबिम्बित हो खरगोश-की-सी आकृतिमें दृष्टिगोचर होता है। राजन् ! आपने जो मुझसे इस शशाकृति ( खरगोशकी-सी आकृति ) के विषयमें प्रश्न किया है उसका वर्णन करता हूँ, सुनिये। पहले जो दक्षिण और उत्तरमें स्थित ( भारत और ऐरावत नामक ) दो द्वीप बताये गये हैं, वे ही दोनों उस शश ( खरगोश ) के दो पार्श्वभाग हैं। नागद्वीप तथा काश्यपद्वीप उसके दोनों कान हैं ॥ ५५ ॥

ताम्रपर्णः शिरो राजञ्छ्रीमान् मलयपर्वतः ।
एतद् द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशसंस्थितम् ॥ ५६ ॥

राजन् ! ताम्रवर्णके वृक्षों और पत्रोंसे सुशोभित श्रीमान् मलयपर्वत ही इसका सिर है। इस प्रकार यह सुदर्शन-द्वीपका दूसरा भाग खरगोशके आकारमें दृष्टिगोचर होता है ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भूमि आदि परिमाणका विवरणविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

( दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ५६½ श्लोक हैं )

## सप्तमोऽध्यायः

### उत्तर कुरु, भद्राश्ववर्ष तथा माल्यवान्का वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

मेरोरथोत्तरं पार्श्वं पूर्वं चाचक्ष्व संजय ।
निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—परमबुद्धिमान् संजय ! तुम मेरुके उत्तर तथा पूर्व भागमें जो कुछ है, उसका पूर्णरूपसे वर्णन करो। साथ ही माल्यवान् पर्वतके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विषयमें भी जानने योग्य बातें बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

**दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।**
**उत्तराः कुरवो राजन् पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥ २ ॥**

संजयने कहा—राजन् ! नीलगिरिसे दक्षिण तथा मेरुपर्वतके उत्तर भागमें पवित्र उत्तर कुरुवर्ष है, जहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं ॥ २ ॥

**तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ।**
**पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥**

वहाँके वृक्ष सदा पुष्प और फलसे सम्पन्न होते हैं और उनके फल बड़े मधुर एवं स्वादिष्ट होते हैं । उस देशके सभी पुष्प सुगन्धित और फल सरस होते हैं ॥ ३ ॥

**सर्वकामफलास्तत्र केचिद् वृक्षा जनाधिप ।**
**अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ॥ ४ ॥**
**ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम् ।**
**वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ ५ ॥**

नरेश्वर ! वहाँके कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता हैं । राजन् ! दूसरे क्षीरी नामवाले वृक्ष हैं, जो सदा षड्विध रसोंसे युक्त एवं अमृतके समान स्वादिष्ट दुग्ध बहाते रहते हैं । उनके फलोंमें इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं ॥ ४–५ ॥

**सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका ।**
**सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप ।**
**पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ॥ ६ ॥**

जनेश्वर ! वहाँकी सारी भूमि मणिमयी है । वहाँ जो सूक्ष्म बालूके कण हैं, वे सब सुवर्णमय हैं । उस भूमिपर कीचड़का कहीं नाम भी नहीं है । उसका स्पर्श सभी ऋतुओंमें सुखदायक होता है । वहाँके सुन्दर सरोवर अत्यन्त मनोरम होते हैं । उनका स्पर्श सुखद जान पड़ता है ॥ ६ ॥

**देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ।**
**शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ॥ ७ ॥**

वहाँ देवलोकसे भूतलपर आये हुए समस्त पुण्यात्मा मनुष्य ही जन्म ग्रहण करते हैं । ये सभी उत्तम कुलसे सम्पन्न और देखनेमें अत्यन्त प्रिय होते हैं ॥ ७ ॥

**मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।**
**तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसंनिभम् ॥ ८ ॥**

वहाँ स्त्री-पुरुषोंके जोड़े भी उत्पन्न होते हैं । स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं । उत्तरकुरुके निवासी क्षीरी वृक्षोंके अमृत-तुल्य दूध पीते हैं ॥८॥

**मिथुनं जायते काले समं तच्च प्रवर्धते ।**
**तुल्यरूपगुणोपेतं समवेषं तथैव च ॥ ९ ॥**

वहाँ स्त्री-पुरुषोंके जोड़े एक ही साथ उत्पन्न होते और साथ-साथ बढ़ते हैं । उनके रूप, गुण और वेष सब एक-से होते हैं ॥ ९ ॥

**एकैकमनुरक्तं च चक्रवाकसमं विभो ।**
**निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ १० ॥**

प्रभो ! वे चकवा-चकवीके समान सदा एक दूसरेके अनुकूल बने रहते हैं । उत्तरकुरुके लोग सदा नीरोग और प्रसन्नचित्त रहते हैं ॥ १० ॥

**दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।**
**जीवन्ति ते महाराज न चान्योन्यं जहत्युत ॥ ११ ॥**

महाराज ! वे ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं । एक दूसरेका कभी त्याग नहीं करते ॥ ११ ॥

**भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः ।**
**तान् निर्हरन्तीह मृतान् दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥ १२ ॥**

वहाँ भारुण्ड नामके महाबली पक्षी हैं, जिनकी चोंचें बड़ी तीखी होती हैं । वे वहाँके मरे हुए लोगोंकी लाशें उठाकर ले जाते और कन्दराओंमें फेंक देते हैं ॥ १२ ॥

**उत्तराः कुरवो राजन् व्याख्यातास्ते समासतः ।**
**मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ॥ १३ ॥**

राजन् ! इस प्रकार मैंने आपसे थोड़ेमें उत्तरकुरुवर्षका वर्णन किया । अब मैं मेरुके पूर्वभागमें स्थित भद्राश्ववर्षका यथावत् वर्णन करूँगा ॥ १३ ॥

**तस्य मूर्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य विशाम्पते ।**
**भद्रसालवनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥ १४ ॥**

प्रजानाथ ! भद्राश्ववर्षके शिखरपर भद्रशाल नामका एक वन है एवं वहाँ कालाम्र नामक महान् वृक्ष भी है ॥

**कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः ।**
**द्रुमश्च योजनोत्सेधः सिद्धचारणसेवितः ॥ १५ ॥**

महाराज ! कालाम्र वृक्ष बहुत ही सुन्दर और एक योजन ऊँचा है । उसमें सदा फूल और फल लगे रहते हैं । सिद्ध और चारण पुरुष उसका सदा सेवन करते हैं ॥१५॥

**तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः ।**
**स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ १६ ॥**

वहाँके पुरुष श्वेत वर्णके होते हैं । वे तेजस्वी और महान् बलवान् हुआ करते हैं । वहाँकी स्त्रियाँ कुमुद-पुष्पके समान गौर वर्णवाली, सुन्दरी तथा देखनेमें प्रिय होती हैं ॥ १६ ॥

**चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।**
**चन्द्रशीतलगात्र्यश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥ १७ ॥**

उनकी अङ्गकान्ति एवं वर्ण चन्द्रमाके समान है । उनके मुख पूर्ण चन्द्रके समान मनोहर होते हैं । उनका एक-एक अङ्ग चन्द्ररश्मियोंके समान शीतल प्रतीत होता है । वे नृत्य और गीतकी कलामें कुशल होती हैं ॥ १७ ॥

**दश वर्षसहस्राणि तत्रायुर्भरतर्षभ ।**
**कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥ १८ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भरतश्रेष्ठ ! वहाँके लोगोंकी आयु दस हजार वर्षकी होती है। वे कालाम्र वृक्षका रस पीकर सदा जवान बने रहते हैं॥

**दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु।**
**सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः॥ १९॥**

नीलगिरिके दक्षिण और निषधके उत्तर सुदर्शन नामक एक विशाल जामुनका वृक्ष है, जो सदा स्थिर रहनेवाला है॥

**सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः।**
**तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः॥ २०॥**

वह समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला, पवित्र तथा सिद्धों और चारणोंका आश्रय है। उसीके नामपर यह सनातन प्रदेश जम्बूद्वीपके नामसे विख्यात है॥ २०॥

**योजनानां सहस्रं च शतं च भरतर्षभ।**
**उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृङ्मनुजेश्वर॥ २१॥**

भरतश्रेष्ठ ! मनुजेश्वर ! उस वृक्षराजकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है। वह (ऊँचाई) स्वर्गलोकको स्पर्श करती हुई-सी प्रतीत होती है॥ २१॥

**अरत्नीनां सहस्रं च शतानि दश पञ्च च।**
**परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम्॥ २२॥**

उसके फलोंमें जब रस आ जाता है अर्थात् जब वे पक जाते हैं, तब अपने-आप टूटकर गिर जाते हैं। उन फलोंकी लंबाई ढाई हजार अरत्नि[1] मानी गयी है॥ २२॥

**पतमानानि तान्युर्वी कुर्वन्ति विपुलं स्वनम्।**
**मुञ्चन्ति च रसं राजंस्तस्मिन् रजतसंनिभम्॥ २३॥**

राजन् ! वे फल इस पृथ्वीपर गिरते समय भारी धमाकेकी आवाज करते हैं और उस भूतलपर सुवर्णसदृश रस बहाया करते हैं॥ २३॥

**तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप।**
**मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा सम्प्रयात्युत्तरान् कुरून्॥ २४॥**

जनेश्वर ! उस जम्बूके फलोंका रस नदीके रूपमें परिणत होकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करता हुआ उत्तरकुरुवर्षमें पहुँच जाता है॥ २४॥

**तत्र तेषां मनःशान्तिर्न पिपासा जनाधिप।**
**तस्मिन् फलरसे पीते न जरा बाधते च तान्॥ २५॥**

राजन् ! फलोंके उस रसका पान कर लेनेपर वहाँके निवासियोंके मनमें पूर्ण शान्ति और प्रसन्नता रहती है। उन्हें पिपासा अथवा वृद्धावस्था कभी नहीं सताती है॥ २५॥

**तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्।**
**इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भास्वरं तु तत्॥ २६॥**

उस जम्बू नदीसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण प्रकट होता है, जो देवताओंका आभूषण है। वह इन्द्रगोपके समान लाल और अत्यन्त चमकीला होता है॥ २६॥

**तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः।**
**तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा॥ २७॥**

वहाँके लोग प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् होते हैं। माल्यवान् पर्वतके शिखरपर सदा अग्निदेव प्रज्वलित दिखायी देते हैं॥ २७॥

**नाम्ना संवर्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ।**
**तथा माल्यवतः शृङ्गे पूर्वपूर्वानुगण्डिका॥ २८॥**

भरतश्रेष्ठ ! वे वहाँ संवर्तक एवं कालाग्निके नामसे प्रसिद्ध हैं। माल्यवान्के शिखरपर पूर्व-पूर्वकी ओर नदी प्रवाहित होती है॥ २८॥

**योजनानां सहस्राणि पञ्चषण्माल्यवानथ।**
**महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः॥ २९॥**

माल्यवान्का विस्तार पाँच-छः हजार योजन है। वहाँ सुवर्णके समान कान्तिमान् मानव उत्पन्न होते हैं॥ २९॥

**ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे सर्वेषु साधवः।**
**तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः।**
**रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ते दिवाकरम्॥ ३०॥**

वे सब लोग ब्रह्मलोकसे नीचे आये हुए पुण्यात्मा मनुष्य हैं। उन सबका सबके प्रति साधुतापूर्ण बर्ताव होता है। वे ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) होते और कठोर तपस्या करते हैं। फिर समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये सूर्यलोकमें प्रवेश कर जाते हैं॥ ३०॥

**षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिमेव शतानि च।**
**अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम्॥ ३१॥**

उनमेंसे छाछठ हजार मनुष्य भगवान् सूर्यको चारों ओरसे घेरकर अरुणके आगे-आगे चलते हैं॥ ३१॥

**षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च।**
**आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम्॥ ३२॥**

वे छाछठ हजार वर्षोंतक ही सूर्यदेवके तापमें तपकर अन्तमें चन्द्रमण्डलमें प्रवेश कर जाते हैं॥ ३२॥

**इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें माल्यवान्का वर्णनविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

## अष्टमोऽध्यायः

### रमणक, हिरण्यक, शृङ्गवान् पर्वत तथा ऐरावतवर्षका वर्णन

*धृतराष्ट्र उवाच*

**वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च संजय।**
**आचक्ष्व मे यथातत्त्वं ये च पर्वतवासिनः॥ १॥**

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुम सभी वर्षों और पर्वतोंके

[1] १. पहुचीसे लेकर कनिष्ठिका अंगुलिके मूलभागतक एक मुठीकी लंबाईको 'अरत्नि' कहते हैं।



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नाम बताओ और जो उन पर्वतोंपर निवास करनेवाले हैं उनकी स्थितिका भी यथावत् वर्णन करो ॥ १ ॥

संजय उवाच

**दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु ।**
**वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २ ॥**
**शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ।**
**निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ३ ॥**

संजय बोले—राजन् ! श्वेतके दक्षिण और निषधके उत्तर रमणक नामक वर्ष है। वहाँ जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वे उत्तम कुलसे युक्त और देखनेमें अत्यन्त प्रिय होते हैं। वहाँके सब मनुष्य शत्रुओंसे रहित होते हैं ॥ २-३ ॥

**दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।**
**जीवन्ति ते महाराज नित्यं मुदितमानसाः ॥ ४ ॥**

महाराज ! रमणकवर्षके मनुष्य सदा प्रसन्नचित्त होकर साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं ॥ ४ ॥

**दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।**
**वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥ ५ ॥**

नीलके दक्षिण और निषधके उत्तर हिरण्मयवर्ष है, जहाँ हैरण्यवती नदी बहती है ॥ ५ ॥

**यत्र चायं महाराज पक्षिराट् पतगोत्तमः ।**
**यक्षानुगा महाराज धनिनः प्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥**
**महाबलास्तत्र जना राजन् मुदितमानसाः ।**

महाराज ! वहीं विहंगोंमें उत्तम पक्षिराज गरुड़ निवास करते हैं। वहाँके सब मनुष्य यक्षोंकी उपासना करनेवाले, धनवान्, प्रियदर्शन, महाबली तथा प्रसन्नचित्त होते हैं ।६½।

**एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ ७ ॥**
**आयुःप्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ।**

जनेश्वर ! वहाँके लोग साढ़े बारह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ॥ ७½ ॥

**शृङ्गाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप ॥ ८ ॥**
**एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् ।**
**सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ ९ ॥**

मनुजेश्वर ! वहाँ शृङ्गवान् पर्वतके तीन ही विचित्र शिखर हैं। उनमेंसे एक मणिमय है, दूसरा अद्भुत सुवर्णमय है तथा तीसरा अनेक भवनोंसे सुशोभित एवं सर्वरत्नमय है ८-९

**तत्र स्वयंप्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली ।**
**उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ॥ १० ॥**
**वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गमतः परम् ।**
**न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः ॥ ११ ॥**

वहाँ स्वयंप्रभा नामवाली शाण्डिली देवी नित्य निवास करती हैं। जनेश्वर ! शृङ्गवान् पर्वतके उत्तर समुद्रके निकट ऐरावत नामक वर्ष है। अतः इन शिखरोंसे संयुक्त यह वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा उत्तम है। वहाँ सूर्यदेव ताप नहीं देते हैं और न वहाँके मनुष्य बूढ़े ही होते हैं ॥ १०-११ ॥

**चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवावृतः ।**
**पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ १२ ॥**

नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा वहाँ ज्योतिर्मय होकर सब ओर व्याप्त-सा रहता है। वहाँके मनुष्य कमलकी-सी कान्ति तथा वर्णवाले होते हैं। उनके विशाल नेत्र कमलदलके समान सुशोभित होते हैं ॥ १२ ॥

**पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।**
**अनिष्यन्दा इष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः ॥ १३ ॥**

वहाँके मनुष्योंके शरीरसे विकसित कमलदलोंके समान सुगन्ध प्रकट होती है। उनके शरीरसे पसीने नहीं निकलते। उनकी सुगन्ध प्रिय लगती है। वे आहार ( भूख-प्याससे ) रहित और जितेन्द्रिय होते हैं ॥ १३ ॥

**देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप ।**
**त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ १४ ॥**
**आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम ।**

वे सबके सब देवलोकसे च्युत ( होकर वहाँ शेष पुण्यका उपभोग करते ) हैं ! उनमें रजोगुणका सर्वथा अभाव होता है। भरतभूषण जनेश्वर ! वे तेरह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ॥ १४½ ॥

**क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः ।**
**हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकामये ॥ १५ ॥**
**अष्टचक्रं हि तद् यानं भूतयुक्तं मनोजवम् ।**
**अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम् ॥ १६ ॥**

क्षीरसागरके उत्तर तटपर भगवान् विष्णु निवास करते हैं, वे वहाँ सुवर्णमय रथपर विराजमान हैं। उस रथमें आठ पहिये लगे हैं। उसका वेग मनके समान है। वह समस्त भूतोंसे युक्त, अग्निके समान कान्तिमान्, परम तेजस्वी तथा जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित है ॥ १५-१६ ॥

**स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ ।**
**संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्ता कारयिता तथा ॥ १७ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! वे सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी भगवान् विष्णु ही समस्त प्राणियोंका संकोच और विस्तार करते हैं। वे ही करनेवाले और करानेवाले हैं ॥ १७ ॥

**पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च पार्थिव ।**
**स यज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः ॥ १८ ॥**

राजन् ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश सब कुछ वे ही हैं। वे ही समस्त प्राणियोंके लिये यज्ञस्वरूप हैं। अग्नि उनका मुख है ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

**एवमुक्तः संजयेन धृतराष्ट्रो महामनाः ।**
**ध्यानमन्वगमद् राजन् पुत्रान् प्रति जनाधिप ॥ १९ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—महाराज जनमेजय ! संजयके ऐसा कहनेपर महामना धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके लिये चिन्ता करने लगे ॥ १९ ॥

**स विचिन्त्य महातेजाः पुनरेवाब्रवीद् वचः ।**
**असंशयं सूतपुत्र कालः संक्षिपते जगत् ॥ २० ॥**

कुछ देरतक सोच-विचार करनेके पश्चात् महातेजस्वी धृतराष्ट्रने पुनः इस प्रकार कहा—'सूतपुत्र संजय ! इसमें संदेह नहीं कि काल ही सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करता है ॥

**सृजते च पुनः सर्वं विद्यते नेह शाश्वतम् ।**
**नरो नारायणश्चैव सर्वज्ञः सर्वभूतहृत् ॥ २१ ॥**
**देवा वैकुण्ठमित्याहुर्नरा विष्णुमिति प्रभुम् ॥ २२ ॥**

'फिर वही सबकी सृष्टि करता है। यहाँ कुछ भी सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। भगवान् नर और नारायण समस्त प्राणियोंके सुहृद् एवं सर्वज्ञ हैं। देवता उन्हें वैकुण्ठ और मनुष्य उन्हें शक्तिशाली विष्णु कहते हैं' ॥ २१-२२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

# नवमोऽध्यायः

## भारतवर्षकी नदियों, देशों तथा जनपदोंके नाम और भूमिका महत्त्व

*धृतराष्ट्र उवाच*

**यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्छितं बलम् ।**
**यत्रातिमात्रलुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ १ ॥**
**यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र मे सज्जते मनः ।**
**एतन्मे तत्त्वमाचक्ष्व त्वं हि मे बुद्धिमान् मतः ॥ २ ॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—संजय ! यह जो भारतवर्ष है, जिसमें यह राजाओंकी विशाल वाहिनी युद्धके लिये एकत्र हुई है, जहाँका साम्राज्य प्राप्त करनेके लिये मेरा पुत्र दुर्योधन ललचाया हुआ है, जिसे पानेके लिये पाण्डवोंके मनमें भी बड़ी इच्छा है तथा जिसके प्रति मेरा मन भी बहुत आसक्त है, उस भारतवर्षका तुम यथार्थरूपसे वर्णन करो; क्योंकि इस कार्यके लिये मेरी दृष्टिमें तुम्हीं सबसे अधिक बुद्धिमान् हो १-२

*संजय उवाच*

**न तत्र पाण्डवा गृद्धाः शृणु राजन् वचो मम ।**
**गृद्धो दुर्योधनस्तत्र शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ३ ॥**

**संजयने कहा**—राजन् ! आप मेरी बात सुनिये। पाण्डवोंको इस भारतवर्षके साम्राज्यका लोभ नहीं है। दुर्योधन तथा सुबलपुत्र शकुनि ही उसके लिये बहुत लुभाये हुए हैं ॥ ३ ॥

**अपरे क्षत्रियाश्चैव नानाजनपदेश्वराः ।**
**ये गृद्धा भारते वर्षे न मृष्यन्ति परस्परम् ॥ ४ ॥**

विभिन्न जनपदोंके स्वामी जो दूसरे-दूसरे क्षत्रिय हैं, वे भी इस भारतवर्षके प्रति गृध्र-दृष्टि लगाये हुए एक दूसरेके उत्कर्षको सहन नहीं कर पाते हैं ॥ ४ ॥

**अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम् ।**
**प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ॥ ५ ॥**

भारत ! अब मैं यहाँ आपसे उस भारतवर्षका वर्णन करूँगा, जो इन्द्रदेव और वैवस्वत मनुका प्रिय देश है ॥५॥

**पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः ।**
**ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च ॥ ६ ॥**
**तथैव मुचुकुन्दस्य शिबेरौशीनरस्य च ।**
**ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥ ७ ॥**
**कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः ।**
**सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च ॥ ८ ॥**
**अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।**
**सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् ॥ ९ ॥**

राजन् ! दुर्धर्ष महाराज ! वेननन्दन पृथु, महात्मा इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, उशीनर-पुत्र शिबि, ऋषभ, इलानन्दन पुरूरवा, राजा नृग, कुशिक, महात्मा गाधि, सोमक, दिलीप तथा अन्य जो महाबली क्षत्रिय नरेश हुए हैं, उन सभीको भारतवर्ष बहुत प्रिय रहा है ॥ ६-९ ॥

**तत् ते वर्षं प्रवक्ष्यामि यथायथमरिंदम ।**
**शृणु मे गदतो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १० ॥**

शत्रुदमन नरेश ! मैं उसी भारतवर्षका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ। आप मुझसे जो कुछ पूछते या जानना चाहते हैं वह सब बताता हूँ; सुनिये ॥ १० ॥

**महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ।**
**विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ ११ ॥**

इस भारतवर्षमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत कहे गये हैं ११

**तेषां सहस्रशो राजन् पर्वतास्ते समीपतः ।**
**अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः ॥ १२ ॥**

राजन् ! इनके आसपास और भी हजारों अविज्ञात पर्वत हैं, जो रत्न आदि सार वस्तुओंसे युक्त, विस्तृत और विचित्र शिखरोंसे सुशोभित हैं ॥ १२ ॥

**अन्ये ततोऽपरिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ।**
**आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो ॥ १३ ॥**
**नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ।**
**गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ॥ १४ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

शतद्रूं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम्।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम् ॥ १५ ॥
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम्।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ॥ १६ ॥
वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम्।
करीषिणीं चित्रवाहां चित्रसेनां च निम्नगाम् ॥ १७ ॥

इनसे भिन्न और भी छोटे-छोटे अपरिचित पर्वत हैं, जो छोटे-छोटे प्राणियोंके जीवन-निर्वाहका आश्रय बने हुए हैं। प्रभो! कुरुनन्दन! इस भारतवर्षमें आर्य, म्लेच्छ तथा संकर जातिके मनुष्य निवास करते हैं। वे लोग यहाँकी जिन बड़ी-बड़ी नदियोंके जल पीते हैं, उनके नाम बताता हूँ, सुनिये। गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, महानदी, शतद्रू, चन्द्रभागा, महानदी यमुना, दृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूलवालुका, वेत्रवती, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती, त्रिदिवा, इक्षुला, कृमि, करीषिणी, चित्रवाहा तथा चित्रसेना नदी ॥ १३–१७॥

गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम्।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम्॥ १८ ॥
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा ॥ १९ ॥
शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि ॥ २० ॥

गोमती, धूतपापा, महानदी वन्दना, कौशिकी, त्रिदिवा, कृत्या, निचिता, लोहितारणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिक्, शरावती, पयोष्णी, वेणा, भीमरथी, कावेरी, चुलुका, वाणी और शतबला १८–२०

नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप।
पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ॥ २१ ॥
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा।
पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ॥ २२ ॥
करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम्।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ॥ २३ ॥
पुरावतीमनुष्णां च शैव्यां कापीं च भारत।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम् ॥ २४ ॥

नरेश्वर ! नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कुण्डली, सिन्धु, राजनी, पुरमालिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा ( नीरा ), भीमा, ओघवती, पाशाशिनी, पापहरा, महेन्द्रा, पाटलावती, करीषिणी, असिक्नी, महानदी कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, घृतवती, पुरावती, अनुष्णा, शैव्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या और महानदी कुशधारा ॥ २१—२४ ॥

सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरमतीमपि।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम् ॥ २५ ॥
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम्।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ॥ २६ ॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुवीरामम्बुवाहिनीम्।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ॥ २७ ॥
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् ॥ २८ ॥
शीघ्रां च पिच्छिलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम्।
कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम्॥ २९ ॥
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम्।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि ॥ ३० ॥

सदाकान्ता, शिवा, वीरमती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा, वीरकरा, महानदी पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, महानदी तुंगवेणा, विदिशा, कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, खलु, सुवामा, वेदाश्वा, हरिश्रावा, महापगा, शीघ्रा, पिच्छिला, भारद्वाजी नदी, कौशिकी नदी, शोणा, बाहुदा, चन्द्रमा, दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्वती, यवक्षा, रोही तथा जाम्बूनदी २५–३०

सुनसां तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम्।
नीलां घृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥ ३१ ॥
मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनिम्।
एताश्चान्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ॥ ३२ ॥

सुनसा, तमसा, दासी, वसा, वराणसी, नीला, घृतवती, महानदी पर्णाशा, मानवी, वृषभा, ब्रह्ममेध्या, बृहद्ध्वनि, राजन्! ये तथा और भी बहुत-सी नदियाँ हैं ॥ ३१-३२ ॥

सदा निरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम्।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥ ३३ ॥
चित्रोपलां चित्ररथां मञ्जुलां वाहिनीं तथा।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोषां चापि महानदीम् ॥ ३४ ॥
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम्।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् ॥ ३५ ॥
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम्।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत ॥ ३६ ॥

भारत! सदा निरामया, कृष्णा, मन्दगा, मन्दवाहिनी, ब्राह्मणी, महागौरी, दुर्गा, चित्रोपला, चित्ररथा, मञ्जुला, वाहिनी, मन्दाकिनी, वैतरणी, महानदी कोषा, शुक्तिमती, अनंगा, वृषा, लोहित्या, करतोया, वृषका, कुमारी, ऋषिकुल्या, मारिषा, सरस्वती, मन्दाकिनी, सुपुण्या, सर्वा तथा गङ्गा, भारत ! इन नदियोंके जल भारतवासी पीते हैं ॥ ३३—३६ ॥

विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

राजन् ! पूर्वोक्त सभी नदियाँ सम्पूर्ण विश्वकी माताएँ हैं, वे सबकी सब महान् पुण्य फल देनेवाली हैं। इनके सिवा, सैकड़ों और हजारों ऐसी नदियाँ हैं, जो लोगोंके परिचयमें नहीं आयी हैं ॥ ३७ ॥

**इत्येताः सरितो राजन् समाख्याता यथास्मृति।**
**अत ऊर्ध्वं जनपदान् निबोध गदतो मम ॥ ३८ ॥**

राजन् ! जहाँतक मेरी स्मरणशक्ति काम दे सकी है, उसके अनुसार मैंने इन नदियोंके नाम बताये हैं। इसके बाद अब मैं भारतवर्षके जनपदोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥

**तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः।**
**शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥ ३९ ॥**
**मत्स्याःकुशल्याःसौशल्याःकुन्तयः कान्तिकोसलाः।**
**चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥ ४० ॥**
**उत्तमाश्वदशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।**
**पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरंधराः ॥ ४१ ॥**
**गोधामद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः।**
**जठराः कुक्कुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत ॥ ४२ ॥**
**कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः।**
**गोमन्ता मण्डकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः ॥ ४३ ॥**
**अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः।**
**अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम् ॥ ४४ ॥**

भारतमें ये कुरु-पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय-जाङ्गल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्ति, कोसल, चेदि, मत्स्य, करूष, भोज, सिन्धु-पुलिन्द, उत्तमाश्व, दशार्ण, मेकल, उत्कल, पञ्चाल, कोसल, नैकपृष्ठ, धुरंधर, गोधा, मद्रकलिंग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुक्कुर, दशार्ण, कुन्ति, अवन्ति, अपरकुन्ति, गोमन्त, मन्दक, सण्ड, विदर्भ, रूपवाहिक, अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाद्य तथा मल्लराष्ट्र ॥ ३९–४४ ॥

**वारवास्यायवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः।**
**विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥ ४५ ॥**
**अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च।**
**मल्लाःसुदेष्णाःप्रह्लादा माहिकाः शशिकास्तथा ॥ ४६ ॥**
**बाह्लिका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः।**
**अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्ममण्डलाः ॥ ४७ ॥**
**अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष।**
**उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥ ४८ ॥**
**कुन्दापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः।**
**अन्ध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥ ४९ ॥**
**बहिर्गिर्याङ्गमलजा मगधा मानवर्जकाः।**
**समन्तराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥ ५० ॥**

वारवास्य, अयवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह, मगध, स्वक्ष, मलज, विजय, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यकृल्लोमा, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, माहिक, शशिक, बाह्लिक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पञ्चाल, चर्ममण्डल, अटवीशिखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, स्वराष्ट्र, केकय, कुन्दापरान्त, माहेय, कक्ष, सामुद्रनिष्कुट, बहुसंख्यक अन्ध्र, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, अङ्गमलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर प्रावृषेय तथा भार्गव ॥ ४५–५० ॥

**पुण्ड्रा भर्गाः किराताश्च सुदृष्टा यामुनास्तथा।**
**शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ॥ ५१ ॥**
**दुर्गालाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा।**
**तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यकागुणाः ॥ ५२ ॥**
**तिलभारा मसीराश्च मधुमन्तः सुकन्दकाः।**
**काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा ॥ ५३ ॥**
**अभीसारा उलूताश्च शैवला बाह्लिकास्तथा।**
**दार्वी च वानवा दर्वा वातजामरथोरगाः ॥ ५४ ॥**
**बहुवाद्याश्च कौरव्य सुदामानः सुमल्लिकाः।**
**वध्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ॥ ५५ ॥**
**वनायवो दशापार्श्वरोमाणः कुशबिन्दवः।**
**कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥ ५६ ॥**
**किराता बर्बराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः।**
**ओण्ड्रा म्लेच्छाः सैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष ॥ ५७ ॥**

पुण्ड्र, भर्ग, किरात, सुदृष्ट, यामुन, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैर्ऋत, दुर्गाल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, कोसल, तीरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कन्यकागुण, तिलभार, मसीर, मधुमान्, सुकन्दक, काश्मीर, सिन्धुसौवीर, गान्धार, दर्शक, अभीसार, उलूत, शैवाल, बाह्लिक, दार्वी, वानव, दर्व, वातज, आमरथ, उरग, बहुवाद्य, सुदाम, सुमल्लिक, वध्र, करीषक, कुलिन्द, उपत्यक, वनायु, दश, पार्श्वरोम, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपालकक्ष, जाङ्गल, कुरुवर्णक, किरात, बर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, ओण्ड्र, म्लेच्छ, सैसिरिध्र और पार्वतीय इत्यादि ॥

**अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ।**
**द्रविडाः केरलाः प्राच्या भूषिका वनवासिकाः ॥ ५८ ॥**
**कर्णाटका महिषका विकल्पा मूषकास्तथा।**
**झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभकाननाः ॥ ५९ ॥**
**कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मालवा नराः।**
**समङ्गाः करकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥ ६० ॥**
**ध्वजिन्युत्सवसंकेतास्त्रिगर्ताः शाल्वसेनयः।**
**व्यूकाः कोकबकाः प्रोष्ठाः समवेगवशास्तथा ॥ ६१ ॥**
**तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह।**
**मालवा बल्लवाश्चैव तथैवापरबल्लवाः ॥ ६२ ॥**
**कुलिन्दाः कालदाश्चैव कुण्डलाः करटास्तथा।**
**मूषकाः स्तनबालाश्च सनीपा घटसृंजयाः ॥ ६३ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अठिदाः पाशिवाटाश्च तनयाः सुनयास्तथा।
ऋषिका विदभाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ६४ ॥
उत्तराश्चापरम्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥ ६५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अब जो दक्षिण दिशाके अन्यान्य जनपद हैं उनका वर्णन सुनिये—द्रविड, केरल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, महिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन, कौकुट्टक, चोल, कोङ्कण, मालव, नर, समङ्ग, करक, कुकुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सवसंकेत, त्रिगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकवक, प्रोष्ठ, समवेगवश, विन्ध्यचुलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, बल्लव, अपरवल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, स्तनबाल, सनीप, घट, संजय, अठिद, पाशिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदभ, काक, तङ्गण, परतङ्गण, उत्तर और क्रूर अपरम्लेच्छ, यवन, चीन तथा जहाँ भयानक म्लेच्छ जातिके लोग निवास करते हैं, वह काम्बोज ॥ ५८–६५ ॥

सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह।
तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ॥ ६६ ॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च।
शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ॥ ६७ ॥
खाशीराश्चान्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वराः।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः ॥ ६८ ॥
प्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः।
तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥ ६९ ॥

सकृद्ग्रह, कुलत्थ, हूण, पारसिक, रमण-चीन, दशमालिक, क्षत्रियोंके उपनिवेश, वैश्यों और शूद्रोंके जनपद, शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पशु, खाशीर, अन्तचार, पह्लव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषक, कलिङ्ग, किरात जातियोंके जनपद, तोमर, हन्यमान और करभञ्जक इत्यादि ॥ ६७–६९ ॥

एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च।
उद्देशमात्रेण मया देशाः संकीर्तिता विभो ॥ ७० ॥

राजन् ! ये तथा और भी पूर्व और उत्तर दिशाके जनपद एवं देश मैंने संक्षेपसे बताये हैं ॥ ७० ॥

यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम्।
दुह्येत धेनुः कामधुग् भूमिः सम्यगनुष्ठिता ॥ ७१ ॥

अपने गुण और बलके अनुसार यदि अच्छी तरह इस भूमिका पालन किया जाय तो यह कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली कामधेनु बनकर धर्म, अर्थ और काम तीनोंके महान् फलकी प्राप्ति कराती है ॥ ७१ ॥

तस्यां गृद्ध्यन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः।
ते त्यजन्त्याहवे प्राणान् वसुगृद्धास्तरस्विनः ॥ ७२ ॥

इसीलिये धर्म और अर्थके काममें निपुण शूर-वीर नरेश इसे पानेकी अभिलाषा रखते हैं और धनके लोभमें आसक्त हो वेगपूर्वक युद्धमें जाकर अपने प्राणोंका परित्याग कर देते हैं॥

देवमानुषकायानां कामं भूमिः परायणम्।
अन्योन्यस्यावलुम्पन्ति सारमेया यथामिषम् ॥ ७३ ॥
राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुंधराम्।
न चापि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित् ॥ ७४ ॥

देवशरीरधारी प्राणियोंके लिये और मानवशरीरधारी जीवोंके लिये यथेष्ट फल देनेवाली यह भूमि उनका परम आश्रय होती है। भरतश्रेष्ठ ! जैसे कुत्ते मांसके टुकड़ेके लिये परस्पर लड़ते और एक दूसरेको नोचते हैं, उसी प्रकार राजा लोग इस वसुधाको भोगनेकी इच्छा रखकर आपसमें लड़ते और लूट-पाट करते हैं; किंतु आजतक किसीको अपनी कामनाओंसे तृप्ति नहीं हुई ॥ ७३-७४ ॥

तस्मात् परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५ ॥

भारत ! इस अतृप्तिके ही कारण कौरव और पाण्डव साम, दान, भेद और दण्डके द्वारा सम्पूर्ण वसुधापर अधिकार पानेके लिये यत्न करते हैं ॥ ७५ ॥

पिता भ्राता च पुत्राश्च खं द्यौश्च नरपुङ्गव।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शना ॥ ७६ ॥

नरश्रेष्ठ ! यदि भूमिके यथार्थ स्वरूपका सम्पूर्णरूपसे ज्ञान हो जाय तो यह परमात्मासे अभिन्न होनेके कारण प्राणियोंके लिये स्वयं ही पिता, भ्राता, पुत्र, आकाशवर्ती पुण्यलोक तथा स्वर्ग भी बन जाती है ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतीयनद्रीदेशादिनामकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भारतकी नदियों और देश आदिके नामका वर्णनविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

## दशमोऽध्यायः

### भारतवर्षमें युगोंके अनुसार मनुष्योंकी आयु तथा गुणोंका निरूपण

*धृतराष्ट्र उवाच*

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च।
प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च संजय।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥ २ ॥**

**धृतराष्ट्रने कहा**—संजय ! तुम भारतवर्ष और हैमवत-वर्षके लोगोंके आयुका प्रमाण, बल तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान शुभाशुभ फल बताओ । साथ ही हरिवर्षका भी विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १-२ ॥

*संजय उवाच*

**चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ ।**
**कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्धन ॥ ३ ॥**

**संजयने कहा**—कुरुकुलकी वृद्धि करनेवाले भरतश्रेष्ठ ! भारतवर्षमें चार युग होते हैं—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ॥ ३ ॥

**पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो ।**
**संक्षेपाद् द्वापरस्याथ ततस्तिष्यं प्रवर्तते ॥ ४ ॥**

प्रभो ! पहले सत्ययुग होता है, फिर त्रेतायुग आता है, उसके बाद द्वापरयुग बीतनेपर कलियुगकी प्रवृत्ति होती है ॥

**चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम ।**
**आयुःसंख्या कृतयुगे संख्याता राजसत्तम ॥ ५ ॥**

कुरुश्रेष्ठ ! नृपप्रवर ! सत्ययुगके लोगोंकी आयुका मान चार हजार वर्ष है ॥ ५ ॥

**तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप ।**
**द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठति साम्प्रतम् ॥ ६ ॥**

मनुजेश्वर ! त्रेताके मनुष्योंकी आयु तीन हजार वर्षोंकी बतायी गयी है । द्वापरके लोगोंकी आयु दो हजार वर्षोंकी है, जो इस समय भूतलपर विद्यमान है ॥ ६ ॥

**न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन् भरतर्षभ ।**
**गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ॥ ७ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! इस कलियुगमें आयु-प्रमाणकी कोई मर्यादा नहीं है । यहाँ गर्भके बच्चे भी मरते हैं और नवजात शिशु भी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

**महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।**
**प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥**

**जाताः कृतयुगे राजन् धनिनः प्रियदर्शनाः ।**
**प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ॥ ९ ॥**

सत्ययुगमें महाबली, महान् सत्त्वगुणसम्पन्न, बुद्धिमान्, धनवान् और प्रियदर्शन मनुष्य उत्पन्न होते हैं और सैकड़ों तथा हजारों संतानोंको जन्म देते हैं, उस समय प्रायः तपस्याके धनी महर्षिगण जन्म लेते हैं ॥ ८-९ ॥

**महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।**
**प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्धराः ॥ १० ॥**
**वरार्हा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः ।**
**त्रेतायां क्षत्रिया राजन् सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥ ११ ॥**

राजन् ! इसी प्रकार त्रेतायुगमें समस्त भूमण्डलके क्षत्रिय अत्यन्त उत्साही, महान् मनस्वी, धर्मात्मा, सत्यवादी, प्रियदर्शन, सुन्दर शरीरधारी, महापराक्रमी, धनुर्धर, वर पानेके योग्य, युद्धमें शूरशिरोमणि तथा मानवोंकी रक्षा करनेवाले होते हैं ॥

**सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा चैव च द्वापरे ।**
**महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परजयैषिणः ॥ १२ ॥**

द्वापरमें सभी वर्णोंके लोग उत्पन्न होते हैं एवं वे सदा परम उत्साही, पराक्रमी तथा एक दूसरेको जीतनेके इच्छुक होते हैं ॥ १२ ॥

**तेजसाल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप ।**
**लुब्धा अनृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भारत ॥ १३ ॥**

भरतनन्दन ! कलियुगमें जन्म लेनेवाले लोग प्रायः अल्प-तेजस्वी, क्रोधी, लोभी तथा असत्यवादी होते हैं ॥ १३ ॥

**ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायासूया तथैव च ।**
**तिष्ये भवति भूतानां रागो लोभश्च भारत ॥ १४ ॥**

भारत ! कलियुगके प्राणियोंमें ईर्ष्या, मान, क्रोध, माया, दोष-दृष्टि, राग तथा लोभ आदि दोष रहते हैं ॥ १४ ॥

**संक्षेपो वर्तते राजन् द्वापरेऽस्मिन् नराधिप ।**
**गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥ १५ ॥**

नरेश्वर ! इस द्वापरमें भी गुणोंकी न्यूनता होती है । भारतवर्षकी अपेक्षा हैमवत तथा हरिवर्षमें उत्तरोत्तर अधिक गुण हैं ॥ १५ ॥

**इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतवर्षे कृताद्यनुरोधेनायुर्निरूपणे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भारतवर्षमें सत्ययुग आदिके अनुसार आयुका निरूपणविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

---

## ( भूमिपर्व )

# एकादशोऽध्यायः

## शाकद्वीपका वर्णन

*धृतराष्ट्र उवाच*

**जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह संजय ।**
**विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ॥ १ ॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—संजय ! तुमने यहाँ जम्बूखण्डका यथावत् वर्णन किया है । अब तुम इसके विस्तार और परिमाणको ठीक-ठीक बताओ ॥ १ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अठिदाः पाशिवाटाश्च तनयाः सुनयास्तथा।
ऋषिका विदभाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ६४ ॥
उत्तराश्चापरम्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥ ६५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अब जो दक्षिण दिशाके अन्यान्य जनपद हैं उनका वर्णन सुनिये—द्रविड, केरल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, महिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन, कौकुट्टक, चोल, कोङ्कण, मालव, नर, समङ्ग, करक, कुकुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सवसंकेत, त्रिगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकवक, प्रोष्ठ, समवेगवश, विन्ध्यचुलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, बल्लव, अपरवल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, स्तनबाल, सनीप, घट, सृंजय, अठिद, पाशिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदभ, काक, तङ्गण, परतङ्गण, उत्तर और क्रूर अपरम्लेच्छ, यवन, चीन तथा जहाँ भयानक म्लेच्छ जातिके लोग निवास करते हैं, वह काम्बोज ॥ ५८–६५ ॥

सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह।
तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ॥ ६६ ॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च।
शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ॥ ६७ ॥
खाशीराश्चान्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वराः।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः ॥ ६८ ॥
प्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः।
तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥ ६९ ॥

सकृद्ग्रह, कुलत्थ, हूण, पारसिक, रमण-चीन, दशमालिक, क्षत्रियोंके उपनिवेश, वैश्यों और शूद्रोंके जनपद, शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पशु, खाशीर, अन्तचार, पह्लव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषक, कलिङ्ग, किरात जातियोंके जनपद, तोमर, हन्यमान और करभञ्जक इत्यादि ॥ ६६–६९ ॥

एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च।
उद्देशमात्रेण मया देशाः संकीर्तिता विभो ॥ ७० ॥

राजन् ! ये तथा और भी पूर्व और उत्तर दिशाके जनपद एवं देश मैंने संक्षेपसे बताये हैं ॥ ७० ॥

यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम्।
दुह्येत धेनुः कामधुग् भूमिः सम्यगनुष्ठिता ॥ ७१ ॥

अपने गुण और बलके अनुसार यदि अच्छी तरह इस भूमिका पालन किया जाय तो यह कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली कामधेनु बनकर धर्म, अर्थ और काम तीनोंके महान् फलकी प्राप्ति कराती है ॥ ७१ ॥

तस्यां गृद्ध्यन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः।
ते त्यजन्त्याहवे प्राणान् वसुगृद्धास्तरस्विनः ॥ ७२ ॥

इसीलिये धर्म और अर्थके काममें निपुण शूर-वीर नरेश इसे पानेकी अभिलाषा रखते हैं और धनके लोभमें आसक्त हो वेगपूर्वक युद्धमें जाकर अपने प्राणोंका परित्याग कर देते हैं॥

देवमानुषकायानां कामं भूमिः परायणम्।
अन्योन्यस्यावलुम्पन्ति सारमेया यथामिषम् ॥ ७३ ॥
राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुंधराम्।
न चापि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित् ॥ ७४॥

देवशरीरधारी प्राणियोंके लिये और मानवशरीरधारी जीवोंके लिये यथेष्ट फल देनेवाली यह भूमि उनका परम आश्रय होती है। भरतश्रेष्ठ ! जैसे कुत्ते मांसके टुकड़ेके लिये परस्पर लड़ते और एक दूसरेको नोचते हैं, उसी प्रकार राजा लोग इस वसुधाको भोगनेकी इच्छा रखकर आपसमें लड़ते और लूट-पाट करते हैं; किंतु आजतक किसीको अपनी कामनाओंसे तृप्ति नहीं हुई ॥ ७३-७४ ॥

तस्मात् परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५ ॥

भारत ! इस अतृप्तिके ही कारण कौरव और पाण्डव साम, दान, भेद और दण्डके द्वारा सम्पूर्ण वसुधापर अधिकार पानेके लिये यत्न करते हैं ॥ ७५ ॥

पिता भ्राता च पुत्राश्च खं द्यौश्च नरपुङ्गव।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शना ॥ ७६ ॥

नरश्रेष्ठ ! यदि भूमिके यथार्थ स्वरूपका सम्पूर्णरूपसे ज्ञान हो जाय तो यह परमात्मासे अभिन्न होनेके कारण प्राणियोंके लिये स्वयं ही पिता, भ्राता, पुत्र, आकाशवर्ती पुण्यलोक तथा स्वर्ग भी बन जाती है ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतीयनद्यादिदेशादिनामकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भारतकी नदियों और देश आदिके नामका वर्णनविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

## दशमोऽध्यायः

### भारतवर्षमें युगोंके अनुसार मनुष्योंकी आयु तथा गुणोंका निरूपण

*धृतराष्ट्र उवाच*

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च।
प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च संजय।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! तुम भारतवर्ष और हैमवत-वर्षके लोगोंके आयुका प्रमाण, बल तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान शुभाशुभ फल बताओ । साथ ही हरिवर्षका भी विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्धन ॥ ३ ॥

संजयने कहा—कुरुकुलकी वृद्धि करनेवाले भरतश्रेष्ठ ! भारतवर्षमें चार युग होते हैं—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ॥ ३ ॥

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो ।
संक्षेपाद् द्वापरस्याथ ततस्तिष्यं प्रवर्तते ॥ ४ ॥

प्रभो ! पहले सत्ययुग होता है, फिर त्रेतायुग आता है, उसके बाद द्वापरयुग बीतनेपर कलियुगकी प्रवृत्ति होती है ॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम ।
आयुःसंख्या कृतयुगे संख्याता राजसत्तम ॥ ५ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! नृपप्रवर ! सत्ययुगके लोगोंकी आयुका मान चार हजार वर्ष है ॥ ५ ॥

तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठति साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

मनुजेश्वर ! त्रेताके मनुष्योंकी आयु तीन हजार वर्षोंकी बतायी गयी है । द्वापरके लोगोंकी आयु दो हजार वर्षोंकी है, जो इस समय भूतलपर विद्यमान है ॥ ६ ॥

न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन् भरतर्षभ ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस कलियुगमें आयु-प्रमाणकी कोई मर्यादा नहीं है । यहाँ गर्भके बच्चे भी मरते हैं और नवजात शिशु भी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

जाताः कृतयुगे राजन् धनिनः प्रियदर्शनाः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ॥ ९ ॥

सत्ययुगमें महाबली, महान् सत्त्वगुणसम्पन्न, बुद्धिमान्, धनवान् और प्रियदर्शन मनुष्य उत्पन्न होते हैं और सैकड़ों तथा हजारों संतानोंको जन्म देते हैं, उस समय प्रायः तपस्याके धनी महर्षिगण जन्म लेते हैं ॥ ८-९ ॥

महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्धराः ॥ १० ॥
वरार्हा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः ।
त्रेतायां क्षत्रिया राजन् सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥ ११ ॥

राजन् ! इसी प्रकार त्रेतायुगमें समस्त भूमण्डलके क्षत्रिय अत्यन्त उत्साही, महान् मनस्वी, धर्मात्मा, सत्यवादी, प्रियदर्शन, सुन्दर शरीरधारी, महापराक्रमी, धनुर्धर, वर पानेके योग्य, युद्धमें शूरशिरोमणि तथा मानवोंकी रक्षा करनेवाले होते हैं ॥

सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा चैव च द्वापरे ।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परजयैषिणः ॥ १२ ॥

द्वापरमें सभी वर्णोंके लोग उत्पन्न होते हैं एवं वे सदा परम उत्साही, पराक्रमी तथा एक दूसरेको जीतनेके इच्छुक होते हैं ॥ १२ ॥

तेजसाल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप ।
लुब्धा अनृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भारत ॥ १३ ॥

भरतनन्दन ! कलियुगमें जन्म लेनेवाले लोग प्रायः अल्पतेजस्वी, क्रोधी, लोभी तथा असत्यवादी होते हैं ॥ १३ ॥

ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायासूया तथैव च ।
तिष्ये भवति भूतानां रागो लोभश्च भारत ॥ १४ ॥

भारत ! कलियुगके प्राणियोंमें ईर्ष्या, मान, क्रोध, माया, दोष-दृष्टि, राग तथा लोभ आदि दोष रहते हैं ॥ १४ ॥

संक्षेपो वर्तते राजन् द्वापरेऽस्मिन् नराधिप ।
गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥ १५ ॥

नरेश्वर ! इस द्वापरमें भी गुणोंकी न्यूनता होती है । भारतवर्षकी अपेक्षा हैमवत तथा हरिवर्षमें उत्तरोत्तर अधिक गुण हैं ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतवर्षे कृताद्यनुरोधेनायुर्निरूपणे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भारतवर्षमें सत्ययुग आदिके अनुसार आयुका निरूपणविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

( भूमिपर्व )

# एकादशोऽध्यायः

## शाकद्वीपका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह संजय ।
विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमने यहाँ जम्बूखण्डका यथावत् वर्णन किया है । अब तुम इसके विस्तार और परिमाणको ठीक-ठीक बताओ ॥ १ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शनम्।
शाकद्वीपं च मे ब्रूहि कुशद्वीपं च संजय ॥ २ ॥

संजय ! समुद्रके सम्पूर्ण परिमाणको भी अच्छी तरह समझाकर कहो। इसके बाद मुझसे शाकद्वीप और कुशद्वीपका वर्णन करो ॥ २ ॥

शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च।
ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ॥ ३ ॥

गवल्गणकुमार संजय ! इसी प्रकार शाल्मलिद्वीप, क्रौंचद्वीप तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं राहुसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातोंका यथार्थरूपसे प्रतिपादन करो ॥ ३ ॥

संजय उवाच

राजन् सुबहवो द्वीपा यैरिदं संततं जगत्।
सप्तद्वीपान् प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यौ ग्रहं तथा ॥ ४ ॥

संजय बोले—राजन् ! बहुत-से द्वीप हैं, जिनसे सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है। अब मैं आपकी आज्ञाके अनुसार सात द्वीपोंका तथा चन्द्रमा, सूर्य और राहुका भी वर्णन करूँगा ॥

अष्टादश सहस्राणि योजनानि विशाम्पते।
षट् शतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः ॥ ५ ॥
लावणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥ ६ ॥
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः।
सिद्धचारणसंकीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥ ७ ॥

राजन् ! जम्बूद्वीपका विस्तार पूरे १८६०० योजन है। इसके चारों ओर जो खारे पानीका समुद्र है, उसका विस्तार जम्बूद्वीपकी अपेक्षा दूना माना गया है। उसके तटपर तथा टापूमें बहुत-से देश और जनपद हैं। उसके भीतर नाना प्रकारके मणि और मूँगे हैं, जो उसकी विचित्रता सूचित करते हैं। अनेक प्रकारके धातुओंसे अद्भुत प्रतीत होनेवाले बहुसंख्यक पर्वत उस सागरकी शोभा बढ़ाते हैं। सिद्धों तथा चारणोंसे भरा हुआ वह लवणसमुद्र सब ओरसे मण्डलाकार है ॥

शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव।
शृणु मे त्वं यथान्यायं ब्रुवतः कुरुनन्दन ॥ ८ ॥

राजन्! अब मैं शाकद्वीपका यथावत् वर्णन आरम्भ करता हूँ। कुरुनन्दन ! मेरे इस न्यायोचित कथनको आप ध्यान देकर सुनें॥

जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स नराधिप।
विष्कम्भेण महाराज सागरोऽपि विभागशः ॥ ९ ॥

महाराज ! नरेश्वर ! वह द्वीप विस्तारकी दृष्टिसे जम्बूद्वीपके परिमाणसे दूना है। भरतश्रेष्ठ ! उसका समुद्र भी विभागपूर्वक उससे दूना ही है ॥ ९ ॥

क्षीरोदो भरतश्रेष्ठ येन सम्परिवारितः।
तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः ॥ १० ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समुद्रका नाम क्षीरसागर है, जिसने उक्त द्वीपको सब ओरसे घेर रक्खा है। वहाँ पवित्र जनपद हैं। वहाँ निवास करनेवाले लोगोंकी मृत्यु नहीं होती ॥ १० ॥

कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते।
शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावद् भरतर्षभ ॥ ११ ॥
उक्त एष महाराज किमन्यत् कथयामि ते।

फिर वहाँ दुर्भिक्ष तो हो ही कैसे सकता है ? उस द्वीपके निवासी क्षमाशील और तेजस्वी होते हैं। भरतश्रेष्ठ महाराज ! इस प्रकार शाकद्वीपका संक्षेपसे यथावत् वर्णन किया गया है। अब और आपसे क्या कहूँ ? ॥ ११½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावदिह संजय ॥ १२ ॥
उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः।

धृतराष्ट्र बोले—महाबुद्धिमान् संजय ! तुमने यहाँ शाकद्वीपका संक्षिप्तरूपसे यथावत् वर्णन किया है। अब उसका कुछ विस्तारके साथ यथार्थ परिचय दो ॥ १२½ ॥

संजय उवाच

तथैव पर्वता राजन् सप्तात्र मणिभूषिताः ॥ १३ ॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु।

संजय बोले—राजन् ! शाकद्वीपमें भी मणियोंसे विभूषित सात पर्वत हैं। वहाँ रत्नोंकी बहुत-सी खानें तथा नदियाँ भी हैं। उनके नाम मुझसे सुनिये ॥ १३½ ॥

अतीव गुणवत् सर्वं तत्र पुण्यं जनाधिप ॥ १४ ॥
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते।
प्रागायतो महाराज मलयो नाम पर्वतः ॥ १५ ॥

जनेश्वर ! वहाँका सब कुछ परम पवित्र और अत्यन्त गुणकारी है। वहाँका प्रधान पर्वत है मेरु, जो देवर्षियों तथा गन्धर्वोंसे सेवित है। महाराज ! दूसरे पर्वतका नाम मलय है, जो पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैला हुआ है ॥ १४-१५ ॥

ततो मेघाः प्रवर्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः।
ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः ॥ १६ ॥

मेघ वहींसे उत्पन्न होते हैं, फिर वे सब ओर फैलकर जलकी वर्षा करनेमें समर्थ होते हैं। कुरुनन्दन ! उसके बाद जलधार नामक महान् पर्वत है ॥ १६ ॥

ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्।
ततो वर्षं प्रभवति वर्षकाले जनेश्वर ॥ १७ ॥

जनेश्वर ! इन्द्र वहींसे सदा उत्तम जल ग्रहण करते हैं। इसीलिये वर्षाकालमें वे यथेष्ट जल बरसानेमें समर्थ होते हैं॥

उच्चैर्गिरी रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता।
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥ १८ ॥

उसी द्वीपमें उच्चतम रैवतक पर्वत है, जहाँ आकाशमें रेवती नामक नक्षत्र नित्य प्रतिष्ठित है। यह ब्रह्माजीका रचा हुआ विधान है ॥ १८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः ।**
**नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः ॥ १९ ॥**

राजेन्द्र ! उसके उत्तर भागमें श्याम नामक महान् पर्वत है, जो नूतन मेघके समान श्याम शोभासे युक्त है । उसकी ऊँचाई बहुत है । उसका कान्तिमान् कलेवर परम उज्ज्वल है ॥

**यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा जनपदेश्वर ।**

जनपदेश्वर ! वहाँ रहनेसे ही वहाँकी प्रजा श्यामताको प्राप्त हुई है ॥ १९½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

**सुमहान् संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं संजय त्वया ।**
**प्रजाः कथं सूतपुत्र सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ॥ २० ॥**

धृतराष्ट्र बोले—सूतपुत्र संजय ! यह तो तुमने आज मुझसे महान् संशयकी बात कही है । भला, वहाँ रहने मात्रसे प्रजा श्यामताको कैसे प्राप्त हो गयी ? ॥ २० ॥

संजय उवाच

**सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन ।**
**गौरः कृष्णश्च वर्णौ द्वौ तयोर्वर्णान्तरं नृप ॥ २१ ॥**
**श्यामो यस्मात् प्रवृत्तो वै तत् ते वक्ष्यामि भारत ।**
**आस्तेऽत्र भगवान् कृष्णस्तत्कान्त्या श्यामतां गतः ॥ २२ ॥**

संजयने कहा—महाराज कुरुनन्दन ! सम्पूर्ण द्वीपोंमें गौर, कृष्ण तथा इन दोनों वर्णोंका सम्मिश्रण देखा जाता है । भारत ! यह पर्वत जिस कारणसे श्याम होकर दूसरोंमें भी श्यामता उत्पन्न करनेवाला हुआ, वह आपको बताता हूँ । यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं; अतः उन्हींकी कान्तिसे यह ( स्वयं भी ) श्यामताको प्राप्त हुआ है ( और अपने समीप रहनेवाली प्रजामें भी श्यामता उत्पन्न कर देता है ) ॥

**ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः ।**
**केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्तते ॥ २३ ॥**

कौरवराज ! श्यामगिरिके बाद बहुत ऊँचा दुर्ग शैल है । उसके बाद केसर पर्वत है, जहाँसे चली हुई वायु केसरकी सुगन्ध लिये बहती है ॥ २३ ॥

**तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः ।**
**वर्षाणि तेषु कौरव्य सप्तोक्तानि मनीषिभिः ॥ २४ ॥**

इन सब पर्वतोंका विस्तार दूना होता गया है । कुरुनन्दन ! मनीषी पुरुषोंने उन पर्वतोंके समीप सात वर्ष बताये हैं ॥

**महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरः ।**
**जलधारो महाराज सुकुमार इति स्मृतः ॥ २५ ॥**

महामेरु पर्वतके समीप महाकाश वर्ष है, जलद या मलयके निकट कुमुदोत्तर वर्ष है । महाराज ! जलधार गिरिका पार्श्ववर्ती वर्ष सुकुमार बताया गया है ॥ २५ ॥

**रैवतस्य तु कौमारः श्यामस्य मणिकाञ्चनः ।**
**केसरस्याथ मोदाकी परेण तु महापुमान् ॥ २६ ॥**

रैवतक पर्वतका कुमारवर्ष तथा श्यामगिरिका मणिकाञ्चन वर्ष है । इसी प्रकार केसरके समीपवर्ती वर्षको मोदाकी कहते हैं । उसके आगे महापुमान् नामक एक पर्वत है ॥

**परिवार्य तु कौरव्य दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च ।**
**जम्बूद्वीपेन संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ॥ २७ ॥**
**शाको नाम महाराज प्रजा तस्य सदानुगा ।**
**तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शंकरः ॥ २८ ॥**

वह उस द्वीपकी लंबाई और चौड़ाई सबको घेरकर खड़ा है । महाराज ! उसके बीचमें शाक नामक एक बड़ा भारी वृक्ष है, जो जम्बूद्वीपके समान ही विशाल है । महाराज ! वहाँकी प्रजा सदा उस शाक वृक्षके ही आश्रित रहती है । वहाँ बड़े पवित्र जनपद हैं । उस द्वीपमें भगवान् शङ्करकी आराधना की जाती है ॥ २७-२८ ॥

**तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च ।**
**धार्मिकाश्च प्रजा राजंश्चत्वारोऽतीव भारत ॥ २९ ॥**

राजन् ! भरतनन्दन ! वहाँ सिद्ध, चारण और देवता जाते हैं । वहाँके चारों वर्णोंकी प्रजा अत्यन्त धार्मिक होती है ॥

**वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते ।**
**दीर्घायुषो महाराज जरामृत्युविवर्जिताः ॥ ३० ॥**

सभी वर्णके लोग वहाँ अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्मका पालन करते हैं । वहाँ कोई चोर नहीं दिखायी देता । महाराज ! उस द्वीपके निवासी दीर्घायु तथा जरा और मृत्युसे रहित होते हैं ॥ ३० ॥

**प्रजास्तत्र विवर्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः ।**
**नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधा गता ॥ ३१ ॥**

जैसे वर्षाऋतुमें समुद्रगामिनी नदियाँ बढ़ जाती हैं, उसी प्रकार वहाँकी समस्त प्रजा सदा वृद्धिको प्राप्त होती रहती है । उस द्वीपमें अनेक पवित्र जलवाली नदियाँ बहती हैं । वहाँ गङ्गा भी अनेक धाराओंमें विभक्त देखी जाती हैं ॥

**सुकुमारी कुमारी च शीताशी वेणिका तथा ।**
**महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी ॥ ३२ ॥**
**चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम ।**
**तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह ॥ ३३ ॥**

कुरुनन्दन ! भरतश्रेष्ठ ! उस द्वीपमें सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला तथा चक्षुर्वर्धनिका आदि पवित्र जलवाली नदियाँ बहती हैं ॥ ३२-३३ ॥

**सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः ।**
**न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥ ३४ ॥**
**शक्यन्ते परिसंख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः ।**
**तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ ३५ ॥**

वहाँ लाखों ऐसी नदियाँ हैं, जिनसे जल लेकर इन्द्र वर्षा करते हैं । उनके नाम और परिमाणकी संख्या बताना


CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कठिन ही नहीं, असम्भव है। वे सभी श्रेष्ठ नदियाँ परम पुण्यमयी हैं। उस द्वीपमें लोकसम्मानित चार पवित्र जनपद हैं॥

**मङ्गाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।**
**मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप ॥ ३६ ॥**

उनके नाम इस प्रकार हैं—मङ्ग, मशक, मानस तथा मन्दग। नरेश्वर! उनमेंसे मङ्ग जनपदमें अधिकतर ब्राह्मण निवास करते हैं। वे सबके सब अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं॥ ३६॥

**मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः।**
**मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ॥ ३७ ॥**
**सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः।**

महाराज! मशक जनपदमें सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवाले धर्मात्मा क्षत्रिय निवास करते हैं। मानस जनपदके निवासी वैश्यवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते हैं। वे सर्वभोगसम्पन्न, शूरवीर, धर्म और अर्थको समझनेवाले एवं दृढ़निश्चयी होते हैं॥

**शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ॥ ३८ ॥**

मन्दग जनपदमें शूद्र रहते हैं। वे भी धर्मात्मा होते हैं॥

**न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दण्डिकः।**
**स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ ३९ ॥**

राजेन्द्र! वहाँ न कोई राजा है, न दण्ड है और न दण्ड देनेवाला है। वहाँके लोग धर्मके ज्ञाता हैं और स्वधर्मपालनके ही प्रभावसे एक-दूसरेकी रक्षा करते हैं॥ ३९॥

**एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम्।**
**एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥ ४० ॥**

महाराज! उस महान् तेजोमय शाकद्वीपके सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है और इतना ही सुनना चाहिये॥

**इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि शाकद्वीपवर्णने एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भूमिपर्वमें शाकद्वीपवर्णनविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

# द्वादशोऽध्यायः

## कुश, क्रौञ्च और पुष्कर आदि द्वीपोंका तथा राहु, सूर्य एवं चन्द्रमाके प्रमाणका वर्णन

संजय उवाच

**उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा।**
**एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ॥ १ ॥**

**संजय बोले**—महाराज! कुरुनन्दन! इसके बादवाले द्वीपोंके विषयमें जो बातें सुनी जाती हैं, वे इस प्रकार हैं; उन्हें आप मुझसे सुनिये॥ १॥

**घृततोयः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः।**
**सुरोदः सागरश्चैव तथान्यो जलसागरः ॥ २ ॥**

क्षीरोद समुद्रके बाद घृतोद समुद्र है। फिर दधिमण्डोदक समुद्र है। इनके बाद सुरोद समुद्र है, फिर मीठे पानीका सागर है॥ २॥

**परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप।**
**पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ॥ ३ ॥**

महाराज! इन समुद्रोंसे घिरे हुए सभी द्वीप और पर्वत उत्तरोत्तर दुगुने विस्तारवाले हैं॥ ३॥

**गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मानःशिलो महान्।**
**पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ॥ ४ ॥**

नरेश्वर! इनमेंसे मध्यम द्वीपमें मनःशिला (मैनसिल) का एक बहुत बड़ा पर्वत है; जो 'गौर' नामसे विख्यात है। उसके पश्चिममें 'कृष्ण' पर्वत है, जो नारायणको विशेष प्रिय है॥

**तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः।**
**प्रसन्नश्चाभवत् तत्र प्रजानां व्यदधत् सुखम् ॥ ५ ॥**

स्वयं भगवान् केशव ही वहाँ दिव्य रत्नोंको रखते और उनकी रक्षा करते हैं। वे वहाँकी प्रजापर प्रसन्न हुए थे, इसलिये उनको सुख पहुँचानेकी व्यवस्था उन्होंने स्वयं की है॥

**कुशस्तम्बः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह।**
**सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ॥ ६ ॥**

नरेश्वर! कुशद्वीपमें कुशोंका एक बहुत बड़ा झाड़ है, जिसकी वहाँके जनपदोंमें रहनेवाले लोग पूजा करते हैं। उसी प्रकार शाल्मलि द्वीपमें शाल्मलि (सेंमर) वृक्षकी पूजा की जाती है॥ ६॥

**क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः।**
**सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ॥ ७ ॥**

क्रौञ्चद्वीपमें महाक्रौञ्च नामक महान् पर्वत है, जो रत्नराशिकी खान है। महाराज! वहाँ चारों वर्णोंके लोग सदा उसीकी पूजा करते हैं॥ ७॥

**गोमन्तः पर्वतो राजन् सुमहान् सर्वधातुकः।**
**यत्र नित्यं निवसति श्रीमान् कमललोचनः ॥ ८ ॥**
**मोक्षिभिः संस्तुतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः।**

राजन्! वहाँ गोमन्त नामक विशाल पर्वत है, जो सम्पूर्ण धातुओंसे सम्पन्न है। वहाँ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले उपासकोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए सबके स्वामी श्रीमान् कमलनयन भगवान् नारायण नित्य निवास करते हैं॥ ८½॥

**कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥ ९ ॥**
**सुधामा नाम दुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः।**

राजेन्द्र! कुशद्वीपमें सुधामा नामसे प्रसिद्ध दूसरा सुवर्णमय पर्वत है, जो मूँगोंसे भरा हुआ और दुर्गम है॥ ९½॥

**द्युतिमान् नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥ १० ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

चतुर्थः पुष्पवान् नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥ ११ ॥

कौरव्य ! वहीं परम कान्तिमान् कुमुद नामक तीसरा पर्वत है। चौथा पुष्पवान्, पाँचवाँ कुशेशय और छठा हरिगिरि है। ये छः कुशद्वीपके श्रेष्ठ पर्वत हैं ॥ १०-११ ॥

तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः सर्वभागशः।
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥ १२ ॥

इन पर्वतोंके बीचका विस्तार सब ओरसे उत्तरोत्तर दूना होता गया है। कुशद्वीपके पहले वर्षका नाम उद्भिद् है। दूसरेका नाम वेणुमण्डल है ॥ १२ ॥

तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम्।
धृतिमत् पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ १३ ॥

तीसरेका नाम सुरथाकार, चौथेका कम्बल, पाँचवेंका धृतिमान् और छठे वर्षका नाम प्रभाकर है ॥ १३ ॥

सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्भकाः।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥ १४ ॥
विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप॥ १५ ॥

सातवाँ वर्ष कापिल कहलाता है। ये सात वर्षसमुदाय हैं। पृथ्वीपते ! इन सबमें देवता, गन्धर्व तथा मनुष्य सानन्द विहार करते हैं। उनमेंसे किसीकी मृत्यु नहीं होती है। नरेश्वर ! वहाँ लुटेरे अथवा म्लेच्छ जातिके लोग नहीं हैं १४-१५

गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव।
अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ॥ १६ ॥

मनुजेश्वर ! इन वर्षोंके सभी लोग प्रायः गोरे और सुकुमार होते हैं। अब मैं शेष सम्पूर्ण द्वीपोंके विषयमें बताता हूँ ॥ १६ ॥

यथाश्रुतं महाराज तदव्यग्रमनाः शृणु।
क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥ १७ ॥

महाराज ! मैंने जैसा सुन रक्खा है, वैसा ही सुनाऊँगा। आप शान्तचित्त होकर सुनिये। क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामक विशाल पर्वत है ॥ १७ ॥

क्रौञ्चात् परो वामनको वामनादन्धकारकः।
अन्धकारात् परो राजन् मैनाकः पर्वतोत्तमः ॥ १८ ॥
मैनाकात् परतो राजन् गोविन्दो गिरिरुत्तमः।
गोविन्दात् परतो राजन् निविडो नाम पर्वतः ॥ १९ ॥

राजन् ! क्रौञ्चके बाद वामन पर्वत है, वामनके बाद अन्धकार और अन्धकारके बाद मैनाक नामक श्रेष्ठ पर्वत है। प्रभो ! मैनाकके बाद उत्तम गोविन्द गिरि है। गोविन्दके बाद निविड नामक पर्वत है ॥ १८-१९ ॥

परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्धन।
देशांस्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २० ॥

कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले महाराज ! इन पर्वतोंके बीचका विस्तार उत्तरोत्तर दूना होता गया है। उनमें जो देश बसे हुए हैं, उनका परिचय देता हूँ; सुनिये ॥ २० ॥

क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः।
मनोनुगात् परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ॥ २१ ॥

क्रौञ्चपर्वतके निकट कुशल नामक देश है। वामन पर्वतके पास मनोनुग देश है। कुरुकुलश्रेष्ठ ! मनोनुगके बाद उष्ण देश आता है ॥ २१ ॥

उष्णात् परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः।
अन्धकारकदेशात् तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥ २२ ॥

उष्णके बाद प्रावरक, प्रावरकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद उत्तम मुनिदेश बताया गया है ॥ २२ ॥

मुनिदेशात् परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः।
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ॥ २३ ॥
एते देशा महाराज देवगन्धर्वसेविताः।

मुनिदेशके बाद जो देश है, उसे दुन्दुभिस्वन कहते हैं। वह सिद्धों और चारणोंसे भरा हुआ है। जनेश्वर ! वहाँके लोग प्रायः गोरे होते हैं। महाराज ! इन सभी देशोंमें देवता और गन्धर्व निवास करते हैं ॥ २३½ ॥

पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् ॥ २४ ॥

पुष्करद्वीपमें पुष्कर नामक पर्वत है, जो मणियों तथा रत्नोंसे भरा हुआ है ॥ २४ ॥

तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः।
तं पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ॥ २५ ॥
वाग्भिर्मनोऽनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप।

वहाँ स्वयं प्रजापति भगवान् ब्रह्मा नित्य निवास करते हैं। जनेश्वर ! सम्पूर्ण देवता और महर्षि मनोनुकूल वचनोंद्वारा प्रतिदिन उनकी पूजा करते हुए सदा उन्हींकी उपासनामें लगे रहते हैं ॥ २५½ ॥

जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ॥ २६ ॥
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम।
ब्रह्मचर्येण सत्येन प्रजानां हि दमेन च ॥ २७ ॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः।

जम्बूद्वीपसे अनेक प्रकारके रत्न अन्यान्य सब द्वीपोंमें वहाँकी प्रजाओंके उपयोगके लिये भेजे जाते हैं। कुरुश्रेष्ठ ! ब्रह्मचर्य, सत्य और इन्द्रियसंयमके प्रभावसे उन सब द्वीपोंकी प्रजाओंके आरोग्य और आयुका प्रमाण जम्बूद्वीपकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूना माना गया है ॥ २६-२७½ ॥

एको जनपदो राजन् द्वीपेष्वेतेषु भारत।
उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ॥ २८ ॥

भरतवंशी नरेश ! वास्तवमें इन देशोंमें एक ही जनपद है। जिन द्वीपोंमें अनेक जनपद बताये गये हैं, उनमें भी एक प्रकारका ही धर्म देखा जाता है ॥ २८ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः ।
द्वीपानेतान् महाराज रक्षंस्तिष्ठति नित्यदा ॥ २९ ॥

महाराज ! सबके ईश्वर प्रजापति ब्रह्मा स्वयं ही दण्ड लेकर इन द्वीपोंकी रक्षा करते हुए इनमें नित्य निवास करते हैं ॥ २९ ॥

स राजा स शिवो राजन् स पिता प्रपितामहः ।
गोपायति नरश्रेष्ठ प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ ३० ॥

नरश्रेष्ठ ! प्रजापति ही वहाँके राजा हैं। वे कल्याणस्वरूप होकर सबका कल्याण करते हैं । राजन् ! वे ही पिता और प्रपितामह हैं । जडसे लेकर चेतनतक समस्त प्रजाकी वे ही रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥

भोजनं चात्र कौरव्य प्रजाः स्वयमुपस्थितम् ।
सिद्धमेव महाबाहो तद्धि भुञ्जन्ति नित्यदा ॥ ३१ ॥

महाबाहु कुरुनन्दन ! यहाँकी प्रजाओंके पास सदा पका-पकाया भोजन स्वयं उपस्थित हो जाता है और उसीको खाकर वे लोग रहते हैं ॥ ३१ ॥

ततः परं समा नाम दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
चतुरस्रं महाराज त्रयस्त्रिंशत् तु मण्डलम् ॥ ३२ ॥

उसके बाद समानामवाली लोगोंकी बस्ती देखी जाती है। महाराज! वह चौकोर बसी हुई है। उसमें तैंतीस मण्डल हैं॥

तत्र तिष्ठन्ति कौरव्य चत्वारो लोकसम्मताः ।
दिग्गजा भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः ॥ ३३ ॥

कुरुनन्दन ! भरतश्रेष्ठ ! वहाँ लोकविख्यात वामन, ऐरावत, सुप्रतीक और अञ्जन—ये चार दिग्गज रहते हैं ।३३।

सुप्रतीकस्तथा राजन् प्रभिन्नकरटामुखः ।
तस्याहं परिमाणं तु न संख्यातुमिहोत्सहे ॥ ३४ ॥
असंख्यातः स नित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।

राजन् ! इनमेंसे सुप्रतीक नामक गजराज, जिसके गण्डस्थलसे मदकी धारा बहती रहती है, उसका परिमाण कैसा और कितना है, यह मैं नहीं बता सकता । वह नीचे-ऊपर तथा अगल-बगलमें सब ओर फैला हुआ है । वह अपरिमित है ॥ ३४½ ॥

तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्य एव हि ॥ ३५ ॥
असम्बद्धा महाराज तान् निगृह्णन्ति ते गजाः ।
पुष्करैः पद्मसंकाशैर्विकसद्भिर्महाप्रभैः ॥ ३६ ॥
शतधा पुनरेवाशु ते तान् मुञ्चन्ति नित्यशः ।
श्वसद्भिर्मुच्यमानास्तु दिग्गजैरिह मारुताः ॥ ३७ ॥
आगच्छन्ति महाराज ततस्तिष्ठन्ति वै प्रजाः ।

वहाँ सब दिशाओंसे खुली हुई हवा आती है । उसे वे चारों दिग्गज ग्रहण करके रोक रखते हैं । फिर वे विकसित कमल-सदृश परम कान्तिमान् शुण्डदण्डके अग्रभागसे उस हवाको सैकड़ों भागोंमें करके तुरंत ही सब ओर छोड़ते हैं, यह उनका नित्यका काम है । महाराज ! साँस लेते हुए उन दिग्गजोंके मुखसे मुक्त होकर जो वायु यहाँ आती है, उसीसे सारी प्रजा जीवन धारण करती है ॥ ३५—३७½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

परो वै विस्तरोऽत्यर्थं त्वया संजय कीर्तितः ॥ ३८ ॥
दर्शितं द्वीपसंस्थानमुत्तरं ब्रूहि संजय ।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमने द्वीपोंकी स्थितिके विषयमें तो बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया है । अब जो अन्तिम विषय—सूर्य, चन्द्रमा तथा राहुका प्रमाण बताना शेष रह गया है, उसका वर्णन करो ॥ ३८½ ॥

संजय उवाच

उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहं वै शृणु तत्त्वतः ॥ ३९ ॥
स्वर्भानोः कौरवश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः ।
परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः ॥ ४० ॥

संजय बोले—महाराज ! मैंने द्वीपोंका वर्णन तो कर दिया । अब ग्रहोंका यथार्थ वर्णन सुनिये । कौरवश्रेष्ठ ! राहुकी जितनी बड़ी लंबाई-चौड़ाई सुननेमें आती है, वह आपको बताता हूँ । महाराज ! सुना है कि राहु ग्रह मण्डलाकार है ॥ ३९-४० ॥

योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशास्य वै ।
परिणाहेन षट्त्रिंशद् विपुलत्वेन चानघ ॥ ४१ ॥

निष्पाप नरेश ! राहु ग्रहका व्यासगत विस्तार बारह हजार योजन है और उसकी परिधिका विस्तार छत्तीस हजार योजन है ॥ ४१ ॥

षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा ।
चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ॥ ४२ ॥

पौराणिक विद्वान् उसकी विपुलता ( मोटाई ) छः हजार योजनकी बताते हैं । राजन् ! चन्द्रमाका व्यास ग्यारह हजार योजन है ॥ ४२ ॥

विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत् तु मण्डलम् ।
एकोनषष्टिविष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः ॥ ४३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उनकी परिधि या मण्डलका विस्तार तैंतीस हजार योजन बताया गया है और महामना शीतरश्मि चन्द्रमाका वैपुल्यगत विस्तार ( मोटाई ) उनसठ सौ योजन है ॥ ४३ ॥

सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चान्ये कुरुनन्दन ।
विष्कम्भेण ततो राजन् मण्डलं त्रिंशता समम् ॥ ४४ ॥
अष्टपञ्चाशतं राजन् विपुलत्वेन चानघ ।
श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः ॥ ४५ ॥

कुरुनन्दन ! सूर्यका व्यासगत विस्तार दस हजार योजन है और उनकी परिधि या मण्डलका विस्तार तीस हजार योजन है तथा उनकी विपुलता अठावन सौ योजनकी है । अनघ ! इस प्रकार शीघ्रगामी परम उदार भगवान् सूर्यके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

त्रिविध विस्तारका वर्णन सुना जाता है ॥ ४४-४५ ॥

**एतत् प्रमाणमर्कस्य निर्दिष्टमिह भारत ।**
**स राहुश्छादयत्येतौ यथाकालं महत्तया ॥ ४६ ॥**
**चन्द्रादित्यौ महाराज संक्षेपोऽयमुदाहृतः ।**
**इत्येतत् ते महाराज पृच्छतः शास्त्रचक्षुषा ॥ ४७ ॥**
**सर्वमुक्तं यथातत्त्वं तस्माच्छममवाप्नुहि ।**

भारत ! यहाँ सूर्यका प्रमाण बताया गया, इन दोनोंसे अधिक विस्तार रखनेके कारण राहु यथासमय इन सूर्य और चन्द्रमाको आच्छादित कर लेता है । महाराज ! आपके प्रश्नके अनुसार शास्त्रदृष्टिसे ग्रहोंके विषयमें संक्षेपसे बताया गया। ये सारी बातें मैंने आपके सामने यथार्थरूपसे उपस्थित की हैं। अतः आप शान्ति धारण कीजिये ॥ ४६-४७½ ॥

**यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥ ४८ ॥**
**तस्मादाश्वस कौरव्य पुत्रं दुर्योधनं प्रति ।**

इस जगत्का स्वरूप कैसा है और इसका निर्माण किस प्रकार हुआ है, ये सब बातें मैंने शास्त्रोक्त रीतिसे बतायी हैं; अतः कुरुनन्दन ! आप अपने पुत्र दुर्योधनकी ओरसे निश्चिन्त रहिये ॥ ४८½ ॥

**शृण्वेदं भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोनुगम् ॥ ४९ ॥**
**श्रीमान् भवति राजन्यः सिद्धार्थः साधुसम्मतः ।**
**आयुर्बलं च कीर्तिश्च तस्य तेजश्च वर्धते ॥ ५० ॥**

भरतश्रेष्ठ ! जो राजा इस भूमिपर्वको मनोयोगपूर्वक सुनता है, वह श्रीसम्पन्न, सफलमनोरथ तथा श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा सम्मानित होता है और उसके बल, आयु, कीर्ति तथा तेजकी वृद्धि होती है ॥ ४९—५० ॥

**यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः ।**
**प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥ ५१ ॥**

भूपाल ! जो मनुष्य दृढ़तापूर्वक संयम एवं व्रतका पालन करते हुए प्रत्येक पर्वके दिन इस प्रसङ्गको सुनता है, उसके पितर और पितामह पूर्ण तृप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

**इदं तु भारतं वर्षं यत्र वर्तामहे वयम् ।**
**पूर्वैः प्रवर्तितं पुण्यं तत् सर्वं श्रुतवानसि ॥ ५२ ॥**

राजन् ! जिसमें हमलोग निवास करते हैं और जहाँ हमारे पूर्वजोंने पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान किया है, यह वही भारतवर्ष है । आपने इसका पूरा-पूरा वर्णन सुन लिया है ॥५२॥

**इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भूमिपर्वमें उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णनविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

## ( श्रीमद्भगवद्गीतापर्व )

# त्रयोदशोऽध्यायः

### संजयका युद्धभूमिसे लौटकर धृतराष्ट्रको भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनाना

*वैशम्पायन उवाच*

**अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्य भारत ।**
**प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १ ॥**
**ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः ।**
**आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ॥ २ ॥**

**वैशम्पायनजी कहते हैं**—भरतनन्दन ! तदनन्तर एक दिनकी बात है कि भूत, वर्तमान और भविष्यके ज्ञाता एवं सब घटनाओंको प्रत्यक्ष देखनेवाले गवल्गणपुत्र विद्वान् संजयने युद्धभूमिसे लौटकर सहसा चिन्तामग्न धृतराष्ट्रके पास जा अत्यन्त दुखी होकर भरतवंशियोंके पितामह भीष्मके युद्धभूमिमें मारे जानेका समाचार बताया ॥ १-२ ॥

*संजय उवाच*

**संजयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ ।**
**हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥ ३ ॥**

**संजय बोले**—महाराज ! भरतश्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है। मैं संजय आपकी सेवामें उपस्थित हूँ । भरतवंशियोंके पितामह और महाराज शान्तनुके पुत्र भीष्मजी आज युद्धमें मारे गये ॥ ३ ॥

**ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।**
**शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४ ॥**

जो समस्त योद्धाओंके ध्वजस्वरूप और सम्पूर्ण धनुर्धरोंके आश्रय थे, वे ही कुरुकुलपितामह भीष्म आज बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ ४ ॥

**यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाकरोत् ।**
**स शेते निहतो राजन् संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ५ ॥**

राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधनने जिनके बाहुबलका भरोसा करके जूएका खेल किया था, वे भीष्म शिखण्डीके हाथों मारे जाकर रणभूमिमें शयन करते हैं ॥ ५ ॥

**यः सर्वान् पृथिवीपालान् समवेतान् महामृधे ।**
**जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६ ॥**
**जामदग्न्यं रणे रामं योऽयुध्यदसम्भ्रमः ।**
**न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ॥ ७ ॥**

जिन महारथी वीर भीष्मने काशिराजकी नगरीमें एकत्र हुए समस्त भूपालोंको अकेला ही रथपर बैठकर महान् युद्धमें पराजित कर दिया था, जिन्होंने रणभूमिमें जमदग्निनन्दन परशुरामजीके साथ निर्भय होकर युद्ध किया था और जिन्हें

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

परशुरामजी भी मार न सके, वे ही भीष्म आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये ॥ ६-७ ॥

**महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।**
**समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ॥ ८ ॥**

जो शौर्यमें देवराज इन्द्रके समान, स्थिरतामें हिमालयके समान, गम्भीरतामें समुद्रके समान और सहनशीलतामें पृथ्वीके समान थे ॥ ८ ॥

**शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः ।**
**नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः ॥ ९ ॥**

जो मनुष्योंमें सिंह थे, बाण ही जिनकी दाढ़ें थीं, धनुष जिनका फैला हुआ मुख था, तलवार ही जिनकी जिह्वा थी और इसीलिये जिनके पास पहुँचना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था, वे ही आपके पिता भीष्म आज पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीके द्वारा मार गिराये गये ॥ ९ ॥

**पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।**
**प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥ १० ॥**
**परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।**
**जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ११ ॥**

जैसे गौओंका झुंड सिंहको देखते ही भयसे व्याकुल हो उठता है, उसी प्रकार जिन्हें युद्धमें हथियार उठाये देख पाण्डवोंकी विशाल वाहिनी भयसे उद्विग्न होकर थरथर काँपने लगती थी, वे ही शत्रुसैन्यसंहारक भीष्म दस दिनोंतक आपकी सेनाका संरक्षण करके अत्यन्त दुष्कर पराक्रम प्रकट करते हुए अन्तमें सूर्यकी भाँति अस्ताचलको चले गये ॥ १०-११ ॥

**यः स शक्र इवाक्षोभ्यो वर्षन् बाणान् सहस्रशः ।**
**जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १२ ॥**
**स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।**
**तव दुर्मन्त्रिते राजन् यथा नार्हः स भारत ॥ १३ ॥**

जिन्होंने इन्द्रकी भाँति क्षोभरहित होकर हजारों बाणोंकी वर्षा करते हुए दस दिनोंमें शत्रुपक्षके दस करोड़ योद्धाओंका संहार कर डाला, वे ही आज आँधीके उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति मारे जाकर युद्धभूमिमें सो रहे हैं । भरतवंशी नरेश ! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका फल है; नहीं तो भीष्मजी इस दुर्दशाके योग्य नहीं थे ॥१२-१३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि भीष्ममृत्युश्रवणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें भीष्ममृत्युश्रवणविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

## चतुर्दशोऽध्यायः

### धृतराष्ट्रका विलाप करते हुए भीष्मजीके मारे जानेकी घटनाको विस्तारपूर्वक जाननेके लिये संजयसे प्रश्न करना

धृतराष्ट्र उवाच

**कथं कुरूणामृषभो हतो भीष्मः शिखण्डिना ।**
**कथं रथात् स न्यपतत् पिता मे वासवोपमः ॥ १ ॥**

**धृतराष्ट्र बोले**—संजय ! कुरुकुलके श्रेष्ठतम पुरुष मेरे पितृतुल्य भीष्म शिखण्डीके हाथसे कैसे मारे गये ? वे इन्द्रके समान पराक्रमी थे, वे रथसे कैसे गिरे ? ॥ १ ॥

**कथमासंश्च मे योधा हीना भीष्मेण संजय ।**
**बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ २ ॥**

संजय ! जिन्होंने अपने पिताके संतोषके लिये आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया और जो देवताओंके समान बलवान् थे, उन्हीं भीष्मसे रहित होकर आज हमारे सैनिकोंकी कैसी अवस्था हुई है ? यह बताओ ॥ २ ॥

**तस्मिन् हते महाप्राज्ञे महेष्वासे महाबले ।**
**महासत्त्वे नरव्याघ्रे किमु आसीन्मनस्तव ॥ ३ ॥**

महाज्ञानी, महाधनुर्धर, महाबली और महान् धैर्यशाली नरश्रेष्ठ भीष्मजीके मारे जानेपर तुम्हारे मनकी कैसी अवस्था हुई ?॥

**आर्तिं परामाविशतीं मनः शंससि मे हतम् ।**
**कुरूणामृषभं वीरमकम्प्यं पुरुषर्षभम् ॥ ४ ॥**

संजय ! तुम कहते हो, अकम्प्य वीर पुरुषसिंह, कुरुकुलशिरोमणि भीष्मजी मारे गये—इसे सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ ४ ॥

**के तं यान्तमनुप्राप्ताः के वास्यासन् पुरोगमाः ।**
**केऽतिष्ठन् के न्यवर्तन्त केऽन्ववर्तन्त संजय ॥ ५ ॥**

संजय ! जिस समय वे युद्धके लिये अग्रसर हुए थे, उस समय इनके पीछे कौन गये थे अथवा उनके आगे कौन-कौन वीर थे ? कौन उनके साथ युद्धमें डटे रहे ? कौन युद्ध छोड़कर भाग गये ? और किन लोगोंने सर्वथा उनका अनुसरण किया था ? ॥ ५ ॥

**के शूरा रथशार्दूलमद्भुतं क्षत्रियर्षभम् ।**
**तथानीकं गाहमानं सहसा पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ६ ॥**

किन शूरवीरोंने शत्रुसेनामें प्रवेश करते समय रथियोंमें सिंहके समान अद्भुत पराक्रमी, क्षत्रियशिरोमणि भीष्मजीके पास सहसा पहुँचकर सदा उनके पृष्ठभागका अनुसरण किया ?॥

**यस्तमोऽर्क इवापोहन् परसैन्यममित्रहा ।**
**सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत् ॥ ७ ॥**

जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार शत्रुसूदन भीष्म शत्रुसेनाका नाश करते थे । जिनका तेज सहस्र किरणोंवाले सूर्यके समान था, जिन्होंने शत्रुओंको भयभीत कर रक्खा था ॥ ७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अकरोद् दुष्करं कर्म रणे पाण्डुसुतेषु यः।
ग्रसमानमनीकानि य एनं पर्यवारयन् ॥ ८ ॥
कृतिनं तं दुराधर्षं संजयास्य त्वमन्तिके।
कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ९ ॥

जिन्होंने युद्धमें पाण्डवोंपर दुष्कर पराक्रम किया था तथा जो उनकी सेनाका निरन्तर संहार कर रहे थे, उन अस्त्र-विद्याके ज्ञाता दुर्जय वीर भीष्मजीको जिन्होंने रोका है,' वे कौन हैं ? संजय ! तुम तो उनके पास ही थे, पाण्डवोंने युद्धमें शान्तनुनन्दन भीष्मको किस प्रकार आगे बढ़नेसे रोका ?॥

निकृन्तन्तमनीकानि शरदंष्ट्रं मनस्विनम्।
चापव्यात्ताननं घोरमसिजिह्वं दुरासदम् ॥ १० ॥
अनर्हं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम्।
पातयामास कौन्तेयः कथं तमजितं युधि ॥ ११ ॥

जो शत्रुपक्षकी सेनाओंका निरन्तर उच्छेद करते थे, बाण ही जिनकी दाढ़ें थीं, धनुष ही खुला हुआ मुख था, तलवार ही जिनकी जिह्वा थी, उन भयंकर एवं दुर्धर्ष पुरुष-सिंह भीष्मको कुन्तीनन्दन अर्जुनने युद्धमें कैसे मार गिराया ? मनस्वी भीष्म इस प्रकार पराजयके योग्य नहीं थे। वे लज्जाशील और पराजयशून्य थे ॥ १०-११ ॥

उग्रधन्वानमुग्रेषुं वर्तमानं रथोत्तमे।
परेषामुत्तमाङ्गानि प्रचिन्वन्तमथेषुभिः ॥ १२ ॥

जो उत्तम रथपर बैठकर भयंकर धनुष और भयानक बाण लिये शत्रुओंके मस्तकोंको सायकोंद्वारा काट-काटकर उनके ढेर लगा रहे थे ॥ १२ ॥

पाण्डवानां महत् सैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे।
कालाग्निमिव दुर्धर्षं समचेष्टत नित्यशः ॥ १३ ॥

पाण्डवोंकी विशाल सेना दुर्धर्ष कालाग्निके समान जिन्हें युद्धके लिये उद्यत देख सदा काँपने लगती थी ॥ १३ ॥

परिकृष्य स सेनां तु दशरात्रमरिन्दमः।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १४ ॥

वे ही शत्रुसूदन भीष्म दस दिनोंतक शत्रुओंकी सेनाका संहार करते हुए अत्यन्त दुष्कर पराक्रम दिखाकर सूर्यकी भाँति अस्त हो गये ॥ १४ ॥

यः स शक्र इवाक्षय्यं वर्षं शरमयं क्षिपन्।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १५ ॥
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः।
मम दुर्मन्त्रितेनाजौ यथा नार्हति भारत ॥ १६ ॥

जिन्होंने इन्द्रके समान युद्धमें दस दिनोंतक अक्षय बाणों-की वर्षा करके दस करोड़ विपक्षी सैनाओंका संहार कर डाला, वे ही भरतवंशी वीर भीष्म मेरी कुमन्त्रणाके कारण आँधीसे उखाड़े गये वृक्षकी भाँति युद्धमें मारे जाकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं, वे कदापि इसके योग्य नहीं थे ॥ १५-१६ ॥

कथं शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी।
प्रहर्तुमशकत् तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ १७ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्म तो बड़े भयंकर पराक्रमी थे, उन्हें सामने देखकर पाण्डवसेना उनपर प्रहार कैसे कर सकी ? ॥

कथं भीष्मेण संग्रामं प्राकुर्वन् पाण्डुनन्दनाः।
कथं च नाजयद् भीष्मो द्रोणे जीवति संजय ॥ १८ ॥

संजय ! पाण्डवोंने भीष्मके साथ संग्राम कैसे किया ? द्रोणाचार्यके जीते-जी भीष्म विजयी कैसे नहीं हो सके ? ॥

कृपे संनिहिते तत्र भरद्वाजात्मजे तथा।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥ १९ ॥

उस युद्धमें कृपाचार्य तथा भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य दोनों ही उनके निकट थे, तो भी योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीष्म कैसे मारे गये ? ॥ १९ ॥

कथं चातिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना।
भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥ २० ॥

भीष्म तो युद्धमें देवताओंके लिये भी दुर्जय एवं अति-रथी थे, फिर पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीके हाथसे वे किस प्रकार मारे गये ? ॥ २० ॥

यः स्पर्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम्।
अजितं जामदग्न्येन शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ २१ ॥
तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोदितम्।
संजयाचक्ष्व मे वीरं येन शर्म न विद्महे ॥ २२ ॥

जो रणभूमिमें महाबली जमदग्निनन्दन परशुरामसे भी टक्कर लेनेकी सदा इच्छा रखते थे, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान था और परशुरामजी भी जिन्हें पराजित न कर सके थे; संजय ! महारथियोंके कुलमें प्रकट हुए वे महावीर भीष्म समरभूमिमें किस प्रकार मारे गये, यह मुझे बताओ; क्योंकि मुझे शान्ति नहीं मिल रही है ॥ २१-२२ ॥

मामकाः के महेष्वासा नाजहुः संजयाच्युतम्।
दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥ २३ ॥

संजय ! कभी युद्धसे पीछे न हटनेवाले भीष्मजीका मेरे पक्षके किन महाधनुर्धरोंने साथ नहीं छोड़ा ? दुर्योधनकी आज्ञा पाकर किन-किन वीरोंने उन्हें सब ओरसे घेर रक्खा था ?

यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः।
कच्चित् ते कुरवः सर्वे नाजहुः संजयाच्युतम् ॥ २४ ॥

संजय ! जब शिखण्डी आदि समस्त पाण्डव वीरोंने भीष्मपर आक्रमण किया, उस समय समस्त कौरवोंने कहीं अच्युत भीष्मका साथ छोड़ तो नहीं दिया था ? ॥ २४ ॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ २५ ॥

अवश्य ही मेरा यह हृदय लोहेके समान सुदृढ़ है, तभी तो पुरुषसिंह भीष्मको मारा गया सुनकर विदीर्ण नहीं होता है ! ॥ २५ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

**यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।**
**अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ २६ ॥**

जिन दुर्जय वीर भरतभूषण भीष्ममें सत्य, मेधा और नीति—ये तीन अप्रमेय शक्तियाँ थीं, वे युद्धमें कैसे मारे गये ? ॥

**मौर्वीघोषस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान् ।**
**धनुर्ह्लादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥ २७ ॥**

वे युद्धमें महान् मेघके समान ऊँचे उठे हुए थे। धनुषकी टंकार ही उनकी गर्जना थी, बाण ही उनके लिये वर्षाकी बूँदें थीं और धनुषका महान् शब्द ही बिजलीकी गड़गड़ाहट-का भयंकर शब्द था ॥ २७ ॥

**योऽभ्यवर्षत कौन्तेयान् सपाञ्चालान् ससृंजयान् ।**
**निघ्नन् पररथान् वीरो दानवानिव वज्रभृत् ॥ २८ ॥**

वीरवर भीष्मने शत्रुपक्षके रथियों—कुन्तीकुमारों, पाञ्चालों तथा सृंजयोंको मारते हुए उनके ऊपर उसी प्रकार बाणोंकी बौछार की, जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंपर बाण-वर्षा करते हैं ॥ २८ ॥

**इष्वस्त्रसागरं घोरं बाणग्राहं दुरासदम् ।**
**कार्मुकोर्मिणमक्षय्यमद्वीपं चलमप्लवम् ॥ २९ ॥**

उनका धनुष-बाण आदि अस्त्रसमूह भयंकर एवं दुर्गम समुद्रके समान था, बाण ही उसमें ग्राह थे, धनुष लहरोंके समान जान पड़ता था, वह अक्षय, द्वीपरहित, चञ्चल तथा नौका आदि तैरनेके साधनोंसे शून्य था ॥ २९ ॥

**गदासिमकरावासं हयावर्तं गजाकुलम् ।**
**पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ३० ॥**

गदा और खड्ग आदि ही उसमें मगरके समान थे। वह अश्वरूपी भँवरोंसे भयावह प्रतीत होता था, उसमें हाथी जलहस्तीके समान प्रतीत होते थे, पैदल सेना उसमें भरे हुए मत्स्योंके समान जान पड़ती थी तथा शंख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि ही उस समुद्रकी गर्जना थी ॥३०॥

**हयान् गजपदातींश्च रथांश्च तरसा बहून् ।**
**निमज्जयन्तं समरे परवीरापहारिणम् ॥ ३१ ॥**

भीष्मजी उस समुद्रमें शत्रुपक्षके हाथियों, घोड़ों, पैदलों तथा बहुसंख्यक रथोंको वेगपूर्वक डुबो रहे थे। वे समरभूमिमें शत्रुवीरोंके प्राणोंका अपहरण करनेवाले थे ॥ ३१ ॥

**विदह्यमानं कोपेन तेजसा च परंतपम् ।**
**वेलेव मकरावासं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥**

अपने क्रोध और तेजसे दग्ध एवं प्रज्वलित-से होते हुए शत्रुसंतापी भीष्मको जैसे तट समुद्रको रोक देता है उसी प्रकार किन वीरोंने आगे बढ़नेसे रोका था ॥ ३२ ॥

**भीष्मो यदकरोत् कर्म समरे संजयारिहा ।**
**दुर्योधनहितार्थाय के तस्यास्य पुरोऽभवन् ॥ ३३ ॥**
**केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं भीष्मस्यामिततेजसः ।**
**पृष्ठतः के परान् वीरानपासेधन् यतव्रताः ॥ ३४ ॥**

शत्रुहन्ता भीष्मने दुर्योधनके हितके लिये समरभूमिमें जो पराक्रम किया था, वह अनुपम है। उस समय कौन-कौनसे योद्धा उनके आगे थे ? किन-किन वीरोंने अमित-तेजस्वी भीष्मके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा की थी ? किन लोगोंने दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हुए उनके पीछेकी ओर रहकर शत्रुपक्षके वीरोंको आगे बढ़नेसे रोका था ? ॥

**के पुरस्तादवर्तन्त रक्षन्तो भीष्ममन्तिके ।**
**केऽरक्षन्नुत्तरं चक्रं वीरा वीरस्य युध्यतः ॥ ३५ ॥**

कौन-कौनसे वीर निकटसे भीष्मकी रक्षा करते हुए उनके आगे खड़े थे ? और किन वीरोंने युद्धमें लगे हुए शूरशिरोमणि भीष्मके बायें पहियेकी रक्षा की थी ? ॥ ३५ ॥

**वामे चक्रे वर्तमानाः केऽघ्नन् संजय सृंजयान् ।**
**अग्रतोऽग्र्यमनीकेषु केऽभ्यरक्षन् दुरासदम् ॥ ३६ ॥**

संजय ! उनके बायें चक्रकी रक्षामें तत्पर होकर किन-किन योद्धाओंने सृंजयवंशियोंका विनाश किया था ? तथा किन्होंने आगे रहकर सेनाके अग्रणी दुर्जय वीर भीष्मकी सब ओरसे रक्षा की थी ? ॥ ३६ ॥

**पार्श्वतः केऽभ्यरक्षन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम् ।**
**समूहे के परान् वीरान् प्रत्ययुध्यन्त संजय ॥ ३७ ॥**

संजय ! किन लोगोंने दुर्गम संग्राममें आगे बढ़ते हुए उनके पार्श्वभागका संरक्षण किया था ? और किन्होंने उस सैन्यसमूहमें आगे रहकर वीरतापूर्वक शत्रुयोद्धाओंका डटकर सामना किया था ? ॥ ३७ ॥

**रक्ष्यमाणः कथं वीरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।**
**दुर्जयानामनीकानि नाजयंस्तरसा युधि ॥ ३८ ॥**

जब मेरे पक्षके बहुत-से वीर उनकी रक्षा करते थे और वे भी उन वीरोंकी रक्षामें दत्तचित्त थे, तब भी उन सब लोगोंने मिलकर शत्रुपक्षकी दुर्जय सेनाओंको कैसे वेगपूर्वक परास्त नहीं कर दिया ? ॥ ३८ ॥

**सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठिप्रजापतेः ।**
**कथं प्रहर्तुमपि ते शेकुः संजय पाण्डवाः ॥ ३९ ॥**

संजय ! भीष्मजी सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीके समान अजेय थे; फिर पाण्डव उनके ऊपर कैसे प्रहार कर सके ? ॥ ३९ ॥

**यस्मिन् द्वीपे समाश्वस्य युध्यन्ते कुरवः परैः ।**
**तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि संजय ॥ ४० ॥**

संजय ! जिन द्वीपस्वरूप भीष्मजीके आश्रयमें निर्भय एवं निश्चिन्त होकर समस्त कौरव शत्रुओंके साथ युद्ध करते थे, उन्हीं नरश्रेष्ठ भीष्मको तुम मारा गया बता रहे हो, यह कितने दुःखकी बात है ? ॥ ४० ॥

**यस्य वीर्यं समाश्रित्य मम पुत्रो बृहद्बलः ।**
**न पाण्डवानगणयत् कथं स निहतः परैः ॥ ४१ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जिनके पराक्रमका आश्रय लेकर विशाल सेनाओंसे सम्पन्न मेरा पुत्र पाण्डवोंको कुछ नहीं गिनता था, वे शत्रुओं-द्वारा किस प्रकार मारे गये ? ॥ ४१ ॥

**यः पुरा विबुधैः सर्वैः सहाये युद्धदुर्मदः।**
**काङ्क्षितो दानवान् घ्नद्भिः पिता मम महाव्रतः ॥ ४२ ॥**
**यस्मिञ्जाते महावीर्ये शान्तनुर्लोकविश्रुतः।**
**शोकं दैन्यं च दुःखं च प्राजहात् पुत्रलक्ष्मणि ॥ ४३ ॥**
**प्रोक्तं परायणं प्राज्ञं स्वधर्मनिरतं शुचिम्।**
**वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं कथं शंससि मे हतम् ॥ ४४ ॥**

पहलेकी बात है, दानवोंका संहार करनेवाले सम्पूर्ण देवताओंने जिन मेरे महान् व्रतधारी पिता रणदुर्मद भीष्मजी-को अपना सहायक बनानेकी अभिलाषा की थी, जिन महा-पराक्रमी पुत्ररत्नके जन्म लेनेपर लोकविख्यात महाराज शान्तनुने शोक, दीनता और दुःखका सदाके लिये त्याग कर दिया था, जो सबके आश्रयदाता, बुद्धिमान्, स्वधर्मपरायण, पवित्र और वेदवेदाङ्गोंके तत्त्वज्ञ बताये गये हैं, उन्हीं भीष्मको तुम मारा गया कैसे बता रहे हो ? ॥ ४२–४४ ॥

**सर्वास्त्रविनयोपेतं शान्तं दान्तं मनस्विनम्।**
**हतं शान्तनवं श्रुत्वा मन्ये शेषं हतं बलम् ॥ ४५ ॥**

जो सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षासे सम्पन्न, शान्त, जिते-न्द्रिय और मनस्वी थे, उन शान्तनुनन्दन भीष्मको मारा गया सुनकर मुझे यह विश्वास हो गया कि अब हमारी सारी सेना मार दी गयी ॥ ४५ ॥

**धर्माद्धर्मो बलवान् सम्प्राप्त इति मे मतिः।**
**यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ ४६ ॥**

आज मुझे निश्चितरूपसे ज्ञात हुआ कि धर्मसे अधर्म ही बलवान् है; क्योंकि पाण्डव अपने वृद्ध गुरुजनकी हत्या करके राज्य लेना चाहते हैं ॥ ४६ ॥

**जामदग्न्यः पुरा रामः सर्वास्त्रविदनुत्तमः।**
**अम्बार्थमुद्यतः संख्ये भीष्मेण युधि निर्जितः ॥ ४७ ॥**
**तमिन्द्रसमकर्माणं ककुदं सर्वधन्विनाम्।**
**हतं शंससि मे भीष्मं किं नु दुःखमतः परम् ॥ ४८ ॥**

पूर्वकालमें अम्बाके लिये उद्यत होकर सम्पूर्ण अस्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ जमदग्निनन्दन परशुराम युद्ध करनेके लिये आये थे, परंतु भीष्मने उन्हें परास्त कर दिया, उन्हीं इन्द्रके समान पराक्रमी तथा सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ भीष्मको तुम मारा गया कह रहे हो, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ? ॥ ४७-४८ ॥

**असकृत् क्षत्रियव्राताः संख्ये येन विनिर्जिताः।**
**जामदग्न्येन वीरेण परवीरनिघातिना ॥ ४९ ॥**
**न हतो यो महाबुद्धिः स हतोऽद्य शिखण्डिना।**

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले जिन वीरवर परशुरामजी-ने अनेक बार समस्त क्षत्रियोंको युद्धमें परास्त किया था, उनसे भी जो मारे न जा सके, वे ही परम बुद्धिमान् भीष्म आज शिखण्डीके हाथसे मार दिये गये ! ॥ ४९½ ॥

**तस्मान्नूनं महावीर्याद् भार्गवाद् युद्धदुर्मदात् ॥ ५० ॥**
**तेजोवीर्यबलैर्भूयान् शिखण्डी द्रुपदात्मजः।**
**यः शूरं कृतिनं युद्धे सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ५१ ॥**
**परमास्त्रविदं वीरं जघान भरतर्षभम्।**

इससे जान पड़ता है कि महापराक्रमी युद्धदुर्मद परशुराम-जीकी अपेक्षा भी तेज, पराक्रम और बलमें द्रुपदकुमार शिखण्डी निश्चय ही बहुत बढ़ा-चढ़ा है, जिसने सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण, परमास्त्रवेत्ता और शूरवीर विद्वान् भरतकुलभूषण भीष्मजीका वध कर डाला है ॥ ५०-५१½ ॥

**के वीरास्तममित्रघ्नमन्वयुः शस्त्रसंसदि ॥ ५२ ॥**
**शंस मे तद् तथा चासीद् युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः।**
**योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य संजय ॥ ५३ ॥**

उस समय युद्धमें शत्रुहन्ता भीष्मजीके साथ कौन-कौनसे वीर थे ? संजय ! पाण्डवोंके साथ भीष्मका किस प्रकार युद्ध हुआ ? यह मुझे बताओ । उन वीर सेनापतिके मारे जानेपर मेरे पुत्रकी सेना विधवा स्त्रीके समान असहाय हो गयी है ॥

**अगोपमिव चोद्भ्रान्तं गोकुलं तद् बलं मम।**
**पौरुषं सर्वलोकस्य परं यस्मिन् महाहवे ॥ ५४ ॥**
**परासक्ते च वस्तस्मिन् कथमासीन्मनस्तदा।**

जैसे ग्वालेके बिना गौओंका समुदाय इधर-उधर भटकता-फिरता है, उसी प्रकार अब मेरी सेना उद्भ्रान्त हो रही होगी। महान् युद्धके समय जिनमें सम्पूर्ण जगत्‌का परम पुरुषार्थ प्रकट दिखायी देता था, वे ही भीष्म जब परलोकके पथिक हो गये ? उस समय तुम लोगोंके मनकी अवस्था कैसी हुई थी ॥

**जीवितेऽप्यद्य सामर्थ्यं किमिवास्मासु संजय ॥ ५५ ॥**
**घातयित्वा महावीर्यं पितरं लोकधार्मिकम्।**
**अगाधे सलिले मग्नां नावं दृष्ट्वेव पारगाः ॥ ५६ ॥**

संजय ! आज जीवित रहनेपर भी हमलोगोंमें क्या सामर्थ्य है ? जगत्‌के विख्यात धर्मात्मा महापराक्रमी पिता भीष्मको युद्धमें मरवाकर हम उसी प्रकार शोकमें डूब गये हैं, जैसे पार जानेकी इच्छावाले पथिक नावको अगाध जलमें डूबी हुई देखकर दुखी होते हैं ॥ ५५-५६ ॥

**भीष्मे हते भृशं दुःखान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।**
**अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम संजय ॥ ५७ ॥**
**यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते।**

मैं समझता हूँ कि भीष्मजीके मारे जानेपर मेरे बेटे दुःखके कारण अत्यन्त शोकमग्न हो गये होंगे। संजय ! मेरा हृदय निश्चय ही लोहेका बना हुआ है, जो पुरुषसिंह भीष्मको मारा गया सुनकर भी विदीर्ण नहीं हो रहा है ॥५७½॥

**यस्मिन्नस्त्राणि मेधा च नीतिश्च पुरुषर्षभे ॥ ५८ ॥**



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।

जिन पुरुषरत्न तथा दुर्धर्ष वीरशिरोमणिमें अस्त्र, बुद्धि और नीति तीन अप्रमेय शक्तियाँ थीं, वे युद्धमें कैसे मारे गये ?॥ ५९ ॥

न चास्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च ॥ ५९ ॥
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद् विमुच्यते ।

जान पड़ता है कि अस्त्रसे, शौर्यसे, तपस्यासे, बुद्धिसे, धैर्यसे तथा त्यागके द्वारा भी कोई मृत्युसे छूट नहीं सकता है ॥

कालो नूनं महावीर्यः सर्वलोकदुरत्ययः ॥ ६० ॥
यत्र शान्तनवं भीष्मं हतं शंससि संजय ।

संजय ! निश्चय ही कालकी शक्ति बहुत बड़ी है, सम्पूर्ण जगत्‌के लिये वह दुर्लङ्घ्य है, जिसके अधीन होनेके कारण तुम शान्तनुनन्दन भीष्मको मारा गया बता रहे हो ॥ ६०½ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तो महद् दुःखमचिन्तयम् ॥ ६१ ॥
आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छान्तनुनन्दनात् ।

मुझे शान्तनुनन्दन भीष्मसे अपने पक्षके परित्राणकी बड़ी आशा थी । इस समय अपने पुत्रके शोकसे संतप्त होकर मैं महान् दुःखसे चिन्तित हो उठा हूँ ॥ ६१½ ॥

यदाऽऽदित्यमिवापश्यत् पतितं भुवि संजय ॥ ६२ ॥
दुर्योधनः शान्तनवं किं तदा प्रत्यपद्यत ।

संजय ! जब दुर्योधनने शान्तनुनन्दन भीष्मको अस्ताचलगामी सूर्यकी भाँति पृथ्वीपर पड़ा देखा, तब उसने क्या सोचा ?॥

नाहं स्वेषां परेषां वा बुद्ध्या संजय चिन्तयन् ॥ ६३ ॥
शेषं किंचित् प्रपश्यामि प्रत्यनीके महीक्षिताम् ।

संजय ! जब मैं अपनी बुद्धिसे विचार करके देखता हूँ तो अपने अथवा शत्रुपक्षके राजाओंमेंसे किसीका भी जीवन इस युद्धमें शेष रहता नहीं दिखायी देता है ॥ ६३½ ॥

दारुणः क्षत्रधर्मोऽयमृषिभिः सम्प्रदर्शितः ॥ ६४ ॥
यत्र शान्तनवं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ।

ऋषियोंने क्षत्रियोंका यह धर्म अत्यन्त कठोर निश्चित किया है, जिसमें रहते हुए पाण्डव शान्तनुनन्दन भीष्मको मारकर राज्य लेना चाहते हैं ॥ ६४½ ॥

वयं वा राज्यमिच्छामो घातयित्वा महाव्रतम् ॥ ६५ ॥
क्षत्रधर्मे स्थिताः पार्था नापराध्यन्ति पुत्रकाः ।
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु संजय ॥ ६६ ॥
पराक्रमः परं शक्त्या तत् तु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

अथवा हम भी तो उन महारथी भीष्मको मरवाकर ही राज्य लेना चाहते हैं । क्षत्रियधर्ममें स्थित हुए मेरे बच्चे कुन्तीकुमारोंका कोई अपराध नहीं है । संजय ! दुस्तर आपत्तिके समय श्रेष्ठ पुरुषको यही करना चाहिये, जो भीष्मजीने किया है, कि वह शक्तिके अनुसार अधिकसे अधिक पराक्रम करे । यह गुण भीष्मजीमें पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित था ॥ ६५-६६½ ॥

अनीकानि विनिघ्नन्तं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ६७ ॥
कथं शान्तनवं तातं पाण्डुपुत्रा न्यवारयन् ।
कथं युक्तान्यनीकानि कथं युद्धं महात्मभिः ॥ ६८ ॥

भीष्मजी किसीसे पराजित न होनेवाले और लज्जाशील थे । विपक्षी सेनाओंका संहार करते हुए उन मेरे ताऊ भीष्मजीको पाण्डवोंने कैसे रोका ? उन महामनस्वी वीरोंने किस प्रकार सेनाएँ संगठित कीं और किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ६७-६८ ॥

कथं वा निहता भीष्मः पिता संजय मे परैः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ६९ ॥
दुःशासनश्च कितवो हते भीष्मे किमब्रुवन् ।

संजय ! शत्रुओंने मेरे आदरणीय पिता भीष्मका किस प्रकार वध किया ? दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन तथा सुबलपुत्र जुआरी शकुनिने भीष्मजीके मारे जानेपर क्या-क्या बातें कहीं ?॥

यच्छरीरैरुपास्तीर्णां नरवारणवाजिनाम् ॥ ७० ॥
शरशक्तिमहाखड्गतोमराक्षां महाभयाम् ।
प्राविशन् कितवा मन्दाः सभां युद्धदुरासदाम् ॥ ७१ ॥
प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः ।

संजय ! जहाँ मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके शरीर बिछे हुए थे, जहाँ बाण, शक्ति, महान् खड्ग और तोमररूपी पासे फेंके जाते थे, जो युद्धके कारण दुर्गम एवं महान् भय देनेवाली थी, उस रणक्षेत्ररूपी द्यूतसभामें किन-किन मन्दबुद्धि जुआरियोंने प्रवेश किया था ? जहाँ प्राणोंकी बाजी लगायी जाती थी, वह भयंकर जूएका खेल किन-किन नरश्रेष्ठ वीरोंने खेला था ? ॥ ७०-७१½ ॥

के जीयन्ते जितास्तत्र कृतलक्ष्या निपातिताः ॥ ७२ ॥
अन्ये भीष्माच्छान्तनवात् तन्ममाचक्ष्व संजय ।

संजय ! शान्तनुनन्दन भीष्मके सिवा, उस युद्धमें कौन-कौन-से हार रहे थे, किन-किन लोगोंकी पराजय हुई तथा कौन-कौन वीर बाणोंके लक्ष्य बनकर मार गिराये गये ? यह सब मुझे बताओ ॥ ७२½ ॥

न हि मे शान्तिरस्तीह श्रुत्वा देवव्रतं हतम् ॥ ७३ ॥
पितरं भीमकर्माणं भीष्ममाहवशोभिनम् ।
आर्तिं मे हृदये रूढां महतीं पुत्रहानिजाम् ॥ ७४ ॥
त्वं हि मे सर्पिषेवाग्निमुद्दीपयसि संजय ।

युद्धभूमिमें शोभा पानेवाले भयंकर पराक्रमी अपने ताऊ देवव्रत भीष्मको मारा गया सुनकर मेरे हृदयमें शान्ति नहीं रह गयी है । उनके मारे जानेसे मेरे पुत्रोंकी जो हानि होनेवाली है, उसके कारण मेरे मनमें भारी व्यथा जाग उठी है । संजय ! तुम अपने वचनरूपी घृतकी आहुति डालकर मेरी उस चिन्ता एवं व्यथारूपी अग्निको और भी उद्दीप्त कर रहे हो ॥ ७३-७४½ ॥

महान्तं भारमुद्यम्य विश्रुतं सार्वलौकिकम् ॥ ७५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं भीष्मं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
श्रोष्यामि तानि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ ७६ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जिन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌में विख्यात इस युद्धके महान् भारको अपनी भुजाओंपर उठा रक्खा था, उन्हीं भीष्मजीको मारा गया देख मेरे पुत्र भारी शोकमें पड़ गये होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं दुर्योधनके द्वारा प्रकट किये हुए उन दुःखोंको सुनूँगा ॥ ७५-७६ ॥

**तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यद् वृत्तं तत्र संजय।**
**यद् वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्याबुद्धिसम्भवम् ॥ ७७ ॥**
**अपनीतं सुनीतं यत् तन्ममाचक्ष्व संजय।**

इसलिये संजय! मुझसे वहाँका सारा वृत्तान्त कहो। मूर्ख दुर्योधनके अज्ञानके कारण उस युद्धमें अन्याय और न्यायकी जो-जो बातें संघटित हुई हों, उन सबका वर्णन करो ॥

**यत् कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता ॥ ७८ ॥**
**तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाप्यशेषतः।**

विजयकी इच्छा रखनेवाले अस्त्रवेत्ता भीष्मजीने उस युद्धमें अपनी तेजस्विताके अनुरूप जो-जो कार्य किया हो, वह सभी पूर्णरूपसे मुझे बताओ ॥ ७८½ ॥

**तथा तदभवद् युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥**
**क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाभवत् ॥ ८० ॥**

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका वह युद्ध जिस समय जिस क्रमसे और जिस रूपमें हुआ था, वह सब कहो ॥ ७९-८० ॥

**इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें धृतराष्ट्रके प्रश्नविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

# पञ्चदशोऽध्यायः

## संजयका युद्धके वृत्तान्तका वर्णन आरम्भ करना—दुर्योधनका दुःशासनको भीष्मकी रक्षाके लिये समुचित व्यवस्था करनेका आदेश

*संजय उवाच*

**त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथार्हसि।**
**न तु दुर्योधने दोषमिममासक्तुमर्हसि ॥ १ ॥**

**संजयने कहा**—महाराज! आपने जो ये बारंबार अनेक प्रश्न किये हैं, वे सर्वथा उचित और आपके योग्य ही हैं; परंतु यह सारा दोष आपको दुर्योधनके ही माथेपर नहीं मढ़ना चाहिये ॥ १ ॥

**य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः।**
**एनसा तेन नान्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥ २ ॥**

जो मनुष्य अपने दुष्कर्मोंके कारण अशुभ फल भोग रहा हो, उसे उस पापकी आशंका दूसरेपर नहीं करनी चाहिये ॥

**महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत्।**
**स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ ३ ॥**

महाराज! जो पुरुष मनुष्य-समाजमें सर्वथा निन्दनीय आचरण करता है, वह निन्दित कर्म करनेके कारण सब लोगोंके लिये मार डालनेयोग्य है ॥ ३ ॥

**निकारो निकृतिप्रज्ञैः पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया।**
**अनुभूतः सहामात्यैः क्षान्तश्च सुचिरं वने ॥ ४ ॥**

पाण्डव आपलोगोंद्वारा अपने प्रति किये गये अपमान एवं कपटपूर्ण बर्तावको अच्छी तरह जानते थे, तथापि उन्होंने केवल आपकी ओर देखकर—आपके द्वारा न्यायोचित बर्ताव होनेकी आशा रखकर दीर्घकालतक अपने मन्त्रियोंसहित वनमें रहकर क्लेश भोगा और सब कुछ सहन किया ॥ ४ ॥

**हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम्।**
**प्रत्यक्षं यन्मया दृष्टं दृष्टं योगबलेन च ॥ ५ ॥**
**शृणु तत् पृथिवीपाल मा च शोके मनः कृथाः।**
**दिष्टमेतत् पुरा नूनमिदमेव नराधिप ॥ ६ ॥**

भूपाल! मैंने हाथियों, घोड़ों तथा अमिततेजस्वी राजाओंके विषयमें जो कुछ अपनी आँखों देखा है और योगबलसे जिसका साक्षात्कार किया है, वह सब वृत्तान्त सुना रहा हूँ, सुनिये। अपने मनको शोकमें न डालिये। नरेश्वर! निश्चय ही दैवका यह सारा विधान मुझे पहलेसे ही प्रत्यक्ष हो चुका है ॥ ५-६ ॥

**नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते।**
**यस्य प्रसादाद् दिव्यं तत् प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७ ॥**
**दृष्टिश्चातीन्द्रिया राजन् दूराच्छ्रवणमेव च।**
**परचित्तस्य विज्ञानमतीतानागतस्य च ॥ ८ ॥**
**व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा।**
**अस्त्रैरसंगो युद्धेषु वरदानान्महात्मनः ॥ ९ ॥**
**शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम्।**
**भरतानामभूद् युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम् ॥ १० ॥**

राजन्! जिनके कृपाप्रसादसे मुझे परम उत्तम दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, इन्द्रियातीत विषयको भी प्रत्यक्ष देखनेवाली दृष्टि मिली है, दूरसे भी सब कुछ सुननेकी शक्ति, दूसरेके मनकी बातोंको समझ लेनेकी सामर्थ्य, भूत और भविष्यका ज्ञान, शास्त्रके विपरीत चलनेवाले मनुष्योंकी उत्पत्तिका ज्ञान, आकाशमें चलने-फिरनेकी उत्तम शक्ति तथा युद्धके समय अस्त्रोंसे अपने शरीरके अछूते रहनेका अद्भुत चमत्कार आदि बातें जिन महात्माके वरदानसे मेरे लिये सम्भव हुई हैं, उन्हीं आपके पिता पराशरनन्दन बुद्धिमान् व्यासजीको नमस्कार करके भरतवंशियोंके इस अत्यन्त अद्भुत, विचित्र एवं रोमाञ्चकारी युद्धका वर्णन आरम्भ करता हूँ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आप मुझसे यह सब कुछ जिस प्रकार हुआ था, वह विस्तारपूर्वक सुनें ॥ ७-१० ॥

नेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु च विधानतः।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥

महाराज ! जब समस्त सेनाएँ शास्त्रीय विधिके अनुसार व्यूह-रचनापूर्वक अपने-अपने स्थानपर युद्धके लिये तैयार हो गयीं, उस समय दुर्योधनने दुःशासनसे कहा ॥ ११ ॥

दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः।
अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥ १२ ॥

'दुःशासन ! तुम भीष्मजीकी रक्षा करनेवाले रथोंको शीघ्र तैयार कराओ। सम्पूर्ण सेनाओंको भी शीघ्र उनकी रक्षाके लिये तैयार हो जानेकी आज्ञा दो ॥ १२ ॥

अयं स मामभिप्राप्तो वर्षपूगाभिचिन्तितः।
पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः ॥ १३ ॥

'मैं वर्षोंसे जिसके लिये चिन्तित था, वह यह सेनासहित कौरव-पाण्डवोंका महान् संग्राम मेरे सामने उपस्थित हो गया है ॥ १३ ॥

नातः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात्।
हन्याद् गुप्तो ह्यसौ पार्थान् सोमकांश्च ससृंजयान् १४

'इस समय युद्धमें भीष्मजीकी रक्षासे बढ़कर दूसरा कोई कार्य मैं आवश्यक नहीं समझता हूँ; क्योंकि वे सुरक्षित रहें तो कुन्तीके पुत्रों, सोमकवंशियों तथा सृंजयोंको भी मार सकते हैं।

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
श्रूयते स्त्री ह्यसौ पूर्वं तस्माद् वर्ज्यो रणे मम ॥ १५ ॥

विशुद्ध हृदयवाले पितामह भीष्म मुझसे कह चुके हैं कि 'मैं शिखण्डीको युद्धमें नहीं मारूँगा; क्योंकि सुननेमें आया है कि वह पहले स्त्री था; अतः रणभूमिमें मेरे लिये वह सर्वथा त्याज्य है' ॥ १५ ॥

तस्माद् भीष्मो रक्षितव्यो विशेषेणेति मे मतिः।
शिखण्डिनो वधे यत्ताः सर्वे तिष्ठन्तु मामकाः ॥ १६ ॥

'इसलिये मेरा विचार है कि इस समय हमें विशेष रूपसे भीष्मजीकी रक्षामें ही तत्पर रहना चाहिये। मेरे सारे सैनिक शिखण्डीको मार डालनेका प्रयत्न करें ॥ १६ ॥

तथा प्राच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः।
सर्वथास्त्रेषु कुशलास्ते रक्षन्तु पितामहम् ॥ १७ ॥

'पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशाके जो-जो वीर अस्त्र-विद्यामें सर्वथा कुशल हों, वे ही पितामह (भीष्म) की रक्षा करें।

अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात् सिंहं महाबलम्।
मा सिंहं जम्बुकेनेव घातयामः शिखण्डिना ॥ १८ ॥

'यदि महाबली सिंह भी अरक्षित-दशामें हो तो उसे एक भेड़िया भी मार सकता है। हमें चाहिये कि सियारके समान शिखण्डीके द्वारा सिंहसदृश भीष्मको न मरने दें ॥१८॥

वामं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम्।
गोप्तारौ फाल्गुनं प्राप्तौ फाल्गुनोऽपि शिखण्डिनः॥१९॥

'अर्जुनके बायें पहियेकी रक्षा युधामन्यु और दाहिनेकी रक्षा उत्तमौजा कर रहे हैं। अर्जुनको ये दो रक्षक प्राप्त हैं और अर्जुन शिखण्डीकी रक्षा कर रहे हैं ॥ १९ ॥

संरक्ष्यमाणः पार्थेन भीष्मेण च विवर्जितः।
यथा न हन्याद् गाङ्गेयं दुःशासन तथा कुरु ॥ २० ॥

'अतः दुःशासन ! भीष्मसे उपेक्षित तथा अर्जुनसे सुरक्षित होकर शिखण्डी जिस प्रकार गङ्गानन्दन भीष्मको न मार सके, वैसा प्रयत्न करो' ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्योधनदुःशासनसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें दुर्योधन-दुःशासनसंवादविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१५॥

---

# षोडशोऽध्यायः

## दुर्योधनकी सेनाका वर्णन

संजय उवाच

ततो रजन्यां व्युष्टायां शब्दः समभवन्महान्।
क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर रात्रिके अन्तमें सवेरा होते ही 'रथ जोतो, युद्धके लिये तैयार हो जाओ।' इस प्रकार जोर-जोरसे बोलनेवाले राजाओंका महान् कोलाहल सब ओर छा गया ॥ १ ॥

शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च सिंहनादैश्च भारत।
हयहेषितनादैश्च रथनेमिस्वनैस्तथा ॥ २ ॥
गजानां बृंहतां चैव योधानां चापि गर्जताम्।
क्ष्वेलितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! शंख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि, वीरोंके सिंहनाद, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथके पहियोंकी घरघराहट, हाथियोंकी गर्जना तथा गर्जते हुए योद्धाओंके सिंहनाद करने, ताल ठोंकने और जोर-जोरसे बोलने आदिकी तुमुल ध्वनि सब ओर व्याप्त हो गयी ॥ २-३ ॥

उदतिष्ठन्महाराज सर्वं युक्तमशेषतः।
सूर्योदये महत् सैन्यं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ४ ॥

महाराज ! सूर्योदय होते होते कौरवों और पाण्डवोंकी वह सारी विशाल सेना सम्पूर्ण रूपसे युद्धके लिये तैयार हो उठी॥

राजेन्द्र तव पुत्राणां पाण्डवानां तथैव च।
दुष्प्रधृष्याणि चास्त्राणि सशस्त्रकवचानि च ॥ ५ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

राजेन्द्र ! आपके पुत्रों तथा पाण्डवोंके दुर्दम्य अस्त्र-शस्त्र तथा कवच चमक उठे ॥ ५ ॥

**ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत।**
**त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ६ ॥**

भारत ! तब सूर्योदयके प्रकाशमें आपकी और शत्रुओं-की सारी सेनाएँ शस्त्रोंसे सुसज्जित तथा अत्यन्त विशाल दिखायी देने लगीं ॥ ६ ॥

**तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः।**
**विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः ॥ ७ ॥**

जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित आपके हाथी और रथ विजलियोंसहित मेघोंकी घटाके समान प्रकाशमान दिखायी देते थे ॥ ७ ॥

**रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः।**
**अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत् ॥ ८ ॥**

बहुसंख्यक रथोंकी सेनाएँ नगरोंके समान दृष्टिगोचर हो रही थीं । उनके बीच आपके ताऊ भीष्मजी, पूर्ण चन्द्रमा-के समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ८ ॥

**धनुर्भिर्ऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः।**
**योधाः प्रहरणैः शुभ्रैस्तेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥ ९ ॥**

आपकी सेनाके सैनिक धनुष, खड्ग, ऋष्टि, गदा, शक्ति और तोमर आदि चमकीले अस्त्र-शस्त्र लेकर उन सेनाओंमें खड़े थे ॥

**गजाः पदाता रथिनस्तुरगाश्च विशाम्पते।**
**व्यतिष्ठन् वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥**

प्रजानाथ ! हाथी, घोड़े, पैदल और रथी, शत्रुओंको बाँधनेके लिये जालसे बनकर एक-एक जगह सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें खड़े थे ॥ १० ॥

**ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः।**
**स्वेषां चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः ॥ ११ ॥**

अपने और शत्रुओंके अनेक प्रकारके ऊँचे-ऊँचे चमकीले ध्वज हजारोंकी संख्यामें दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ११ ॥

**काञ्चना मणिचित्राङ्गा ज्वलन्त इव पावकाः।**
**अर्चिष्मन्तो व्यरोचन्त गजारोहाः सहस्रशः ॥ १२ ॥**

सुवर्णमय आभूषण पहने, मणियोंके अलंकारोंसे विचित्र अङ्गोंवाले, सहस्रों हाथीसवार सैनिक अपनी प्रभासे शिखाओं-सहित प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १२ ॥

**महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव।**
**संनद्धास्ते प्रवीराश्च ददृशुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १३ ॥**

जैसे इन्द्रभवनमें देवराज इन्द्रके चमकीले ध्वज फहराते रहते हैं, उसी प्रकार कौरव-पाण्डवसेनाके ध्वज भी फहरा रहे थे । दोनों सेनाओंके प्रमुख वीर युद्धकी अभिलाषा रख-कर कवच आदिसे सुसज्जित दिखायी दे रहे थे ॥ १३ ॥

**उद्यतैरायुधैश्चित्रास्तलबद्धाः कलापिनः।**
**ऋषभाक्षा मनुष्येन्द्राश्चमूमुखगता बभुः ॥ १४ ॥**

उनके हथियार उठे हुए थे ? वे हाथमें दस्ताने और पीठपर तरकस बाँधे, सेनाके मुहानेपर खड़े हुए भूपालगण अद्भुत शोभा पा रहे थे । उनकी आँखें बैलोंकी आँखोंके समान बड़ी-बड़ी दिखायी दे रही थीं ॥ १४ ॥

**शकुनिः सौबलः शल्यः सैन्धवोऽथ जयद्रथः।**
**विन्दानुविन्दौ कैकेयाः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ १५ ॥**
**श्रुतायुधश्च कालिङ्गो जयत्सेनश्च पार्थिवः।**
**बृहद्बलश्च कौशल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १६ ॥**
**दशैते पुरुषव्याघ्राः शूराः परिघबाहवः।**
**अक्षौहिणीनां पतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ १७ ॥**

सुबलपुत्र शकुनि, शल्य, सिन्धुनरेश जयद्रथ, विन्द-अनुविन्द, केकयराजकुमार, काम्बोजराज सुदक्षिण, कलिङ्ग-राज श्रुतायुध, राजा जयत्सेन, कोशलनरेश बृहद्बल तथा भोजवंशी कृतवर्मा—ये दस पुरुषसिंह शूरवीर क्षत्रिय एक-एक अक्षौहिणी सेनाके अधिनायक थे । इनकी भुजाएँ परिघोंके समान मोटी दिखायी देती थीं । इन सबने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी थीं ॥ १५-१७ ॥

**एते चान्ये च बहवो दुर्योधनवशानुगाः।**
**राजानो राजपुत्राश्च नीतिमन्तो महारथाः ॥ १८ ॥**
**संनद्धाः समदृश्यन्त स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः।**

ये तथा और भी बहुतसे नीतिज्ञ महारथी राजा और राजकुमार दुर्योधनके वशमें रहकर कवच आदिसे सुसज्जित हो अपनी-अपनी सेनाओंमें खड़े दिखायी देते थे ॥ १८½ ॥

**बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे बलिनो युद्धशालिनः ॥ १९ ॥**
**हृष्टा दुर्योधनस्यार्थे ब्रह्मलोकाय दीक्षिताः।**
**समर्था दश वाहिन्यः परिगृह्य व्यवस्थिताः ॥ २० ॥**

इन सबने काले मृगचर्म बाँध रक्खे थे । सभी बलवान् और युद्धभूमिमें सुशोभित होनेवाले थे और सबने दुर्योधनके हितके लिये बड़े हर्ष और उल्लासके साथ ब्रह्मलोककी दीक्षा ली थी । ये सामर्थ्यशाली दस वीर अपने सेनापतित्वमें दस सेनाओंको लेकर युद्धके लिये तैयार खड़े थे ॥ १९-२० ॥

**एकादशी धार्तराष्ट्री कौरवाणां महाचमूः।**
**अग्रतः सर्वसैन्यानां यत्र शान्तनवोऽग्रणीः ॥ २१ ॥**

ग्यारहवीं विशाल वाहिनी दुर्योधनकी थी, जिनमें अधि-कांश कौरव-योद्धा थे । यह कौरवसेना अन्य सब सेनाओंके आगे खड़ी थी। इसके अधिनायक थे शान्तनुनन्दन भीष्म।

**श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम्।**
**अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम् ॥ २२ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

उनके सिरपर सफेद पगड़ी शोभा पाती थी। उनके घोड़े भी सफेद ही थे। उन्होंने अपने अङ्गोंमें श्वेत कवच बाँध रक्खा था। महाराज ! मर्यादासे कभी पीछे न हटनेवाले उन भीष्मजीको मैंने अपनी श्वेतकान्तिके कारण नवोदित चन्द्रमाके समान सुशोभित देखा ॥ २२ ॥

**हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम् ।**
**श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः ॥ २३ ॥**
**सृंजयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।**

भीष्मजी चाँदीके बने हुए सुन्दर रथपर विराजमान थे। उनकी तालचिह्नित स्वर्णमयी ध्वजा आकाशमें फहरा रही थी। उस समय कौरवों, पाण्डवों तथा धृष्टद्युम्न आदि महाधनुर्धर सृंजयवंशियोंने उन्हें सफेद बादलोंमें छिपे हुए सूर्यदेवके समान देखा ॥ २३½ ॥

**जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा ॥ २४ ॥**
**धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः ।**

धृष्टद्युम्न आदि सृंजयवंशी उन्हें देखकर बारंबार उद्विग्न हो उठते थे। ठीक उसी तरह, जैसे मुँह बाये हुए विशाल सिंहको देखकर क्षुद्र मृग भयसे व्याकुल हो उठते हैं ॥ २४½ ॥

**एकादशैताः श्रीजुष्टा वाहिन्यस्तव पार्थिव ॥ २५ ॥**
**पाण्डवानां तथा सप्त महापुरुषपालिताः ।**

भूपाल ! आपकी ये ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ तथा पाण्डवोंकी सात अक्षौहिणी सेनाएँ वीर पुरुषोंसे सुरक्षित हो उत्तम शोभासे सम्पन्न दिखायी देती थीं ॥ २५½ ॥

**उन्मत्तमकरावर्तौ महाग्राहसमाकुलौ ॥ २६ ॥**
**युगान्ते समवेतौ द्वौ दृश्येते सागराविव ।**

वे दोनों सेनाएँ प्रलयकालमें एक दूसरेसे मिलनेवाले उन दो समुद्रोंके समान दृष्टिगोचर हो रही थीं, जिनमें मतवाले मगर और भँवरें होती हैं तथा जिनमें बड़े बड़े ग्राह सब ओर फैले रहते हैं ॥ २६½ ॥

**नैव नस्तादृशो राजन् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ।**
**अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः ॥ २७ ॥**

राजन् ! कौरवोंकी इतनी बड़ी सेनाका वैसा संगठन मैंने पहले कभी न तो देखा था और न सुना ही था ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सैन्यवर्णनविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

# सप्तदशोऽध्यायः

## कौरवमहारथियोंका युद्धके लिये आगे बढ़ना तथा उनके व्यूह, वाहन और ध्वज आदिका वर्णन

संजय उवाच

**यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।**
**तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १ ॥**

**संजय कहते हैं**—राजन् ! श्रीकृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासने जैसा कहा था, उसीके अनुसार सब राजा कुरुक्षेत्रमें एकत्र हुए थे ॥ १ ॥

**मघाविषयगः सोमस्तद् दिनं प्रत्यपद्यत ।**
**दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥ २ ॥**

उस दिन चन्द्रमा मघा नक्षत्रपर था। आकाशमें सात महाग्रह अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी दे रहे थे ॥ २ ॥

**द्विधाभूत इवादित्य उदये प्रत्यदृश्यत ।**
**ज्वलन्त्या शिखया भूयो भानुमानुदितो रविः ॥ ३ ॥**

उदयकालमें सूर्य दो भागोंमें बँटा हुआ-सा दिखायी देने लगा। साथ ही वह अपनी प्रचण्ड ज्वालाओंसे अधिकाधिक जाज्वल्यमान होकर उदित हुआ था ॥ ३ ॥

**ववाशिरे च दीप्तायां दिशि गोमायुवायसाः ।**
**लिप्समानाः शरीराणि मांसशोणितभोजनाः ॥ ४ ॥**

सम्पूर्ण दिशाओंमें दाह-सा हो रहा था और मांस तथा रक्तका आहार करनेवाले गीदड़ और कौए मनुष्यों तथा पशुओंकी लाशोंकी लालसा रखकर अमङ्गलसूचक शब्द कर रहे थे ॥ ४ ॥

**अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।**
**भरद्वाजात्मजश्चैव प्रातरुत्थाय संयतौ ॥ ५ ॥**
**जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणामित्यूचतुररिंदमौ ।**
**युयुधाते तवार्थाय यथा स समयः कृतः ॥ ६ ॥**

कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्म तथा भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य—ये दोनों शत्रुदमन महारथी प्रतिदिन सबेरे उठकर मनको संयममें रखते हुए यही आशीर्वाद देते थे कि 'पाण्डवोंकी जय हो'; परंतु वे जैसी प्रतिज्ञा कर चुके थे, उसके अनुसार आपके लिये ही पाण्डवोंके साथ युद्ध करते थे ५-६

**सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ।**
**समानीय महीपालानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥**

उस दिन सम्पूर्ण धर्मोंके विशेषज्ञ आपके ताऊ देवव्रत भीष्मजी सब राजाओंको बुलाकर उनसे इस प्रकार बोले—॥ ७ ॥

**इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायापावृतं महत् ।**
**गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम् ॥ ८ ॥**

'क्षत्रियो ! यह युद्ध तुम्हारे लिये स्वर्गका खुला हुआ

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विशाल द्वार है। तुमलोग इसके द्वारा इन्द्र अथवा ब्रह्माजी-का सालोक्य प्राप्त करो ॥ ८ ॥

**एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः।**
**सम्भावयध्वमात्मानमव्यग्रमनसो युधि ॥ ९ ॥**

'यह तुम्हारे पूर्ववर्ती पूर्वजोंद्वारा स्वीकार किया हुआ सनातन मार्ग है। तुम सब लोग शान्तचित्त होकर युद्धमें शौर्यका परिचय देते हुए अपने-आपको सुयश और सम्मान-का भागी बनाओ ॥ ९ ॥

**नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः।**
**संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः ॥ १० ॥**

'नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहुष और नृग ऐसे ही कर्मोंद्वारा सिद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट लोकोंमें गये हैं॥१०॥

**अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद् व्याधिमरणं गृहे।**
**यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः ॥ ११ ॥**

'घरमें रोगी होकर पड़े-पड़े प्राण त्याग करना क्षत्रियके लिये अधर्म माना गया है। वह युद्धमें लोहेके अस्त्र-शस्त्रों-द्वारा आहत होकर जो मृत्युको अङ्गीकार करता है, वही उसका सनातन धर्म है' ॥ ११ ॥

**एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ।**
**निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः ॥ १२ ॥**

भरतश्रेष्ठ! भीष्मके ऐसा कहनेपर वे सभी भूपाल श्रेष्ठ रथोंद्वारा अपनी सेनाओंकी शोभा बढ़ाते हुए युद्धके लिये प्रस्थित हुए ॥ १२ ॥

**स तु वैकर्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः।**
**न्यासितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ ॥ १३ ॥**

भरतभूषण! इस युद्धमें भीष्मने मन्त्रियों और बन्धुओं-सहित कर्णके अस्त्र-शस्त्र रखवा दिये थे ॥ १३ ॥

**अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव तावकाः।**
**निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश ॥ १४ ॥**

इसलिये आपके पुत्र और अन्य नरेश बिना कर्णके ही अपने सिंहनादसे दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए युद्ध-के लिये निकले ॥ १४ ॥

**श्वेतैश्छत्रैः पताकाभिर्ध्वजवारणवाजिभिः।**
**तान्यनीकानि शोभन्ते रथैरथ पदातिभिः ॥ १५ ॥**

श्वेत छत्रों, पताकाओं, ध्वजों, हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सैनिकोंसे उन समस्त सेनाओंकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १५ ॥

**भेरीपणवशब्दैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः।**
**रथनेमिनिनादैश्च बभूवाकुलिता मही ॥ १६ ॥**

भेरी, पणव, दुन्दुभि आदि वाद्योंकी ध्वनियों तथा रथ-के पहियोंके घर्घर शब्दोंसे वहाँकी सारी भूमि व्याप्त हो रही थी॥

**काञ्चनाङ्गदकेयूरैः कार्मुकैश्च महारथाः।**
**भ्राजमाना व्यराजन्त साग्नयः पर्वता इव ॥ १७ ॥**

सोनेके अङ्गद और केयूर नामक बाहुभूषण तथा धनुष धारण किये महारथी वीर अग्नियुक्त पर्वतोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १७ ॥

**तालेन महता भीष्मः पञ्चतारेण केतुना।**
**विमलादित्यसंकाशस्तस्थौ कुरुचमूपरि ॥ १८ ॥**

कौरवसेनाके प्रधान सेनापति भीष्म भी ताड़ और पाँच तारोंके चिह्नसे युक्त विशाल ध्वजा-पताकासे सुशोभित रथपर जा बैठे। उस समय वे निर्मल तेजोमय सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

**ये त्वदीया महेष्वासा राजानो भरतर्षभ।**
**अवर्तन्त यथादेशं राजञ्शान्तनवस्य ते ॥ १९ ॥**

भरतश्रेष्ठ! महाराज! आपकी सेनाके समस्त महाधनुर्धर भूपाल सेनापति भीष्मकी आज्ञाके अनुसार चलते थे ॥१९॥

**स तु गोवासनः शैब्यः सहितः सर्वराजभिः।**
**ययौ मातङ्गराजेन राजार्हेण पताकिना।**
**पद्मवर्णस्त्वनीकानां सर्वेषामग्रतः स्थितः ॥ २० ॥**
**अश्वत्थामा ययौ यत्तः सिंहलाङ्गूलकेतुना।**

गोवासनदेशके स्वामी महाराज शैब्य अपने अधीन राजाओं-के साथ पताकासे सुशोभित राजोचित गजराजपर आरूढ़ हो युद्धके लिये चले। कमलके समान कान्तिमान् अश्वत्थामा सिंहकी पूँछके चिह्नसे युक्त ध्वजा-पताकावाले रथपर आरूढ़ हो समस्त सेनाओंके आगे रहकर चलने लगे ॥ २०½ ॥

**श्रुतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः ॥ २१ ॥**
**शल्यो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च महारथः।**
**एते सप्त महेष्वासा द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥ २२ ॥**
**स्यन्दनैर्वरवर्माणो भीष्मस्यासन् पुरोगमाः।**

श्रुतायुध, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल्य, भूरिश्रवा तथा महारथी विकर्ण—ये सात महाधनुर्धर वीर रथोंपर आरूढ़ हो सुन्दर कवच धारण किये द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको अपने आगे रखकर भीष्मके आगे-आगे चल रहे थे ॥ २१-२२½ ॥

**तेषामपि महोत्सेधाः शोभयन्तो रथोत्तमान् ॥ २३ ॥**
**भ्राजमाना व्यरोचन्त जाम्बूनदमया ध्वजाः।**

इन सबके जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए अत्यन्त ऊँचे ध्वज इनके श्रेष्ठ रथोंकी शोभा बढ़ाते हुए अत्यन्त प्रकाशित हो रहे थे ॥ २३½ ॥

**जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता ॥ २४ ॥**
**केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह।**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आचार्यप्रवर द्रोणकी पताकापर कमण्डलुविभूषित सुवर्णमयी वेदी और धनुषके चिह्न बने हुए थे ॥ २४½ ॥

**अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षतः ॥ २५ ॥**
**महान् दुर्योधनस्यासीन्नागो मणिमयो ध्वजः ।**

कई लाख सैनिकोंकी सेनाको अपने साथ लेकर चलनेवाले दुर्योधनका मणिमय महान् ध्वज नागचिह्नसे विभूषित था ॥ २५½ ॥

**तस्य पौरवकालिङ्गौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २६ ॥**
**क्षेमधन्वा सुमित्रश्च तस्थुः प्रमुखतो रथाः ।**

पौरव, कलिङ्गराज श्रुतायुध, काम्बोजराज सुदक्षिण, क्षेमधन्वा तथा सुमित्र—ये पाँच प्रधान रथी दुर्योधनके आगे-आगे चल रहे थे ॥ २६½ ॥

**स्यन्दनेन महार्हेण केतुना वृषभेण च ।**
**प्रकर्षन्निव सेनाग्रं मागधस्य कृपो ययौ ॥ २७ ॥**

वृषभचिह्नित ध्वजा-पताकासे युक्त बहुमूल्य रथपर बैठे हुए कृपाचार्य मगधकी श्रेष्ठ सेनाको अपने साथ लिये चल रहे थे ॥ २७ ॥

**तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना ।**
**शारदाम्बुधरप्रख्यं प्राच्यानां सुमहद् बलम् ॥ २८ ॥**

अङ्गराज तथा मनस्वी कृपाचार्यसे सुरक्षित पूर्वदेशीय क्षत्रियोंकी वह विशाल वाहिनी शरद्-ऋतुके बादलोंके समान शोभा पाती थी ॥ २८ ॥

**अनीकप्रमुखे तिष्ठन् वराहेण महायशाः ।**
**शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः ॥ २९ ॥**

महायशस्वी राजा जयद्रथ वराहके चिह्नसे युक्त रजतमय ध्वजा-पताकाके साथ रथपर आरूढ़ हो सेनाके अग्रभागमें खड़े हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ २९ ॥

**शतं रथसहस्राणां तस्यासन् वशवर्तिनः ।**
**अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट् ॥ ३० ॥**

उनके अधीन एक लाख रथ, आठ हजार हाथी और साठ हजार घुड़सवार थे ॥ ३० ॥

**तत्सिन्धुपतिना राज्ञा पालितं ध्वजिनीमुखम् ।**
**अनन्तरथनागाश्वमशोभत महद् बलम् ॥ ३१ ॥**

सिन्धुराजके द्वारा सुरक्षित अनन्त रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी हुई वह विशाल सेना अद्भुत शोभा पा रही थी।

**षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च ।**
**पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह ॥ ३२ ॥**

कलिङ्गदेशका राजा श्रुतायुध अपने मित्र केतुमान्के साथ साठ हजार रथ और दस हजार हाथियोंको साथ लिये युद्धके लिये चला ॥ ३२ ॥

**तस्य पर्वतसंकाशा व्यरोचन्त महागजाः ।**
**यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः ॥ ३३ ॥**

यन्त्र, तोमर, तूणीर तथा पताकाओंसे सुशोभित उसके विशाल गजराज पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे ॥ ३३ ॥

**शुशुभे केतुमुख्येन पावकेन कलिङ्गकः ।**
**श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च ॥ ३४ ॥**

कलिङ्गराजके रथकी ध्वजापर अग्निका चिह्न बना हुआ था। वह श्वेत छत्र और चँवररूपी पंखेसे तथा पदक ( कण्ठहार ) से विभूषित हो बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ३४ ॥

**केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमाङ्कुशम् ।**
**आस्थितः समरे राजन् मेघस्थ इव भानुमान् ॥ ३५ ॥**

राजन् ! केतुमान् भी विचित्र एवं विशाल अङ्कुशसे युक्त गजराजपर आरूढ़ हो समरभूमिमें खड़ा हुआ मेघोंकी घटाके ऊपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवके समान जान पड़ता था ॥

**तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः ।**
**भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा ॥ ३६ ॥**
**गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन सम्मितौ ।**
**विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ ॥ ३७ ॥**

इसी प्रकार श्रेष्ठ गजराजपर आरूढ़ हो राजा भगदत्त भी वज्रधारी इन्द्रके समान अपने तेजसे उद्दीप्त हो युद्धके लिये आगे बढ़ गये थे। अवन्तिदेशके राजकुमार विन्द और अनुविन्द भी भगदत्तके समान ही तेजस्वी थे। वे दोनों भाई हाथीकी पीठपर बैठकर केतुमान्के पीछे-पीछे चल रहे थे ३६-३७

**स रथानीकवान् व्यूहो हस्त्यङ्गो नृपशीर्षवान् ।**
**वाजिपक्षः पतत्युग्रः प्रहसन् सर्वतोमुखः ॥ ३८ ॥**

राजन् ! रथोंके समूहसे युक्त उस सेनाका भयंकर व्यूह सर्वतोमुखी था। वह हँसता हुआ आक्रमण-सा कर रहा था। हाथी उस व्यूहके अङ्ग थे, राजाओंका समुदाय ही उसका मस्तक था और घोड़े उसके पंख जान पड़ते थे ॥ ३८ ॥

**द्रोणेन विहितो राजन् राज्ञा शान्तनवेन च ।**
**तथैवाचार्यपुत्रेण बाह्लीकेन कृपेण च ॥ ३९ ॥**

द्रोणाचार्य, राजा शान्तनुनन्दन भीष्म, आचार्यपुत्र अश्वत्थामा, बाह्लीक और कृपाचार्यने उस सैन्यव्यूहका निर्माण किया था ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सैन्यवर्णनविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

# अष्टादशोऽध्यायः

## कौरवसेनाका कोलाहल तथा भीष्मके रक्षकोंका वर्णन

संजय उवाच

**ततो मुहूर्तात् तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः।**
**अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम्॥ १॥**

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर दो ही घड़ीमें युद्धकी इच्छा रखनेवाले योद्धाओंका भयंकर कोलाहल सुनायी देने लगा, जो हृदयको कँपा देनेवाला था॥ १॥

**शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैश्च वारणानां च बृंहितैः।**
**नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुंधरा॥ २॥**

शंख और दुन्दुभियोंके घोष, गजराजोंकी गर्जना तथा रथोंके पहियोंकी घरघराहटसे सारी पृथ्वी विदीर्ण-सी हो रही थी॥

**हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम्।**
**क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनापूरितं तदा॥ ३॥**

घोड़ोंके हींसने और योद्धाओंके गर्जनेके शब्दोंसे एक ही क्षणमें वहाँकी पृथ्वी और आकाशका सारा प्रदेश गूँज उठा॥

**पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च।**
**समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे॥ ४॥**

दुर्धर्ष नरेश! आपके पुत्रों और पाण्डवोंकी सेनाएँ एक-दूसरीके निकट आनेपर काँप उठीं॥ ४॥

**तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः।**
**भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः॥ ५॥**

उस रणक्षेत्रमें स्वर्णभूषित रथ और हाथी बिजलियोंसे युक्त मेघोंके समान सुशोभित दिखायी देते थे॥ ५॥

**ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप।**
**काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः॥ ६॥**

नरेश्वर! आपकी सेनाके नाना प्रकारके ध्वज और सोनेके अङ्गद (बाजूबन्द) पहने हुए सैनिक प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ६॥

**स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत।**
**महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव॥ ७॥**

भारत! अपनी और शत्रुकी सेनाके चमकीले ध्वज इन्द्र-भवनमें फहरानेवाले देवेन्द्रके ध्वजोंके समान दिखायी देते थे॥

**काञ्चनैः कवचैर्वीरा ज्वलनार्कसमप्रभैः।**
**संनद्धाः समदृश्यन्त ज्वलनार्कसमप्रभाः॥ ८॥**

अग्नि और सूर्यके समान कान्तिमान् काञ्चनमय कवच धारण किये वीर सैनिक अग्नि और सूर्यके ही तुल्य प्रकाशित दीख रहे थे॥ ८॥

**कुरुयोधवरा राजन् विचित्रायुधकार्मुकाः।**
**उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः पताकिनः॥ ९॥**

राजन्! कौरवपक्षके श्रेष्ठ योद्धा विचित्र आयुध और धनुष धारण किये बड़ी शोभा पा रहे थे। उनके विचित्र आयुध ऊपरकी ओर उठे हुए थे। उन्होंने हाथोंमें दस्ताने पहन रक्खे थे और उनकी पताकाएँ आकाशमें फहरा रही थीं॥

**ऋषभाक्षा महेष्वासाश्चमूमुखगता बभुः।**
**पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप।**
**दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा॥ १०॥**
**विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः।**
**सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः॥ ११॥**
**रथा विंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः।**

सेनाके मुहानेपर खड़े हुए, वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले वे महाधनुर्धर वीर बड़ी शोभा पा रहे थे। नरेश्वर! भीष्मजीके पृष्ठभागकी रक्षा आपके पुत्र दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुःसह, विविंशति, चित्रसेन, महारथी विकर्ण, सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय, भूरिश्रवा, शल तथा इनके अनुयायी बीस हजार रथी कर रहे थे॥ १०–११½॥

**अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः॥ १२॥**
**शाल्वा मत्स्यास्तथाम्बष्ठास्त्रिगर्ताः केकयास्तथा।**
**सौवीराः कैतवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यवासिनः॥ १३॥**
**द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः।**
**महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम्॥ १४॥**

अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, केकय, सौवीर, कैतव तथा पूर्व, पश्चिम एवं उत्तर प्रदेशके निवासी—इन बारह जनपदोंके समस्त शूरवीर अपना शरीर निछावर करनेको उद्यत होकर विशाल रथसमुदायके द्वारा पितामह भीष्मकी रक्षा कर रहे थे॥ १२–१४॥

**अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम्।**
**मागधो यत्र नृपतिस्तद् रथानीकमन्वयात्॥ १५॥**

दस हजार वेगवान् हाथियोंकी सेना साथ लेकर मगधराज उपर्युक्त रथसेनाके पीछे-पीछे चल रहे थे॥ १५॥

**रथानां चक्ररक्षाश्च पादरक्षाश्च दन्तिनाम्।**
**अभवन् वाहिनीमध्ये शतानामयुतानि षट्॥ १६॥**

उस विशाल वाहिनीमें रथोंके पहियों और हाथियोंके पैरोंकी रक्षा करनेवाले सैनिक साठ लाख थे॥ १६॥

**पादाताश्चाग्रतोऽगच्छन् धनुश्चर्मासिपाणयः।**
**अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः॥ १७॥**

कुछ पैदल सैनिक, जिनकी संख्या कई लाख थी, हाथमें धनुष, ढाल और तलवार लिये आगे-आगे चल रहे थे। वे नखर (बघनखे) और प्रासद्वारा भी युद्ध करनेमें कुशल थे॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत ।
अदृश्यन्त महाराज गङ्गेव यमुनान्तरा ॥ १८ ॥

भारत ! महाराज ! आपके पुत्रकी ये ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ यमुनामें मिली हुई गङ्गाके समान दिखायी देती थीं ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सैन्यवर्णनविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

# एकोनविंशतितमोऽध्यायः

## व्यूहनिर्माणके विषयमें युधिष्ठिर और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा वज्रव्यूहकी रचना, भीमसेनकी अध्यक्षतामें सेनाका आगे बढ़ना

धृतराष्ट्र उवाच

अक्षौहिण्यो दशैकां च व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पाण्डवः ॥ १ ॥
यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
कथं भीष्मं स कौन्तेयः प्रत्यव्यूहत संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरी ग्यारह अक्षौहिणियोंको व्यूहाकारमें खड़ी हुई देख पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने उसका सामना करनेके लिये अपनी थोड़ी-सी सेनाके द्वारा किस प्रकार व्यूह-रचना की ? जो मनुष्य, देवता, गन्धर्व और असुर सभीकी व्यूह-निर्माण-विधिको जानते हैं, उन भीष्मजीके सामने कुन्तीकुमारने किस तरह अपनी सेनाका व्यूह बनाया ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

धार्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पाण्डवः ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनंजयम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! आपकी सेनाओंको व्यूहाकारमें खड़ी हुई देख धर्मात्मा पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा— ॥ ३ ॥

महर्षेर्वचनात् तात वेदयन्ति बृहस्पतेः ।
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून् ॥ ४ ॥

'तात ! महर्षि बृहस्पतिके वचनसे ऐसा ज्ञात होता है कि यदि शत्रुओंकी सेना थोड़ी हो, तो अपनी सेनाको छोटे आकारमें संगठित करके युद्ध करना चाहिये और यदि अपनेसे अधिक सैनिकोंके साथ युद्ध करना हो, तो अपनी सेनाको इच्छानुसार फैलाकर खड़ी करे ॥ ४ ॥

सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह ।
अस्माकं च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥ ५ ॥

'थोड़े-से सैनिकोंसे बहुतोंके साथ युद्ध करनेके लिये सूचीमुख नामक व्यूह उपयोगी हो सकता है और हमारी सेना शत्रुओंसे बहुत कम है ही ॥ ५ ॥

एतद् वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पाण्डव ।
एतच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पाण्डवः ॥ ६ ॥

'पाण्डुनन्दन ! महर्षिके इस कथनपर विचार करके तुम भी अपनी सेनाका व्यूह बनाओ ।' धर्मराजकी यह बात सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ६ ॥

एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम् ।
अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥ ७ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! यह लीजिये, मैं आपके लिये अविचल एवं दुर्जय वज्रव्यूहकी रचना करता हूँ, जिसका आविष्कार वज्रधारी इन्द्रने किया है ॥ ७ ॥

यः स वात इवोद्धूतः समरे दुःसहः परैः ।
स नः पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतां वरः ॥ ८ ॥

'जो समरभूमिमें प्रचण्ड वायुकी भाँति उठकर शत्रुओंके लिये दुःसह हो उठते हैं, वे योद्धाओंमें श्रेष्ठ आर्य भीमसेन हमारे आगे रहकर युद्ध करेंगे ॥ ८ ॥

तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन् पुरुषसत्तमः ।
अग्रेऽग्रणीर्योत्स्यति नो युद्धोपायविचक्षणः ॥ ९ ॥

'पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन युद्धके विविध उपायोंके ज्ञानमें निपुण हैं । वे हमारी सेनाके अगुआ होकर शत्रुसेनाके तेजको नष्ट करते हुए युद्ध करेंगे ॥ ९ ॥

यं दृष्ट्वा कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
निवर्तिष्यन्ति संत्रस्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा ॥ १० ॥

'जैसे सिंहको देखते ही क्षुद्र मृग भयभीत होकर भाग उठते हैं, उसी प्रकार इन्हें देखकर दुर्योधन आदि समस्त कौरव त्रस्त होकर पीछे लौट जायँगे ॥ १० ॥

तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयाः ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं देवराजमिवामराः ॥ ११ ॥

'जैसे देवता देवराजका आश्रय लेकर निर्भय हो जाते हैं, उसी प्रकार हमलोग योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेनका आश्रय लेंगे । ये हमारे लिये परकोटेका काम करेंगे । फिर हमें कहींसे कोई भय नहीं रह जायगा ॥ ११ ॥

न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम् ।
द्रष्टुमत्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम् ॥ १२ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'संसारमें ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, जो भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले क्रोधमें भरे हुए नरश्रेष्ठ वृकोदरकी ओर देखनेका साहस कर सके ॥ १२ ॥

**भीमसेनो गदां बिभ्रद् वज्रसारमयीं दृढाम् ।**
**चरन् वेगेन महता समुद्रमपि शोषयेत् ॥ १३ ॥**
**केकया धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान् ।**

'जब भीमसेन लोहेसे बनी हुई अपनी सुदृढ़ गदा हाथोंमें ले महान् वेगसे विचरते हैं, उस समय वे समुद्रको भी सोख सकते हैं। केकयराजकुमार, धृष्टकेतु और चेकितान भी ऐसे ही पराक्रमी हैं ॥ १३½ ॥

**एते तिष्ठन्ति सामात्याः प्रेक्षकास्ते जनाधिप ॥ १४ ॥**
**धृतराष्ट्रस्य दायादा इति बीभत्सुरब्रवीत् ।**
**भीमसेनं तदा राजन् दर्शयस्व महाबलम् ॥ १५ ॥**

'नरेश्वर ! ये धृतराष्ट्रके पुत्र अपने मन्त्रियोंसहित आपकी ओर देख रहे हैं।' राजन् ! युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर अर्जुन भीमसेनसे बोले—'अब आप इन शत्रुओंको अपना महान् बल दिखाइये' ॥ १४-१५ ॥

**ब्रुवाणं तु तथा पार्थं सर्वसैन्यानि भारत ।**
**अपूजयंस्तदा वाग्भिरनुकूलाभिराहवे ॥ १६ ॥**

भारत ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर उस युद्धस्थलमें समस्त सैनिकोंने अनुकूल वचनोंद्वारा उस समय उनका पूजन समादर किया ॥ १६ ॥

**एवमुक्त्वा महाबाहुस्तथा चक्रे धनंजयः ।**
**व्यूह्य तानि बलान्याशु प्रययौ फाल्गुनस्तथा ॥ १७ ॥**

महाबाहु अर्जुनने ऐसा कहकर उसी तरह किया; अपनी सब सेनाओंका शीघ्र ही व्यूह बनाया और रणके लिये प्रस्थान किया ॥ १७ ॥

**सम्प्रयातान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवानां महाचमूः ।**
**गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्पन्दमाना व्यदृश्यत ॥ १८ ॥**

कौरवोंको अपनी ओर आते देख पाण्डवोंकी वह विशाल सेना पहले तो भरी हुई गङ्गाके समान स्थिर दिखायी दी; फिर उसमें धीरे-धीरे कुछ चेष्टा दृष्टिगोचर होने लगी ॥

**भीमसेनोऽग्रणीस्तेषां धृष्टद्युम्नश्च वीर्यवान् ।**
**नकुलः सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १९ ॥**

पाण्डवसेनामें भीमसेन सबके आगे चलनेवाले थे। उनके साथ पराक्रमी धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव तथा चेदिराज धृष्टकेतु भी थे ॥ १९ ॥

**विराटश्च ततः पश्चाद् राजाथाक्षौहिणीवृतः ।**
**भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः ॥ २० ॥**

तत्पश्चात् राजा विराट अपने भाइयों और पुत्रोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर भीमसेनके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे ॥ २० ॥

**चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युती ।**
**द्रौपदेयाः ससौभद्राः पृष्ठगोपास्तरस्विनः ॥ २१ ॥**

भीमके पहियोंकी रक्षा परम तेजस्वी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव कर रहे थे। द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा अभिमन्यु—ये वेगशाली वीर उनके पृष्ठभागकी रक्षा करते थे ॥ २१ ॥

**धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः ।**
**सहितः पृतनाशूरै रथमुख्यैः प्रभद्रकैः ॥ २२ ॥**

पाञ्चालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्न अपनी सेनाके चुने हुए शूरवीर एवं प्रधान रथी प्रभद्रकोंके साथ उन सबकी रक्षा करते थे ॥ २२ ॥

**शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाभिरक्षितः ।**
**यत्तो भीष्मविनाशाय प्रययौ भरतर्षभ ॥ २३ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! इन सबके पीछे अर्जुनद्वारा सुरक्षित शिखण्डी भीष्मका विनाश करनेके लिये उद्यत हो आगे बढ़ रहा था ॥

**पृष्ठतोऽप्यर्जुनस्यासीद् युयुधानो महाबलः ।**
**चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २४ ॥**

अर्जुनके पीछे महाबली सात्यकि थे । पाञ्चाल वीर युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके रथके पहियोंकी रक्षा करते थे॥

**राजा तु मध्यमानीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**
**बृहद्भिः कुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव ॥ २५ ॥**

चलते-फिरते पर्वतोंके समान विशाल और मतवाले गजराजोंकी सेनाके साथ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर बीचकी सेनामें उपस्थित थे ॥ २५ ॥

**अक्षौहिण्याथ पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः ।**
**विराटमन्वयात् पश्चात् पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ २६ ॥**

महामना पराक्रमी पाञ्चालराज द्रुपद पाण्डवोंके लिये एक अक्षौहिणी सेनाके सहित राजा विराटके पीछे-पीछे चल रहे थे॥

**तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः ।**
**नानाचिह्नधरा राजन् रथेष्वासन् महाध्वजाः ॥ २७ ॥**

राजन् ! उनके रथोंपर भाँति-भाँतिके बेल-बूटोंसे विभूषित स्वर्णमण्डित विशाल ध्वज सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २७ ॥

**समुत्सार्य ततः पश्चाद् धृष्टद्युम्नो महारथः ।**
**भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षद् युधिष्ठिरम् ॥ २८ ॥**

तदनन्तर महारथी धृष्टद्युम्न अन्य लोगोंको हटाकर स्वयं भाइयों और पुत्रोंके साथ उपस्थित हो राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करने लगे ॥ २८ ॥

**त्वदीयानां परेषां च रथेषु विपुलान् ध्वजान् ।**
**अभिभूयार्जुनस्यैको रथे तस्थौ महाकपिः ॥ २९ ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

राजन् ! आपके तथा शत्रुओंके रथोंपर जो बहुसंख्यक विशाल ध्वज फहरा रहे थे, उन सबको तिरस्कृत करके केवल अर्जुनके रथपर एकमात्र महान् कपिसे उपलक्षित दिव्य ध्वज शोभा पाता था ॥ २९ ॥

**पादातास्त्वग्रतोऽगच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः ।**
**अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः ॥ ३० ॥**

भीमसेनकी रक्षाके लिये उनके आगे-आगे हाथोंमें खड्ग, शक्ति तथा ऋष्टि लिये कई लाख पैदल सैनिक चल रहे थे ॥

**वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः ।**
**शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाचलाः ॥ ३१ ॥**
**क्षरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः ।**
**राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः ॥ ३२ ॥**

राजा युधिष्ठिरके पीछे वर्षाकालके मेघोंकी भाँति तथा पर्वतोंके समान ऊँचे-ऊँचे दस हजार गजराज जा रहे थे। उनके गण्डस्थलसे फूटकर मदकी धारा बह रही थी। वे सोनेकी जालीदार झूलोंसे उद्दीप्त हो रहे थे। उनमें शौर्य भरा था। वे मेघोंके समान मदकी बूँदें बरसाते थे। उनसे कमलके समान सुगन्ध निकलती थी और वे सभी बहुमूल्य थे ॥ ३१-३२ ॥

**भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन् परिघोपमाम् ।**
**प्रचकर्ष महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥ ३३ ॥**

दुर्जय वीर महामनस्वी भीमसेन हाथमें परिघके समान, मोटी एवं भयंकर गदा लिये अपने साथ विशाल सेनाको खींचे लिये जा रहे थे ॥ ३३ ॥

**तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम् ।**
**न शेकुः सर्वयोधास्ते प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥ ३४ ॥**

उस समय सूर्यकी भाँति उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था। वे आपकी सेनाको संतप्त-सी कर रहे थे। निकट आनेपर समस्त योद्धा उनकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ न हो सके ॥ ३४ ॥

**वज्रो नामैष स व्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ।**
**चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥ ३५ ॥**

यह वज्रनामक व्यूह सर्वथा भयरहित तथा सब ओर मुखवाला था। उसके ध्वजके निकट सुवर्णभूषित धनुष विद्युत्के समान प्रकाशित होता था। गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा ही वह भयंकर व्यूह सुरक्षित था ॥ ३५ ॥

**यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।**
**अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ॥ ३६ ॥**

पाण्डवलोग जिस व्यूहकी रचना करके आपकी सेनाका सामना करनेके लिये खड़े थे, वह उनके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण मनुष्यलोकमें अजेय था ॥ ३६ ॥

**संध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति ।**
**प्रावात् सपृषतो वायुर्निरभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ ३७ ॥**

सूर्योदयके समय जब सभी सैनिक संध्योपासना कर रहे थे, बिना बादलके ही पानीकी बूँदोंके साथ हवा चलने लगी। उसके साथ मेघकी-सी गर्जना भी होती थी ॥ ३७ ॥

**विष्वग्वाताश्च विववुर्नीचैः शर्करकर्षिणः ।**
**रजश्चोद्धयत महत् तम आच्छादयज्जगत् ॥ ३८ ॥**

वहाँ सब ओर नीचे बालू और कंकड़ बरसाती हुई तीव्र वायु बह रही थी। उस समय इतनी धूल उड़ी कि जगत्‌में घोर अन्धकार छा गया ॥ ३८ ॥

**पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ ।**
**उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥ ३९ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बड़ी भारी उल्का गिरी और उदय होते हुए सूर्यसे टकराकर बड़े जोर-की आवाजके साथ बिखर गयी ॥ ३९ ॥

**अथ संनह्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ।**
**निष्प्रभोऽभ्युदयौ सूर्यः सघोषं भूश्चचाल च ॥ ४० ॥**

भरतभूषण ! जब उभय-पक्षकी सेनाएँ युद्धके लिये पूर्णतः तैयार हो गयीं, उस समय सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और भारी आवाजके साथ धरती काँपने लगी ॥ ४० ॥

**व्यशीर्यत सनादा च भूस्तदा भरतर्षभ ।**
**निर्घाता बहवो राजन् दिक्षु सर्वासु चाभवन् ॥ ४१ ॥**

भरतश्रेष्ठ ! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो पृथ्वी विकट नाद करती हुई फटी जा रही है। राजन् ! सम्पूर्ण दिशाओंमें अनेक बार वज्रपातके समान भयानक शब्द प्रकट हुए ॥

**प्रादुरासीद् रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किंचन ।**
**ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ॥ ४२ ॥**
**किङ्किणीजालबद्धानां काञ्चनस्रग्वराम्बरैः ।**
**महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ॥ ४३ ॥**
**सर्वं झणझणीभूतमासीत् तालवनेष्विव ।**

तीव्र वेगसे धूलकी वर्षा होने लगी। कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। सहसा वायुके वेगसे ध्वज हिलने लगे। पताका-सहित वे ध्वज सूर्यके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उन्हें सोनेके हार और सुन्दर वस्त्रोंसे सजाया गया था। उनमें छोटी-छोटी घंटियोंके साथ झालरें बँधी थीं, जिनके मधुर शब्द सब ओर फैल रहे थे। इस प्रकार उन महान् ध्वजोंके शब्दसे ताड़के जंगलोंकी भाँति उस रणभूमिमें सब ओर झन-झनकी आवाज हो रही थी ॥ ४२-४३½ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा युद्धनन्दिनः ॥ ४४ ॥
व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
प्रसन्न इव मज्जा नो योधानां भरतर्षभ ॥ ४५ ॥
दृष्ट्वाऽग्रतो भीमसेनं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार युद्धसे आनन्दित होनेवाले पुरुषसिंह पाण्डव आपके पुत्रकी वाहिनीके सामने व्यूह बनाकर खड़े थे और हमारे योद्धाओंकी रक्त और मज्जा भी सुखसे देते थे। गदाधारी भीमसेनको आगे खड़ा देख हमारी सारी सेना भयभीत हो रही थी ॥ ४४–४६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि पाण्डवसैन्यव्यूहे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें पाण्डवसेनाका व्यूहनिर्माणविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

# विंशोऽध्यायः

## दोनों सेनाओंकी स्थिति तथा कौरवसेनाका अभियान

*धृतराष्ट्र उवाच*

सूर्योदये संजय के नु पूर्वं
युयुत्सवो हृष्यमाणा इवासन् ।
मामका वा भीष्मनेत्राः समीपे
पाण्डवा वा भीमनेत्रास्तदानीम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! सूर्योदयके समय किस पक्षके योद्धा युद्धकी इच्छासे अधिक हर्षका अनुभव करते हुए जान पड़ते थे ? भीष्मके नेतृत्वमें निकट आये हुए मेरे सैनिक अथवा भीमसेनकी अध्यक्षतामें आनेवाले पाण्डव सैनिक ? उस समय कौन अधिक प्रसन्न थे ? ॥ १ ॥

केषां जघन्यौ सोमसूर्यौ सवायू
केषां सेनां श्वापदाश्चाभषन्त ।
केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः
सर्वं ह्येतद् ब्रूहि तत्त्वं यथावत् ॥ २ ॥

चन्द्रमा, सूर्य और वायु किनके प्रतिकूल थे ? किनकी सेनाकी ओर देखकर हिंसक जन्तु भयकर शब्द करते थे ? किस पक्षके नवयुवकोंके मुखकी कान्ति प्रसन्न थी ? ये सब बातें तुम मुझे ठीक-ठीक बताओ ॥ २ ॥

*संजय उवाच*

उभे सेने तुल्यमिवोपयाते
उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र ।
उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे
तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥ ३ ॥

संजय बोले—नरेन्द्र ! दोनों ओरकी सेनाएँ समान-रूपसे आगे बढ़ रही थीं । दोनों ओरके व्यूहमें खड़े सैनिक हर्षसे उल्लसित थे । दोनों ही सेनाएँ वनश्रेणियोंके समान आश्चर्यरूप प्रतीत होती थीं और दोनों ही हाथी, रथ एवं घोड़ोंसे भरी हुई थीं ॥ ३ ॥

उभे सेने बृहत्यौ भीमरूपे
तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये ।
तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे
तथैवोभे सत्पुरुषोपजुष्टे ॥ ४ ॥

भारत ! दोनों ओरकी सेनाएँ विशाल, भयंकर और दुःसह थीं, मानो विधाताने दोनों सेनाओंको स्वर्गकी प्राप्तिके लिये ही रचा था । दोनोंमें ही सत्पुरुष भरे हुए थे ॥ ४ ॥

पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः
स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः ।
दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां
देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥ ५ ॥

आपके पुत्र कौरवोंका मुख पश्चिम दिशाकी ओर था और कुन्तीके पुत्र उनसे युद्ध करनेके लिये पूर्वाभिमुख खड़े थे । कौरवसेना दैत्यराजकी सेनाके समान जान पड़ती थी और पाण्डववाहिनी देवराज इन्द्रकी सेनाके तुल्य प्रतीत होती थी ॥

चक्रे वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां
धार्तराष्ट्रान् श्वापदा व्याहरन्त ।
गजेन्द्राणां मदगन्धांश्च तीव्रान्
न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः ॥ ६ ॥

पाण्डवसेनाके पीछेकी ओरसे हवा चल रही थी और आपके पुत्रोंकी ओर देखकर हिंसक जन्तु बोल रहे थे । आपके पुत्रकी सेनामें जो हाथी थे, वे पाण्डवपक्षके गजराजोंके मदोंकी तीव्र गन्ध नहीं सहन कर पाते थे ॥ ६ ॥

दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं
सुवर्णकक्षं जालवन्तं प्रभिन्नम् ।
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां
संस्तूयमानो वन्दिभिर्मागधैश्च ॥ ७ ॥

दुर्योधन कमलके समान कान्तिवाले मदस्रावी गजराजपर बैठकर कौरवसेनाके मध्यभागमें खड़ा था । उसके हाथीपर सोनेका हौदा कसा हुआ था और पीठपर सोनेकी जाली बिछी हुई थी । उस समय वन्दी और मागधजन उसकी स्तुति कर रहे थे ॥ ७ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

चन्द्रप्रभं श्वेतमथातपत्रं
सौवर्णस्रग् भ्राजति चोत्तमाङ्गे।
तं सर्वतः शकुनिः पार्वतीयैः
सार्धं गान्धारैर्याति गान्धारराजः॥ ८ ॥

उसके मस्तकपर चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्वेत छत्र तना हुआ था और कण्ठमें सोनेकी माला सुशोभित हो रही थी। गान्धारराज शकुनि गान्धारदेशके पर्वतीय योद्धाओंके साथ आकर दुर्योधनको सब ओरसे घेरकर चल रहा था॥८॥

भीष्मोऽग्रतः सर्वसैन्यस्य वृद्धः
श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सखड्गः।
श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन
श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशैः॥ ९ ॥

हमारी सम्पूर्ण सेनाके आगे बूढ़े पितामह भीष्म थे। उनके सिरपर श्वेत रंगकी पगड़ी थी और श्वेत वर्णका ही छत्र तना हुआ था। उनके धनुष और खड्ग भी श्वेत ही थे। वे श्वेत शैलके समान प्रकाशित होनेवाले श्वेत घोड़ों और श्वेत ध्वजसे सुशोभित हो रहे थे॥ ९ ॥

तस्य सैन्ये धार्तराष्ट्राश्च सर्वे
बाह्लीकानामेकदेशः शलश्च।
ये चाम्बष्ठाः क्षत्रिया ये च सिन्धौ
स्तथा सौवीराः पञ्चनदाश्च शूराः॥१०॥

उनकी सेनामें आपके सभी पुत्र, बाह्लीकसेनाका एक अंश, शल और अम्बष्ठ, सौवीर, सिन्धु तथा पञ्चनद देशके शूरवीर क्षत्रिय विद्यमान थे॥ १० ॥

शोणैर्हयै रुक्मरथो महात्मा
द्रोणो धनुष्पाणिरदीनसत्त्वः।
आस्ते गुरुः प्रायशः सर्वराज्ञां
पश्चाच्च भूमीन्द्र इवाभियाति॥ ११॥

उनके पीछे प्रायः समस्त राजाओंके गुरु, उदार हृदयवाले महामना द्रोणाचार्य हाथमें धनुष लिये लाल घोड़ोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथमें बैठकर भूमिपालकी भाँति युद्धके लिये जा रहे थे॥

वार्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये
भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च।
शाल्वा मत्स्याः केकयाश्चेति सर्वे
गजानीकैर्भ्रातरो योत्स्यमानाः॥ १२ ॥

वृद्धक्षत्रका पुत्र जयद्रथ, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, शाल्व और मत्स्यदेशीय क्षत्रिय तथा सब भाई केकयराजकुमार युद्धकी इच्छासे हाथियोंके समूहोंको साथ ले सम्पूर्ण सेनाके मध्यभागमें स्थित थे॥ १२ ॥

शारद्वतश्चोत्तरधूर्महात्मा
महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी।
शकैः किरातैर्यवनैः पह्लवैश्च
सार्धं चमूमुत्तरतोऽभियाति॥ १३ ॥

महान् धनुर्धर और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले गौतमवंशीय महामना कृपाचार्य गुरुतर भार ग्रहण करके शक, किरात, यवन तथा पह्लव सैनिकोंके साथ कौरवसेनाके बाँयें भागमें होकर चल रहे थे॥ १३ ॥

महारथैर्वृष्णिभोजैः सुगुप्तं
सुराष्ट्रकैर्विहितैरात्तशस्त्रैः।
बृहद् बलं कृतवर्माभिगुप्तं
बलं त्वदीयं दक्षिणेनाभियाति॥ १४ ॥

हाथमें हथियार लिये सुशिक्षित सुराष्ट्रदेशीय वीरों तथा वृष्णि और भोजवंशके महारथियोंद्वारा पालित विशाल सेना कृतवर्माद्वारा सुरक्षित होकर आपकी सेनाके दाहिने भागसे होकर युद्धके लिये यात्रा कर रही थी॥ १४ ॥

संशप्तकानामयुतं रथानां
मृत्युर्जयो वार्जुनस्येति सृष्टाः।
येनार्जुनस्तेन राजन् कृतास्त्राः
प्रयातारस्ते त्रिगर्ताश्च शूराः॥ १५ ॥

'या तो हम अर्जुनपर विजय प्राप्त करेंगे अथवा हमारी मृत्यु हो जायगी' ऐसी प्रतिज्ञा करके दस हजार संशप्तक रथी तथा बहुत-से अस्त्रवेत्ता त्रिगर्तदेशीय शूरवीर जिस ओर अर्जुन थे, उसी ओर जा रहे थे॥ १५ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु नागानां तव भारत।
नागे नागे रथशतं शतमश्वा रथे रथे॥ १६ ॥

भारत! आपकी सेनामें एक लाखसे अधिक हाथी थे। एक-एक हाथीके साथ सौ-सौ रथ थे और एक-एक रथके साथ सौ-सौ घोड़े थे॥ १६ ॥

अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के शतचर्मिणः।
एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत॥ १७ ॥

प्रत्येक अश्वके पीछे दस-दस धनुर्धर और प्रत्येक धनुर्धरके साथ सौ-सौ पैदल सैनिक नियुक्त किये गये थे, जो ढाल तलवार लिये रहते थे। भरतनन्दन! इस प्रकार भीष्मजीने आपकी सेनाओंका व्यूह रचा था॥१७॥

संव्यूह्य मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवोऽग्रणीः॥ १८ ॥
महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान्।
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि॥ १९ ॥

शान्तनुनन्दन सेनापति भीष्म प्रत्येक दिन मानुष, दैव, गान्धर्व और आसुर प्रणालीके अनुसार व्यूह-रचना करके सेनाके अग्रभागमें स्थित होते थे। भीष्मद्वारा रचित कौरव-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सेनाका वह व्यूह महारथियोंके समुदायसे सम्पन्न हो समुद्रके समान गर्जना करता था । युद्धमें उसका मुख पश्चिमकी ओर था ॥ १८-१९ ॥

अनन्तरूपा ध्वजिनी नरेन्द्र
भीमा त्वदीया न तु पाण्डवानाम्।
तां चैव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधर्षां
यस्या नेता केशवश्चार्जुनश्च ॥ २० ॥

नरेन्द्र ! आपकी सेना अनन्त रूपवाली, एवं भयंकर थी; पाण्डवोंकी वैसी नहीं थी । परंतु मैं तो उसी सेनाको विशाल और दुर्जय मानता हूँ, जिसके नेता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सैन्यवर्णनविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

# एकविंशोऽध्यायः

## कौरवसेनाको देखकर युधिष्ठिरका विषाद करना और 'श्रीकृष्णकी कृपासे ही विजय होती है' यह कहकर अर्जुनका उन्हें आश्वासन देना

*संजय उवाच*

**बृहतीं धार्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम् ।**
**विषादमगमद् राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥**

**संजय कहते हैं**—राजन् ! युद्धके लिये उद्यत हुई दुर्योधनकी विशाल सेनाको देखकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें विषाद छा गया ॥ १ ॥

**व्यूहं भीष्मेण चाभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।**
**अक्षोभ्यमिव सम्प्रेक्ष्य विवर्णोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २ ॥**

भीष्मने जिस व्यूहकी रचना की थी, उसका भेदन करना असम्भव था । उसे अक्षोभ्य-सा देखकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी अङ्ग-कान्ति फीकी पड़ गयी । वे अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

**धनंजय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे ।**
**धार्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः ॥ ३ ॥**

'महाबाहु धनंजय ! जिनके प्रधान योद्धा पितामह भीष्म हैं, उन धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ हम समरभूमिमें कैसे युद्ध कर सकते हैं ? ॥ ३ ॥

**अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणामित्रकर्षिणा ।**
**कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरिवर्चसा ॥ ४ ॥**

'महातेजस्वी शत्रुसूदन भीष्मने शास्त्रीय विधिके अनुसार यह अक्षोभ्य एवं अभेद्य व्यूह रचा है ॥ ४ ॥

**ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्षण ।**
**कथमस्मान्महाव्यूहादुत्थानं नो भविष्यति ॥ ५ ॥**

'शत्रुनाशन अर्जुन ! हमलोग अपनी सेनाओंके साथ प्राणसंकटकी स्थितिमें पहुँच गये हैं । इस महान् व्यूहसे हमारा उद्धार कैसे होगा ?' ॥ ५ ॥

**अथार्जुनोऽब्रवीत् पार्थं युधिष्ठिरममित्रहा ।**
**विषण्णमिव सम्प्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम् ॥ ६ ॥**

राजन् ! तब शत्रुओंका नाश करनेवाले अर्जुनने आपकी सेनाको देखकर विषादग्रस्त-से हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको सम्बोधित करके कहा—॥ ६ ॥

**प्रज्ञयाभ्यधिकाञ्शूरान् गुणयुक्तान् बहूनपि ।**
**जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशाम्पते ॥ ७ ॥**

'प्रजानाथ ! अधिक बुद्धिमान्, उत्तम गुणोंसे युक्त तथा बहुसंख्यक शूरवीरोंको भी बहुत थोड़े योद्धा जिस प्रकार जीत लेते हैं, उसे बतलाता हूँ, सुनिये—॥ ७ ॥

**तत्र ते कारणं राजन् प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।**
**नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव ॥ ८ ॥**

'राजन् ! आप दोषदृष्टिसे रहित हैं, अतः आपको वह युक्ति बताता हूँ । पाण्डुनन्दन ! उसे केवल देवर्षि नारद, भीष्म तथा द्रोणाचार्य जानते हैं ॥ ८ ॥

**एतमेवार्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत् ।**
**पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन् दिवौकसः ॥ ९ ॥**

'कहते हैं, पूर्वकालमें जब देवासुर-संग्राम हो रहा था, उस समय इसी विषयको लेकर पितामह ब्रह्माने इन्द्र आदि देवताओंसे इस प्रकार कहा था—॥ ९ ॥

**न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः ।**
**यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च ॥ १० ॥**

'विजयकी इच्छा रखनेवाले शूरवीर अपने बल और पराक्रमसे वैसी विजय नहीं पाते, जैसी कि सत्य, सज्जनता, धर्म तथा उत्साहसे प्राप्त कर लेते हैं ॥ १० ॥

**त्यक्त्वाधर्मं च लोभं च मोहं चोद्यममास्थिताः ।**
**युद्ध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ११ ॥**

'देवताओ ! अधर्म, लोभ और मोह त्यागकर उद्यमका सहारा ले अहंकारशून्य होकर युद्ध करो । जहाँ धर्म है उसी पक्षकी विजय होती है' ॥ ११ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एवं राजन् विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणे जयः।
यथा मे नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १२ ॥

राजन्! इसी नियमके अनुसार आप भी यह निश्चितरूपसे जान लें कि युद्धमें हमारी विजय अवश्यम्भावी है। जैसा कि नारदजीने कहा है, जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ विजय है ॥ १२ ॥

गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम्।
तद् यथा विजयश्चास्य संनतिश्चापरो गुणः ॥ १३ ॥

'विजय तो श्रीकृष्णका एक गुण है; अतः वह उनके पीछे-पीछे चलता है। जैसे विजय गुण है, उसी प्रकार विनय भी उनका द्वितीय गुण है ॥ १३ ॥
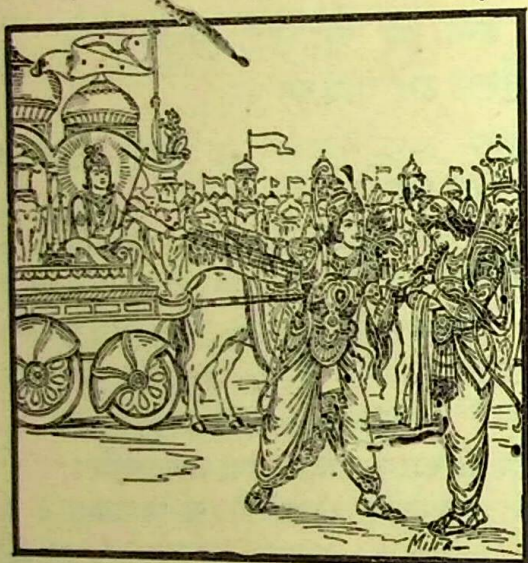
अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः।
पुरुषः सनातनतमो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १४ ॥

'भगवान् गोविन्दका तेज अनन्त है। वे शत्रुओंके समुदायमें भी कभी व्यथित नहीं होते; क्योंकि वे सनातन पुरुष (परमात्मा) हैं। अतः जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है ॥ १४ ॥

पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत् के जयन्त्विति ॥ १५ ॥

'ये श्रीकृष्ण कहीं भी प्रतिहत या अवरुद्ध न होनेवाले ईश्वर हैं। इनका बाण अमोघ है। ये ही पूर्वकालमें श्रीहरि-रूपमें प्रकट हो वज्रगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें देवताओं और असुरोंसे बोले—तुमलोगोंमेंसे किसकी विजय हो? ॥ १५ ॥

कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम्।
तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥

'उस समय जिन लोगोंने उनका आश्रय लेकर पूछा—'कृष्ण! हमारी जीत कैसे होगी?' उन्हींकी जीत हुई। इस प्रकार श्रीकृष्णकी कृपासे ही इन्द्र आदि देवताओंने त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया है ॥ १६ ॥

तस्य ते न व्यथां काञ्चिदिह पश्यामि भारत।
यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः ॥ १७ ॥

'अतः भारत! मैं आपके लिये किसी प्रकारकी व्यथा या चिन्ता होनेका कारण नहीं देखता; क्योंकि देवेश्वर तथा विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्ण आपके लिये विजयकी आशा करते हैं' ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें युधिष्ठिर-अर्जुनसंवादविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

---

# द्वाविंशोऽध्यायः

## युधिष्ठिरकी रणयात्रा, अर्जुन और भीमसेनकी प्रशंसा तथा श्रीकृष्णका अर्जुनसे कौरवसेनाको मारनेके लिये कहना

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत्।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने भीष्मजीकी सेनाका सामना करनेके लिये अपनी सेनाकी व्यूह-रचना करके उसे युद्धके लिये प्रेरित किया ॥ १ ॥

यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः।
स्वर्गं परममिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥ २ ॥

कुरुकुलके धुरन्धर वीर पाण्डवोंने उत्तम युद्धके द्वारा उत्कृष्ट स्वर्गलोककी इच्छा रखकर शास्त्रोक्त विधिसे शत्रुके मुकाबिलेमें अपनी सेनाका व्यूह-निर्माण किया ॥ २ ॥

मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना।
धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३ ॥

व्यूहके मध्यभागमें सव्यसाची अर्जुनद्वारा सुरक्षित शिखण्डीकी सेना थी और अग्रभागमें भीमसेनद्वारा रक्षित धृष्टद्युम्न विचरण कर रहे थे ॥ ३ ॥

अनीकं दक्षिणं राजन् युयुधानेन पालितम्।
श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥ ४ ॥

राजन्! उस व्यूहके दक्षिण भागकी रक्षा इन्द्रके समान धनुर्धर सात्वतशिरोमणि श्रीमान् सात्यकि कर रहे थे ॥ ४ ॥

महेन्द्रयानप्रतिमं रथं तु
सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम्।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

युधिष्ठिरः काञ्चनभाण्डयोक्त्रं
समास्थितो नागपुरस्य मध्ये ॥ ५ ॥

राजा युधिष्ठिर हाथियोंकी सेनाके बीचमें खड़े एक सुन्दर रथपर आरूढ़ हुए, जो देवराज इन्द्रके रथकी समानता कर रहा था। उस रथमें सब आवश्यक सामग्री रक्खी गयी थी। भाँति-भाँतिके सुवर्ण तथा रत्नोंसे विभूषित होनेके कारण उस रथकी विचित्र शोभा हो रही थी। उसमें सुवर्णमय भाण्ड तथा रस्सियाँ रक्खी हुई थीं ॥ ५ ॥

समुच्छ्रितं दन्तशलाकमस्य
सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति।
प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्त
महर्षयः संस्तुतिभिर्महेन्द्रम् ॥ ६ ॥

उस समय किसी सेवकने युधिष्ठिरके ऊपर हाथीके दाँतों-की बनी हुई शलाकाओंसे युक्त श्वेत छत्र लगा रक्खा था, जिसकी बड़ी शोभा हो रही थी। कुछ महर्षिगणोंने नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा महाराज युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की ॥ ६ ॥

पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो
ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम्।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च महौषधीभिः
समन्ततः स्वस्त्ययनं ब्रुवन्तः ॥ ७ ॥

शास्त्रोंके विद्वान् पुरोहित, ब्रह्मर्षि और सिद्धगण जप, मन्त्र तथा उत्तम ओषधियोंद्वारा सब ओरसे युधिष्ठिरके कल्याण और शत्रुओंके संहारका शुभ आशीर्वाद देने लगे ॥ ७ ॥

ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान्।
कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा
कुर्वन् ययौ शक्र इवामरेशः ॥ ८ ॥

उस समय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी कुरुश्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिर बहुत-से वस्त्र, गाय, फल-फूल और स्वर्णमय आभूषण ब्राह्मणोंको दान करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ८ ॥

सहस्रसूर्यः शतकिङ्किणीकः
परार्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः।
रथोऽर्जुनस्याग्निरिवार्चिमाली
विभ्राजते श्वेतहयः सुचक्रः ॥ ९ ॥

अर्जुनका रथ ज्वालमालाओंसे युक्त अग्निके समान शोभा पा रहा था। उसमें सूर्यकी आकृतिके सहस्रों चक्र विद्यमान थे। सैकड़ों क्षुद्र घंटिकाएँ लगी थीं। बहुमूल्य जाम्बूनद नामक सुवर्णसे भूषित होनेके कारण उस रथकी विचित्र शोभा हो रही थी। उसमें श्वेत रंगके घोड़े और सुन्दर पहिये लगे थे ॥ ९ ॥

तमास्थितः केशवसंगृहीतं
कपिध्वजो गाण्डिवबाणपाणिः।
धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां
न विद्यते नो भविता कदाचित् ॥ १० ॥

गाण्डीव धनुष और बाण हाथमें लिये वे कपिध्वज अर्जुन उस रथपर आरूढ़ थे। भगवान् श्रीकृष्णने उसकी बागडोर सँभाल रखी थी। अर्जुनके समान धनुर्धर इस भूतलपर न तो कोई है और न होगा ही ॥ १० ॥

उद्वर्तयिष्यंस्तव पुत्रसेना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
अनायुधो यः सुभुजो भुजाभ्यां
नराश्वनागान् युधि भस्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

महाराज! जो सुन्दर बाहोंवाले भीमसेन बिना आयुधके केवल भुजाओंसे ही युद्धमें मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको भस्म कर सकते हैं, उन्होंने ही आपके पुत्रोंकी सेनाका संहार कर डालनेके लिये अत्यन्त रौद्र रूप धारण कर रक्खा है ॥ ११ ॥

स भीमसेनः सहितो यमाभ्यां
वृकोदरो वीररथस्य गोप्ता।
तं तत्र सिंहर्षभमत्तखेलं
लोके महेन्द्रप्रतिमानकल्पम् ॥ १२ ॥
समीक्ष्य सेनाग्रगतं दुरासदं
संविव्यथुः पङ्कगता यथा द्विपाः।
वृकोदरं वारणराजदर्पं
योधास्त्वदीया भयविग्नसत्त्वाः ॥ १३ ॥

वृकोदर भीमसेन नकुल और सहदेवके साथ रहकर अपने वीर रथी धृष्टद्युम्नकी रक्षा कर रहे थे। जो सिंहों और साँड़ोंके समान उन्मत्त-से होकर युद्धका खेल खेलते हैं, जिनका दर्प गजराजके समान बढ़ा हुआ है तथा जो लोकमें देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी हैं, उन्हीं दुर्धर्ष वीर भीमसेनको सेना-के अग्रभागमें उपस्थित देख आपके सैनिक भयसे उद्विग्न-चित्त हो कीचड़में फँसे हुए हाथियोंकी भाँति व्यथित हो उठे ॥

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं राजपुत्रं दुरासदम्।
अब्रवीद् भरतश्रेष्ठं गुडाकेशं जनार्दनः ॥ १४ ॥

उस समय सेनाके मध्यभागमें खड़े हुए दुर्जय वीर निद्राविजयी भरतश्रेष्ठ राजकुमार अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा ॥ १४ ॥

वासुदेव उवाच

य एष रोषात् प्रतपन् बलस्थो
यो नः सेनां सिंह इवेक्षते च।
स एष भीष्मः कुरुवंशकेतु-
र्येनाहृतास्त्रिशतं वाजिमेधाः ॥ १५ ॥



CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रीभगवान् वासुदेव बोले—धनंजय ! ये जो अपनी सेनाके मध्यभागमें स्थित हो रोषसे तप रहे हैं और सिंहके समान हमारी सेनाकी ओर देखते हैं, ये ही कुरुकुलकेतु भीष्मजी हैं, जिन्होंने एक तीन सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया है।

एतान्यनीकानि महानुभावं
गूहन्ति मेघा इव रश्मिमन्तम् ।
एतानि हत्वा पुरुषप्रवीर
काङ्क्षस्व युद्धं भरतर्षभेण ॥ १६ ॥

जैसे बादल अंशुमाली सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार ये सारी सेनाएँ इन महानुभाव भीष्मको आच्छादित किये हुए हैं। नरवीर अर्जुन ! तुम पहले इन सेनाओंको मारकर भरतकुलभूषण भीष्मजीके साथ युद्धकी अभिलाषा करो ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णार्जुनसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

## त्रयोविंशोऽध्यायः

### अर्जुनके द्वारा दुर्गादेवीकी स्तुति, वरप्राप्ति और अर्जुनकृत दुर्गास्तवनके पाठकी महिमा

*संजय उवाच*

**धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ।
अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥**

**संजय कहते हैं**—दुर्योधनकी सेनाको युद्धके लिये उपस्थित देख श्रीकृष्णने अर्जुनके हितके लिये इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

*श्रीभगवानुवाच*

**शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २ ॥**

**श्रीभगवान् बोले**—महाबाहो ! तुम युद्धके सम्मुख खड़े हो। पवित्र होकर शत्रुओंको पराजित करनेके लिये दुर्गादेवीकी स्तुति करो ॥ २ ॥

*संजय उवाच*

**एवमुक्तोऽर्जुनः संख्ये वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात् पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥**

**संजय कहते हैं**—परम बुद्धिमान् भगवान् वासुदेवके द्वारा रणक्षेत्रमें इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर कुन्तीकुमार अर्जुन रथसे नीचे उतरकर दुर्गादेवीकी स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

*अर्जुन उवाच*

**नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि ।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥ ४ ॥
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५ ॥**

**अर्जुन बोले**—मन्दराचलपर निवास करनेवाली सिद्धोंकी सेनानेत्री आर्ये ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। तुम्हीं कुमारी, काली, कापाली, कपिला, कृष्णपिङ्गला, भद्रकाली और महाकाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध हो; तुम्हें बारम्बार प्रणाम है। दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण तुम चण्डी कहलाती हो, भक्तोंको संकटसे तारनेके कारण तारिणी हो, तुम्हारे शरीरका दिव्य वर्ण बहुत ही सुन्दर है; मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥ ४-५ ॥

**कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥ ६ ॥**

महाभागे ! तुम्हीं ( सौम्य और सुन्दर रूपवाली ) पूजनीया कात्यायनी हो और तुम्हीं विकराल रूपधारिणी काली हो। तुम्हीं विजया और जयाके नामसे विख्यात हो। मोरपंखकी तुम्हारी ध्वजा है। नाना प्रकारके आभूषण तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

**अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥ ७ ॥**

तुम भयंकर त्रिशूल, खड्ग और खेटक आदि आयुधोंको धारण करती हो। नन्दगोपके वंशमें तुमने अवतार लिया था, इसलिये गोपेश्वर श्रीकृष्णकी तुम छोटी बहिन हो; परंतु गुण और प्रभावमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ७ ॥

**महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८ ॥**

महिषासुरका रक्त बहाकर तुम्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। तुम कुशिकगोत्रमें अवतार लेनेके कारण कौशिकी नामसे भी प्रसिद्ध हो। तुम पीताम्बर धारण करती हो। जब तुम शत्रुओंको देखकर अट्टहास करती हो, उस समय तुम्हारा मुख चक्रवाकके समान उद्दीप्त हो उठता है। युद्ध तुम्हें बहुत ही प्रिय है। मैं तुम्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

**उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥**

उमा, शाकम्भरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी और सुधूम्राक्षी आदि नाम धारण करनेवाली देवि ! तुम्हें अनेकों बार नमस्कार है ॥ ९ ॥

**वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥ १० ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तुम वेदोंकी श्रुति हो, तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त पवित्र है; वेद और ब्राह्मण तुम्हें प्रिय हैं। तुम्हीं जातवेदा अग्निकी शक्ति हो; जम्बू, कटक और चैत्यवृक्षोंमें तुम्हारा नित्य निवास है ॥ १० ॥

**त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।**
**स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥ ११ ॥**

तुम समस्त विद्याओंमें ब्रह्मविद्या और देहधारियोंकी महानिद्रा हो। भगवति! तुम कार्तिकेयकी माता हो, दुर्गम स्थानोंमें वास करनेवाली दुर्गा हो ॥ ११ ॥

**स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती।**
**सावित्रि वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥ १२ ॥**

सावित्रि! स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेदमाता तथा वेदान्त—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं ॥ १२ ॥

**स्तुतासि त्वं महादेवि विशुद्धेनान्तरात्मना।**
**जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद् रणाजिरे ॥ १३ ॥**

महादेवि! मैंने विशुद्ध हृदयसे तुम्हारा स्तवन किया है। तुम्हारी कृपासे इस रणाङ्गणमें मेरी सदा ही जय हो ॥ १३ ॥

**कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च।**
**नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥ १४ ॥**

माँ! तुम घोर जंगलमें, भयपूर्ण दुर्गम स्थानोंमें, भक्तोंके घरोंमें तथा पातालमें भी नित्य निवास करती हो। युद्धमें दानवोंको हराती हो ॥ १४ ॥

**त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च।**
**संध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥ १५ ॥**

तुम्हीं जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री और जननी हो ॥ १५ ॥

**तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी।**
**भूतिर्भूतिमतां सङ्ख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥ १६ ॥**

तुष्टि, पुष्टि, धृति तथा सूर्य-चन्द्रमाको बढ़ानेवाली दीप्ति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं ऐश्वर्यवानोंकी विभूति हो। युद्धभूमिमें सिद्ध और चारण तुम्हारा दर्शन करते हैं ॥ १६ ॥

संजय उवाच

**ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला।**
**अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याग्रतः स्थिता ॥ १७ ॥**

**संजय कहते हैं**—राजन्! अर्जुनकी इस भक्तिभावनाका अनुभव करके मनुष्योंपर वात्सल्य-भाव रखनेवाली माता दुर्गा अन्तरिक्षमें भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयीं और इस प्रकार बोलीं ॥ १७ ॥

देव्युवाच

**स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रूञ्जेष्यसि पाण्डव।**
**नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥**
**अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम् ।**

देवीने कहा—पाण्डुनन्दन! तुम थोड़े ही समयमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे। दुर्धर्ष वीर! तुम तो साक्षात् नर हो। ये साक्षात् नारायण तुम्हारे सहायक हैं। तुम रणक्षेत्रमें शत्रुओंके लिये अजेय हो। साक्षात् इन्द्र भी तुम्हें पराजित नहीं कर सकते ॥ १८½ ॥

**इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनान्तरधीयत ॥ १९ ॥**
**लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः।**
**आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मतम् ॥ २० ॥**

ऐसा कहकर वरदायिनी देवी दुर्गा वहाँसे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयीं। वह वरदान पाकर कुन्तीकुमार अर्जुनको अपनी विजयका विश्वास हो गया। फिर वे अपने परम सुन्दर रथपर आरूढ़ हुए ॥ १९-२० ॥

**कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।**

फिर एक रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने दिव्य शङ्ख बजाये।

**य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥**
**यक्षरक्षःपिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा।**

जो मनुष्य सबेरे उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे यक्ष, राक्षस और पिशाचोंसे कभी भय नहीं होता ॥ २१½ ॥

**न चापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥ २२ ॥**
**न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि।**
**विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ २३ ॥**

शत्रु तथा सर्प आदि विषैले दाँतोंवाले जीव भी उनको कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। राजकुलसे भी उन्हें कोई भय नहीं होता है। इसका पाठ करनेसे विवादमें विजय प्राप्त होती है और बंदी बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २२-२३ ॥

**दुर्गं तरति चावश्यं तथा चौरैर्विमुच्यते।**
**संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ॥ २४ ॥**

वह दुर्गम संकटसे अवश्य पार हो जाता है। चोर भी उसे छोड़ देते हैं। वह संग्राममें सदा विजयी होता और विशुद्ध लक्ष्मी प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

**आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद् वर्षशतं तथा।**
**एतद् दृष्टं प्रसादात् तु मया व्यासस्य धीमतः ॥ २५ ॥**

इतना ही नहीं, इसका पाठ करनेवाला पुरुष आरोग्य और बलसे सम्पन्न हो सौ वर्षोंकी आयुतक जीवित रहता है। यह

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

[illegible] वासुदेव बोले—धनंजय ! ये जो अपनी सेनाके [illegible] रोषसे तप रहे हैं और सिंहके समान हमारी [illegible] ओर देखते हैं, ये ही [illegible] कुरुकेतु भीष्म हैं, जिन्होंने [illegible] तीन सौ अश्वमेध [illegible] का अनुष्ठान किया है।

[illegible] यनीकानि महानुभावं
गूहन्ति मेघा इव रश्मिमन्तम् ।
एतानि हत्वा [illegible] पुरुषप्रवीर
[illegible] युद्धं [illegible] भरतर्षभेण ॥ १६ ॥

जैसे बादल अंशुमाली सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार [illegible] सारी सेनाएँ इन महानुभाव भीष्मको आच्छादित किये हुए हैं । नरवीर अर्जुन ! तुम पहले इन सेनाओंको मारकर भरतकुलभूषण भीष्मजीके साथ युद्धकी अभिलाषा करो ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णार्जुनसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

## त्रयोविंशोऽध्यायः

### अर्जुनके द्वारा दुर्गादेवीकी स्तुति, वरप्राप्ति और अर्जुनकृत दुर्गास्तवनके पाठकी महिमा

*संजय उवाच*

**धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ।**
**अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥**

**संजय कहते हैं**—दुर्योधनकी सेनाको युद्धके लिये उपस्थित देख श्रीकृष्णने अर्जुनके हितके लिये इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

*श्रीभगवानुवाच*

**शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः ।**
**पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २ ॥**

**श्रीभगवान् बोले**—महाबाहो ! तुम युद्धके सम्मुख खड़े हो । पवित्र होकर शत्रुओंको पराजित करनेके लिये दुर्गादेवीकी स्तुति करो ॥ २ ॥

*संजय उवाच*

**एवमुक्तोऽर्जुनः संख्ये वासुदेवेन धीमता ।**
**अवतीर्य रथात् पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥**

**संजय कहते हैं**—परम बुद्धिमान् भगवान् वासुदेवके द्वारा रणक्षेत्रमें इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर कुन्तीकुमार अर्जुन रथसे नीचे उतरकर दुर्गादेवीकी स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

*अर्जुन उवाच*

**नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि ।**
**कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥ ४ ॥**
**भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते ।**
**चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५ ॥**

**अर्जुन बोले**—मन्दराचलपर निवास करनेवाली सिद्धोंकी सेनानेत्री आर्ये ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है । तुम्हीं कुमारी, काली, कापाली, कपिला, कृष्णपिङ्गला, भद्रकाली और महाकाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध हो; तुम्हें बारम्बार प्रणाम है । दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण तुम चण्डी कहलाती हो, भक्तोंको संकटसे तारनेके कारण तारिणी हो, तुम्हारे शरीरका दिव्य वर्ण बहुत ही सुन्दर है; मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥ ४-५ ॥

**कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।**
**शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥ ६ ॥**

महाभागे ! तुम्हीं ( सौम्य और सुन्दर रूपवाली ) पूजनीया कात्यायनी हो और तुम्हीं विकराल रूपधारिणी काली हो । तुम्हीं विजया और जयाके नामसे विख्यात हो । मोरपंखकी तुम्हारी ध्वजा है । नाना प्रकारके आभूषण तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

**अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।**
**गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥ ७ ॥**

[illegible] तुम भयंकर त्रिशूल, खड्ग और खेटक आदि आयुधोंको धारण करती हो । नन्दगोपके वंशमें तुमने अवतार लिया था, इसलिये गोपेश्वर श्रीकृष्णकी तुम छोटी बहिन हो; परंतु गुण और प्रभावमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ७ ॥

**महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।**
**अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८ ॥**

महिषासुरका रक्त बहाकर तुम्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी । तुम कुशिकगोत्रमें अवतार लेनेके कारण कौशिकी नामसे भी प्रसिद्ध हो । तुम पीताम्बर धारण करती हो । जब तुम शत्रुओंको देखकर अट्टहास करती हो, उस समय तुम्हारा मुख चक्रवाकके समान उद्दीप्त हो उठता है । युद्ध तुम्हें बहुत ही प्रिय है । मैं तुम्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

**उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।**
**हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥**

[illegible] उमा, शाकम्भरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी और सुधूम्राक्षी आदि नाम धारण करनेवाली देवि ! तुम्हें अनेकों बार नमस्कार है ॥ ९ ॥

**वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।**
**जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥ १० ॥**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तुम वेदोंकी श्रुति हो, तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त पवित्र है; वेद और ब्राह्मण तुम्हें प्रिय हैं। तुम्हीं जातवेदा अग्निकी शक्ति हो; जम्बू, कटक और चैत्यवृक्षोंमें तुम्हारा नित्य निवास है ॥ १० ॥

**त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।**
**स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥ ११ ॥**

तुम समस्त विद्याओंमें ब्रह्मविद्या और देहधारियोंकी महानिद्रा हो। भगवति ! तुम कार्तिकेयकी माता हो, दुर्गम स्थानोंमें वास करनेवाली दुर्गा हो ॥ ११ ॥

**स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती ।**
**सावित्रि वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥ १२ ॥**

सावित्रि ! स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेदमाता तथा वेदान्त—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं ॥ १२ ॥

**स्तुतासि त्वं महादेवि विशुद्धेनान्तरात्मना ।**
**जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद् रणाजिरे ॥ १३ ॥**

महादेवि ! मैंने विशुद्ध हृदयसे तुम्हारा स्तवन किया है। तुम्हारी कृपासे इस रणाङ्गणमें मेरी सदा ही जय हो ॥ १३ ॥

**कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च ।**
**नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥ १४ ॥**

माँ ! तुम घोर जंगलमें, भयपूर्ण दुर्गम स्थानोंमें, भक्तोंके घरोंमें तथा पातालमें भी नित्य निवास करती हो। युद्धमें दानवोंको हराती हो ॥ १४ ॥

**त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च ।**
**संध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥ १५ ॥**

तुम्हीं जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री और जननी हो ॥ १५ ॥

**तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी ।**
**भूतिर्भूतिमतां सङ्ख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥ १६ ॥**

तुष्टि, पुष्टि, धृति तथा सूर्य-चन्द्रमाको बढानेवाली दीप्ति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं ऐश्वर्यवानोंकी विभूति हो। युद्धभूमिमें सिद्ध और चारण तुम्हारा दर्शन करते हैं ॥ १६ ॥

संजय उवाच

**ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला ।**
**अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याग्रतः स्थिता ॥ १७ ॥**

**संजय कहते हैं**—राजन् ! अर्जुनकी इस भक्तिभावको अनुभव करके मनुष्योंपर वात्सल्य-भाव रखनेवाली माता दुर्गा अन्तरिक्षमें भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयीं और इस प्रकार बोलीं ॥ १७ ॥

देव्युवाच

**स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रूञ्जेष्यसि पाण्डव ।**
**नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥**
**अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम् ।**

देवीने कहा—पाण्डुनन्दन ! तुम थोड़े ही समयमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे। दुर्धर्ष वीर ! तुम तो साक्षात् नर हो। ये साक्षात् नारायण तुम्हारे सहायक हैं। तुम रणक्षेत्रमें शत्रुओंके लिये अजेय हो। साक्षात् इन्द्र भी तुम्हें पराजित नहीं कर सकते ॥ १८½ ॥

**इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनान्तरधीयत ॥ १९ ॥**
**लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः ।**
**आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मतम् ॥ २० ॥**

ऐसा कहकर वरदायिनी देवी दुर्गा वहाँसे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयीं। वह वरदान पाकर कुन्तीकुमार अर्जुनको अपनी विजयका विश्वास हो गया। फिर वे अपने परम सुन्दर रथपर आरूढ हुए ॥ १९-२० ॥

**कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।**

फिर एक रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने दिव्य शङ्ख बजाये ।

**य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥**
**यक्षरक्षःपिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा ।**

जो मनुष्य सबेरे उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे यक्ष, राक्षस और पिशाचोंसे कभी भय नहीं होता ॥ २१½ ॥

**न चापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥ २२ ॥**
**न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि ।**
**विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ २३ ॥**

शत्रु तथा सर्प आदि विषैले दाँतोंवाले जीव भी उनको कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। राजकुलसे भी उन्हें कोई भय नहीं होता है। इसका पाठ करनेसे विवादमें विजय प्राप्त होती है और बंदी बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २२-२३ ॥

**दुर्गं तरति चावश्यं तथा चौरैर्विमुच्यते ।**
**संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ॥ २४ ॥**

वह दुर्गम संकटसे अवश्य पार हो जाता है। चोर भी उसे छोड़ देते हैं। वह संग्राममें सदा विजयी होता और विशुद्ध लक्ष्मी प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

**आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद् वर्षशतं तथा ।**
**एतद् दृष्टं प्रसादात् तु मया व्यासस्य धीमतः ॥ २५ ॥**

इतना ही नहीं, इसका पाठ करनेवाला पुरुष आरोग्य और बलसे सम्पन्न हो सौ वर्षोंकी आयुतक जीवित रहता है। यह

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

... बुद्धिमान् ... व्यासजीके कृपा-प्रसादसे मैंने ... ॥ २५ ॥

मोहा ... ॥

नैव ... दुरात्मानः सर्वे ... ॥ २६ ॥

राजन् ! आपके सभी दुरात्मा ... क्रोधके वशीभूत हो मोहवश यह नहीं जानते हैं कि ये श्रीकृष्ण और अर्जुन ही साक्षात् नर-नारायण ऋषि हैं ॥ २६ ॥

प्रासका ... मिदं वाक्यं कालपाशेन गुण्ठिताः ।
द्वैपायनो नारदश्च कण्वो रामस्तथानघ ।
अवारयंस्तव सुत न चासौ तद् गृहीतवान् ॥ २७ ॥

वे कालपाशसे बद्ध होनेके कारण इस समयोचित बातको बतानेपर भी नहीं सुनते । द्वैपायन व्यास, नारद, कण्व तथा पापशून्य परशुरामने तुम्हारे पुत्रको बहुत रोका था; परंतु उसने उनकी बात नहीं मानी ॥ २७ ॥

यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः ।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ २८ ॥

जहाँ न्यायोचित बर्ताव, तेज और कान्ति है, जहाँ ह्री, श्री और बुद्धि है तथा जहाँ धर्म विद्यमान है, वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि दुर्गास्तोत्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें दुर्गास्तोत्रविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

---

# चतुर्विंशोऽध्यायः

## सैनिकोंके हर्ष और उत्साहके विषयमें धृतराष्ट्र और संजयका संवाद

*धृतराष्ट्र उवाच*

केषां प्रहृष्टास्तत्राग्रे योधा युध्यन्ति संजय ।
उदग्रमनसः के वा के वा दीना विचेतसः ॥ १ ॥

**धृतराष्ट्रने पूछा**—संजय ! उस समय किस पक्षके योद्धा अत्यन्त हर्षमें भरकर पहले युद्धमें प्रवृत्त हुए ? किनके मनमें उत्साह भरा था और कौन-कौन मनुष्य दीन एवं अचेत हो रहे थे ? ॥ १ ॥

के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने ।
मामकाः पाण्डवेया वा तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २

संजय ! हृदयको कम्पित कर देनेवाले संग्राममें किन्होंने पहले संग्राम किया, मेरे पुत्रोंने या पाण्डवोंने ? यह मुझे बताओ ॥

कस्य सेनासमुदये गन्धमाल्यसमुद्भवः ।
वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्जताम् ॥ ३ ॥

किसकी सेनाओंमें सुगन्धित पुष्पमाला आदिका प्रादुर्भाव हुआ ? किस पक्षके गर्जते हुए योद्धाओंकी वाणी उदारतापूर्ण और उत्साहयुक्त थी ? ॥ ३ ॥

*संजय उवाच*

उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे तदा ।
स्रजः समाः सुगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥ ४ ॥

**संजयने कहा**—राजन् ! दोनों ही सेनाओंके योद्धा उस समय हर्षमें भरे हुए थे । उभयपक्षमें ही सुगन्ध और पुष्पहारोंका प्रादुर्भाव हुआ था ॥ ४ ॥

संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ ।
संसर्गात् समुदीर्णानां विमर्दः सुमहानभूत् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! संगठित, व्यूहबद्ध तथा युद्धविषयक उत्साहसे उद्यत हुए दोनों दलोंके योद्धाओंकी जब मुठभेड़ हुई, उस समय बड़ी भारी मार-काट मची थी ॥ ५ ॥

वादित्रशब्दस्तुमुलः शङ्खभेरीविमिश्रितः ।
शूराणां रणशूराणां गर्जतामितरेतरम् ।
उभयोः सेनयो राजन् महान् व्यतिकरोऽभवत् ॥ ६ ॥

राजन् ! शङ्ख और भेरी आदि वाद्योंका सम्मिलित भयंकर शब्द जब एक दूसरेपर गर्जन-तर्जन करनेवाले रणवीर शूरोंके सिंहनादसे मिला, तब दोनों सेनाओंमें महान् कोलाहल एवं संघर्ष होने लगा ॥ ६ ॥

अन्योन्यं वीक्षमाणानां योधानां भरतर्षभ ।
कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम् ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! एक-दूसरेकी ओर देखनेवाले योद्धाओं, गर्जते हुए हाथियों और हर्षमें भरी हुई सेनाओंका तुमुल नाद सर्वत्र व्याप्त हो रहा था ॥ ७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें धृतराष्ट्रसंजयसंवादविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi
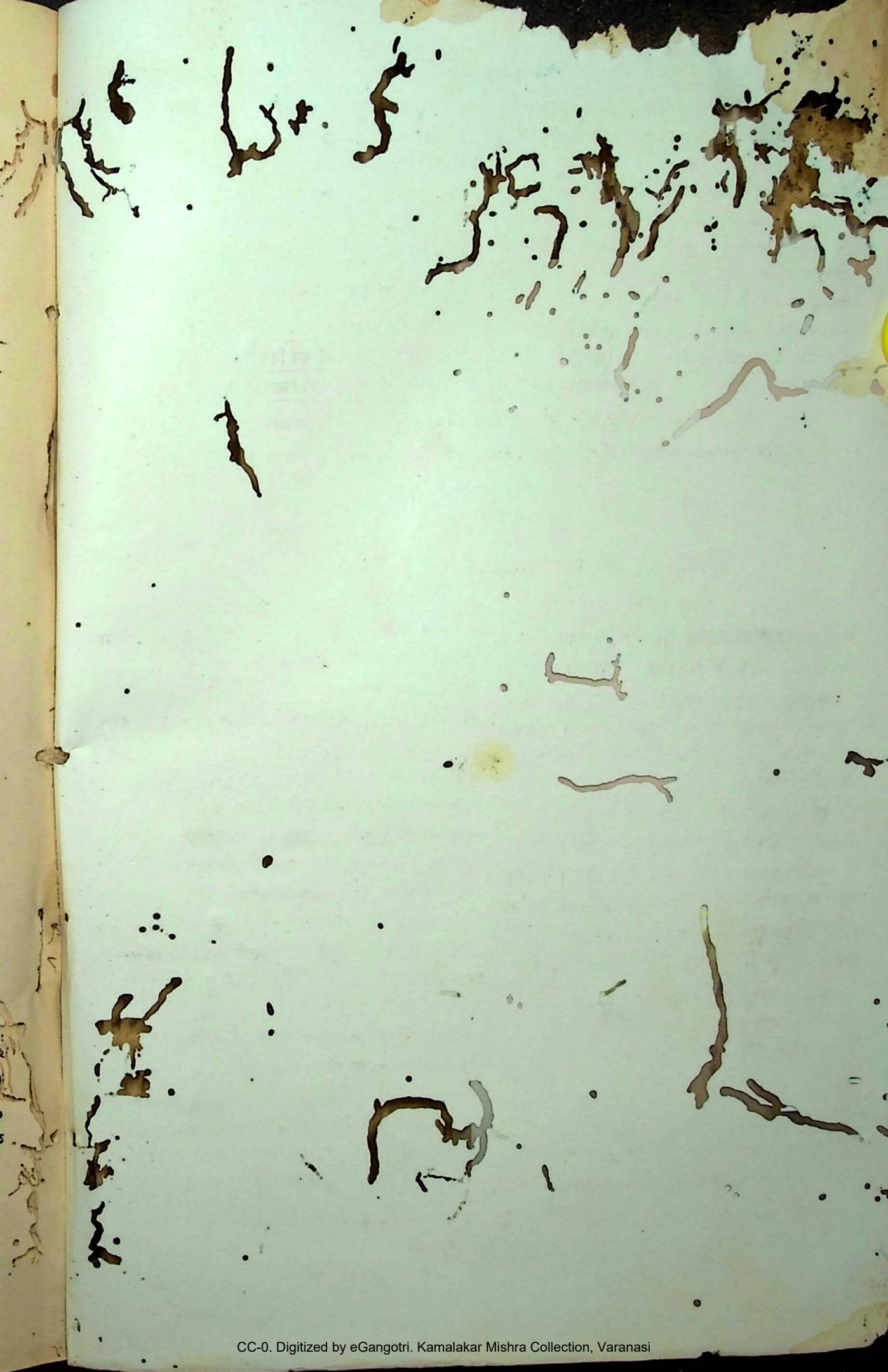
पाँच पुस्तकें ! श्रीहरिः प्रकाशित हो गयी !!!

## महाभारत—मूलमात्र (प्रथम खण्ड)

(आदि, सभा और वनपर्व)

आकार २२×२९ आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ८०४, तीन रंगीन चित्र, मूल्य ६) डाकखर्च २।≡)।

गीताप्रेससे प्रकाशित बड़े आकारकी मूल भागवतकी तरह ही दो कालममें पूरे महाभारतका मूल-पाठ प्रकाशित करनेका विचार है। प्रथम तीन पर्व (आदि, सभा और वन) छप गये हैं। आगेके भी पर्व क्रमशः छप रहे हैं। जिन्हें लेना हो वे मँगवानेकी कृपा करें।

## महत्त्वपूर्ण शिक्षा

लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ ४७६, रंगीन चित्र ४, मूल्य १), सजि० १।≈), डाकखर्च १)

प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीगोयन्दकाजीने कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, सदाचार, वैराग्य, सत्सङ्ग और स्वाध्याय आदि सार्वजनिक शिक्षाके विषयोंको बहुत ही सरल और सुन्दर ढंगसे तथा अनेक कथा-कहानियोंद्वारा भी समझाया है। इसे पढ़कर काममें लानेवाले सभी स्त्री-पुरुषोंको विशेष लाभ हो सकता है।

## व्रत-परिचय

लेखक—स्व० पं० श्रीहनूमानजी शर्मा

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-सं० ४८०, मू० १॥।), सजिल्द २=), डाकखर्च १-)

प्रस्तुत ग्रन्थमें चैत्र कृष्णपक्षके १२, शुक्लपक्षके ३१, वैशाख कृष्णके ६, शुक्लपक्षके १४, ज्येष्ठ कृष्णके ५, शुक्लपक्षके १३, आषाढ़ कृष्णके ३, शुक्लके १६, श्रावणके कुल २१, भाद्रपदके ३६, आश्विनके ३३, कार्तिकके ४४, मार्गशीर्षके ३३, पौषके १६, माघके ३४ और फाल्गुनके १९ व्रतोंका परिचय है। परिशिष्टमें अधिमासके ६, संक्रान्तिके ११, अयनव्रत २, पक्षव्रत २, वारव्रत २१, तिथि-वारादि पञ्चाङ्गव्रत २८, प्रायश्चित्तव्रत ४१, रोग तथा कष्टहारीव्रत १००, पुत्रप्रदव्रत ५ तथा अन्तमें वटसावित्री, मङ्गलागौरी, शिवरात्रि, ऋषिपञ्चमी, अनन्तव्रत आदिकी आठ संस्कृत मूल कथाएँ भी दी गयी हैं।

## मानसिक दक्षता

लेखक—श्रीराजेन्द्रबिहारीलालजी एम्० एस्-सी०

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-सं० ३४४, मू० १), बढ़िया जिल्द १॥), डाकखर्च ॥।≈)।

प्रस्तुत पुस्तकमें मानसिक दक्षताका महत्त्व, मनकी यन्त्र-रचना, मानसिक दक्षताका रहस्य, सीखनेकी कला, एकाग्रता, स्मृति और उसका विकास, सोचनेकी कला, कल्पना और मौलिकता तथा नये विचारोंका जनना आदि प्रकरणोंपर सुन्दर विवेचनात्मक प्रकाश डाला गया है। विद्वान् लेखकने इस विषयके सुप्रसिद्ध विदेशी लेखकोंके २३ ग्रन्थोंका इस पुस्तकमें उपयोग किया है।

## एक महात्माका प्रसाद

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-सं० २९२, मू० ॥।), डाकखर्च ॥।=)।

यह ग्रन्थ यथार्थ मानव-जीवनके निर्माणमें सुख-शान्तिकी प्राप्ति तथा जीवनके चरम और परम उद्देश्यकी सिद्धिके सफल साधन बतानेवाला है। इसकी भूमिकामें कल्याण-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार लिखते हैं—'मेरा विश्वास है कि इसको मन लगाकर पढ़ने और तदनुसार जीवन बनानेका प्रयत्न करनेसे महान् लाभ होगा ........।'

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi